CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्री ।।

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्सना' समुद्भासितम्

पञ्चमोऽध्यायः

टीकाकारः सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८६ R.

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

R.८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्रीः ।।
विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१६८

0५१.८६

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना' समुद्भासितम्

(पञ्चमोऽध्यायः)

टीकाकारः सम्पादकश्च
डॉ० हरिनारायणतिवारी

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404
ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण 2009 ई०
मूल्य : 300.00
1 - 9 भाग : Rs. 3000.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 32996391

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

Nepal Sanskrit University पुस्तकालय
Acc. 31403

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF
न्या. ५२६६

पादानुक्रमपञ्चमाऽध्यायस्याह्निकानुक्रमणी

आह्निकम्	पृष्ठाङ्काः
प्रथमः पादः	
प्रथममाह्निकम्	१-६५
द्वितीयमाह्निकम्	६६-१३४
द्वितीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	१३५-२००
द्वितीयमाह्निकम्	२०१-२३८
तृतीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	२३९-२६९
द्वितीयमाह्निकम्	२७०-३३३
चतुर्थः पादः	
प्रथममाह्निकम्	३३४-३७६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDE

व्या. ९२८८

॥ श्रीः ॥

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना'समुद्भासितम्

पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम्

प्राक्क्रीताच्छः ५.१.१

प्राग्वचनं किमर्थम्? * प्राग्वचन उक्तम् * **प्राग्वचने उक्तम्। किमुक्तम्? तत्र तावदुक्तम्** * प्राग्वचनं सकृद्विधानार्थमधिकारात्सिद्ध-मिति चेदपवादविषयेऽण्प्रसङ्गः * **इति।। इहापि** * प्राग्वचनं सकृद्विधा-नार्थम् * **प्राग्वचनं क्रियते। 'सकृद्विधानार्थम्'। सकृद्विहितः प्रत्ययो विहितो यथा स्याद्योगे-योगे तस्य ग्रहणं मा कार्षमिति।**

यह अधिकारसूत्र है। 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व तक 'छः' का अधि-कार है।

पूर्वपक्षी—**प्राग्वचनमिति**। सूत्र में प्राक्पद का ग्रहण क्यों करते हैं?

सिद्धान्ती—**प्राग्वचन उक्तमिति**। 'प्राग्दीव्यतोऽण्' ४.१.८३ सूत्र पर प्राग्ग्रहण का प्रयोजन बता आया हूँ। यहाँ भी वही प्रयोजन समझ लीजिये। वहाँ पर प्राग्वचन का प्रयोजन सकृद्विधानार्थ है। यहाँ प्राग्ग्रहण से 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ सूत्र से पूर्व जो अर्थ हैं, उन सभी की अपेक्षा कर उन्हीं अर्थों में **सकृत्**=एक वार छ प्रत्यय का विधान हो सके, इसके लिए प्राक् पद का ग्रहण है। इससे एक वार विहित प्रत्यय उन सभी अर्थों में हो जायेगा। प्रकृत सूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में प्रति अर्थ के लिए छ प्रत्यय नहीं कहना पडेगा, इससे लाघव है। यदि सकृद्विधान नहीं करेंगे तो प्रति सूत्र में 'तस्मै हितं छः' इत्यादि छ निर्द्देश करने से शास्त्रगौरव होगा।

नैतदस्ति प्रयोजनम्-अधिकारादप्येतत्सिद्धम्। अधिकारः प्रतियोगं तस्याऽनिर्द्देशार्थ इति योगे-योग उपतिष्ठते * अधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषये च्छप्रसङ्गः * **अधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषयेच्छः प्राप्नोति। 'उगवादिभ्यो यत्' 'छश्चे'ति च्छोऽपि प्राप्नोति। तस्मात् प्राग्वचनं कर्त्तव्यम्।**

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। यदि सूत्र में प्राक्पद का ग्रहण नहीं करके मात्र छ का स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् अधिकार कर दिया जाये तो भी प्रतियोग में छ की उपस्थिति होने से उन-उन अर्थों में छ सिद्ध हो जायेगा। जैसे—'इको यणचि' ६.१.७६ सूत्र में स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् 'अचि' पद का अधिकार किया गया है, परन्तु अवधिविशेष का ग्रहण नहीं करने पर भी लक्ष्य सिद्ध करता है, वैसे प्रकृत में भी प्राक्क्रीतात्' अंश को हटा कर मात्र 'छः' इतना ही सूत्र रखिये, अवधिविशेष का ग्रहण नहीं होने पर यह भी लक्ष्य सिद्ध कर देगा। यहाँ 'प्रतियोगम्' पद से अधिकार को लाघवार्थ दिखाया जा रहा है तथा 'योगे-योग उपतिष्ठते' पद से अधिकार का व्यापार दिखाया जा रहा है।

इतर आचार्य—**अधिकारादिति**। यदि 'प्राक्क्रीतात्' पद हटा कर मात्र 'छः' इतना सूत्र रख कर उसी का अधिकार करेंगे तो अपवाद सूत्र 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ के विषय में 'छः' सूत्र की भी प्राप्ति होगी। इस तरह 'तव्यत्तव्यानीयरः' ३.१.९६ की तरह 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ और 'छः' की विकल्पापत्ति होगी। यहाँ पर दूसरा पक्ष यह भी समझना चाहिये कि 'छः' ५.१.१ और 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ यह दोनों ही अधिकारसूत्र हैं। अधिकार-सूत्र विधिसूत्र के उपकारक होने से परस्पर सम्बन्ध नहीं कर सकते हैं, अतः 'शरीरावयवाद्यत्' ५.१.४ और 'छः' ५.१.१ की विकल्पापत्ति होगी; यह आपत्ति न हो, इसके लिए प्राक्पद का ग्रहण करना चाहिये।

अथ क्रियमाणेऽपि प्राग्वचने कथमिदं विज्ञायते—प्राक् क्रीताद्याः प्रकृतय, आहो स्वित् प्राक्क्रीताद्येऽर्था इति? किं चाऽऽतः? यदि विज्ञायते-प्राक्क्रीताद्याः प्रकृतय इति, स एव दोषः 'अपवादविषये च्छप्रसङ्ग' इति। अथ विज्ञायते—'प्राक्क्रीताद्येऽर्था' इति न दोषो भवति। समानेऽर्थे प्रकृतिविशेषादुत्पद्यमानो यच्छं बाधिष्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथा न दोषस्तथास्तु ।

पूर्वपक्षी—**अथेति** । प्राक्पद का ग्रहण करने पर भी यह कैसे निश्चय होगा कि 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ सूत्र से पूर्व जो प्रकृति निर्दिष्ट है, उससे छ प्रत्यय हो, अथ वा जो 'तस्मै हितम्' ५.१.५ आदि अर्थ निर्दिष्ट हैं, उसमें प्रत्यय हो?

अन्य आचार्य—**किं चात इति** । 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व में निर्दिष्ट प्रकृति से प्रत्यय हों, अथ वा निर्दिष्ट अर्थ में प्रत्यय हों, इसमें क्या भेद है?

पूर्वपक्षी आचार्य दोनों ही अर्थों को दुष्ट मान कर दोष उपस्थापन करते हैं—**यदीति** । यदि 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व में निर्दिष्ट प्रकृति से छ प्रत्यय का विधान करेंगे तो वही दोष उपस्थित होगा । अर्थात् 'तस्मै हितम्' ५.१.५ इत्यादि में जहाँ अर्थमात्र का निर्देश है वहाँ 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ इस अधिकार से सामान्य प्रकृति लब्ध होगी; एवं 'शरीरावयवाद्यत्' ५.१.६ इत्यादि में विशेष प्रकृति लब्ध होगी । 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व तक की निर्दिष्ट प्रकृतिमात्र से विहित छ प्रत्यय प्रकृतिविशेष 'शरीरावयवाद्यत्' ५.१.४ से भी प्राप्त होगा, यही दोष है । यदि द्वितीय दोष मान कर 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व में निर्दिष्ट अर्थ में छ प्रत्यय का विधान करेंगे तो इस पक्ष में दोष नहीं है । समान अर्थ में प्रकृतिविशेष से विधीयमान यत्प्रत्यय से छ का बाध हो जायेगा । जैसे—'तस्मै हितम्' ५.१.५ इस अर्थ में प्रकृतिविशेष 'शरीरावयवाद्यत्' ५.१.६ से विधीयमान यत्प्रत्यय प्रकृत्यन्तर में सावकाश छ प्रत्यय का तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा बाध कर लेगा ।

उत्तरपक्षी—**यथा नेति** । जिसमें दोष नहीं है वह द्वितीय पक्ष 'प्राक्क्रीताद्येऽर्थाः' ही मान लीजिये ।

'प्राक्क्रीताद्येऽर्था' इति विज्ञायते । कुत एतत्? तथा ह्ययं प्राधान्येनार्थं प्रतिनिर्दिशति । इतरथा हि बह्व्यस्तत्र प्रकृतयः पठ्यन्ते ततो यां कांचिदेव प्रकृतिमवधित्वेनोपाददीत ।

आक्षेप भाष्य—**प्राक्क्रीतेति** । आप 'प्राक्क्रीताद्येऽर्थाः' पक्ष मानते हैं, यह कैसे सम्भव है?

उत्तरपक्षी—**तथा हीति** । कहीं-कहीं पर आचार्य 'तस्मै हितम्' ५.१.५ इत्यादि में अर्थनिर्देश करते हैं । जिस प्रकार का अवधि होगा, उसी प्रकार का अवधिमान भी होना चाहिये । जैसे—'मासात्परः' ऐसा कहने से अवधि काल के होने पर अवधिमान काल ही प्रतीत होता है, एवं 'ग्रामात्पूर्वः' में अवधि देश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के होने पर अवधिमान् देश की ही प्रतीति होती है; एवम् 'अलोन्त्यात्पूर्व उपधा' १.१.६५ में अवधि अल् के होने से अवधिमान् अल् ही होता है; वैसे प्रकृत में भी आचार्य ने 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ सूत्र में 'क्रीतात्' ऐसा अवधि के द्वारा अर्थनिर्देश किया है, अतः अवधि और अवधिमान् के सजातीय होने से अवधिमान् भी अर्थ का ही ग्रहण होगा। इसलिए 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ सूत्र में 'प्राक्क्रीताद्येऽर्थास्तत्र च्छः' पक्ष माना गया है। यदि आचार्य को प्रथम पक्ष 'प्राक्क्रीताद्याः प्रकृतयस्ततः प्रत्ययः' पक्ष इष्ट होता तो 'तेन क्रीतम्' से पूर्व बहुत सी प्रकृति भी पढी गयी है; किसी भी प्रकृति को अवधित्वेन विवक्षा कर 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ सूत्र के स्थान पर 'आ परिखायाश्छः' इस तरह का सूत्र पढ सकते थे। परन्तु प्रकृति को अवधित्वेन विवक्षा नहीं करके आचार्य ने अर्थ की अवधित्वेन विवक्षा की है, अतः 'प्राक्क्रीताद्येऽर्थास्तत्र च्छः' पक्ष ही मानना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है।

अथ वा पुनरस्तु 'प्राक्क्रीताद्या प्रकृतय' इति। ननु चोक्तमपवादविषये च्छप्रसङ्ग इति * न वा क्वचिद्वावचनात् * न वैष दोषः। किं कारणम्? 'क्वचिद्वावचनात्'। यदयं क्वचिद्वावचनं करोति— 'विभाषा हविरपूपादिभ्य' इति, तज्ज्ञापयत्याचार्यो—'नापवादविषये च्छो भवती'ति।

पक्षान्तर में उत्तरपक्षी आचार्य द्वितीय पक्ष को भी पुष्ट करते हैं—**अथ वेति**। आप 'प्राक्क्रीताद्याः प्रकृतयस्ततश्छः' पक्ष को ही मान लीजिये। इस पक्ष में आप ने अपवाद के विषय में भी छ की अतिव्याप्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। 'विभाषा हविरपूपादिभ्यः' ५.१.४ सूत्र में आचार्य 'विभाषा' पद का निर्देश करते हैं। यदि अपवाद के विषय में भी छ होता तो इसी से प्रकृत में विभाषा सिद्ध थी; पुनः आचार्य द्वारा निर्दिष्ट 'विभाषा' पद व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा— 'अपवाद के विषय में छ प्रत्यय नहीं होता है'। इससे प्रकृत में 'विभाषा' पद का निर्देश सार्थक हो गया। यहाँ अध्येता विद्यार्थी को यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि अपने तर्क के बल पर भाष्यकार ने द्वितीय पद को भी सिद्ध कर दिया; वस्तुतः यह बडे होने की ढिठायी है। इस ज्ञापन से भी दोष निवृत्त हो गया, इस लिए कह दिया है। परन्तु अवधि के विजातीय होने से यह पक्ष उचित नहीं है।

यद्येवं, नार्थः प्राग्वचनेन, अधिकारात्सिद्धम्। ननु चोक्तमधिकारात्सिद्धमिति चेदपवादविषये च्छप्रसङ्ग इति। परिहृतमेतद्—न वा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्वचिद्द्वावचनादिति। अथ किमर्थमियान् अवधिर्गृह्यते, न 'प्राक्ठञ' इत्येवोच्यते? एतज्ज्ञापयत्याचार्यः- 'अर्थेष्वयं भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? समानेऽर्थे प्रकृतिविशेषादुत्पद्यमानो यच्छं बाधते।। प्राक्क्रीताच्छः।।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'नापवादविषये च्छो भवति' यह ज्ञापन कर रहे हैं तो सूत्र में 'प्राक्' पद की कोई आवश्यकता नहीं है। मात्र 'छः' इतना ही अधिकारसूत्र रखिये; इससे पक्ष में मैंने 'अपवाद के विषय में छ प्रत्यय' की अतिव्याप्ति दी थी; उस अतिव्याप्ति का 'न वा क्वचिद्द्वावचनात्' कह कर 'विभाषा हविरपूपादिभ्यः' ५.१.४ में विभाषाग्रहण के द्वारा वारण कर दिया है। इस तरह प्राक्पदरहित मात्र 'क्रीताच्छः' इतना ही अधिकार रखने में कोई दोष नहीं है।

पूर्वपक्षी—**अथ किमर्थमिति**। आचार्य ने 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ को अवधि मान कर 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ सूत्र पढा है। आचार्य ठञ् को अवधि मान कर 'प्राक्ठञश्छः' ऐसा सूत्र क्यों नहीं पढते हैं? ठञ् से पर अर्थ और प्रकृति 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ का विषय नहीं है; अतः आचार्य को 'प्राक्ठञश्छः' ५.१.१ ऐसा ही अधिकार करना चाहिये था। प्रत्यासत्ति के द्वारा 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से पूर्व ही छ प्रत्यय होता है। 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से पर में छ प्रत्यय नहीं है, अतः अव्याप्ति भी नहीं होगी?

ज्ञापनवादी आचार्य—**एतज्ज्ञापयतीति**। 'प्राक्ठञश्छः' ऐसा सूत्र न पढ कर आचार्य ने 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ पढ कर अर्थ को अवधि बनाया है। इससे आचार्य ज्ञापन करते हैं कि यह 'छ'विधि अर्थों में होता है।

प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। 'अर्थेष्वयं भवति' इस ज्ञापन का क्या प्रयोजन है?

सिद्धान्ती—**समानेऽर्थ इति**। समान अर्थ में 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ इत्यादि के द्वारा प्रकृतिविशेष से होने वाला यत्प्रत्यय से छ का बाध हो, यही अर्थ में प्रत्ययविधि का प्रयोजन है।। **प्राक्क्रीताच्छः।।**

उगवादिभ्यो यत् ५.१.२

* यञ्ञ्यावञः पूर्वविप्रतिषिद्धं सनङ्गूपानहौ प्रयोजनम् * **यञ्ञौ भवतोऽञः पूर्वविप्रतिषेधेन। किं प्रयोजनम्? 'सनङ्गूपानहौ प्रयोजनम्'। यतोऽवकाशः—शङ्कव्यं दारु परशव्यं पिचव्यः कार्प्पासः। अञोऽ-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वकाशः—वाध्रं वारत्रम्। सनङ्गुर्नाम चर्मविकारस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-सनङ्गव्यं चर्म।

यहाँ पूर्व सूत्र ५.१.१ से 'प्राक्क्रीतात्' का अधिकार है, अतः 'तेन क्रीतम्' ५.१.३७ से पूर्व तक के अर्थों में उवर्णान्त और गवादिगणपठित प्रातिपदिकों से यत्प्रत्यय का विधान है। यह 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.३७ का अपवाद है।

एकदेशी—**यञ्ञ्यावञ इति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा यञ् और ञय प्रत्यय के द्वारा अञ् का बाध कहना चाहिये। इस पूर्वविप्रतिषेध का प्रयोजन सनङ्गु और उपानद् है। 'शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु, परशवे हितं परशव्यं दारु, पिचवे हितं पिचव्यः कार्प्पासः' में 'उगवादिभ्यो यत्' चरितार्थ है। एवं **वध्री**=चर्मरज्जुः, तस्या इदं वाध्रं चर्म, **वरत्रा**=चर्मरज्जुस्तस्या इदं वारत्रम्' में 'चर्मणोऽञ्' ५.१.१५ चरितार्थ है। सनङ्गु चर्मविकार है, उससे उवर्णान्त होने से यत् तथा चर्म होने से अञ्, दोनों प्राप्त है। अन्यत्र-अन्यत्र देश में सावकाश होने से दोनों का समान बल है। 'सनङ्गवे हितम्' में यत् और अञ् दोनों प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा यत् से अञ् का बाध होता है—सनङ्गव्यः।

ञ्यस्यावकाशः—औपानह्यं दारु। अञः स एव। उपानन्नाम चर्मविकारस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-औपानह्यं चर्म। यञ्ञ्यौ भवतः पूर्वविप्रतिषेधेन *ढञ्च* ढञ्च भवत्यञः पूर्वविप्रतिषेधेन। ढञोऽवकाशः—छादिषेयं तृणम्। अञः स एव। छदिर्नाम चर्मविकारस्तस्मादुभयं प्राप्नोति-छादिषेयं चर्म। ढञ्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन।

'उपानहे इदम् औपानह्यं दारु' में 'ऋषभोपानहोर्ञ्यः' ५.१.१४ चरितार्थ है, एवं 'वाध्रं, वारत्रम्' में 'चर्मणोऽञ्' ५.१.१५ चरितार्थ है। उपानत् चर्मविकार है; उससे 'उपानहे इदम्' इस विग्रह में ञ्य और अञ् दोनों प्राप्त है। तुल्यबलविरोध होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ञ्य से अञ् का बाध हो जायेगा—औपानह्यं चर्म। **ढञ्चेति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ढञ् से अञ् का भी बाध कहना चाहिये। **छदिः**=तृणपटलः, तस्मै च्छदिषे इमानीति च्छादिषेयाणि तृणानि' में 'छदिरुपधिबलेर्ढञ्' ५.१.१३ चरितार्थ है। एवं 'वाध्रं, वारत्रम्' में अञ् चरितार्थ है। 'छदिः' चर्मविकार भी है। 'छदिषे इदम्' में छदिष् पद से ढञ् और अञ् दोनों प्राप्त है। तुल्यबलविरोध होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा ढञ् से अञ् का बाध होता होकर 'छादिषेयं चर्म' रूप है।

***हविरपूपादिभ्यो विभाषाया यत्* हविरपूपादिभ्यो विभाषाया यद् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। हविरपूपादिभ्यो विभाषाया अवकाशः—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आमिक्ष्यम्, आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यं पुरोडाशीयम्। यतः स एव। इहोभयं प्राप्नोति—चरव्यास्तण्डुलाः। यद् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन।

हविरपूपादिभ्य इति। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'विभाषा हविरपूपादिभ्यः' ५.१.४ से विहित विकल्प को यत् से बाध कहना चाहिये। 'आमिक्षायै इदमामिक्ष्यम्, आमिक्षीयं वा दधि' में विभाषा चरितार्थ है। 'चरवे हिताश्चरव्यास्तण्डुलाः' में विभाषा और यत् दोनों प्राप्त है। तुल्यबलविरोध होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा यत् से विभाषा का बाध होता है। यहाँ व्यवहारवशात् चरु पद से चरु-अधिकरण हविः कहा गया है।

* अन्नविकारेभ्यश्च * **अन्नविकारेभ्यश्च विभाषाया यद् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। अन्नविकारेभ्यो विभाषाया अवकाशः—सुर्याः सुरीयाः। यतः स एव। इहोभयं प्राप्नोति—सक्तव्या धाना इति। यद् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। इष्टवाची परशब्दः विप्रतिषेधे परं यदिष्टं तद् भवतीति।**

अन्नविकारेभ्यश्चेति। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'उगवादिभ्यो यत्' से विहित यत् प्रत्यय से 'अन्नविकारेभ्यश्च' वा. ५.१.४ से विहित यत् प्रत्यय का बाध कहना चाहिये। 'सुरेभ्यो हिताः सुर्याः सुरीयाः' में विभाषा चरितार्थ है। एवं 'शङ्कव्यं, परशव्यं, पिचव्यः' में यत्प्रत्यय चरितार्थ है। 'सक्तवे हिताः सक्तव्या धानाः' में विकल्प और यत् दानों प्राप्त है। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ से विभाषा का बाध होता है। 'विभाषा हविरपूपादिभ्यः' ५.१.४ पर 'अपूपादिभ्यः' अर्थ में 'अन्नविकारेभ्यः' ऐसा पढते हैं; तद्विषयक यह प्रतिषेध है। वस्तुतः 'हविरपूपादिभ्यो विभाषाया यत्' वा.५.१.१ से ही यह गतार्थ होने से प्रपञ्चार्थ ही 'अन्नविकारेभ्यः' वचन पढा गया है। वह सामर्थ्यवशात् अपूपादिपद से अनिर्धारित सम्बन्धविशेष अन्नविकार ही लिया जायेगा।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। 'यञ्ञ्यावञः-' से प्रारम्भ कर 'अन्नविकारेभ्यश्च' पर्यन्त जो पूर्वविप्रतिषेध कहा है, क्या उसे कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। इसे कहने की आवश्यकता नहीं है।

विना कहे पूर्वविप्रतिषेध की सिद्धि बताते हैं—**इष्टवाचीति**। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ में परशब्द इष्टवाची है; इससे तुल्यबलविरोध होने पर जो पूर्वविप्रतिषेध अथ वा परविप्रतिषेध इष्ट है, वह होगा। प्रकृत में पूर्वविप्रतिषेध इष्ट है। वह इष्टवाची परशब्द से ही सिद्ध हो जायेगा। उसको पृथक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहने की आवश्यकता नहीं है; फिर भी मन्दमति को आशुबोधार्थ एकदेशी ने परिगणन कर दिया है।

अयं नाभिशब्दो गवादिषु पठ्यते। तत्रैव चोच्यते—'नाभि नभञ्चे'ति। तत्र चोद्यते * नाभेर्नभभावे प्रत्ययानुपपत्तिः प्रकृत्यभावात् * **नाभेर्नभभावे प्रत्ययविधानानुपपत्तिः। किं कारणम्? 'प्रकृत्यभावात्'। विकृतेः प्रकृतावभिधेयायां प्रत्ययेन भवितव्यम्। न च नाभिसंज्ञिकाया विकृतेः प्रकृतिरस्ति। यदेव हि तन्मडलचक्राणां मण्डलचक्रं तन्नभ्यमित्युच्यते।**

प्रश्नभाष्य—**अथ नाभिशब्द इति**। 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ सूत्रान्तर्गत गवादिगण में नाभिशब्द पठित है। वहीं ५.१.२ पर आचार्य 'नाभि नभं च' ग. सू.९५ पढते हैं। यहाँ नाभि पद से यत्प्रत्यय का विधान है। जब नाभि शब्द को नभ आदेश कर दिया जायेगा, तब यत्प्रत्यय के प्रति यह भिन्नप्रकृति होगी। इस तरह नाभि पद से विहित यत्प्रत्यय भिन्नप्रकृति होने से नभशब्द से प्राप्त नहीं हो सकेगा। यद्यपि हित अर्थ में 'नभ्यं तैलं, नभ्यं लोहबन्धनम्' सिद्ध हो जायेगा, तथा चक्र का नाभि विकृति नहीं है, अपि तु प्रकृति है, अतः 'नभ्यं चक्रम्' यह सिद्ध नहीं हो पायेगा। एवम् अवयवी के अवयवार्थ नहीं होने से तादर्थ्य में भी नहीं है। परन्तु जो शरीरावयव नाभि शब्द है, उससे 'शरीरावयवाद्यत्' ५.१.६ से यत्प्रत्यय हो कर 'नाभ्यं तैलम्' रूप होगा। गवादि यत्प्रत्यय से संयुक्त नभभाव अन्यत्र यत्प्रत्यय में नहीं हो सकेगा। इस तरह यदि विकृति प्रकृति के अर्थ को कहती है तभी प्रत्यय होना चाहिये; परन्तु गवादि यत्प्रत्यय से युक्त नभशब्द अपनी प्रकृति नाभि के अर्थ को नहीं कह पा रही है, अतः नाभि को नभ आदेश होने पर 'नभ्यं चक्रम्' में यद्यपि दारुलक्षणा प्रकृति नाभि की है, तथापि नभ्य शब्दवाच्य चक्र नाभि की प्रकृति नहीं है। जो तन्मण्डलचक्र का मण्डलचक्र होता है, वही नभ्य कहा जाता है; वह नाभिपद वाच्य नहीं है। यहाँ 'तन्मण्डलचक्राणाम्' में निर्धारणषष्ठी नहीं है; अपि तु अवयवावयविभाव में षष्ठी है-मण्डलाकारं चक्रं येषां तानि मण्डलचक्राणि= शकटानि, तादृश शकट का जो मण्डलाकार चक्र होता है, उसे नभ्य कहते हैं। वह नाभि की प्रकृति नहीं है, अतः उससे यत्प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा।

* सिद्धं तु शाखादिषु वचनाद्ध्रस्वत्वं च * **सिद्धमेतत्। कथम्? शाखादिषु नाभिशब्दः पठितव्यो ह्रस्वत्वं च वक्तव्यम्। नाभिरिव नभ्यमिति। कः पुनरिहोपमार्थः? यत्तदक्षधारणं परिवर्त्तनं वा।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्विति**। नाभि शब्द को **शाखादिषु**=वृक्षशाखा आदि अर्थों में पढ दीजिये; एवं नाभिपद में 'ना'घटक आ को ह्रस्वविधान कीजिये। उससे 'नाभिरिव नभ्यम्' ऐसा उपमा होने से नाभि की समानप्रकृति ही नभ्यपद भी है। गवादिलक्षण यत्प्रत्यय-सन्नियोगशिष्ट ह्रस्वादेश होगा। 'नाभि+यत्' इस दशा में 'यस्येति च' ६.४.१४८ से इकारलोप हो कर 'नभ्यम्' रूप हो जायेगा। इसके लिए नभादेश करने की आवश्यकता नहीं है। तथा 'नाभिरिव' ऐसा उपमान कर देने से नाभि के सदृश नभ्य के होने पर भिन्नप्रकृतिक भी नहीं है।

अन्य आचार्य—**कः पुनरिति**। अवयव और अवयवी में संस्थानकृत सादृश्य नहीं देखा जाता है, फिर 'नाभिरिव नभ्यम्' में जहाँ शाखावाची नाभि अवयव का चक्रवाची अवयवी नभ्य पद है, वहाँ अवयव और अवयवी में सादृश्य सम्भव नहीं है; फिर आप 'नाभिरिव नभ्यम्' में उपमार्थ क्यों ले रहेहैं?

इतर आचार्य यहाँ क्रिया के द्वारा सादृश्य का प्रतिपादन करते हैं—**यत्तदिति**। 'नाभिरिव नभ्यम्' में जो अक्ष=चक्रधारण अथ वा परिवर्त्तन है उसी को लेकर 'नाभिरिव' ऐसी उपमा है। अर्थात् 'नाभिरिव' में रथ का अङ्गविशेष छिद्रवान् नाभिशब्दवाच्य है, वह जैसे अक्षाख्य काष्ठविशेष को धारण करता है, वैसे चक्र भी काष्ठविशेष धारण करता है तथा अपनी धूरी पर घूमता है; अतः काष्ठधारण तथा परिवर्त्तनरूप व्यापार को लेकर 'नाभिरिव नभ्यम्' में उपमा समझ लीजिये।

अपर आह—यत्तदञ्जानोपाञ्जनमिति। न तर्हीदानीमिदं वक्तव्यं-नाभि नभञ्चेति? वक्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? यान्येतान्यरवन्ति चक्राणि तदर्थम्। तत्र नाभिसंज्ञिकाया विकृतेः प्रकृतिरस्ति।

दूसरे आचार्य प्रकृत में उपमा स्पष्ट करते हैं—**अपर आहेति**। **अञ्जनम्**=तैलाभ्यङ्ग और **उपाञ्जनम्**=नाभिसमीपदेशवर्ती अभ्यङ्ग ही यहाँ उपमार्थ लीजिये; उसको लेकर 'नाभिरिव नभ्यम्' कहा है।

अन्य आचार्य—**न तर्हीदानीमिति**। यदि 'सिद्धं तु शाखादिषु वचनाद्ध्रस्वत्वं च'पक्ष मानेंगे तो गवादिगण में 'नाभि नभं च' ग.सू.95 पढने की आवश्यकता नहीं होगी।

उत्तरपक्षी—**वक्तव्यं चेति**। प्रकृत वार्तिक मानने पर भी 'नाभि नभं च' ग.सू.९५ अवश्य पढना चाहिये। जो अर-'चक्र' शलाका वाले चक्र हैं, उसके लिए 'नाभि नभं च' ग.सू.९५ पढना चाहिये। यह उपलक्षणविधया लोहबन्ध नभ्य और अक्ष नभ्य का भी बोधक है, अतः एतदर्थ भी 'नाभि नभं च' गणसूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पढना चाहिये। अरवान्=शलाकावान् चक्रों में पृथक् व्यवस्थित काष्ठों से पृथग्भूत ही नाभि आदि अवयव उत्पन्न होते हैं; अतः वहाँ पर नाभिप्रकृति काष्ठ ही नभ्य होता है। परन्तु अररहित=शलाकारहित चक्र एक ही काष्ठ से उत्पन्न होता है; अतः नाभि का प्रकृतिभूत पृथक् काष्ठ नहीं होने से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है।

यानि चाप्यनवरन्ति चक्राणि तदर्थमपीदं वक्तव्यम्। दृश्यते हि समुदायादवयवस्य पृथक्त्वम्। तद्यथा—वार्क्षी शाखेति। गुणान्तरयोगाच्च विकारशब्दो दृश्यते। तद्यथा—बैभीतको यूपः, खादिरं चषालमिति। तत्रावयवात्समुदाये वृत्तिर्भविष्यति।

अन्य आचार्य—**यानि चापीति**। जो **अनरवन्ति**=शलाकारहित चक्र हैं तदर्थ भी **इदम्**='नाभि नभं च' गणसूत्र पढना चाहिये। यहाँ पर भाष्यकार को 'अनराणि चक्राणि' ऐसा निर्द्देश करना चाहिये था, परन्तु मतुब्निर्द्देश किया है; उसका तात्पर्य यह है कि चक्रजातिविशेष का बोध हो। 'यदि 'अनराणि चक्राणि' ऐसा कहते तो टूटी हुआ **अर**=शलाका वाला चक्र का भी बोध होने लगता, अतः अनवरत पर्युदास के द्वारा अनुत्पन्न **अर**=शलाका वाला चक्र का बोध 'अनवरन्ति' पद से होता है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि जैसे वृक्षों का समुदाय ही वन है, तद्भिन्न नहीं, वैसे नाभि आदि ही चक्र हैं, यहाँ नाभि और चक्र का भेदनिबन्धन प्रकृतिविकृतिभाव नहीं हो सकेगा, ऐसी आशङ्का कर आचार्य अवयव और अवयवी का भेदसाधन कर रहें हैं—**दृश्यते हीति**। अवयव और अवयवी का व्यवहार भेद से भी देखा जाता है, मात्र अभेद से नहीं। जैसे—'वार्क्षी शाखा'। 'वृक्षस्येयं वार्क्षी' में षष्ठ्यन्त वृक्षपद से अण्प्रत्यय भेद में है। यहाँ अवयव शाखा और अवयवी वृक्ष का भेदव्यवहार होने से ही 'वृक्षस्येयं वार्क्षी' में अण्प्रत्यय हुआ है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रकृति का नाश होने पर ही विकृति उत्पन्न होती है; जैसे काष्ठ के नष्ट होने पर भस्म; परन्तु प्रकृत में 'चक्रोच्छेद होने पर नाभिदर्शन नहीं है' ऐसी आशङ्का कर इसका समाधान करते हैं—**गुणान्तरयोगादिति**। अन्य गुण का योग होने पर भी विकारशब्द देखा जाता है। जैसे—'बिभीतकस्य विकारो बैभीतको यूपः, खदिरस्य विकारः खादिरं चषालम्' यहाँ उभयत्र 'तस्य विकारः' ४.३.१३४ से विकार अर्थ में अण्प्रत्यय है। बिभीतक और खदिर का गुणान्तर क्रमशः यूप और चषाल है। यहाँ पर प्रकृति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का उच्छेद नहीं है, अपि तु गुणान्तरयोग है। इसी तरह प्रकृत में चक्रोच्छेद नहीं होने पर भी मात्र गुणान्तरयोग के द्वारा विकार देखे जाने पर चक्र भी प्रकृति है तथा नाभि विकृति है। अवयवनिबन्धनव्यवहार समुदाय में भी देखा जाता है; जैसे पटैकदेश दग्ध होने पर भी 'पटो दग्धः' ऐसा व्यवहार देखा जाता है। वैसे अवयव नाभि का अवयवी चक्र में भी व्यवहार होगा। बुद्धि के द्वारा परिगृहीत अञ्जनादिगुणयोगरूप भावविकार की अपेक्षा के द्वारा नाभिलक्षणव्यवहार से प्रकृतिव्यवहार प्राप्त नभ्यव्यवहार चक्र को मानेंगे।

अथ यो नभ्यार्थो वृक्षः कथं तत्र भवितव्यम्। नभ्यो वृक्षो नभ्या शिंशपेति * नभ्यात्तु लुग्वचनम् * **नभ्यात्तु लुग्वक्तव्यः। स तर्हि लुग्वक्तव्यः? न वक्तव्यः। तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति—नभ्यार्थो नभ्य इति।**

पूर्वपक्षी—**अथ य इति**। जो नभ्यार्थ वृक्ष है, उसका प्रयोग कैसे करेंगे?

उत्तरपक्षी—**नभ्यो वृक्ष इति**। उसका प्रयोग 'नभ्यो वृक्षः, नभ्या शिंशपा' ऐसा ही करेंगे। यहाँ पूर्वपक्षी का आशय यह है कि विकारार्थ में नभ्य पद से कौन प्रत्यय होगा? उत्तरपक्षी ने प्रत्ययरहित 'नभ्यो वृक्षः, नभ्या शिंशपा' ऐसा प्रयोग दिखाया है।

अन्य आचार्य—**नभ्यात्त्विति**। 'नभ्यार्थो वृक्षो नभ्यः, नभ्यार्था शिंशपा नभ्या' में विकारार्थप्रत्यय का लुक् कहना चाहिये।

आक्षेपक—**स तर्हीति**। तो क्या 'नभ्यात्तु लुग्वचनम्' यह वार्तिक पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। 'तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम्'न्याय के अनुसार नभ्यार्थ वृक्ष भी नभ्य है, एवं नभ्यार्था शिंशपा भी नभ्या है। {उगवादिभ्यो-}।

कम्बलाच्च संज्ञायाम् ५.१.३

अयं योगः शक्योऽवक्तुम्। कथमशीतिशतं कम्बल्यमिति? निपातनादेतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकी'ति। इदं तर्हि प्रयोजनं—'संज्ञायामिति वक्ष्यामी'ति। इह मा भूत्—कम्बलीया ऊर्णाः। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। परिमाणपर्युदासेन पर्युदासे प्राप्ते तत्र कम्बल्यग्रहणं क्रियते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिमाणार्थम्। परिमाणं च संज्ञैव। {कम्बलाच्च}।

सूत्रार्थ—'संज्ञागम्य होने पर प्राक्क्रीतीय अर्थों में कम्बल पद से यत्प्रत्यय हो'। कम्बलाय हितं कम्बल्यम्। असंज्ञा में कम्बलीया उर्णा।

भाष्यकार प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं—**अयमिति**। इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है। 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि' ४.१.२२ में आचार्य ने कम्बल्य पद को यत्प्रत्ययान्त प्रयोग किया है, इस निपातन से 'अशीतिशतं कम्बल्यम्' में 'कम्बल्यम्' यह यत्प्रत्ययान्त प्रयोग निष्पन्न हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'कम्बलाच्च' के अनन्तर आचार्य 'संज्ञायाम्' कहेंगे। इससे जहाँ संज्ञा गम्य नहीं है वहाँ 'कम्बलाय हितं कम्बल्या उर्णा' में यत्प्रत्यय का वारण ही 'कम्बलाच्च' सूत्रारम्भ का फल है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। प्रकृत योग का यह भी फल नहीं है। 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि' ४.१.२२ सूत्र में परिमाणपर्युदास के द्वारा पर्युदास प्राप्त होने पर आचार्य ने कम्बल्यग्रहण किया है, वह परिमाणार्थ है। अर्थात् अपरिमाणान्त द्विगु से तद्धितलुक् होने पर 'पञ्चाश्वम्' इत्यादि में लुक् का निषेध है, फिर कम्बल्यग्रहण किया वह परिमाणार्थ है। परिमाण संज्ञा ही होती है। 'संज्ञायत इति संज्ञा' ऐसा मान कर रूढिशक्ति के द्वारा कम्बल्य पद से परिमाण गम्य है। इससे परिमाण अर्थ है तथा संज्ञा गम्य है, इन दोनों का सामानाधिकरण्य कैसे होगा?, यह शङ्का निरस्त हो गयी।1 **कम्बलाच्च-**।।

विभाषा हविरपूपादिभ्यः ५.१.४

किमियं प्राप्ते विभाषा, आहोस्विदप्राप्ते? कथं च प्राप्ते कथं वाऽप्राप्ते? 'उवर्णान्ता'दिति वा नित्ये प्राप्ते, अन्यत्र वाऽप्राप्ते * हविरपूपादिभ्योऽप्राप्ते * हविरपूपादिभ्योऽप्राप्ते विभाषा। प्राप्ते नित्यो विधिः, चरव्यास्तण्डुलाः।

सूत्रार्थ—'हविर्विशेषवाची अपूपादिशब्द से प्राक्क्रीतादि अर्थों में विकल्प से यत्प्रत्यय हो'। आमिक्षाया इदमामिक्ष्यं दधि। पक्ष में छ प्रत्यय होकर 'आमिक्षीयम्'। इसी तरह 'पुरोडाश्याः पुरोडाशीया वा तण्डुलाः। अपूप्यमपूपीयं वा दधि।

पूर्वपक्षी—**किमियमिति**। यहाँ प्राप्त और अप्राप्त दोनों विभाषा सम्भव है। 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ सूत्रस्थ उवर्णान्त से नित्य यत्प्राप्त होने पर विकल्पारम्भ है, अतः प्राप्तविभाषा है। एवं जो उवर्णान्त-भिन्न हैं, उनसे यत्प्राप्त नहीं है, अतः उवर्णान्तभिन्न से अप्राप्त होने पर विकल्प का आरम्भ होने पर अप्राप्त-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभाषा है। इस तरह यहाँ दोनों सम्भव है, क्या मानना चाहिये? प्राप्तविभाषा अथ वा अप्राप्तविभाषा?

उत्तरपक्षी—**हविरपूपादिभ्य इति**। हविरपूपादि से यत्प्रत्यय अप्राप्त है, अतः अप्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र का आरम्भ होने से अप्राप्तविभाषा है। परन्तु जहाँ पूर्व सूत्र से यत्प्रत्यय प्राप्त है, वहाँ नित्य ही यत्प्रत्यय होगा, विकल्प से नहीं; अतः 'चरवे हिताश्चरव्यास्तण्डुलाः' में उवर्णान्त से नित्य ही यत् है, विकल्प से नहीं। {**विभाषा हविरपूपादिभ्यः**}।

शरीरावयवाद्यत् ५.१.६

*** यत्प्रकरणे रथाच्च * यत्प्रकरणे रथाच्चोपसंख्यानं कर्त्तव्यं—रथाय हिता रथ्या। {शरीरवयवाद्यत्}।**

'तस्मै हितम्' ५.१.५ से 'तस्मै' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'शरीरावयवविशेषवाचक चतुर्थ्यन्त से हितम् अर्थ में यत्प्रत्यय हो'। 'उगवादिभ्यो यत्' ५.१.२ से यत् का अनुवर्त्तन होने पर भी पुनः यत्प्रत्यय का ग्रहण है, अतः यह छ का अपवाद है। दन्तेभ्यो हितं दन्त्यम्। कण्ठाय हितं कण्ठ्यम्।

वार्तिक—**यत्प्रकरणेति**। यत्प्रकरण में रथ पद से भी यत् कहना चाहिये—रथाय हिता रथ्या। श्रीदीक्षितजी के मत में उत्तरसूत्र ५.१.७ में 'च' पद के अनुक्तसमुच्चयार्थक होने से रथ्या में व्याख्यानात् यत् सिद्ध हो जायेगा। {**शरीरा-**}।

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ५.१.७

वृषशब्दोऽयमकारान्तो गृह्यते * वृषन्शब्दस्योपसंख्यानं वृषशब्दादेशश्च * वृषन्शब्दश्चाऽपि नकारान्तोऽस्ति तस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'वृषशब्दादेशश्च'। वृषशब्दादेशो वक्तव्यः, वृष्णे हितमिति विगृह्य वृष्यमित्येव यथा स्यात्। तथा ब्रह्मन्शब्दो नकारान्तो गृह्यते।

सूत्रार्थ—'चतुर्थ्यन्त खल, यव, माष, तिल, वृष और ब्रह्मन् पद से हितम् अर्थ में यत् हो'। खलाय हितं खल्यम्। इसी तरह यव्यम्, माष्यं, तिल्यं, वृष्यम्, ब्रह्मण्यम्।

एकदेशी—**वृषशब्दोऽयमिति**। सूत्र में अकारान्त वृषशब्द का ग्रहण है। वृषशब्द का पर्याय नान्त वृषन् शब्द भी है। उससे भी हितम् अर्थ में यत्प्रत्यय तथा 'वृष्यम्' रूप इष्ट है। यदि वृषन् से यत् करेंगे तो वृषण्यम् रूप होगा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृष्यम् रूप हो, इसके लिए नान्त वृषन् पद से यत् प्रत्यय तथा प्रकृति को अदन्त वृषादेश कहना चाहिये। इससे 'वृष्णे हितम्' ऐसा विग्रह करके यत्प्रत्यय तथा वृषादेश हो कर 'वृष्यम्' रूप होता है।

*** ब्राह्मणशब्दस्योपसंख्यानं ब्रह्मन्शब्दादेशश्च * ब्राह्मणशब्दश्चाकारान्तोऽस्ति तस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'ब्रह्मन्शब्दादेशश्च'। ब्रह्मन्शब्दश्चादेशो वक्तव्यो—ब्राह्मणेभ्यो हितमिति विगृह्य 'ब्रह्मण्य'मित्येव यथा स्यात्।**

एवं ब्रह्मन् पद से भी सूत्र में यत् विहित है; जब कि 'ब्राह्मणाय हितम्' ऐसा विग्रह कर चतुर्थ्यन्त ब्राह्मण पद से यत् तथा ब्राह्मण पद को ब्रह्मन् आदेश कर ब्रह्मण्य रूप इष्ट है, अतः ब्राह्मण पद से यत् तथा प्रकृति को ब्रह्मन् आदेश कहना चाहिये। इससे 'ब्राह्मणेभ्यो हितम्' ऐसा विग्रह करने पर भी 'ब्रह्मण्यम्' यही रूप होगा।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। समानार्थावेतौ वृषशब्दो वृषन्शब्दश्च, ब्रह्मन्शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च। आतश्च समानार्थौ, एवं ह्याह-कुतो नु चरसि ब्रह्मन्!, कुतो नु चरसि ब्राह्मणेति। तत्र द्वयोः शब्दयोः समानार्थयोरेकेन विग्रहोऽपरस्मादुत्पत्तिर्भविष्यत्यविरविकन्यायेन।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या उपर्युक्त आदेश कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। वृष और वृषन् ये दोनों पर्याय है। एवं ब्रह्मन् और ब्राह्मण ये भी दोनों पर्याय हैं। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**एवं ह्याहेति**। 'कुतो नु चरसि ब्रह्मन्! 'कुतो नु चरसि ब्राह्मण!'। यहाँ ब्रह्मन् और ब्राह्मण यह उभय पद एक ही अर्थ में होने से पर्याय है, अतः अव्यविकन्याय से एक से विग्रह तथा दूसरे से प्रत्यय होगा।

तद्यथा—अवेर्मांसमिति विगृह्याऽविकशब्दादुत्पत्तिर्भवति—आविकमिति, एवमिहापि वृषाय हितमिति विगृह्य वृष्यमिति भविष्यति। वृष्णे हितमिति विगृह्य वाक्यमेव। तद्यथा ब्रह्मणे हितमिति विगृह्य ब्रह्मण्यमिति भविष्यति, ब्राह्मणेभ्यो हितमिति विगृह्य वाक्यमेव भविष्यति। त्रैशब्द्यं चेह साध्यं तच्चैवं सति सिद्धं भवति।

जैसे अवि और अविक पद पर्याय हैं। परन्तु 'अवेर्मांसम्' ऐसा विग्रह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करके अवि पद से विकारार्थक प्रत्यय नहीं होता है, अपितु अविक पद से प्रत्यय होकर 'आविकम्' रूप होता है। परन्तु यदि 'अविकस्य मांसम्' ऐसा विग्रह किया जाये तो वाक्य ही रहेगा, प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। वैसे ही प्रकृत में वृष और वृषन् के पर्याय होने पर 'वृषाय हितम्' ऐसा विग्रह करके अदन्त से यत् होकर 'वृष्यम्' रूप बनेगा। परन्तु यदि 'वृष्णे हितम्' ऐसा नान्त से विग्रह करेंगे तो वाक्य ही रहेगा, प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। एवं 'ब्रह्मणे हितम्' ऐसा विग्रह करने पर नान्त से प्रत्ययोत्पत्ति होकर 'ब्रह्मण्यम्' रूप होगा, परन्तु यदि 'ब्राह्मणेभ्यो हितम्' ऐसा विग्रह करेंगे तो वाक्य ही रहेगा, वहाँ प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। इस तरह यहाँ 'वृष्यं, वृष्णे हितं, वृषाय हितम्' एवं 'ब्रह्मण्यम्, ब्रह्मणे हितम्, ब्राह्मणेभ्यो हितम्' यह त्रैशब्द्य साध्य है। इस रीति से ये तीनों शब्द सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ भाष्यकार ने दोनों से विग्रह दिखाया है; परन्तु प्रत्ययोत्पत्ति एक से ही दिखायी है तथा दूसरे से प्रत्यय की अप्राप्ति होने से वाक्य ही रहने दिया है, अतः यहाँ त्रैशब्द्य साध्य है, जो इस तरह सिद्ध हो जाता है।। **खलयव-**।।

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ५.१.९

* भोगोत्तरपदात्खविधानेऽनिर्देशः पूर्वपदार्थहितत्वात् * **भोगोत्तरपदात्खविधानेऽनिर्देशः। अगमको निर्देशोऽनिर्देशः। किं कारणम्? 'पूर्वपदार्थहितत्वात्'। उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः पूर्वपदार्थहिते च प्रत्यय इष्यते। पितृभोगाय हिते प्राप्नोति पित्रे चैव हित इष्यते।**

सूत्रार्थ—'चतुर्थ्यन्त आत्मन्, विश्वजन और भोगोत्तरपद प्रातिपदिक से हितम् अर्थ में ख प्रत्यय हो'। 'आत्मने हितमात्मनीनम्' 'आत्माध्वानौ खे' ६.४.१६९ से प्रकृतिभाव है, अतः टिलोप नहीं हुआ। विश्वजनाय हितं विश्वजनीनम्, मातृभोगाय हितं मातृभोगीणः, पितृभोगीणः।

प्रश्नभाष्य—**भोगोत्तरपदादिति**। भोगोत्तरपद से जो प्रत्ययविधान है, वह भोगोत्तरपद से 'हितम्' अर्थ में सम्भव नहीं है। 'मातुर्भोगो मातृभोगः, पितुर्भोगः पितृभोगः' में तत्पुरुषसमास है। तत्पुरुष उत्तरपदार्थप्रधान होता है; तब कि मातृभोग आदि पदों से ख प्रत्यय का विधान करने पर 'हितम्' का अन्वय पूर्वपद मातृ, पितृ के साथ हो रहा है, भोगोत्तर मातृभोगीन, पितृभोगीन के साथ नहीं; अतः 'पितृभोगाय हितम्' ऐसा विग्रह करने पर हित का अन्वय पूर्वपद के साथ होने से भोगोत्तरपद के साथ प्रत्ययार्थ का योग नहीं होगा, जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि पूर्वपद के साथ योग इष्ट नहीं है, अपि तु सोत्तरपद के साथ अन्वय इष्ट है।

एवं तर्हि भोगीनर्प्रत्ययो विधाष्यते * भोगीनरिति चेद्वावचनम् * **भोगीनरिति चेत्प्रत्ययो विधीयते वावचनं कर्त्तव्यम्। मातृभोगीणः। पितृभोगीणः। मात्रीयः। पित्रीय इत्यपि यथा स्यादिति।**

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। अच्छा तो हम भोगोत्तरपद से प्रत्यय न करके चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से भोगीनर् प्रत्यय करेंगे इससे 'मात्रे हितः मातृभोगीणः, पित्रे हितः पितृभोगीणः' सिद्ध हो जायेगा।

इतर आचार्य—**वा वचनमिति**। यदि चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से 'हितम्' अर्थ में भोगीनर् प्रत्यय करेंगे तो 'वा' वचन कहना चाहिये। इससे 'मात्रे हितः' ऐसा विग्रह कर 'मात्रीयः' तथा 'पित्रे हितः' ऐसा विग्रह करके 'पित्रीयः' रूप भी सिद्ध हो सकेगा।

* राजाचार्याभ्यां नित्यम् * **राजाचार्याभ्यां नित्यमिति वक्तव्यम्। राजभोगीनः** * आचार्यादणत्वं च * **आचार्यभोगीनः। किं भोगीनर्प्रत्ययो विधीयत इत्यतो राजाचार्याभ्यां नित्यमिति वक्तव्यम्? नेत्याह-सर्वथा राजाचार्याभ्यां नित्यमिति वक्तव्यम्।**

उक्त 'वा'वचन का अपवाद कहते हैं—**राजाचार्याभ्यामिति**। राजन् और आचार्य पद से नित्य ही भोगीनर् प्रत्यय कहना चाहिये। राज्ञे हितो राजभोगीनः। **आचार्यादणत्वमिति**। आचार्य पद से भोगीनर् प्रत्यय और णत्वाभाव भी कहना चाहिये। आचार्याय हित आचार्यभोगीनः।

अन्य आचार्य—**किं भोगीनरिति**। आप राजन् और आचार्य पद से भोगीनर् प्रत्यय का विधान कर रहे हैं, अथ वा पूर्व से विकल्प प्राप्त भोगीनर् प्रत्यय को राजन् और आचार्य पद से नित्यविधान कर रहे हैं?

उत्तरपक्षी—**नेत्याहेति**। हम यहाँ अतिरिक्त प्रत्यय का विधान नहीं कर रहे हैं। पूर्व में 'एवन्तर्हि भोगीनर्प्रत्ययो विधास्यते। भोगीनरिति चेद्वावचनम्' ऐसा कहा था; इससे राजन् और आचार्य पद से भी 'हितम्' अर्थ में विकल्प से भोगीनर्प्रत्यय प्राप्त हो गया। विकल्प से प्राप्त उसी प्रत्यय को राजन् और आचार्य पद से नित्यविधान कर रहे हैं। इससे छ प्रत्यय की निवृत्ति हो जाती है। भोगोत्तरपद से छ प्रत्ययविधान करने पर भी नित्यग्रहण से मात्र राजन् और आचार्य पद से छ प्रत्यय की निवृत्ति सम्भव नहीं है; अतः भाष्यकार ने भोगीनर्प्रत्यय का विधान कर उपर्युक्त पाठ किया है, इससे इष्टसिद्धि होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस पक्ष में भोगोत्तरपद राजन् और आचार्य से ही प्रत्यय होगा, केवल से नहीं; उक्त पाठ के द्वारा सामर्थ्यवशात् यह अर्थ आयेगा। इस तरह इस पाठ से यहाँ सामर्थ्य ही बलवत् है।

इह च ग्रामणिभोगीनः सेनानिभोगीन इत्युत्तरपद इति ह्रस्वत्वं न प्राप्नोति। इह चाऽब्भोगीन इत्यपो भीति तत्वं प्राप्नोति। सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—भोगोत्तरपदात्ख-विधानेऽनिर्देशः पूर्वपदार्थहितत्वादिति?

अब भोगीनर्प्रत्यय के पक्ष में दोष का उपस्थापन करते हैं—**इह चेति**। 'ग्रामं नयति ग्रामणीः, ग्रामण्या भोगो ग्रामणिभोगस्तस्मै हितो ग्रामणिभोगीनः' इसी तरह 'सेनानिभोगीनः' यहाँ उभयत्र 'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' ६.३.६१ से पूर्वपद को उत्तरपदनिमित्तक ह्रस्वादेश है। यदि आप भोगीनर्प्रत्यय का विधान करेंगे तो 'ग्रामणिभोगीनः' आदि में उत्तरपद नहीं होने से ह्रस्वादेश नहीं हो सकेगा।

भोगीनर्प्रत्ययविधानपक्ष में अन्य दोष देते हैं—**इह चेति**। 'अद्भ्यो हितः अब्भोगीनः' में भादि प्रत्यय पर रहते 'अपो भि' ७.४.४८ से अप् शब्द को तादेश प्राप्त होगा।

भोगीनर्प्रत्यय मानने पर तृतीय दोष देते हैं—**सूत्रं चेति**। सूत्रभेद भी होगा, जो दोषावह है। यहाँ पाठकगण को ध्यान रखना चाहिये कि यथान्यासपक्ष में 'भोगोत्तरपात्खविधानेऽनिर्देशः पूर्वपदार्थहितत्वात्' दोष दिया था। एवं यथान्यास न रख कर चतुर्थ्यन्त से भोगीनर्प्रत्यय विधान करने में उत्तरपदनिमित्तक ह्रस्व की अप्राप्ति, 'अपो भि' तथा सूत्रभेद यह तीन दोष आ रहा है।

इस तरह दोनों ही पक्ष के दुष्ट होने पर प्रथमपक्ष में सिद्धान्ती आचार्य दोषोद्धार करते हैं—**यथान्यासमिति**। आप सूत्र को यथान्यास ही रखिये। इस पक्ष में आपने 'भोगोत्तरपदात्खविधानेऽनिर्देशः पूर्वपदार्थहितत्वात्' दोष दिया था।

नैष दोषः—अयं भोगशब्दोऽस्त्येव द्रव्यपदार्थकः। तद्यथा-भोगवानयं देश इत्युच्यते यस्मिन् गावः सस्यानि च वर्त्तन्ते। अस्ति क्रियापदार्थकः; तद्यथा—'भोगवानयं ब्राह्मण' इत्युच्यते यः सम्य-क्स्नानादीः क्रिया अनुभवति। तद्यः क्रियापदार्थकस्तस्येदं ग्रहणम्। यश्च पितृस्थाभ्यः क्रियाभ्यो हितः सम्बन्धादसौ पित्रेऽपि हितो भवति।

वह नहीं रहेगा। इसे स्पष्ट करते हैं—**नैष दोष इति**। यह भोगपद धन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाची भी है, अतः जिस देश में गायें तथा सस्य होते हैं उसे भोगवान् देश कहते हैं। भोग पद का अर्थ क्रियापरक भी है। जैसे—'धनवानयं ब्राह्मणः' ऐसा कहने से जो ब्राह्मण पूर्ण रूप से स्नान आदि क्रिया का अनुभव करता है, उसका बोध होता है। एवं धनवान् भी स्नान आदि क्रियाओं का सम्यक् अनुभव नहीं करता हुआ कृपण कहा जाता है इस तरह भोगपद धनपरक तथा क्रियापरक होने से उभयवचन है, अतः प्रकृत में क्रियावाची भोगपद का ग्रहण करेंगे। जो पितृस्थ क्रिया के लिए हित है, वह पितृ आदि के लिए भी हित होगा, अतः भोगोत्तरपद से प्रत्यय होने पर 'मातृभोगीणः, पितृभोगीणः' में ख का निर्देश हो जायेगा। परन्तु जो पितृधन के लिए हित है, वहाँ 'ममैतद्धनं भविष्यति' इस बुद्धि से भी पितृधन का रक्षण सम्भव होने से अवश्य ही पितृहित में नहीं हो सकता है। यहाँ पितृस्थक्रिया का हित भी सम्बन्धमहिम्ना पितृहित मे कहा गया है, इस पक्ष में कहते हैं—

यदि सम्बन्धाद्, अस्तु द्रव्यपर्दाकस्याऽपि ग्रहणं, योऽपि हि पितृद्रव्याय हितः सम्बन्धादसौ पित्रे हितो भवति। अथ वा भोगशब्दः शरीरवाच्यपि दृश्यते। तद्यथा—'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहु'मिति। अहिरिव शरीरैरिति गम्यते एवं पितृशरीराय हितः-पितृभोगीण इति।

यदि सम्बन्धादिति। यदि सम्बन्धवशात् पितृस्था क्रिया के हित को भी पितृहित में मानेंगे तो जो पितृधन का **हितः**=रक्षक है, वह भी सम्बन्धमहिम्ना पितृहित होगा। परन्तु जो 'ममैतद् भविष्यति' ऐसा मानता है वह 'पितुरेतद् धनम्' ऐसा मान कर रक्षा नहीं करता है, वह पितृसम्बन्ध नहीं है। इस तरह सम्बन्ध-महिम्ना पितृद्रव्य का हित भी पितृहित होने से उसमें भी 'ख' प्रत्यय कर लीजिये।

तीसरा पक्ष मान कर भी आचार्य यहाँ दोष निवृत्त कर रहे हैं—**अथ वेति**। अथ वा शरीर अर्थ का वाचक भी भोगशब्द है; इसे उदाहरणों से पुष्ट करते हैं—**तद्यथेति**। 'अहिरिव भोगैः' पद से 'अहिरिव शरीरैः' ऐसा अर्थबोध होने से भोगपद शरीरवाची भी है; अतः 'पितृभोगाय=पितृशरीराय हितः पितृ-भोगीणः, मातृभोगाय=मातृशरीराय हितः मातृभोगीणः' में उत्तरपद के साथ अर्थ का अनिर्देशरूप दोष निरस्त हो गया; अतः यथान्यासपक्ष में अर्थ का अनिर्देशरूप दोष निरस्त हो गया।

* खविधाने पञ्चजनादुपसंख्यानम् * **खविधाने पञ्चजनादुपसंख्यानं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्त्तव्यम्। पञ्चजनाय हितः पञ्चजनीनः * समानाधिकरणे * **समानाधिकरण इति वक्तव्यम्। यो हि पञ्चानां जनाय हितः-पञ्चजनीयः स भवति।**

वार्तिककार—**खविधान इति**। खविधान में पञ्चजनशब्द से भी ख कहना चाहिये। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५० से समस्त पञ्चजन पद 'सप्तर्षिः' की तरह संज्ञावाची है। इसमें चार वर्ण और पञ्चम रथकार है। समुदाय में वृत्त पञ्चजन पद एकवचन में भी वृत्त है, अतः एकवचन से विग्रह दिखाते हैं—पञ्चजनाय हितः पञ्चजनीनः। **समानाधिकरण इति**। **समानम्**=एकम् अधिकरणं ययोस्तत्। पञ्चजन पद के समानाधिकरण-कर्मधारय होने पर ही ख प्रत्यय होगा। इससे जहाँ 'पञ्चानां जनाय हितः' में पञ्च और जन पद का व्यधिकरण है, वहाँ ख प्रत्यय नहीं होगा; अपि तु हित अर्थ में चतुर्थ्यन्त 'पञ्चजनीयः' रूप होगा। यहाँ संख्याशब्द का प्रकरणवश विशिष्ट संख्येयवृत्ति निश्चय कर जनशब्द के साथ साक्षात् सम्बन्ध होने से 'पञ्चजन' ऐसा समासवृत्ति है।

* सर्वजनाट्ठञ्च * **सर्वजनाट्ठञ्च वक्तव्यः, खश्च। सर्वजनाय हितः सार्वजनिकः। सर्वजनीनः** * समानाधिकरणे * **समानाधिकरण इति वक्तव्यम्। यो हि सर्वेषां जनाय हितः सर्वजनीयः स भवति।**

सर्वजनादिति। यहाँ 'च' पद से रथ का संग्रह है। सर्वजन पद से खप्रकरण में ठञ् और खप्रत्यय कहना चाहिये। ठञ्प्रत्ययपक्ष में 'सर्वजनाय हितः सार्वजनिकः'। खप्रत्ययपक्ष में 'सर्वजनीनः'। **समानाधिकरण इति**। सर्वजनपद से कर्मधारय होने पर ही चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से हित अर्थ में ठञ् और खप्रत्यय होगा। इससे जहाँ कर्मधारय से भिन्न षष्ठी तत्पुरुष है, वहाँ उभयपदों के व्यधिकरण होने से ठञ् और खप्रत्यय नहीं होगा, अपितु छ हो कर 'सर्वजनीयः' रूप होगा।

* महाजनान्नित्यम् * **महाजनान्नित्यं ठञ्वक्तव्यः। महाजनाय हितो माहाजनिकः** * तत्पुरुषे * **तत्पुरुष इति वक्तव्यम्। बहुव्रीहौ मा भूद्-महाञ्जनोऽस्य महाजनः। महाजनाय हितो महाजनीयः।**

महाजनादिति। चतुर्थ्यन्त महाजन पद से हित अर्थ में नित्य ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये। महाजनाय हितो माहाजनिकः। पूर्व वार्तिक से नित्यम् पद की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः नित्यम् पद ग्रहण से खप्रत्यय की निवृत्ति हो गयी। इससे 'सर्वजनीनः' की तरह 'महाजनीनः' नहीं होगा। **तत्पुरुष इति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'महाँश्चाऽसौ जनो महाजनस्तस्मै हितो माहाजनिकः' ऐसा तत्पुरुष से ही ठञ् कहना चाहिये। इससे अन्यत्र 'महाञ् जनोऽस्य महाजनः' में जहाँ बहुव्रीहि है वहाँ ठञ् प्रत्यय नहीं होगा, अपि तु छ होकर 'महाजनीयः' रूप होगा।

यदि तर्ह्यतिप्रसङ्गाः सन्तीत्युपाधिः क्रियते—आद्यन्यासेऽप्युपाधिः कर्त्तव्यः। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् समानाधिकरण इति वक्तव्यम्। यो हि विश्वेषां जनाय हितः विश्वजनीयः स भवति। अथ मत-मेतदभिधानादाद्यन्यासे न भविष्यतीति, इहापि नार्थ उपाधिग्रहणेन, इहाप्यनभिधानान्न भविष्यति।।

अन्य आचार्य—**यदि तर्हीति**। 'खविधाने पञ्चजनादुपसंख्यानम्' और 'सर्व-जनाट्ठञ्च' में अतिव्याप्तिवारण के लिए आप ने 'समानाधिकरणे' ऐसा उपाधि दिया है। एवं 'महाजनान्नित्यम्' वार्तिक में भी अतिव्याप्तिवारण के लिए 'तत्पुरुषे' उपाधि दिया है। **आद्यन्यासे**='आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः' ५.१.९ सूत्र में भी अतिव्याप्ति है, उसका वारण के लिए भी आपको 'समानाधिकरणे' उपाधि देना चाहिये। इससे 'विश्वं चाऽसौ जनो विश्वजनः' ऐसा कर्मधारय में भी इसकी प्रवृत्ति होगी; तद्भिन्न 'विश्वेषां जनाय हितः' में प्रवृत्ति नहीं होने से खप्रत्यय की अतिव्याप्ति नहीं होगी। अपितु 'विश्वेषां जनाय हितः विश्वजनीयः' में व्यधिकरण होने से छ प्रत्यय होगा, ख नहीं।

उपाधि का निरास करने पर भी सिद्धान्ती आचार्य अतिव्याप्तिवारण करते हैं—**अथ मतमेतदिति**। **आद्यन्यासे**=सूत्र में शब्दशक्तिस्वभाववश कर्मधारय विश्वजन पद से ही ख होगा, अनभिधान के द्वारा कर्मधारय से भिन्न व्यधि-करण विश्वजन पद से ख प्रत्यय अप्राप्त होगा। उसी तरह **इहापि**='खविधाने पञ्चजनादुपसंख्यानम्' 'सर्वजनाट्ठञ्च' और 'महाजनान्नित्यम्' में भी कर्मधारय से ही प्रत्यय करेंगे, अनभिधान होने से व्यधिकरण से प्रत्यय अप्राप्त रहेगा।। आत्मन्वि-।।

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ५.१.१०

*** सर्वाण्णस्य वावचनम् * सर्वाण्णस्य वेति वक्तव्यम्। सार्वः। सर्वीयः * पुरुषाद्वधे * पुरुषाद्वध इति वक्तव्यम्। पौरुषेयो वधः। अत्यल्पमिदमुच्यते—'पुरुषाद्वध' इति। 'पुरुषाद्वधविकारसमूहस्तेन-कृते'ष्विति वक्तव्यम्। पौरुषेयो वधः। पौरुषेयो विकारः। पौरुषेय-स्समूहः। तेन कृतं—पौरुषेयं न दैवम्।। सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ।।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वाण्णस्येति। चतुर्थ्यन्त सर्व पद से 'हितम्' अर्थ में विकल्प से ण कहना चाहिये। इससे 'सर्वस्मै हितः सार्वः' में ण, और छ होने पर 'सर्वीयः' भी होगा।

वार्तिककार—**पुरुषाद्वध इति**। वध अर्थ वाच्य होने पर पुरुष पद से ढञ् कहना चाहिये। 'वधः' के योग में चतुर्थी का सर्वथा असामर्थ्य होने से प्रत्ययार्थसामर्थ्य से यहाँ षष्ठी विभक्ति होगी-पुरुषस्य वधः पौरुषेयः।

सिद्धान्ती आचार्य—**अत्यल्पमिदमिति**। प्रत्ययार्थ वध अर्थ गम्य होने पर पुरुषपद से ढञ् प्रत्यय कहना अत्यन्त अल्प है। वध, विकार, समूह और 'तेन कृतम्' अर्थ में पुरुष पद से ढञ् कहना चाहिये—पुरुषस्य वधः पौरुषेयः, पुरुषस्य विकारः पौरुषेयः। पुरुषाणां समूहः पारुषेयः समूहः। पुरुषेण कृतं पौरुषेयं, न दैवम्। कृतम् अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए सर्वत्र तृतीयान्त से तथा 'वधः, विकारः, समूहः' अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए सर्वत्र षष्ठ्यन्त से विग्रह करना चाहिये। {**सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ**}।

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ५.१.१२

* तदर्थमिति कृत्यनामभ्यष्ठञ् * **तदर्थमिति कृत्यनामभ्यष्ठञ्-वक्तव्यः। इन्द्रमहार्थमैन्द्रमहिकम्। गाङ्गामहिकम्। काशेरुयज्ञिकम्** * न वा प्रयोजनेन कृतत्वात् * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'प्रयोजनेन कृतत्वात्'। तद्धीन्द्रमहार्थम्-इन्द्रमहस्तस्य प्रयोजनं भवति। तत्र 'प्रयोजनमित्येव सिद्धम्।** {तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ}।

'तदर्थम्' यह 'सामान्ये नपुंसकम्' वा.५०४३ निर्देश है। तस्मै इदं तदर्थम्। यहाँ तत्पद से प्रकृति वाच्य है। सप्तम्यर्थ में प्रथमा है। इससे 'विकृत्यर्थायां प्रकृतौ' ऐसा अर्थ लब्ध होगा। 'तस्मै इदं तदर्थम्' ऐसा विग्रह होने से सूत्रार्थ—'चतुर्थ्यन्त विकृतिवाचक प्रातिपदिक से तदर्था प्रकृति वाच्य होने पर यथाविहित प्रत्यय हो' ऐसा होगा। जैसे—'अङ्गारेभ्य एतानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि, प्राकाराय इमाः प्राकारीया इष्टकाः, शङ्कवे इदं शङ्कव्यं दारु'।

एकदेशी आचार्य—**तदर्थमितीति**। 'तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ' प्रकरण में **कृत्य-नामभ्यः**=अवश्यकर्त्तव्यता अथ वा करणार्हत्व होने से प्रकृत में कृत्य पद से उत्सव विवक्षित है, तद्वाचक प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**इन्द्रमहार्थमिति**। प्रकृत में इन्द्रमह आदि प्रातिपदिक उत्सववचन है, चतुर्थ्यन्त इन्द्रमहादि से ठञ् है-इन्द्रमहायेदम् ऐन्द्रमहिकम्। इसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरह 'गङ्गामहस्येदं गाङ्गामहिकम्, कशेरुयज्ञस्येदं काशेरुयज्ञिकम्'।

उक्त एकदेशी के वार्तिक का खण्डन करते हैं—**न वा प्रयोजनेनेति**। 'तदर्थमिति कृत्यनामभ्यष्ठञ्' वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य ने 'प्रयोजनम्' ५.१.१०६ सूत्र पढा है। 'प्रयुज्यन्तेऽनेनेति प्रयोजनम्' ऐसा विग्रह करके प्रयोजन पद से फल अर्थ भी वाच्य है तथा करण अर्थ भी वाच्य है। जो इन्द्रमहार्थ है, वह भी इन्द्रमह है, अतः 'इन्द्रमहस्य प्रयोजनम्' ऐसा विग्रह करने पर भी 'प्रयोजनम्' ५.१.१०६ से ही यथाविहित प्रत्यय हो कर 'ऐन्द्रमहिकम्' आदि की सिद्धि हो जायेगी।। **तदर्थं-**।।

छदिरुपधिबलेर्ढञ् ५.१.१३

* उपध्यर्थमिति प्रत्ययानुपपत्तिरुपध्यभावात् * **उपध्यर्थमिह प्रत्ययस्येहानुपपत्तिः। किं कारणम्? 'उपध्यभावात्'। विकृतेः प्रकृतावभिधेयायां प्रत्ययेन भवितव्यं, न चोपधिसंज्ञिकाया विकृतेः प्रकृतिरस्ति। यद्धि तद्रथाङ्गं तदौपधेयमित्युच्यते।**

छदिष्, उपधि और बलि पद का समाहारद्वन्द्व हो कर सौत्र पुंस्त्व है। 'तादर्थ्य चतुर्थ्यन्त छदिष्, उपधि और बलि पद से प्रकृति वाच्य होने पर ढञ् हो'—यह सूत्रार्थ है। **छदिः**=तृणपटलस्तस्मै इमानि च्छादिषेयाणि तृणानि, बलये इमे बालेयास्तण्डुलाः, बल्यर्थाः' यह अर्थ है।

उपधि और औपधेय पद से एक ही रथाङ्ग वाच्य है, अतः प्रकृति और प्रत्ययार्थ का प्रकृतिविकृतिभाव नहीं होने से उपधि शब्द विकृतिवाची नहीं है तथा तादर्थ्य का भी अभाव है, अतः निरुक्तार्थ में प्रत्यय का अभावस्पष्ट करते हैं—**उपध्यर्थमितीति**। प्रकृति वाच्य होने पर ही विकृति से प्रत्यय होना चाहिये। उपधिसंज्ञिका विकृति का औपधेयपदवाच्य अर्थ प्रकृति नहीं है। जो रथाङ्ग है वह उपधिपद से वाच्य नहीं है, अतः औपधेयप्रकृति का वाचक विकृतिपद उपधि नहीं है, इस लिए उपधिपद से प्रत्यय की अप्राप्ति रहेगी।

* सिद्धं तु कृदन्तस्य स्वार्थेऽञ्वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'कृदन्तस्य स्वार्थेऽञ्वचनात्। कृदन्तस्य स्वार्थेऽञ्वक्तव्यः—उपधीयते उपधेयम्। उपधेयमेवौपधेयम्। सिद्ध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तम्—'उपध्यर्थमिति प्रत्ययानुपपत्तिरुपध्यभावा'दिति।**

समाधानभाष्य—**सिद्धन्त्विति**। 'कृदन्तस्य' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'उपधीयत इत्युपधेयम्' उपपूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः धा.पा.१०९२ धातु से कर्म अर्थ में कृत्संज्ञक यत्प्रत्यय होकर 'उपधेयम्' यह कृदन्त शब्द है; उस कृदन्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय का विधान कर 'औपधेयम्' रूप हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**सिध्यतीति**। कृदन्त उपधेयपद से स्वार्थ में अञ् के द्वारा 'औपधेयम्' सिद्ध हो जा रहा है; परन्तु आचार्य ने उपधिपद से प्रकृति में ढञ् कहा है; आप उपधेय से स्वार्थ में अञ् कह रहे हैं। इस तरह आपके मत में 'छदिर्बलिभ्यां ढञ्' और 'उपधेयादञ्' ऐसा सूत्रन्यास होना चाहिये; परन्तु इससे लक्ष्य सिद्ध होने पर भी सूत्रभेद स्पष्ट रूप से हो गया जो गौरव होने से दोषावह है, तथा आचार्य द्वारा पठित मुख्य सूत्र का भेद भी हो रहा है।

अब उत्तरपक्षी आचार्य सूत्र के यथान्यासपक्ष में 'औपधेयम्' की सिद्धि स्पष्ट करते हैं—**यथान्यासमिति**। सूत्र को यथान्यास ही रखिये। इस पक्ष में 'उपध्यर्थमिति प्रत्ययानुपपत्तिरुपध्यभावात्' दोष दिया था।

नैतदस्ति; अयमुपधिशब्दोऽस्त्येव कर्मसाधनः—उपधीयतेउपधिरिति। अस्ति भावसाधनः—उपधानमुपधिरिति। तद्यो भावसाधनस्तस्येदं ग्रहणम्। एवमपि न सिध्यति। किं कारणम्? विकृतेः प्रकृताविति वर्त्तते, प्रकृतिविकृतिग्रहणं निवर्त्तिष्यते। तच्चाऽवश्यं निवर्त्त्यमिहार्थम् उत्तरार्थं च। इहार्थं तावद्—बालेयास्तण्डुलाः। उत्तरार्थम्—'ऋषभोपानहोर्ञ्यः—आर्षभ्यो वत्स' इति।

इस पक्ष में उक्त दोष नहीं रहेगा। वह इस तरह कि उपपूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः धा.पा.१०९२ धातु से 'उपसर्गे घोः किः' ३.३.९२ से 'कि' प्रत्यय है; वह 'उपधीयत इति उपधिः' ऐसा विग्रह होने से कर्मसाधन भी है, तथा 'उपधानमुपधिः' ऐसा विग्रह होने से भावसाधन भी है। यहाँ जो भावसाधन उपधिशब्द है, उसी का प्रकृत में ग्रहण होगा। रथाङ्गशेष का उपधानक्रियार्थत्व सम्भव है, अतः भावसाधन का तादर्थ्य सम्भव होने पर ढञ् प्रत्यय के द्वारा 'औपधेयम्' सिद्ध हो जायेगा। यहाँ क्रिया का विकृतिरूप से ग्रहण कर समाधान कर रहे हैं। परन्तु अन्य आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**एवमपीति**। यद्यपि लोक में कहीं-कहीं पर क्रिया भी विकाररूप से गृहीत है। जैसे—'बहुविकारोऽयं मनुष्यो हसति गायति नृत्यति'। फिर भी चूँकि पूर्व सूत्र 'तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ' ५.१.१२ से 'विकृतेः प्रकृतौ' की अनुवृत्ति है, अतः यहाँ प्रत्ययविधि में विशिष्ट प्रकृतिविकृतिभाव लिया जायेगा। इससे जहाँ प्रकृति का उच्छेद है, जैसे—काष्ठ का भस्म होना, एवं जहाँ प्रकृति का अन्यरूप हो रहा है, जैसे—काष्ठ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रथाङ्ग आदि रूपान्तर, वहीं प्रकृतिविकृतिभाव का ग्रहण होगा। भावसाधन उपधिपद में इस प्रकार का प्रकृतिविकृतिभाव सम्भव नहीं है, अतः सूत्र के यथान्यासपक्ष में भावसाधन उपधिपद से ढञ् प्राप्त नहीं है। यदि आप 'विकृतेः प्रकृतौ' का अनुवर्त्तन नहीं करना चाहते हैं तो यह सम्भव नहीं है। प्रकृत सूत्र में ही छदिष् और बलि पद का पाठ है, उसके लिए तथा अग्रिमसूत्र 'ऋषभोपानहोर्ञ्यः' ५.१.१४ के लिए 'विकृतेः प्रकृतौ' का अवश्य ही अनुवर्त्तन करना होगा। इस तरह छदिष् और बलि के लिए प्रकृत सूत्र में अनुवृत्त 'विकृतेः प्रकृतौ' का उपधि के साथ भी अन्वय होने से पूर्वोक्त दोष यथावद् बना रहेगा; उसका वारण करने के लिए कृदन्त उपधेयपद से स्वार्थ में अञ्विधि ही मात्र मार्ग अवशिष्ट है।

अथ तदर्थमित्यनुवर्त्तते उताहो न? किं चाऽर्थोऽनुवृत्त्या? बाढमर्थः। 'तदस्य तदस्मिन्स्यादिति, तदर्थे यथा स्यादिह मा भूत्— 'प्रासादो देवदत्तस्य स्या'दिति, 'प्राकारो नगरस्य स्या'दिति। यदि 'तदर्थ'मित्यनुवर्त्तते, 'ऋषभोपानहोर्ञ्यः—ऋषभार्थो घासः, उपानदर्थस्तिलकल्कः-इत्यत्रापि प्राप्नोति।

इतर आचार्य—**अथ तदर्थमितीति**। आप पूर्वसूत्र ५.१.१२ से 'विकृतेः प्रकृतौ' की अनुवृत्ति कर रहे हैं। 'तदर्थम्' की अनुवृत्ति होगी, या नहीं? यदि 'तदर्थम्' की अनुवृत्ति करते हैं तो 'तदस्य तदस्मिन् स्यात्' ५.१.१६ अर्थ में प्रत्यय होगा, एवं 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, प्राकारो नगरस्य स्यात्' में प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो सकेगी; यह 'तदर्थम्' पद का प्रयोजन है। यदि अनुवर्त्तन नहीं करते हैं तो उपधिशब्द से स्वार्थ में प्रत्यय होने से 'औपधेयम्' सिद्ध हो जा रहा है। एवं 'तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम्' के द्वारा ऋषभ, उपानद्, वरत्रा आदि शब्द वत्स आदि अर्थों में शक्त होंगे, अतः उन प्रातिपदिकों से भी स्वार्थ में ही प्रत्यय उत्पन्न हो जायेगा। इस तरह 'तदर्थम्' पद की अनुवृत्ति करने से तथा नहीं करने से दोनों ही पक्षों में अलग-अलग प्रयोजन है।

एवन्तर्ह्यनुवर्त्तते प्रकृतिविकृतिग्रहणम्। ननु चोक्तं—'बल्यृषभयोर्न सिध्यती'ति।

समाधानभाष्य—**एवन्तर्हीति**। पूर्वसूत्र ५.१.१२ से 'तदर्थम्' पद का अनुवर्त्तन करेंगे। वहाँ पर 'तस्मै इदं तदर्थम्' ऐसा प्रकृतिविकृतिभाव का ग्रहण होने पर आप ने प्रकृति वाच्य होने पर बलि और ऋषभपद से प्रत्यय की अप्राप्ति दिखायी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कं पुनर्भवान् विकारं मत्वाऽऽह—'बल्यृषभयोर्न सिध्यती'ति? यदि तावद्यः प्रकृत्युपमर्देन भवति स विकारः—बैभीतको यूपः खादिरं चषालमिति न सिध्यति। अथ मतमेतत्तदेव गुणान्तरयुक्तं विकार इति, बल्यृषभयोरपि सिद्धं भवति। गुणान्तरयुक्ता हि तण्डुला बालेयाः, गुणान्तरयुक्तश्च वत्स आर्षभ्यः। औपधेयन्तु न सिध्यति। वचनात्स्वार्थिको भविष्यति। {छदिरुपधिबलेर्ढञ्}।

कृपया बताने का कष्ट करें कि आप जो विकार मान कर बलि और ऋषभपद से प्रकृतिवाच्य होने पर प्रत्यय का अभाव बता रहे हैं, वह विकार कौन सा है? यदि प्रकृति के नष्ट होने पर जो रूपान्तर विकार लिया जाता है उसका ग्रहण करेंगे तो 'बैभीतको यूपः, खादिरं चषालम्' की सिद्धि नहीं होगी। यहाँ प्रकृति नष्ट हो कर काष्ठभस्म की तरह नहीं हो रही है, अपि तु रूपान्तर हो रही है। यदि प्रकृति के रूपान्तर होने पर जो विकार उत्पन्न होता है, उस प्रकृतिविकृति का ग्रहण करेंगे तो 'बैभीतको यूपः, खादिरं चषालम्' की सिद्धि हो जायेगी, तथा 'बालेयास्तण्डुलाः, आर्षभ्यो वत्सः' की भी सिद्धि हो जायेगी। यहाँ पर गुणान्तरयुक्त होकर तण्डुल ही बालेय है तथा गुणान्तरयुक्त होकर वत्स ही आर्षभ्य है। परन्तु गुणान्तरयुक्त प्रकृति-विकृति का ग्रहण करने पर औपधेय पद असिद्ध हो रहा है। यहाँ उपधि और औपधेय दोनों ही रथाङ्ग के पर्याय हैं, अतः उपधि शब्द के विकृतिवचन नहीं होने से उससे प्रकृतिप्रत्ययार्थ में ढञ् सम्भव नहीं होने से यहाँ भावसाधन उपधिपद से स्वार्थ में ढञ् प्रत्यय ही करना होगा। चूँकि आचार्य ने उपधिपद से ढञ्विधान किया है। उपधि के विकृतिवचन नहीं होने से उससे प्रकृति अर्थ में ढञ् सम्भव नहीं है, अतः वचनसामर्थ्य से स्वार्थ में कर्मसाधन 'कि'प्रत्ययान्त उपधिपद से इसी सूत्र से ढञ् कर लेंगे। {छदिरुपधि-}।

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति ५.१.१६

स्याद्ग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूत्—प्रासादो देवदत्तस्य, प्राकारो नगरस्येति। अथ क्रियमाणेऽपि स्याद्ग्रहणे इह कस्मान्न भवति—प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, प्राकारो नगरस्य स्यादिति? 'शक्यार्थे लि'ङिति वक्तव्यम्।

सूत्रार्थ—'तदस्य स्यादिति एवं तदस्मिन् स्यादिति अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हो'। जैसे—प्रकार आसामिष्टकानां स्यादिति प्रकारीया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इष्टकाः। प्रसादः अस्य दारुणः स्यादिति प्रसादीयं दारु। प्राकारोऽस्मिन् स्यादिति प्राकारीयो देशः।

प्रश्नभाष्य—**स्याद्ग्रहणमिति**। सूत्र में 'स्यात्' और 'इति' दो पदों का ग्रहण है। 'इति'करण से ही सम्पूर्ण दोषों की निवृत्ति सम्भव है, फिर आचार्य 'स्यात्' पद का निर्द्देश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**इह मा भूदिति**। 'प्रासादो देवदत्तस्य, प्राकारो नगरस्य' में प्रथमान्तपद से यथाविहित प्रत्यय न हों, इसके लिए 'स्यात्' पद का निर्द्देश है। इसका आशय यह है कि यदि 'स्यात्' पद का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'तदस्य तदस्मिन्निति' सूत्र बचेगा। 'अस्य' यह सम्बन्धसामान्य में षष्ठी होगी। सामान्य में सम्पूर्ण विशेषों का भी अन्तर्भाव होने से 'प्राकारीया इष्टकाः, प्रासादीयं दारु, प्राकारीयो देशः' की सिद्धि हो जायेगी। परन्तु 'प्रासादो देवदत्तस्य' में स्वस्वामि-भाव का ग्रहण होने से प्रत्यय की अतिव्याप्ति हो रही है, उसका वारण करने के लिए सूत्र में 'स्याद्'ग्रहण है। 'स्यात्' में सम्भावना अर्थ में लिङ् है। इससे विकृतिवचन से ही प्रत्ययप्रसङ्ग होगा। प्रकृत में विकृतिवचन प्रासाद की प्रकृति देवदत्त नहीं है, अतः 'प्राकारो देवदत्तस्य' में यथाविहित प्रत्यय की अतिव्याप्ति नहीं है।

भगवान् भाष्यकार ने 'छदिरुपधिबलेर्ढञ्' ५.१.१३ सूत्र पर पूर्वसूत्र 'तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ' ५.२.१२ से 'तदर्थम्' पद की अनुवृत्ति कर उत्तरसूत्र 'ऋषभो-पानहोर्ञ्यः' ५.१.१४ में तथा 'छदिरुपधिबलेर्ढञ्' ५.१.१३ में भी प्रकृतिविकृति का ग्रहण कर प्रकृत सूत्र में भी 'प्राकारो देवदत्तस्य' में यथाविहित प्रत्यय का वारण किया है। इस तरह यदि प्रकृत में प्रकृतिविकृति नहीं होने से प्रत्यय का वारण ही फल मानेंगे तो वह 'तदर्थम्' पद का अनुवर्त्तन से भी सिद्ध है, फिर इसी अतिव्याप्ति को हटाने के लिए 'स्यात्' पद का ग्रहण आवश्यक नहीं है, ऐसा माना जाये तो 'प्रासादार्थोऽयं देवदत्त उत्पन्नो, योग्योऽयं प्रासाद-लाभः' इस वाक्य में प्रकृतिविकृतिभाव सम्भव होने से प्रत्ययप्रसङ्ग होगा, उसी का वारण करने के लिए आचार्य ने 'स्यात्' पद का ग्रहण किया है। 'स्यात्' यह सम्भावना में लिङ् है, अतः सम्भव होने पर ही प्रत्यय होगा।

अन्य पूर्वपक्षी—**अथ क्रियमाणेऽपीति**। प्रकृत सूत्र में 'स्यात्' पद का ग्रहण करने पर भी 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, प्राकारो नगरस्य स्यात्' में प्रत्यय का अतिप्रसङ्ग कैसे निरस्त होता है? इसका आशय यह है कि किसी ने कहीं देवदत्त नाम का राजा देखा तथा कहीं पर अत्यन्त सून्दर भवन; वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुमान करता है—'इतना सुन्दर भवन देवदत्तनामक राजा का ही सम्भव है'। इस तरह यदि आप 'स्यात्' इस लिङ्निर्देश से सम्भव अर्थ मानते हैं तो 'प्राकारोऽयं देवदत्तस्य' में सम्भव अर्थ ही है; यहाँ यथाविहितप्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**शक्यार्थ इति**। 'स्यात्' यह सम्भावना में लिङ् नहीं है, अपि तु शक्यार्थ में लिङ् है। इससे जहाँ प्रकृतिविकृतिभावरूप शक्यार्थ है, वहीं यथाविहितप्रत्यय होगा, जैसे—'प्राकारीया इष्टकाः, प्राकारो देवदत्तस्य' में अशक्य होने से यथाविहित प्रत्यय अप्राप्त होगा।

नैवं शक्यम्; इदानीमेव ह्युक्तं—'न ह्युपाधेरुपाधिर्भवति विशेषणस्य वा विशेषण'मिति। एवं तर्हीतिकरणः क्रियते। ततश्चेद्विवक्षा भवति। विवक्षा च द्वयी, अस्त्येव प्रायोक्त्री विवक्षा, अस्ति लौकिकी। प्रायोक्त्री विवक्षा, प्रयोक्ता हि मृद्व्या स्निग्धया श्लक्ष्णया जिह्वया मृदून् स्निग्धाञ् शब्दान् प्रयुङ्क्ते।

नैवं शक्यमिति। अभी-अभी आपने 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' १.३.२ सूत्र पर 'न ह्युपाधेरुपाधिर्भवति, विशेषणस्य वा विशेषणम्' कहा है। 'स्यात्' पद में लिङ् लकार प्रकृत्यर्थ में विशेषण होने पर तन्त्र है, अतः प्रकृत्यर्थ में स्वयं विशेषण=अप्रधान लिङ् का विशेषणान्तर शक्य अर्थ का योग सम्भव नहीं है। उपाधि का उपाधि तथा विशेषण का विशेषण नहीं होता है। जैसे—राजा का ही सेवक होता है तथा सभी सेवक राजा के प्रति ही उत्तरदायी होते हैं। सेवक का सेवक नहीं होता है तथा सेवक के प्रति सेवक का उत्तरदायित्व नहीं होता है। परन्तु यह सम्भव है कि एक ही राजा के अनेक सेवक हो सकते हैं, अतः प्रकृत्यर्थ में विशेषण लिङर्थ के प्रति यद्यपि शक्यार्थ विशेषण नहीं हो सकता है, फिर भी प्रकृत्यर्थ में लिङ्ङर्थ और शक्यार्थ दोनों ही विशेषण हो सकते हैं; परन्तु इस पक्ष में 'शक्यः प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्' में प्रत्यय की अतिव्याप्ति होगी। यहाँ पर 'ज्ञातुमुपभोक्तुं वा शक्यः' ऐसा प्रकृत्यर्थ का शक्यार्थत्व-विशेषण सम्भव है। आगे प्रकृत्यर्थ में लिङ् के विशेषण होने से विशेषण का विशेषणाभाव मान कर प्रत्ययप्रसङ्ग को यथावत् मानते हुए उसका वारण करते हैं—**एवं तर्हीति**। सूत्र में 'इति' पद का ग्रहण किया है। यहाँ 'इति' पद से विवक्षा होगी। वह दो प्रकार की होगी। १-प्रायोक्त्री, २-लौकिकी। प्रायोक्त्री उसे कहते हैं जहाँ **'मृद्व्या जिह्वया'**=भ्रष्ट जिह्वा से 'मृदून्शब्दान्'=अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग करता है, एवं **'स्निग्धया जिह्वया'**=अरूक्ष जिह्वा से **'स्निग्धन्शब्दान्'**=

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरूक्षशब्दों का उच्चारण करता है, इससे भी अपशब्दोच्चारण ही बोध्य है, एवं 'श्लक्ष्णया जिह्वया'=मनोहर जिह्वा से **'श्लक्ष्णान्शब्दान्'**=मनोहर शब्दों का प्रयोग करता है। यहाँ भी 'मनोहर शब्दों का प्रयोग करने से असाधुशब्दों का प्रयोग ही बोध्य है'। इस तरह इन तीनों स्थलों में प्रयोक्ता के स्वतन्त्र होने से शब्द-प्रयोग के व्याकरणसम्बन्धिनियमों का अभाव है, अतः प्रकृत में प्रयोक्तृविवक्षा मान्य नहीं होगी।

लौकिकी विवक्षा, यत्र प्रायस्य सम्प्रत्ययः। प्राय इति लोको व्यपदिश्यते। न च 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्' 'प्राकारो नगरस्य स्या'दित्यत्रोत्पद्यमानेन प्रत्ययेन प्रायस्य सम्प्रत्ययः स्यात्।

लौकिकी विवक्षा वह है जहाँ शब्दप्रयोग करने से पूर्व प्रयोक्ता **प्रायस्य**=शास्त्र की सम्पूर्ण प्रक्रिया का स्मरण करता है। 'प्रायः' यह लोकव्यवहार है। अर्थात् लोक जिस अर्थ में शब्दों का प्रयोग करता है, उसी अर्थ में उसी शब्द का प्रयोग करने वाला ही शास्त्रप्रक्रिया का स्मरण करता है, यहाँ 'इति' पद के ग्रहण से यही न्याय संगृहीत है। सूत्र में 'इति' पद हेत्वर्थक होता हुआ विवक्षा का अनुसरण करता है। इससे 'तदस्य तदस्मिन् स्यादिति' यह जो अर्थ है, उसका बोध कराने के लिए जब विवक्षा होगी तब यह अर्थ प्रत्यय की उत्पत्ति में निमित्त होगा। अथ वा अर्थ वृत्ति है, 'इति' शब्द विवक्षा का अनुसरण करता है। इस तरह जब लोक की विवक्षा होगी तब प्रत्यय होगा। 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्, प्राकारो नगरस्य स्यात्' ऐसी विवक्षा लोक में नहीं होती है, अतः उत्पद्यमान प्रत्यय से **प्रायस्य**=शास्त्रप्रयुक्त अर्थ का बोध नहीं होता है।

यद्येवं नार्थः स्याद्ग्रहणेन। न हि प्रासादो देवदत्तस्य प्राकारो नगरस्येत्यत्रोत्पद्यमानेन प्रत्ययेन प्रायस्य संप्रत्ययः स्यात्। {तदस्य तदस्मिन् स्यादिति}।

इस तरह 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्' इस अर्थ का बोध कराने के लिए 'प्राकारीयो देवदत्तः' ऐसी इच्छा लोक में नहीं होती है, एवं 'प्राकारो नगरस्य स्यात्' इस अर्थ का बोध कराने के लिए लोक में 'प्राकारीयं नगरम्' शब्द का प्रयोग नहीं होता है, अतः इस अर्थ में भी प्रत्यय की अतिव्याप्ति नहीं होगी। जब प्रत्यय का अतिप्रसङ्ग नहीं है तब उसका वारण करने के लिए क्रिया='स्यात्' पद का ग्रहण व्यर्थ है; यहाँ 'इति' पद से ही अतिप्रसंग का वारण हो जा रहा है। **{तदस्य तदस्मिन् स्यादिति}**।

आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ५.१.१९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ किमर्थं संख्यायाः पृथग्ग्रहणं क्रियते, न संख्याऽपि परिमाणमेव, तत्र परिमाणपर्युदासेन पर्युदासो भविष्यति।

'आर्हात्' पञ्चम्यन्त, 'अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्' पञ्चम्यन्त और 'ठक्' प्रथमान्त पद है। 'आर्हात्' पद में 'आङ्+अर्हस्तस्मात्' ऐसा पदच्छेद है। यहाँ व्याख्यानात् 'आङ्' पद अभिव्याप्ति अर्थ में है। 'तदर्हति' ५.१.६३ सूत्रान्तर्गत 'अर्हति' पद का एकदेशानुकरण 'अर्ह'पद का अनुवर्त्तन है। इससे पूर्व 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय का अधिकार है, उसका अपवाद गोपुच्छादि को छोड कर ठक् का अधिकार किया जा रहा है, जो 'तदर्हति' ५.१.६३ सूत्र पर्यन्त होगा।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। 'परिमीयतेऽनेनेति परिमाणम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार परिमाण शब्द क्रियापरक है, संख्या भी परिच्छेद में हेतु है, परिमाण-पर्युदास से ही संख्यापर्युदास का भी ग्रहण हो जाता, पुनः संख्या का पृथग् ग्रहण क्यों है?

एवं तर्हि सिद्धे सति यत्संख्यायाः पृथग्ग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽन्या संख्याऽन्यत्परिमाणमिति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकी'ति। द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता द्विशता त्रिशता, परिमाणपर्युदासेन पर्युदासो न भवतीति।

एकदेशी आचार्य—**एवन्तर्हीति**। परिमाणग्रहण से ही संख्या का ग्रहण होने से लक्ष्य सिद्ध था, पुनः आचार्य द्वारा किया गया संख्याग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'संख्या और परिमाण भिन्न-भिन्न हैं'। इस तरह ज्ञापन के द्वारा दोनों का पार्थक्य सिद्ध होने पर परिमाण से संख्या का ग्रहण नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**किमेतस्येति**। 'अन्या संख्या अन्यत्परिमाणम्' इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरपक्षी—**अपरिमाणेति**। 'द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीतेति द्विशता, त्रिभिश्शतैः क्रीतेति त्रिशता' में 'तद्धितार्थोत्तर- पदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगुसमास है। यहाँ 'द्विगोः' ४.१.२१ सूत्र से प्राप्त द्विगुलक्षण ङीप् का अपरिमाणान्त होने से 'अपरिमाणान्तबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि' ४.१.२२ के द्वारा प्रतिषेध सिद्ध हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्येतज्ज्ञाप्यते—'तदस्य परिमाणं' 'संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययने'ष्विति विशेषणं न प्रकल्पते, 'परिमाणं या संख्ये'ति। इह च 'क्रीवत्परिमाणा'दिति संख्याविहितस्य प्रत्ययस्याऽतिदेशो न प्रकल्पते, शतस्य विकारः शत्यः शतिकः साहस्र इति।

अन्य आचार्य उक्त ज्ञापनपक्ष मे दोष देते हैं—**यद्येतदिति**। यदि पृथक्संख्याग्रहण से 'अन्या संख्या अन्यत्परिमाणम्' का ज्ञापन करेंगे तो 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७ से 'परिमाणम्' का अनुवर्त्तन कर 'संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ सूत्र में आचार्य ने 'परिमाणं या संख्या' कह कर परिमाण को संख्या का विशेषण माना है। संख्या और परिमाण को भिन्न-भिन्न मानने पर संख्या में परिमाणपद विशेषण नहीं हो सकेगा। उक्त ज्ञापन का अन्यत्र भी विरोध हो रहा है—**इह चेति**। 'क्रीतवत्परिमाणात्' ४.३.१५६ में परिमाणवाची से विहित प्रत्यय का विकार अर्थ में अतिदेश है। 'अन्या संख्या अन्यत्परिमाणम्' का ज्ञापन करने पर 'शतस्य विकारः शत्यः शतिकः, सहस्रस्य विकारः साहस्रः' में अतिदेश नहीं होने से अनिष्टापत्ति होगी, जब कि यहाँ अतिदेश इष्ट है। 'शतेन क्रीतः शत्यः शतिकः' में 'शताच्च ठन्यतावशते' ५.१.२१ से यत् और ठन् क्रीत अर्थ में विहित है, शतपद को परिमाणवचन होने से 'शतस्य विकारशत्यः शतिकः' में क्रीतवत् अतिदेश होने से प्रत्यय होता है। एवं 'सहस्रेण क्रीतः साहस्रः' में क्रीतार्थक अण्प्रत्यय है। क्रीतवत् अतिदेश होने से 'सहस्रस्य विकारः साहस्रः' में भी होता है। यहाँ परिमाण से संख्या का ग्रहण होने पर ही उक्त इष्टरूप सिद्ध होता है। यदि परिमाण और संख्या को पृथक् मान लेंगे तो उक्त इष्टरूप सिद्ध नहीं हो सकेगा।

यत्तावदुच्यते—'एतज्ज्ञापयत्याचार्योऽन्या संख्याऽन्यत् परिमाण'मिति। नैतज्ज्ञापकसाध्यमन्या संख्या अन्यत् परिमाणमिति। न्यायसिद्धमेवैतद्—अन्यैव हि संख्या अन्यत् परिमाणमिति। भेदमात्रं संख्याऽऽह। यच्चेऽषीकान्तं यच्चापरिमाणं तस्य सर्वस्य संख्या भेदमात्रं ब्रवीति। परिमाणन्तु सर्वतः। सर्वतो मानमिति चाऽऽतः परिमाणमिति। प्रस्थस्य च समानाऽऽकृतेर्न कुतश्चिद्विशेषो गम्यते,—न चोन्मानतो, न परिमाणतो, न प्रमाणतः।

सिद्धान्ती आचार्य—**यत्तावदिति**। अभी-अभी एकदेशी आचार्य ने कहा था कि ज्ञापन से आचार्य ने संख्या और परिमाण को भिन्न-भिन्न कहा है। वस्तुतः संख्या और परिमाण का अन्यत्व ज्ञापनसिद्ध नहीं है, अपि तु लोक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यवहार से ही दोनों का पार्थक्य सिद्ध है। इसके लिए ज्ञापन आवश्यक नहीं है। क्रिया शब्द होने पर भी परिणाम शब्द विशिष्टपरिच्छेद हेतु द्रोण आदि में ही योगरूढ है; अतः उससे संख्या का ग्रहण नहीं हो सकेगा। जैसे—'पङ्काज्जातः पङ्कजः' यौगिकशक्ति से कमल और कुमुद आदि भी वाच्य हैं, परन्तु योग-रूढिशक्ति से पङ्कजपद कमल अर्थ में ही शक्त माना जाता है। वैसे विशिष्ट-परिच्छेदहेतु द्रोण आदि में परिमाणपद के रूढ होने से परिमाणपद के द्वारा संख्या का ग्रहण नहीं होगा। संख्या से मूर्त और अमूर्त पदार्थों की गणना होती है, अतः संख्या पदार्थों का वैलक्षण्य ही प्रतिपादन करेगी। 'एको घटः' इत्यादि स्थलों में भी द्वित्वादि का निरास होने से भेदबोध होगा। जो **इषीकान्तम्**= अल्पपरिमाण, एवम् उपलक्षणविधया महापरिमाण एवं अल्पपरिमाणरूप क्रिया, आत्मा आदि, उन सभी का संख्या से परिगणन होता है। परन्तु उन्मानप्रमाण परिमाण मूर्तद्रव्यविषय ही होते हैं। कहीं-कहीं पर 'यच्च परिमाणम्' ऐसा पाठभेद भी है। वहाँ पर इस प्रकार अर्थ समझना चाहिये—'द्रोण आदि परिमाण भी संख्या से परिच्छिन्न हैं; जैसे—द्वौ द्रोणौ, त्रयः द्रोणाः। सभी के संख्या-परिच्छिन्न होने से यहाँ परिग्रहण उपलक्षणविधया संख्या अर्थ का वाचक होगा'। इसी को श्रीभर्तृहरिजी ने—

दिष्टप्रस्थसुवर्णादि, मूर्तिभेदाय कल्पते।
क्रियाभेदाय कालस्तु संख्या सर्वस्य भेदिका।।

इस रूप में कहा है। परन्तु '**परितः=सर्वतो** मानं परिमाणम्' इस व्युत्पत्ति से स्वगत आरोह=उच्छ्राय और परिणाह=विस्तार के द्वारा काष्ठ आदि से निर्मित जिस पात्रविशेष से धान्य आदि का मानज्ञान किया जाता है, उस प्रस्थ आदि को परिमाण कहते हैं। समान आकृति वाले प्रस्थ का कहीं से भी किसी भी तरह उन्मान से, परिमाण से, तथा प्रमाण से कोई भी विशेषज्ञान नहीं होता है; अपि तु 'द्वौ प्रस्थौ, त्रयः प्रस्थाः' इत्यादि विशेषसंख्या के द्वारा ही होता है, अन्य से नहीं। हस्त आदि से भिन्नसन्निवेश का ज्ञान होता है, अतः समान-सन्निवेशप्रतिपादन के लिए समानाकृतिपद का ग्रहण है।

किं पुनरुन्मानं, किं परिमाणं, किं प्रमाणम्?

* ऊर्ध्वमानं किलोन्मानम् * **ऊर्ध्वं यन्मीयते तदुन्मानम्** * परिमाणन्तु सर्वतः * **सर्वतो मानमिति चाऽऽतः परिमाणम्। कुत एतत्? परिः सर्वतो भावे वर्त्तते** * आयामस्तु प्रमाणं स्यात् * **आयामविवक्षायां प्रमाणमित्येतद् भवति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य प्रसङ्गसंगत्या उन्मान और प्रमाण का भी प्रश्नपूर्वक स्वरूपप्रतिपादन करते हैं—**किं पुनरिति**। उन्मान क्या है, परिमाण क्या है, एवं प्रमाण क्या है?

उत्तरपक्षी—**ऊर्ध्वमानमिति**। ऊर्ध्वदिशा में अवस्थित परिच्छेदक को उन्मान कहते हैं, अथ वा तुला पर रख कर पाषाण आदि से निर्मित जिस सेर, किलोग्राम आदि से धान्य, सुवर्ण आदि का गुरुत्वज्ञान किया जाये, उसे उन्मान कहते हैं। तुला के ऊर्ध्वभाग पर आरोपण करने से उसे उन्मान कहा है। 'ऊन्मीयते' में दैवादिक मीङ् हिंसायाम् धा.पा.११३३ धातु है, जिसका 'परिच्छेदं करोति' अर्थ है। **परिमाणन्त्विति**। सर्वतः मान को परिमाण कहते हैं।

पूर्वपक्षी—**कुत एतदिति**। 'सर्वतो मानं परिमाणम्' यह अर्थ कैसे आया?

उत्तरपक्षी—**परिरिति**। 'परिमाणम्' में परि और मान ये दो पद हैं। 'परि' पद सर्वतः अर्थ में है, अतः '**परि**=सर्वतो मानं परिमाणम्' ऐसा अर्थ होगा। **आयामस्त्विति**। जिससे वस्त्र, काष्ठ आदि का दैर्घ्यज्ञान किया जाता है उस हाथ, गज, मीटर आदि को आयाम कहा गया है।

*** संख्या बाह्या तु सर्वतः * संख्या बाह्या तु सर्वतः। आतश्च सर्वतः संख्या बाह्या * भेदमात्रं ब्रवीत्येषा नैषा मानं कुतश्च न * एवं च कृत्वा संख्यायाः पृथग्ग्रहणं क्रियते।**

संख्या बाह्येति। उन्मान, परिमाण और प्रमाण से भिन्न संख्या है; वह प्रस्थ आदि से परिच्छिन्न का प्रस्थ भेदमात्र को कहती है, जैसे—दो सेर, तीन सेर, दो मन, तीन मन, दो गज, तीन गज आदि। इस तरह प्रस्थ आदि से परिच्छिन्न का भेदमात्रबोध कराने में ही संख्या का उपयोग है, संख्या से किसी वस्तु का माप नहीं किया जा सकता है। इस तरह परिमाण और संख्या में भेद होने से परिमाण से पृथक् संख्या का ग्रहण किया गया है।

यदप्युच्यते—'तदस्य परिमाणं' 'संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययने'-ष्विति विशेषणं न प्रकल्पत' इति। आहार्यं 'परिमाणं या संख्ये'ति, न चास्ति संख्या परिमाणं, तत्र वचनादियती विवक्षा भविष्यति।

इससे पूर्व में पूर्वपक्षी ने संख्या और परिमाण को भिन्न-भिन्न होने पर 'संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ सूत्र पर 'परिमाणं या संख्या' भाष्य का विरोध बताया था, वहाँ वचनप्रमाण से हम 'परिमाणं या संख्या' की विवक्षा कर लेंगे। इसमें कोई विरोध नहीं है तथा प्रमाण से विवक्षा करने पर कोई हानि भी नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदप्युच्यते— 'क्रीतवत्परिमाणादिति च संख्याविहितस्य प्रत्ययस्याऽतिदेशो न प्रकल्पते' इति। संख्याया इति तत्र वक्तव्यम्।

संख्या और परिमाण के भिन्नार्थक होने पर 'क्रीतवत्परिमाणात्' से 'शतस्य विकारः शत्यः शतिकः, सहस्रस्य विकारः साहस्रः' में अतिदेशाभाव बताया था, वह भी नहीं रहेगा। वहाँ हम 'क्रीवत्परिमाणात्' सूत्र पर 'संख्याख्याः' ऐसा अतिरिक्त वार्तिकवचन पढ देंगे; इससे संख्यावचन से भी अतिदेश हो जायेगा।

किं पुनरिमे ठगादयः प्रागर्हाद् भवन्त्याहोस्वित् सहार्हेण? कश्चात्र विशेषः? * ठगादयः प्रागर्हाच्चेदर्हे तद्विधिः * **ठगादयः प्रागर्हाच्चेदर्हे तद्विधिः। अर्हे ठगादयो विधेयाः, शतमर्हति शत्यः शतिकः साहस्र इति।**

पूर्वपक्षी—**किं पुनरिम इति**। सूत्र में 'आङ्+अर्हात्' ऐसा पदच्छेद है। 'आङ्' का मर्यादा और अभिविधि दो अर्थ है। 'तदर्हति' ५.१.६३ का एकदेशानुकरण अर्ह है। यदि आङ् को मर्यादार्थक मानेंगे तो 'तदर्हति' ५.१.६३ सूत्र से पूर्व तक ही ठक् आदि प्रत्यय होंगे। 'तदर्हति' ५.१.६३ में प्राप्त नहीं हो सकेंगे, जब कि वहाँ भी इष्ट हैं, अतः मर्यादापक्ष में प्राप्त अव्याप्ति का वारण के लिए 'तदर्हति' ५.१.६३ में ठक् आदि को अलग से विधान करना होगा। यदि आङ् को अभिविध्यर्थक मानेंगे तो 'तदर्हति' ५.१.६३ पर्यन्त ठक् आदि प्राप्त होंगे; इससे 'शतमर्हति शत्यः' इत्यादि के लिए पृथग्वचन करने की आवश्यकता नहीं होगी।

'वस्ने वचनात्सिद्धम्' इह यः शतमर्हति शते तस्य वस्नो भवति, तत्र 'सोऽस्यांशवस्नभृतय' इत्येव सिद्धम् * वस्ने वचनात्सिद्धमिति चन्मांसौदनिकादिष्वतिप्राप्तिः * **वस्ने वचनात्सिद्धमिति चेन्मांसौदनिकादिष्वप्राप्तिः, मांसौदनिकोऽतिथिः। श्वैतच्छत्रिकः। कालायसूपिकः।**

वस्न अर्थ में प्रत्ययोत्पत्ति के लिए अतिरिक्त वचन की आवश्यकता नहीं होगी, इसे स्पष्ट करते हैं—**वस्ने वचनादिति**। **वस्ने**=मूल्य अर्थ में 'सोऽस्यांशवस्नभृतयः' ५.१.५६ इस वचनप्रमाण से ही प्रत्यय हो जायेगा। जो शत के योग्य है उसका मूल्य शत होता है, अतः 'शतं वस्नमस्येति शत्यं वस्त्रं, शतिकं वस्त्रम्, सहस्रं वस्नमस्येति साहस्रं वस्त्रम्' सिद्ध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**वस्ने वचनात्सिद्धमिति**। यदि आप 'सोऽस्यांशवस्नभृतयः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.१.५६ इस वचनप्रमाण से 'शत्यं वस्त्रम्' आदि में प्रत्यय कहेंगे तो 'मांसौदनमर्हति मांसौदनिकोऽतिथिः, कालायसूपमर्हति कालायसूपिको तिथिः' में मांसौदन आदि अतिथि के मूल्य नहीं हैं, अतः यहाँ प्रत्यय की अप्राप्ति होगी।

तथा गुणानां परिप्रश्नो भवति, किमयं ब्राह्मणोऽर्हति? शतमर्हति—शत्यः शतिकः साहस्रो नैष्किक इति न सिध्यति। सन्तु तर्हि सहार्हेण * आर्हाच्चेद् भोजनादिष्वप्रसङ्गः * **आर्हाच्चेद् भोजनादिष्वप्रसङ्गो भवति—भोजनमर्हति, पानमर्हतीति। किमुच्यते—भोजनादिष्वतिप्रसङ्ग इति, यदा च्छेदादिभ्य इत्युच्यते? अवश्यं मांसौदनिकाद्यर्थं योगविभागः कर्त्तव्यः, तदर्हति' ततः—'छेदादिभ्यो नित्य'मिति। तस्मिन् क्रियमाणे भोजनादिष्वतिप्रसङ्गो भवति।**

मर्यादापक्ष में अन्यत्र भी दोष है, उसे स्पष्ट करते हैं—**तथेति**। 'किमयं ब्राह्मणोऽर्हति' यह गुणों के विषय में प्रश्न है, मूल्य के विषय में नहीं; अत एव उत्तरयिता 'शतमर्हति शत्यः, शतिकः, सहस्रमर्हति साहस्रः, निष्कमर्हति नैष्किकः' उत्तर देता है। मर्यादापक्ष में यहाँ शत पद से यत् और ठन्, सहस्र पद से अण् और निष्क पद से ठक् की अप्राप्ति होगी। जब कि यहाँ ये प्रत्यय इष्ट हैं। इस तरह प्रकृत में आङ् को मर्यादार्थक मानने में उपर्युक्त दोष स्पष्ट हैं।

अन्य आचार्य—**सन्तु तर्हीति**। यदि मर्यादा मानने में दोष है तो आप प्रकृत में आङ् को अभिविधि मान कर 'तदर्हति' ५.१.६३पर्यन्त ठक् आदि का अधिकार कीजिये।

पूर्वपक्षी—**आर्हाच्चेति**। यदि अभिविधि मान कर 'तदर्हति' ५.१.६३पर्यन्त ठगधिकार करेंगे तो 'भोजनमर्हति भौजनिकः, पानमर्हति पानिकः' की आपत्ति होने से अतिव्याप्तिदोष होगा।

अन्य आक्षेपक आचार्य—**किमुच्यत इति**। आप ने भोजनादि की अतिव्याप्ति कैसे दिखा दी? आचार्य 'तदर्हति' ५.१.६३ सूत्र के अनन्तर 'छेदादिभ्यो नित्यम्' ५.१.६४ पढते हैं। यदि भोजनादि से भी 'अर्हति' अर्थ में ठगादि प्राप्त होते तो छेदादि से प्राप्त होते?, फिर आचार्य को छेदादि से प्रत्ययविधान नहीं करना चाहिये था; चूँकि प्रत्ययविधान किया है, अतः भोजनादि से 'अर्हति' अर्थ में प्रत्ययों की अप्राप्ति ही कही जायेगी।

इतर आचार्य—**अवश्यमिति**। 'मांसौदनमर्हति मांसौदनिकोऽतिथिः' इत्यादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में 'तदर्हति' ५.१.६३ से प्रत्ययोत्पत्ति हो इसके लिए 'तदर्हतिच्छेदादिभ्योनित्यम्' इस संहितापाठ का 'तदर्हति' और 'छेदादिभ्यो नित्यम्' ऐसा अवश्य ही पदच्छेद करना चाहिये। इससे 'मांसौदनिकोऽतिथिः' इत्यादि की सिद्धि होती है; परन्तु 'भोजनमर्हति, पानमर्हति' इत्यादि में प्रत्यय की अतिव्याप्ति हो रही है। इस तरह अभिविधि अर्थ में भी दोष होने से मर्यादा और अभिविधि दोनों ही पक्ष दुष्ट हैं।

*** उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्? अनभिधानादिति। अनभिधानाद् भोजनादिष्वतिप्रसङ्गो न भविष्यति।**

समाधानभाष्य—**उक्तं वेति**। आप 'आर्हात्' में 'आङ्' को अभिविध्यर्थक ही मानिये। अभिविधिपक्ष में 'भोजनादिष्वतिप्रसङ्गः' दोष दिया था, वह अनभिधान से दूर हो जायेगा। शब्द, अर्थ और शब्दार्थसम्बन्ध को नित्य मान कर व्याकरणशास्त्र प्रवृत्त है। 'भोजनमर्हति' अर्थ में ठगन्त 'भौजनिकः' तथा 'पानमर्हति' अर्थ में 'पानिकः' शब्द का अनभिधान होने से यहाँ अतिप्रसङ्ग दूर हो जायेगा।

अथ वा योगविभागो न करिष्यते। कथं—मांसौदनिकोऽतिथिः श्वैतच्छत्रिकः कालायसूपिकः? 'अस्मिन् दीयतेऽस्मा इति च'—एवमेतत्सिद्धम्।

इसी को पक्षान्तर में भी सिद्ध करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा 'तदर्हतिच्छेदादिभ्योनित्यम्' ऐसा एक ही सूत्र रखेंगे, इसका कोई योगविभाग नहीं होने से भोजनादि से अर्हति अर्थ में प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। इस तरह योगविभाग नहीं करने पर अतिप्रसङ्ग तो दूर हो जा रहा है, परन्तु 'मांसौदनिकोऽतिथिः' इत्यादि में प्रत्यय का अप्राप्तिरूप अव्याप्तिदोष स्पष्ट है; इसका वारण करने के लिए हम 'मांसौदनमर्हति' ऐसा विग्रह नहीं करके 'मांसौदनमस्मै दीयते' अथ वा 'अस्मिन् दीयते' ऐसा पदच्छेद करेंगे, इस तरह सम्प्रदानत्व अथ वा अधिकरणत्व की विवक्षा कर लेने से 'मांसौदनिकोऽतिथिः' इत्यादि में अव्याप्ति नहीं होगी। 'तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुक्लोपदादीयते' इस संहितापाठ का विभाग करेंगे। 'तदस्मिन्' यह प्रथम योग होगा। इस पूर्व योग का असर्वविषयत्वज्ञापन के लिए 'वृद्ध्यायलाभशुक्लोपदा' यह द्वितीय योग करेंगे। एवं 'दीयते' यह तृतीययोग करेंगे। तृतीययोग पूर्व के दोनों योगों का शेष होगा। इस तरह 'दीयते तदस्मिन्' इस योग से सप्तम्यर्थ में प्रथमान्त से ठक् आदि प्रत्यय होंगे। 'तदस्मिन् दीयते तदस्मा इति चोपसंख्यानम्' इस वचन से चतुर्थ्यर्थ में भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय होने से 'मांसौदनिकोऽतिथिः' इत्यादि की सिद्धि हो जायेगी। इसमें 'प्राक्क्रीताच्छः' ५.१.१ से 'प्राक्' पद की अनुवृत्ति हो रही थी; आचार्य 'आर्हादगोपुच्छ-' ऐसा ही सूत्र रखते, इससे 'तदर्हति' ५.१.६३ से प्राक् ठक् आदि का अधिकार सिद्ध हो जाता; पुनः आचार्य ने जो आङ्विशिष्ट 'आर्हादगोपुच्छ-' ५.१.१९ सूत्र पढा, तत्सामर्थ्य से यहाँ आङ् को अभिवृद्ध्यर्थ ही समझना चाहिये, यह निष्कर्ष है।

अथ वा पुनः सन्तु प्रागर्हात्। ननु चोक्तं—'ठगादयः प्रागर्हाच्चेदर्हे तद्विधि'रिति। परिहृतमेतद्—'वस्नेवचनात् सिद्ध'मिति। ननु चोक्तं, 'वस्ने वचनात्सिद्धमिति चेन्मांसौदनिकादिष्वतिप्राप्ति'-रिति। तथा गुणानां परिप्रश्ने भवति—किमयं ब्राह्मणोऽर्हति? शतमर्हति–शत्यः शतिकः साहस्रो नैष्किक इति, न सिध्यती'ति। नैष दोषः—'अस्मिन् दीयते अस्मा इति च' एवमेतत्सिद्धम्॥

अब आचार्य मर्यादापक्ष में भी दोषोद्धार करते हैं—**अथ वा पुनरिति।** आप प्रकृत में आङ् को मर्यादार्थक ही मान लीजिये। इस पक्ष में आप ने 'तदर्हति' ५.१.६३ अर्थ में अलग से ठगादिविधि का विधान करने के लिए कहा था। यहाँ प्रत्ययार्थ **वस्न**=मूल्य अर्थ गम्य होने पर 'सोऽस्यांशवस्नभृतयः' ५.१.५६ इस वचनप्रमाण से 'शतं वस्नमर्हति शत्यं वस्त्रम्' आदि की असिद्धि दूर कर दी है। इस पर आपने यह भी आपत्ति दी थी कि 'यदि वचनप्रमाण से 'शतं वस्त्रम्' आदि की सिद्धि मान भी ली जाये तो 'मांसौदनिकोऽतिथिः' आदि में अर्हत्यर्थक प्रत्ययों की अप्राप्ति होने से लक्ष्य की असिद्धि होगी। एवम् अन्यत्र भी असिद्धि बताते हुए 'किमयं ब्राह्मणोऽर्हति'? इस प्रश्न के उत्तर में 'शतमर्हति शत्यः शतिकः, सहस्रमर्हति साहस्रः' निष्कमर्हति नैष्किकः' की असिद्धि होगी। हम इस अव्याप्तिरूप दोष को भी 'तदस्मिन् दीयते तदस्मा दति चोपसंख्यानम्' से दूर कर देंगे। 'शतमस्मा अस्मिन् वा शत्यः शतिको वा ब्राह्मणः' इत्यादि में चतुर्थ्यर्थ अथ वा सप्तम्यर्थ में प्रत्ययोत्पत्ति कर लेंगे। {आर्हादगोपुच्छसंख्या-}।

असमासे निष्कादिभ्यः ५.१.२०

असमास इति किमर्थम्? परमनिष्केण क्रीतं परमनैष्किकम्। नैतदस्ति—निष्कशब्दात्प्रत्ययो विधीयते तत्र कः प्रसङ्गो यत्परमनिष्क-शब्दात्स्यात्? नैव प्राप्नोति नार्थः प्रतिषेधेन। तदन्तविधिना प्राप्नोति। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'असमासे निष्कादिभ्यः' से प्रारम्भ कर 'तेन क्रीतम्' ५.१.३६ सूत्रपर्यन्त सत्रह सूत्रों में 'आर्हात्' ५.१.१९ की अनुवृत्ति है। पूर्व सूत्र से ठक् की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'समास नहीं होने पर आर्हीय अर्थों में निष्कादि से ठक् हो'। जैसे—निष्केण क्रीतमिति नैष्किकम्। समास होने पर उक्तार्थ में ठञ् होकर 'परमनैष्किकम्' रूप होगा। यद्यपि यहाँ ठक् और ठञ् होने में रूपभेद नहीं है, तथापि स्वरभेद के लिए प्रत्ययभेद किया गया है।

पूर्वपक्षी—**असमास इतीति**। 'असमासे' यह निषेधवचन क्यों पढते हैं?

उत्तरपक्षी—**परमनिष्केणेति**। 'परमनिष्केण क्रीतम्' इस समासस्थल में ठञ् होकर उत्तरपदवृद्धि के द्वारा 'परमनैष्किकम्' रूप हो, इसके लिए 'असमासे' निषेधवचन पढा है।

अन्य आचार्य—**नैतदस्तीति**। 'असमासे' निषेध का यह प्रयोजन नहीं है। 'निष्कादिभ्यः' इतना ही सूत्र रखने से निष्क शब्द से ही ठक्प्रत्यय विहित होगा। परमनिष्क से उसकी प्राप्ति नहीं है, अतः निषेध का कोई प्रयोजन नहीं है।

उत्तरपक्षी—**तदन्तविधिनेति**। 'येन विधिस्तदन्तस्य' १.१.७२ से तदन्तविधि के द्वारा निष्क से विहित प्रत्यय परमनिष्क से भी प्राप्त हो जायेगा, अतः निषेधवचन 'असमासे' पढा है।

पूर्वपक्षी—**ग्रहणवतेति**। जिस प्रातिपदिक का उच्चारण कर प्रत्यय का विधान किया जाता है, वहाँ तदन्तविधि का प्रतिषेध है, अतः निष्क से विहित प्रत्यय परमनिष्क से प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अत उत्तरं पठति—* निष्कादिष्वसमासग्रहणं ज्ञापकं पूर्वत्र तदन्ताऽप्रतिषेधस्य * निष्कादिष्वसमासग्रहणं क्रियते ज्ञापकार्थम्। किं ज्ञाप्यम्? एतज्ज्ञापयत्याचार्यः—'पूर्वत्र तदन्तविधेः प्रतिषेधो न भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'प्रागवतेष्ठ'ञित्यत्र तदन्तविधिः सिद्धो भवति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते, न च ठञ्विधौ का चित् प्रकृतिर्गृह्यते।

उत्तरपक्षी—**अत उत्तरमिति**। यहाँ आचार्य ने 'असमासे' निषेध-वचन पढ कर ज्ञापन किया है कि 'निष्कादि से पूर्व में तदन्तविधि का प्रतिषेध नहीं होता है'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरपक्षी—**प्राग्वतेरिति**। इस ज्ञापन से यह सिद्ध होता है कि 'इससे पूर्व के सूत्रों में प्रातिपदिकग्रहण में तदन्तविधि था'। इससे 'परमनिष्केण क्रीतं परमनैष्किकम्' में 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से ठञ् सिद्ध हो जाता है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ 'असमासे' निषेध से आप उक्त ज्ञापन नहीं कर सकते हैं। आप ने 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' कहा है। 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ सूत्र में किसी प्रातिपदिक का ग्रहण नहीं है, फिर उक्त ज्ञापन नहीं हो सकेगा।

इदन्तर्हि प्रयोजनम्—'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्', परमगोपुच्छेन क्रीतं पारमगोपुच्छिकम्, अत्र तदन्तविधिः सिद्धो भवति।

उत्तरपक्षी—**इदन्तर्हीति**। 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्' ५.१.१९ सूत्र में गोपुच्छादि प्रातिपदिक का ग्रहण है, यहाँ तदन्तविधि सिद्ध होने से 'परमगोपुच्छेन क्रीतं पारमगोपुच्छिकम्' में तदन्तविधि सिद्ध होगा।

एतदपि नास्ति प्रयोजनं—विधौ प्रतिषेधः, प्रतिषेध- श्चाऽयम्। एवन्तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः—'इत उत्तरं तदन्तविधेः प्रतिषेधो न भवती'-ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति'—द्वैपारायणिकस्त्रैपारायणिकः, अत्र तदन्तविधिः सिद्धो भवति।

आक्षेपभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। 'असमासे' निषेध से उक्त ज्ञापन का यह भी फल नहीं है। 'असमासे' यह निषेधवचन है, वह विधि में ही निषेध करेगा; जब कि '-अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्-' ५.१.१९ यह निषेध वचन है, विधि नहीं।

उत्तरपक्षी—**एवन्तर्हीति**। पूर्व से अप्राप्त होने पर आचार्य ने निषेध किया है, अतः निषेध-वचन व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'**इतः**=असमासेनिष्कादिभ्यः' ५.१.20 से उत्तरसूत्रों में तदन्तविधि का प्रतिषेध नहीं होता है'।

प्रश्नभाष्य—**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरपक्षी—**पारायणेति**। 'पारायणं वर्त्तयति पारायणिकः, त्रिपारायणं वर्त्तयति त्रैपारायणिकः' में 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति' ५.१.७२ से तदन्तविधि ही उक्त ज्ञापन का फल है।

एतदपि नास्ति प्रयोजनं; वक्ष्यत्येतत्—'प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदन्तग्रहणमलुकी'ति। पूर्वत्रैव तर्हि प्रयोजनं-'खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च' कृष्णतिलेभ्यो हितः कृष्णतिल्यः, राजमाषेभ्यो हितं राजमाष्यम् * प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकि * **प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकि कर्त्तव्यम्। 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति'—द्वैपारायणिकः। त्रैपारायणिकः। अलुकीति किमर्थम्? द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्। त्रिशूर्पम्। द्विशूर्पेण क्रीतं द्वैशूर्पिकम्। त्रैशूर्पिकम्।** {असमासे निष्कादिभ्यः}।

पूर्वपक्षी का खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। उक्त ज्ञापन कर उत्तरसूत्रों में तदन्तविधि ज्ञापन करना भी फल नहीं है। आगे आचार्य कहेंगे—'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.१२५ सूत्र से पूर्व तक प्रत्यय के अलुक् होने पर तदन्तविधि करना चाहिये। 'द्वैपारायणिकः, त्रैपारायणिकः' में संख्यापूर्वपद द्विपारायण, त्रिपारायण है, अतः इससे तदन्तविधि होने से 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति' ५.१.७२ से ठक् सिद्ध हो जायेगा।

अन्य उत्तरपक्षी—**पूर्वत्रैव तर्हीति**। आप 'असमासे' इस निषेधवचन से पूर्व में कहा हुआ 'पूर्वत्र तदन्तविधेः प्रतिषेधो न भवति' ही मानिये। इस ज्ञापन का फल 'खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च' ५.१.७ रहेगा। यहाँ केवल से तथा तदन्त से भी प्रत्यय होगा। इस तरह 'खलेभ्यो हितः खल्यः, माषेभ्यो हितः माष्यः' भी होगा तथा 'कृष्णतिलेभ्यो हितः कृष्णतिल्यः, राजमाषेभ्यो हितः राजमाष्यः' में भी यत्प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। **प्राग्वतेरिति**। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ से पूर्व संख्यापूर्वपदों का प्रत्यय के अलुक् होने पर ही तदन्तग्रहण करना चाहिये। इससे जहाँ ठक् प्रत्यय का अलुक् है वहाँ 'द्वैपारायणिकः, त्रैपारायणिकः' में ही 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति' ५.१.७२ यह तदन्तविधि होगा। अलुक् यह निषेधवचन पढने से जहाँ 'द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्प, त्रिभिशूर्पैः क्रीतं त्रिशूर्पम्' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास, 'शूर्पादञन्यतरस्याम्' ५.१.२६ से विहित अञ् और ठञ् का 'अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगनपत्ये' ५.१.२८ से लुक् है, वहाँ तदन्तविधि से ठक् नहीं होगा। परन्तु 'द्विशूर्पेण क्रीतम्' में अञ् के अभाव में सामान्यविहित ठञ् प्रत्यय इस लिए नहीं होता हैं कि इसका निमित्त द्विगु के नहीं होने से लुक् का अभाव है। 'द्वैशौर्पिकं, त्रैशौर्पिकम्' में 'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः' ७.३.१७ से उत्तरपदवृद्धि है। {**असमासे निष्कादिभ्यः**}।

शताच्च ठन्यतावशते ५.१.२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* शतप्रतिषेधेऽन्यशतत्वेऽप्रतिषेधः * **शतप्रतिषेधेऽन्यशतत्वे प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—शतेन क्रीतं शत्यं शाटकशतमिति। अन्यशतत्व इति किम्? शतकं निदानम्। {शताच्च ठन्यतावशते}।**

'शतात्' पञ्चम्यन्त, 'च' अव्ययपद, 'ठन्यतौ' प्रथमाद्विवचनान्त, 'अशते' सप्तम्यन्त होने से चार पदों का सूत्र है। 'न शतमशतं तस्मिन्नशते' यह निषेधवचन प्रत्ययार्थ में विशेषण है, प्रकृति में इसका विशेषणत्व सम्भव नहीं है।

सूत्रार्थ—'आर्हीय अर्थों में शतपद से ठन् और यत् प्रत्यय हो, शत अर्थ में न हो'। यह उत्तरसूत्र 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से प्राप्त कन् का अपवाद है। 'शतेन क्रीतः शत्यः शतिको वाऽश्वः'।

शतशब्द का अशत में वृत्ति सम्भव नहीं है, अतः प्रत्ययार्थ अशत मानने पर प्रत्ययार्थ का द्विविधशतत्व सम्भव है—१-प्रकृत्यर्थ-व्यतिरिक्तसंख्येयान्तरविषय, २-'प्रकृत्यर्थविषय। इसमें प्रथम जैसे—'शतेन क्रीतं शत्यं शाटकशतम्' एवं द्वितीय—शतमध्यायाः परिमाणमस्य ग्रन्थस्येति शतको ग्रन्थः'। यहाँ पर मात्र प्रत्ययोत्पत्ति के लिए प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ की भेद-विवक्षा की गयी है, परन्तु तत्त्वतः प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ का अभेद ही है। जैसे—'शतम्' में विभक्ति का वाच्य एकत्व होने पर भी शतत्व भी यथावद् बना हुआ है। यहाँ आद्यपक्ष अर्थात् जहाँ प्रकृत्यर्थ से प्रत्ययार्थ शतत्व है, वहाँ 'अशते' यह निषेधवचन प्रवृत्त न हो, इसके लिए न्यायसिद्ध अर्थों को ही भाष्यकार वार्तिकमुखेन कहते हैं—**शतप्रतिषेध इति**। 'अशते' पद से शतप्रतिषेध होने पर **अन्यशतत्वे**= प्रकृत्यर्थशतत्व से भिन्न प्रत्ययार्थ शतत्व होने पर 'अशते' प्रतिषेध प्रवृत्त नहीं होगा। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**इह मा भूदिति**। 'शतेन क्रीतं शत्यं शाटकशतम्' में प्रकृत्यर्थ शतत्व से प्रत्ययार्थ शतत्व भिन्न है, अतः 'अशते' प्रतिषेध नहीं लगा। परन्तु जहाँ प्रकृत्यर्थ शतत्व और प्रत्ययार्थ शतत्व में अभेद है, वहाँ 'अशते' प्रतिषेध होन से ठन् और यत् नहीं होंगे। जैसे—'शतं परिमाणमस्य शतकं निदानम्, शतं श्लोकाः परिमाणमस्य पुस्तकस्य शतकं पुस्तकम्'। **{शताच्च ठन्यतावशते}**।

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ५.१.२२

* डतेश्च * **डतेश्चेति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्-कतिभिः क्रीतं कतिकम्। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'त्यन्ताया नेति प्रतिषेधः प्राप्नोति** * तिप्रतिषेधाड्डतिग्रहणमिति चेदर्थवद्ग्रहणात् सिद्धम् *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिप्रतिषेधाड्डतिग्रहणमिति चेदर्थवद्ग्रहणात् सिद्धम्। अर्थवतस्ति-शब्दस्य ग्रहणं न च डतेस्तिशब्दोऽर्थवान्।

सूत्रार्थ—'आर्हीय अर्थो में संख्या से कन् हो' त्यन्त और शदन्त से न हो'। जैसे—पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः।

वार्तिककार—**डतेश्चेति**। डतिप्रत्ययान्त से भी आर्हीय अर्थो में कन् कहना चाहिये। इससे किम् शब्द से डति होने पर कति शब्द से भी 'कतिभिः क्रीतं कतिकम्' की सिद्धि हो जाती है।

अन्य आचार्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि 'कतिभिः क्रीतं कतिकम्' में प्रकृत सूत्र से कन् अप्राप्त हो रहा है? पूर्वपक्ष में हेतु यह है कि 'उभयगतिरिह भवति' परि.शे.१.६ परिभाषा से यहाँ संख्यावाची तथा 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से संख्यासंज्ञक दोनों का ग्रहण करेंगे इससे संख्यासंज्ञक का ग्रहण होने से 'बहुभिः क्रीतो बहुकोऽश्वः' तथा 'कतिभिः क्रीतं कतिकम्' सिद्ध हो जा रहा है, पुनः आप 'डतेश्च' वार्तिक क्यों पढते हैं?

वार्तिककार स्वमत का पोषण करते हैं—**त्यन्ताया नेति**। 'अतिशदन्तायाः' में त्यन्त से कन् का प्रतिषेध है, अतः प्रतिषेध प्राप्त होने पर वार्तिकावतार है।

अन्य आचार्य वार्तिक का खण्डन करते हैं—**तिप्रतिषेधादिति**। अर्थवद्ग्रहण-परिभाषा से 'ति' अर्थवान् के ग्रहण में 'डति' का पदैकदेश अनर्थक 'ति' का ग्रहण नहीं होगा—'समुदाय ही अर्थवान् होता है, उसका एकदेश अनर्थक होता है'। अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता है। 'विंशतिकात्खः' ५.१.३२ सूत्र में 'विंशतिक' ऐसा कन्नन्त प्रयोग होने से निपातन के द्वारा त्यन्त विंशति से प्रतिषेधाभाव का ज्ञापन कर कन् प्रत्यय कर लेंगे।

नैषा परिभाषेह शक्या विज्ञातुं, न हि केवलेन प्रत्ययेनाऽर्थो गम्यते। केन तर्हि? सप्रकृतिकेन। क्व तर्ह्येषा परिभाषा भवति? यान्येतानि शब्दसंघातग्रहणानि। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्—'अर्थवद्ग्रहणात्सिद्धम्'। ननु चोक्तं—'नैषा परिभाषेह शक्या विज्ञातुं, न हि केवलेन प्रत्ययेनाऽर्थो गम्यते, केन तर्हि सप्रकृतिकेने'ति। केवलेनाऽपि प्रत्ययेनार्थो गम्यते। कथम्? उक्तम् अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्। {संख्याया अतिशदन्तायाः कन्}।

इतर आचार्य—**नैषा परिभाषेति**। केवल प्रकृति और प्रत्यय की लौकिकी अर्थवत्ता नहीं होने से प्रकृत में अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा की प्रवृत्ति नहीं है। जहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृति और प्रत्यय का समुदाय गृहीत है, वहीं पर अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा प्रवृत्त होती है। यद्यपि प्रत्यय भी शब्दसंघात हैं तथापि उनके अनर्थक होने से यहाँ अर्थवान् शब्दसंघात की विवक्षा कर 'यान्येतानि शब्दसंघातग्रहणानि' कहा है।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या प्रकृत में 'नैषा परिभाषेह शक्या विज्ञातुम्' पक्ष मानना चाहिये?

खण्डनभाष्य–**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। पूर्वोक्त आक्षेपों का निवारण करते हैं—**ननु चोक्तमिति**। आप ने केवल प्रकृति अथ वा प्रत्यय से अर्थबोध का अभाव बता कर प्रकृतिसहित प्रत्यय से अर्थबोध कराया था, यह कोई आवश्यक नहीं है। कहीं-कहीं पर केवल प्रत्यय से भी अर्थबोध होता है। लौकिकप्रयोग में यद्यपि सप्रकृतिकप्रत्यय ही अर्थवान् होता है, तथापि शास्त्रप्रक्रियानिर्वाह के लिए प्रक्रियापक्ष में केवलप्रत्यय को भी अर्थवान् माना गया है, अतः शास्त्रप्रक्रियानिर्वाह का हेतु अन्वयव्यतिरेकगम्या अर्थवत्ता को लेकर प्रकृत में मात्र प्रत्यय को भी अर्थवान् मान लीजिये। इससे 'शे' १.१.१३ सूत्र में जहाँ प्रत्ययमात्र का ग्रहण कर 'अस्मे इन्द्राबृहस्पती' में 'अस्मद्+भ्यस्' इस स्थिति में 'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' ७.१.३९ से भ्यस् के स्थान में 'शे' आदेश है, वहाँ अर्थवान् 'शे' के ग्रहण में अनर्थक 'शे' का ग्रहण नहीं होने से 'काशे, कुशे, वंशे' में 'शे' पद की अतिव्याप्ति नहीं होती है। {**संख्याया अतिशदन्तायाः-**}।

वतोरिड्वा ५.१.२३

कस्याऽयमिड् विधीयते? कन इत्याह। तत्कनो ग्रहणं कर्त्तव्यम्। अक्रियमाणे हि प्रत्ययाधिकारात् प्रत्ययोऽयं विज्ञायेत।

यहाँ पूर्वसूत्र 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से प्रथमान्त 'कन्' की अनुवृत्ति है। 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ से पञ्चम्यन्त 'वतोः' से उत्तर में प्रथमान्त 'कन्' का षष्ठीप्रकल्पकत्व होने से 'वतोः कनः इड्वा' ऐसा सूत्र हुआ। 'वतु' प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्त का ग्रहण होगा।

सूत्रार्थ—'वत्वन्त से पर में कन् को इड्विकल्प हो'। तत्परिमाणमस्येति तावान्, 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' ५.२.३९ से वतुप् है। यहाँ 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से वतु की संख्यासंज्ञा होने से 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से कन्, व उसको 'वतोरिड्वा' से इड्विकल्प होकर 'तावतिकः', इड् का अभावपक्ष में 'तावत्कः' रूप है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्र में 'इट्' को टित् पढा है, अतः आगम निश्चित है, परन्तु आगमी अनिश्चित है, अतः तद्विषयक प्रश्न करते हैं—**कस्याऽयमिति**। इडागम का आगमी कौन है?

उत्तरपक्षी—**कन इति**। कन् को उक्त आगम कहा जा रहा है। यदि आप कन् को आगम कर रहे हैं तो सूत्र में आगमी कन् का ग्रहण कर 'वतोः कन इड्वा' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। यदि सूत्र में आगमा 'कनः' का निर्द्देश नहीं करेंगे तो 'प्रत्ययः' ३.१.२ का अधिकार होने से 'वतोरिड् वा' से विहित 'इट्' भी प्रत्यय होने लगेगा। यदि आप टित्त्वसामर्थ्य से इट् में प्रत्ययाभाववत्त्व सिद्ध करेंगे तो यह पक्ष उचित नहीं है। वह इस तरह कि 'चरेष्टः' ३.२.१६ में भी टित् 'ट' प्रत्यय है, तद्वत् यहाँ भी प्रत्ययत्वप्रसङ्ग उपस्थित होगा।

टित्करणसामर्थ्यादादिर्भविष्यति। अस्त्यन्यट्टित्करणस्य प्रयोजनं, 'टित' इतीकारो यथा स्यात्। अकारान्तप्रकरणे ईकारो, न चैषोऽकारान्तः।

अन्य आचार्य—**टित्करणेति**। टित्करणसामर्थ्य से इट् में प्रत्ययत्व का अभाव होगा।

इतर आचार्य—**अस्त्यन्यदिति**। टित् मान कर स्त्रीत्वविवक्षा में 'टिड्ढाणञ्-' ४.१.१५ से ङीब्विधान के लिए टित्करण है, अतः तत्सामर्थ्य से प्रत्ययत्व की कल्पना नहीं की जा सकती है।

अन्य आचार्य—**अकारान्तेति**। 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ का प्रकरण है, अतः अकारान्तप्रकरण में ङीप् कहा गया है, यहाँ 'वतोः' यह अकारान्तनिर्द्देश नहीं है, अतः ङीप् का प्रसङ्ग उपस्थित नहीं होगा।

एवमपि कुत एतट्टित्करणसामर्थ्यादादिर्भविष्यति न पुनरकारान्तप्रकरणे सत्यनाकारान्तादपीकारः स्यात्? तस्मात्कनो ग्रहणं कर्त्तव्यम्।

अन्य आचार्य—**एवमपीति**। टित्-निर्द्देश होने से टित्सामर्थ्य से 'आद्यन्तौ टकितौ' १.१.४६ से आद्यवयवबोध हो रहा है, अतः आप इट् को आगम कह रहे हैं। 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.४ से 'अतः' का प्रकरण चलने से अदन्त से ही टाप्प्राप्त होने पर उसी से ङीप् कह रहे हैं; यह आप की अपनी कल्पना है। आप यहाँ जो कल्पना कर रहे हैं, उसके विरुद्ध भी कल्पना हो जायेगी। अकारान्तप्रकरण में ङीप् प्राप्त होने पर अनकारान्त से भी ङीब्विधानार्थ टित्करण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को क्यों नहीं मान ले रहे हैं? अन्यत्र अनकारान्त से भी ङीप् विहित है। जैसे—'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ४.१.६ में अनकारान्त नान्त से 'हस्तिनी', वैसे यहाँ भी इट् को प्रत्यय मान कर टित् को ङीबर्थ मान लीजिये? इस तरह की आपत्ति होने पर उसका निवारण के लिए एकमात्र उपाय यही बचता है कि सूत्र में आगमिवचन षष्ठयन्त 'कनः' का ग्रहण किया जाये।

न कर्त्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'संख्याया अतिशदन्तायाः क'न्निति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं षष्ठीनिर्दिष्टेन चेहार्थः। 'वतो'रित्येषा पञ्चमी कन्निति प्रथमायाः षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति—तस्मादित्युत्तरस्येति। प्रत्ययविधिरयं न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका भवन्ति। नायं प्रत्ययविधिः। विहितः प्रत्ययः। प्रकृतश्चाऽनुवर्त्तते। {वतोरिड्वा}।

खण्डनभाष्य—**न कर्त्तव्यमिति**। आगमी का लाभ होने के लिए षष्ठ्यन्त 'कनः' पद का ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। पूर्व सूत्र 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ में आचार्य ने 'कन्' पद पढा है, उसका अनुवर्त्तन हो जायेगा। वहाँ कन् प्रथमानिर्दिष्ट है, तथा प्रकृतसूत्र में 'वतोः' यह पञ्चमीनिर्देश है पञ्चमी अपने से उत्तर में षष्ठी की प्रकल्पना कराती है, अतः कन् प्रथमान्त का 'कनः' ऐसा षष्ठीप्रकल्पकत्व हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**प्रत्ययविधिरिति**। प्रत्ययविधि में षष्ठीप्रकल्पकत्व पक्ष मान्य नहीं है। यहाँ प्रत्ययविधि है, अतः षष्ठीप्रकल्पकत्वपक्ष मान्य नहीं होगा। पञ्चमी प्रत्ययस्वरूप को उत्पन्न करती है। जैसे—'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' ३.१.५; षष्ठी की प्रकल्पना नहीं कराती है।

उत्तरपक्षी इसका निषेध करता है—**नायमिति**। यहाँ प्रत्ययविधि नहीं है। इससे पूर्व में कन् प्रत्यय विहित है, स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर उसका प्रकृत में अनुवर्त्तन होगा। {वतोरिड्वा}।

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुनसंज्ञायाम् ५.१.२४

असंज्ञायामिति किमर्थम्? त्रिंशत्को विंशतिकः। कथं चाऽत्र कन्भवति? 'संख्यायाः कन्भवती'ति। 'अतिशदन्ताया' इति प्रतिषेधः प्राप्नोति। एवं तर्ह्याचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्यत्र कन्नि'ति, यदयं 'विंशतिकात्ख' इति प्रत्ययान्तनिपातनं करोति। विंशतेरेतज्ज्ञापकं स्यात्। नेत्याह—योगापेक्षं ज्ञापकम्। अथ वा योगविभागः करिष्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'विंशतित्रिंशद्भ्यां' कन् भवतीति। ततो 'ड्वुनसंज्ञाया'मिति। {विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुनसंज्ञायाम्}।

प्रश्नभाष्य—**असंज्ञायामिति**। असंज्ञा अर्थ गम्य होने पर ड्वुन्प्रत्यय का विधान क्यों किया गया है?

उत्तरपक्षी—**त्रिंशत्क इति**। असंज्ञा से अन्यत्र संज्ञा गम्य होने पर विंशति और त्रिंशत् पद से कन् होकर 'विंशतिकः, त्रिंशत्कः' हो, तथा असंज्ञा गम्य होने पर विंशति, त्रिंशत् पद से ड्वुन्, डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप होकर 'विंशकः, त्रिंशकः' रूप हो, इसके लिए 'असंज्ञायाम्' पद का ग्रहण है।

पूर्वपक्षी—**कथं चात्रेति**। 'विंशतिकः, त्रिंशत्कः' में संज्ञा गम्य होने पर कन् प्रत्यय कैसे है?

उत्तरपक्षी—**संख्याया इति**। 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् प्रकृत सूत्र में कन् की अनुवृत्ति होने से विंशति और त्रिंशत् पद से कन् है।

आक्षेपक आचार्य—**अतिशदन्ताया इति**। उक्त सूत्र ५.१.२२ में त्यन्त और शदन्त से कन् का निषेध होने से प्रकृत में अप्राप्त होगा।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। आचार्य ने 'विंशतिकात्खः' ५.१.३२ सूत्र में 'विंशतिकः' पद को कन्नन्त पढ कर कन्प्रत्ययान्त निपातन किया है; उससे प्रकृत में कन् हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**विंशतेरिति**। 'विंशतिकात्खः' ५.१.३२ सूत्र में मात्र विंशतिपद से ही कन् निपातित होगा। इससे शदन्तप्रतिषेध होने से 'त्रिंशत्कः' में कन् अप्राप्त है।

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। 'विंशतिकात्खः' ५.१.३२ सूत्र में हम योगापेक्ष ज्ञापन करेंगे। जैसे—'पुंवत्' इसमें योगापेक्ष ज्ञापक होने से वत्यर्थ में नञ् और स्नञ् की अप्रवृत्ति में 'स्त्रीवत्' यह भी होता है, वैसे ही 'विंशतिकात्खः' ५.१.३२ इस ज्ञापक को भी योगापेक्ष मानने से त्रिंशत् पद से कन् होकर संज्ञा मे 'त्रिंशत्कः' रूप भी होगा।

इसी को सिद्धान्ती आचार्य पक्षान्तर में भी सिद्ध करते हैं—**अथ वेति**। 'विंशतित्रिंशद्भ्याम्' प्रथम तथा 'ड्वुनसंज्ञायाम्' द्वितीय योग करेंगे। प्रथमयोग में पूर्वसूत्र से कन् की अनुवृत्ति करेंगे। इससे संज्ञा गम्य होने पर विंशति और त्रिंशत् से कन् होकर 'विंशतिकः, त्रिंशत्कः' हो जायेगा। द्वितीय योग से 'असंज्ञायाम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में ड्वुन् होकर 'विंशकः, त्रिंशकः' रूप होगा।। विंशतित्रिं-।।

कंसाट्टिठन् ५.१.२५

* टिठन्नर्द्धाच्च * टिठन्नर्द्धाच्चेति वक्तव्यम्। अर्द्धिकः। अर्द्धिकी * कार्षापणाद्वा प्रतिश्च * कार्षापणाट्टिठन् वक्तव्यो वा च प्रतिरादेशो वक्तव्यः। कार्षापणिकः। कार्षापणिकी। प्रतिकः। प्रतिकी।{कंसाट्-टिठन्}।

सूत्रार्थ—'आर्हीय अर्थों में कंस पद से टिठन् प्रत्यय हो'। यहाँ ङीबर्थ तथा अकार उच्चारणार्थक है। कंसाय हितः कंसिकः-कंसिकी।

सिद्धान्त वार्तिक—**टिठन्निति**। आर्हीय अर्थों में अर्ध पद से टिठन् कहना चाहिये। अर्धाय हितः अर्द्धिकः। अर्धाय हिता अर्द्धिकी। **कार्षापणादिति**। कार्षापण पद से आर्हीय अर्थों में टिठन् प्रत्यय तथा प्रकृति को विकल्प से प्रति आदेश कहना चाहिये। कार्षापणेन क्रीतः कार्षापणिकः, कार्षापणेन क्रीता कार्षा-पणिकी। प्रति आदेश होने पर-'प्रतिकः-प्रतिकी' रूप होगा।। **कंसाट्टिठन्**।।

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ५.१.२८

* द्विगोर्लुक्युक्तम् * द्विगोर्लुक्युक्तम्। किमुक्तम्? तत्र तावदुक्तं—'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम् अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्ता-दपी'ति। इहापि * द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम् * द्विगोर्लुकि तन्नि-मित्तग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितस्तस्य लुग्भवती'ति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्। द्विशूर्पेण क्रीतं द्विशौर्पिकम्। त्रिशौर्पिकम् * 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययोऽतन्निमित्ता-दपि' * अर्थविशेषस्याऽसम्प्रत्ययोऽतन्निमित्तादपीति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? द्वयोः शूर्पयोः समाहारो द्विशूर्प्पी, द्विशूर्प्या क्रीतमिति विगृह्य द्विशूर्प्पमित्येव यथा स्यात्।

सूत्रार्थ—'अध्यर्द्धपूर्वपद तथा द्विगु से पर में विहित आर्हीयार्थक प्रत्ययों का लुक् हो'। 'अध्यर्द्धशब्दः पूर्वो यस्य सः अध्यर्द्धपूर्वः, स च द्विगुश्चेति' समाहारद्वन्द्व से पञ्चमीनिर्द्देश है। सौत्रपुंस्त्व समझना चाहिये। 'अध्यारूढोऽर्थो यस्मिँस्तदध्यर्द्धम्' 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः'ग.सू.२.२.२४ से बहुव्रीहि तथा उत्तरपद का लोप है। 'ध्यर्द्धम्=सार्द्धम्, तेनाध्यर्द्धेन कंसेन क्रीत-मध्यर्द्धकंसम्, 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु, 'संख्याया अतिशदन्तायाः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कन्' ५.१.२२ से कन्, प्रकृत सूत्र से कन्लुक्, एवं 'द्वाभ्यां कंसाभ्यां क्रीतं द्विकंसम्' में ठक् का लुक् है।

सिद्धान्ती—**द्विगोर्लुकीति**। द्विगु से पर में विहित प्रत्यय का लुक् के विषय में 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणमर्थविशेषाऽसम्प्रत्यये तन्निमित्तादपि' ऐसा कहा जा चुका है। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ सूत्र पर इसकी व्याख्या की जा चुकी है, वहीं से अर्थज्ञान करेंगे। यहाँ पर द्विगु से पर में विहित प्रत्यय का लुक् करने में तन्निमित्तग्रहण करना चाहिये। इससे द्विगु को निमित्त मान कर विहित तद्धितप्रत्यय का लुक् होगा। इससे 'द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पं, त्रिभिः शूर्पैः क्रीतं त्रिशूर्पं, द्विशूर्पेण क्रीतं द्विशौर्पिकं, त्रिशूर्पेण क्रीतं त्रिशौर्पिकम्' में यद्यपि 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगुसमास है, तथापि यहाँ 'शूर्पादञन्यतरस्याम्' ५.१.२६ से होने वाला अञ् और ठञ् प्रत्यय द्विगुनिमित्तक नहीं है, अतः उसका लुक् नहीं होता है। **अर्थविशेषेति**। अर्थविशेष का बोध नहीं होने पर **अतन्निमित्तादपि**=तद्धितार्थ द्विगु के साथ जहाँ अर्थभेद नहीं हो रहा है ऐसा द्विगु को निमित्त न मान कर भी जायमान तद्धित का लुक् कहना चाहिये। इसका प्रयोजन 'द्वयोः शूर्पयो समाहारः द्विशूर्पी, द्विशूर्प्या क्रीतम्' ऐसा विग्रह कर जहाँ 'द्विशूर्पम्' में द्विगुनिमित्तक तद्धितोत्पत्ति नहीं है, वहाँ भी अर्थविशेष का बोध नहीं होने पर द्विगु से पर में तद्धित का लुक् होगा।

अथ क्रियमाणेऽपि तन्निमित्तग्रहणे कथमिदं विज्ञायते—तस्य निमित्तं तन्निमित्तं, तन्निमित्तादिति? आहो स्वित्स निमित्तं यस्य सोऽयं तन्निमित्तः, तन्निमित्तादिति? किं चाऽऽतः? यदि विज्ञायते—तस्य निमित्तं तन्निमित्तं, तन्निमित्तादिति, क्रियमाणेऽपि हि तन्निमित्तग्रहणेऽत्र प्राप्नोति—द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्, द्विशूर्पेण क्रीतं द्विशौर्पिकम्, त्रिशौर्पिकम्।

पूर्वपक्षी—**अथेति**। 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम्' ऐसा वचन करने पर भी तन्निमित्तपद में तत्पुरुष मानेंगे, अथ वा बहुव्रीहि मानेंगे? यदि तत्पुरुष मानेंगे तो 'द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पं, त्रिभिः शूर्पैः क्रीतं त्रिशूर्पम्, द्विशूर्पेण क्रीतं द्विशौर्पिकं, त्रिशूर्पेण क्रीतं त्रिशौर्पिकम्' में **तस्य**=तद्धित का निमित्त द्विगु द्विशूर्प और त्रिशूर्प पद है, अतः तद्धित का निमित्त द्विगु के होने से 'द्विशौर्पिकं, त्रिशौर्पिकम्' में तद्धितलोप की अतिव्याप्ति होगी।

अथ विज्ञायते—स निमित्तमस्य सोऽयं तन्निमित्तः, तन्निमित्तादिति, न दोषो भवति। यथा न दोषस्तथाऽस्तु। स निमित्त-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मस्य सोऽयं तन्निमित्तस्तन्निमित्तादिति विज्ञायते। कुत एतत्? यदयमाह—'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपी'ति।

यदि तन्निमित्त पद में बहुव्रीहि मानेंगे तो 'द्विशौर्पिकं, त्रिशौर्पिकम्' में द्विगु कों निमित्त मान कर ठञ् नहीं है, अतः लुक् नहीं होगा। इस तरह तन्नि-मित्त पद में बहुव्रीहि मानने में दोष नहीं है।

उत्तरपक्षी—**यथा नेति**। जिसमें दोष नही है, वह बहुव्रीहिपक्ष ही मान लीजिये।

आक्षेपक—**स निमित्तमस्येति**। आप ने तन्निमित्त पद में बहुव्रीहि कैसे कह दिया?

उत्तरपक्षी—**यदयमिति**। 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम्' कहने के बाद आचार्य 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्यये तन्निमित्तादपि' पढते हैं। पूर्व वार्तिक में तन्निमित्त से पर में विहित तद्धित का लुक् तथा उत्तरवार्तिक में अतन्निमित्त से पर में विहित का लुक् कहा है। तन्निमित्त पद में बहुव्रीहि मानने पर ही अतन्निमित्त पद चरितार्थ होगा, अतः तन्निमित्त पद में बहुव्रीहि कहा जा रहा है।

तत्तर्हि तन्निमित्तग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। 'द्विगो'रिति नैषा पञ्चमी। का तर्हि? सम्बन्धषष्ठी। द्विगोस्तद्धितस्य लुग्भवति। द्विगोर्यस्तद्धितः। किं च द्विगोस्तद्धितः? निमित्तम्। यस्मिन् द्विगुरि-त्येतद् भवति। कस्मिँश्चैतद् भवति? प्रत्यये।

आक्षेपक आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम्' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। तन्निमित्त-ग्रहण नहीं करने पर भी तन्निमित्त अर्थ का लाभ कैसे होगा, इसे स्पष्ट करते हैं—**द्विगोरितीति**। 'अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ सूत्र में 'द्विगोः' पञ्चम्यन्त नहीं है, अपि तु सम्बन्धषष्ठ्यन्त है। इससे 'द्विगुसम्बन्धी तद्धित का लुक् हो' ऐसा अर्थ आयेगा। 'द्विगुसम्बन्धी जो तद्धित' ऐसा कहने से 'द्विगुनिमित्तक तद्धित' ऐसा अर्थ होगा। द्विगु किसमें निमित्त होगा इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जायेगा कि 'प्रत्ययोत्पत्ति मे द्विगु के निमित्त होने पर तद्धितलुक् हो' ऐसा अर्थ होने से निमित्त अर्थ का लाभ हो जायेगा।

इदं तर्हि वक्तव्यम्—'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपी'ति। एतच्च न वक्तव्यम्। इहास्माभिस्त्रैशब्द्यं साध्यं—द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं, द्विशूर्प्या क्रीतं, द्विशूर्पं, त्रिशूर्पमिति। तत्र द्वयोः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दयोस्समानार्थयोरेकेन विग्रहः करिष्यतेऽपरस्मादुत्पत्तिर्भविष्यत्य-विरविकन्यायेन। तद्यथा—अवेर्मांसमिति विगृह्य अविकशब्दादुत्पत्ति-र्भवत्याविकमिति। एवमिहापि द्वाभ्यां शूर्प्पाभ्यां क्रीतमिति विगृह्य द्विशूर्प्पमिति भविष्यति, द्विशूर्प्या क्रीतमिति विगृह्य वाक्यमेव भविष्यति।

अन्य आचार्य—**इदं तर्हीति**। यदि 'द्विगोर्लुकि तन्निमित्तग्रहणम्' यह वचन नहीं कर रहे हैं तो जो दूसरा वचन 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपि' यह पढना चाहिये?

उत्तरपक्षी—**एतच्चेति**। इसे भी अतिरिक्तवचन के रूप में पढने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तीन शब्द साध्य हैं—१-द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतम्। २-द्विशूर्प्या क्रीतम्। ३-द्विशूर्प, त्रिशूर्पम्। 'द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतम्' तथा 'द्विशूर्प्या क्रीतम्' यह दोनों ही वाक्य समानार्थक हैं, अतः अविरविकन्याय से एक से विग्रह तथा दूसरे से प्रत्ययोत्पत्ति करेंगे। जैसे अवि और अविक पद समानार्थक हैं। 'अवेर्मांसम्' ऐसा विग्रह करके अविक पद से प्रत्ययोत्पत्ति हो कर 'आविकम्' रूप बनता है, अवि पद से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होती है। वैसे 'द्विशूर्पेण क्रीतम्' ऐसा विग्रह होने पर द्विशूर्प पद से तद्धितोत्पत्ति होगी तथा 'द्विशूर्पम्' रूप होगा, परन्तु यदि 'द्विशूर्प्या क्रीतम्' ऐसा विग्रह करेंगे तो वाक्य ही रहेगा, प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी। इस तरह तीनों रूप सिद्ध हो गये तथा तद्धितलुक् करने के लिए 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपि' यह अतिरिक्त वचन नहीं पढना पडता है।

असंज्ञायामिति किमर्थम्? पाञ्चलोहितिकम्। पाञ्चकलायिकम्
*** संज्ञाप्रतिषेधाऽनर्थक्यं च तन्निमित्तत्वाल्लोपस्य * संज्ञाप्रतिषेधश्चा-ऽनर्थकः। किं कारणम्? तन्निमित्तत्वाल्लोपस्य। नाऽन्तरेण तद्धितं तद्धितस्य च लुकं द्विगुसंज्ञाऽस्ति, यस्तस्मादुत्पद्यते नाऽसौ तन्नि-मित्तः स्यात्।**

पूर्वपक्षी—**असंज्ञायामिति**। सूत्र में 'असंज्ञायाम्' यह सप्तमीनिर्देश है, अतः 'द्विगोः' का विशेषण नहीं हो सकता है, अतः इसे प्रत्ययान्तविशेषण मानना चाहिये। इससे जहाँ प्रत्ययान्त से असंज्ञात्व गम्य होगा वहीं पर तद्धितलुक् होगा। जैसे—पञ्चानां लोहिनीनां समाहारः पञ्चलोहिनि, पञ्चलोहिनि परिमाणमस्य पाञ्च-लाहितकम्' 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७ से ठञ्, 'भस्याऽढे तद्धिते' वा.६.३.३५ से पुंवद्भाव होकर ईकार और नकार की निवृत्ति होकर 'पाञ्चलोहितकम्' तथा 'पञ्चकलायं परिमाणमस्येति पाञ्चकलायिकम्' 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से ठञ् है। यहाँ प्रत्ययान्त पाञ्चलोहितक और पाञ्चकलायिक पद परिमाणविशेष की संज्ञा है, अतः तद्धितलुक् नहीं होता है।

सन्निधान होने से वार्तिककार यहाँ असंज्ञाग्रहण को द्विगुविशेष मान कर प्रत्याख्यान कर रहे हैं—**तन्निमित्तत्वादिति**। पाञ्चलोहितक और पाञ्चकलायिक में तद्धितलुक् होने पर द्विगुसंज्ञक पञ्चलोहित और पञ्चकलाय पद संज्ञा है, अतः यहाँ प्रत्ययान्त से संज्ञा गम्य नहीं होने पर 'असंज्ञायाम्' इस निषेधवचन का कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ संज्ञा से तद्धितोत्पत्ति गम्य है, तद्धितान्त से संज्ञा गम्य नहीं है, अतः प्रतिषेध का कोई प्रयोजन नहीं है।

एवं तर्हीदं स्यात्पञ्चानां लोहितानां समाहरः पञ्चलोहिती, पञ्चलोहित्या क्रीतमिति। अत्राऽपि पञ्चलोहितमित्येव भवितव्यम्। कथम्? उक्तं ह्येतत्—'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्ययेऽतन्निमित्तादपी'ति।

अन्य आचार्य—**एवमिति**। यदि 'असंज्ञायाम्' इस निषेध का 'पाञ्चलोहितिकम्, पाञ्चकलायिकम्' प्रयोजन नहीं है, तो जहाँ 'पञ्चानां लोहितानां समाहारः पञ्चलोहिती, पञ्चलोहित्या क्रीतम्' इस अर्थ में पञ्चलोहिती पद से तद्धित विहित है, वहाँ तद्धितलुग्निषेध करने के लिए प्रतिषेधवचन आवश्यक है।

उत्तरपक्षी—**अत्रापीति**। 'पञ्चलोहित्या क्रीतम्' ऐसा विग्रह करके 'पञ्चलोहितम्' यही रूप होगा। इस विषय में 'अर्थविशेषाऽसम्प्रत्यये तन्निमित्तादपि' वचन कहा जा चुका है।

*** उक्तं सङ्ख्यात्वे प्रयोजनं तस्मादिहाध्यर्द्धग्रहणानर्थक्यम् * उक्तं सङ्ख्यात्वेऽध्यर्द्धग्रहणस्य प्रयोजनम्। किमुक्तम्? 'अध्यर्द्धग्रहणं च समासकन्विध्यर्थं लुकि चाऽग्रहणमि'ति। 'तस्मादिहाध्यर्द्धग्रहणाऽनर्थक्यम्'। तस्मादिहाध्यर्द्धग्रहणमनर्थकम्। द्विगोरित्येव लुक्सिद्धः। {अध्यर्द्धपूर्व}।**

प्रकृत में अध्यर्द्धग्रहण का खण्डन करते हैं—**उक्तमिति**। 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ सूत्र पर अध्यर्द्धग्रहण का प्रयोजन बताते हुए—'अध्यर्द्धग्रहणं च समासकन्विध्यर्थं लुकि चाऽग्रहणम्' ऐसा कहा है, वह तद्धितलुक् का निमित्त नहीं है। यदि यहाँ अध्यर्द्धग्रहण से संख्याकार्य का अभावज्ञापन किया जाये तो कन्समासाभावप्रसङ्ग होने से यह पक्ष उचित नहीं है, अतः 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ सूत्र पर 'अध्यर्द्धग्रहणं च समासकन्विध्यर्थम्' यह वार्तिक ही करना चाहिये। इस वार्तिक के होने से प्रकृत सूत्र में अध्यर्द्धग्रहण व्यर्थ है, यहाँ भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'द्विगोः' से ही तद्धितलुक् हो जायेगा। {अध्यर्द्धद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्}।

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ५.१.२९

* कार्षापणसहस्राभ्यां सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानम् * **कार्षापणसहस्राभ्यां सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। अध्यर्द्धसुवर्णम्। अध्यर्द्धसौवर्णिकम्। द्विसुवर्णम्। द्विसौवर्णिकम्। अध्यर्द्धशतमानम्। अध्यर्द्धशातमानम्। द्विशतमानम्। द्विशातमानम्।** {विभाषा कार्षापण}।

सूत्रार्थ—'कार्षापण और सहस्र पद से पर में आर्हीयार्थक तद्धित का विकल्प से लुक् हो'। अध्यर्द्धेन कार्षापणेन क्रीतमध्यर्द्धकार्षापणम्, अध्यर्द्धकार्षापणिकम्। द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीतं द्विकार्षापणं, द्विकार्षापणिकम्। पूर्वसूत्र से नित्यलुक् प्राप्त होने पर यहाँ विकल्पविधि है।

सिद्धान्त वार्तिक—**कार्षापणेति**। कार्षापण और सहस्र पद से तद्धितलुग्विधि में सुवर्ण और शतमान पद से पर में भी तद्धित का विकल्प से लुक् कहना चाहिये। 'अध्यर्द्धेन सुवर्णेन क्रीतम् अध्यर्द्धसुवर्णम्', लुक् का अभावपक्ष में 'परिमाणान्तस्याऽसंज्ञाशाणयोः' ७.३.१७ से उत्तरपद को वृद्धि कर 'अध्यर्द्धसौवर्णिकम्। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसुवर्णं, द्विसौवर्णिकम्'। 'अध्यर्द्धेन शतमानेन क्रीतम्' अर्थ में 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' ५.१.२७ से अण्, अण्लुक्पक्ष में 'अध्यर्द्धशतमानं, द्विशतमानम्'। लुक् के अभावपक्ष में उत्तरपदवृद्धि के द्वारा 'अध्यर्द्धशतमानं, द्विशतमानम्। {विभाषा-}।

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ५.१.३०
बिस्ताच्च ५.१.३१

* द्वित्रिभ्यां द्वैयोग्यम् * **'द्वित्रिभ्या'मिति यदुच्यते द्वैयोग्यमेतद् द्रष्टव्यम्। किमिदं द्वैयोग्यमिति? द्वयोर्यागयोर्भवं द्वियोगं, द्वियोगस्य भावो द्वैयोग्यमिति। द्वेष्यं विजानीयाद्—अविशेषेणेत उत्तरं द्वित्रिभ्यामिति, तदाचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे 'द्वित्रिभ्यां द्वैयोग्य'मिति।**

यहाँ पूर्वसूत्र ५.१.२९ से 'विभाषा' का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'द्विपूर्वनिष्क और त्रिपूर्वनिष्क से आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो'। ५.१.३०.

'बिस्त पद से भी पर में आर्हीय तद्धित का विकल्प से लुक् हो'। ५.१.३१. '-द्विगोः-' 5.1.28 से नित्य लुक् प्राप्त होने पर विकल्पविधि का आरम्भ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। 'द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं द्विनिष्कं, त्रिभिर्निष्कैः क्रीतं त्रिनिष्कम्' यहाँ तद्धितार्थोत्तरपदद्विगु तथा 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७ से ठञ् होकर प्रकृतसूत्र से लुक् है। लुक् का अभावपक्ष में 'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः' ७.३.१७ से उत्तरपदवृद्धि होकर 'द्विनैष्किकं, त्रिनैष्किकम्'। सूत्र में 'च' पद का अभाव तथा विरोध होने से यहाँ अध्यर्द्धग्रहण अनुवृत्त नहीं है, परन्तु 'द्विगोः' का सम्बन्ध है। 'त्रिपूवात्' ५.१.३० का 'बिस्ताच्च' में अनुवर्त्तन कर 'द्विबिस्तं, द्विबैस्तिकम्। त्रिबिस्तं, त्रिबैस्तिकम्' रूप है।

द्वित्रिभ्यामिति। आचार्य ने 'द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्' सूत्र पढा है। यहाँ पठित 'द्वित्रि' का उत्तरसूत्र 'बिस्ताच्च' में योग है। आचार्य को पूर्वपदरहित 'द्वित्रिभ्याम्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। इससे 'द्वित्रिभ्याम्' पद द्वैयोग्य हो जायेगा। 'द्वयोर्योगयोर्भवं द्वियोगम्' तद्धितार्थद्विगु होने पर 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्' ४.३.६७ से ठञ्, 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से ठञ्लुक्। यदि 'द्विगुर्न व्याख्यातव्यनाम' पक्ष मानेंगे तब अण् का ही लुक् होगा। 'द्वियोगस्य भावो द्वैयोग्यम्' 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२४ से ष्यञ्। यहाँ द्वैयोग्य पद से आधाराधेयभाव वाच्य है, इस लिए 'द्वैयोग्यमेतत्' में सामानाधिकरण्य उपपन्न हो जाता है। यहाँ 'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः' इस न्याय से तद्धितप्रयोग है। यदि 'द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्' का योगविभाग कर पूर्वपदरहित 'द्वित्रिभ्याम्' प्रथम योग तथा 'निष्कात्' द्वितीय योग मानते हैं तो 'अविशेषेण द्वेष्यं विजानीयात्' प्रथमयोग की स्वतन्त्रप्रवृत्ति भी होने लगेगी। इसकी स्वतन्त्रप्रवृत्ति की आशङ्का समाप्त करने के लिए ही आचार्य ने 'द्वित्रिभ्यां द्वैयोग्यम्' कह दिया है। इससे 'द्वित्रिभ्याम्' का द्वैयोग्य है।

* तत्र च बहुग्रहणम् * **तत्र च बहुग्रहणं कर्त्तव्यम्। बहुनिष्कम्। बहुनैष्किकम्। बहुबिस्तम् बहुबैस्तिकम्।** {द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्}।

तत्र चेति। यहाँ बहुपूर्व निष्क और बिस्त से भी आर्हीय अर्थों में यथाविहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् कहना चाहिये। 'बहुभिर्निष्कैः क्रीतं बहुनिष्कं, बहुनैष्किकम्। बहुभिर्बिस्तैः क्रीतं बहुबिस्तं, बहुबैस्तिकम्। {**द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्**}।

खार्या ईकन् ५.१.३३

* खार्या ईकन् केवलायाश्च * **खार्या ईकन् केवलायाश्चेति वक्तव्यम्। खारीकम्** *काकिण्याश्चोपसंख्यानम् * **काकिण्याश्चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। अध्यर्द्धकाकिणीकम्। द्विकाकिणीकम्** * केवलायाश्च * **केवलायाश्चेति वक्तव्यम्। काकिणीकम्।** {खार्या ईकन्}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोः' ५.१.२८ की अनुवृत्ति है। 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७ से प्राप्त ठञ् का 'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् प्राप्त होने पर खारी पद से आर्हीय अर्थों में ईकन् प्रत्यय का विधान है। 'अध्यर्द्धया खार्या क्रीतमिति अध्यर्द्धखारीकम्। द्वाभ्यां खारीभ्यां क्रीतमिति द्विखारीकम्'।

सिद्धान्त वार्तिक—**केवलायाश्चेति**। मात्र खारी पद से भी आर्हीय अर्थों में ईकन् प्रत्यय कहना चाहिये। खार्या क्रीतं खारीकम्। **काकिण्याश्चेति**। अध्यर्द्ध-पूर्वपद तथा द्विगु काकिणी पद से भी आर्हीय अर्थों में ईकन् कहना चाहियें। 'अध्यर्द्धया काकिण्या क्रीतमिति अध्यर्द्धकाकिणीकम्, द्वाभ्यां काकिणीभ्यां क्रीतमिति द्विकाकिणीकम्'। **केवलायाश्चेति**। मात्र काकिणीपद से भी ईकन् कहना चाहिये। काकिण्या क्रीतं काकिणीकम्। {**खार्या ईकन्**}।

शाणाद्वा ५.१.३५

* शतशाणाभ्यां वा * **शतशाणाभ्यां वेति वक्तव्यम्। अध्यर्द्ध-शतम् अध्यर्द्धशत्यम्। पञ्चशतम् पञ्चशत्यम्। अध्यर्द्धशाणम् अध्यर्द्धशाण्यम्। पञ्चशाणं पञ्चशाण्यम्** * द्वित्रिपूर्वादण्च * **द्वित्रि-पूर्वाद् अण्चेति वक्तव्यम्। द्विशाणम्। त्रिशाणम्। द्वैशाणम्। त्रैशाणम्। द्वैशाण्यम्। त्रैशाण्यम्।** {शाणाद्वा}।

यहाँ पूर्वसूत्र 'पणपादमाषशताद्यत्' ५.१.३४ से विधेय 'यत्' और 'अध्यर्द्ध-पूर्वाद् द्विगोः' ५.१.२८ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अध्यर्द्धपूर्व शाणपद तथा द्विगु शाण पद से आर्हीय अर्थों में विकल्प से यत् प्रत्यय हो'। पक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से ठञ् होगा जिसका 'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोः-' ५.१.२८ से लुक् होगा। अध्यर्द्धशाण्यम्, अध्यर्द्धशाणम्। द्विशाण्यम्, द्विशाणम्।

सिद्धान्त वार्तिक—**शतशाणाभ्यामिति**। शत और शाण पद से विकल्प से यत् कहना चाहिये। 'अध्यर्द्धेन शतेन क्रतमिति अध्यर्द्धशत्यम्, अध्यर्द्धशतम्। पञ्चभिः शतैः क्रीतमिति पञ्चशतम्, पञ्चशत्यम्। अध्यर्द्धशाण्यम, अध्यर्द्धशाणम्। पञ्चशाणम्, पञ्चशाण्यम्। **द्वित्रिपूर्वादिति**। अष्टाध्यायीग्रन्थ में 'द्वित्रिपूर्वादण्च' ५.१.३६ सूत्रपाठ भी है; परन्तु वार्तिककार इसे अनार्ष मान कर वार्तिक का आरम्भ करते हैं। यहाँ 'शाणाद्वा' ५.१.३५ से 'शाणात्' की अनुवृत्ति होने से द्विपूर्वशाण और त्रिपूर्वशाण से वैकल्पिक अण् प्रत्यय तथा पक्ष में यत् और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठञ् कहना चाहिये। 'द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं द्विशाणं, त्रिभिः शाणैः क्रीतं त्रिशाणम्'। यहाँ उभयत्र ठञ् प्रत्यय तथा उभयत्र 'अध्यर्द्धपूर्वात्-' ५.१.२८ से उसका लुक् है। अण्प्रत्ययपक्ष में आदिवृद्धि के द्वारा 'द्वैशाणं, त्रैशाणम्'। यत्प्रत्ययपक्ष में 'द्विशाण्यं, त्रिशाण्यम्'। {शाणाद्वा}।

तेन क्रीतम् ५.१.३७

* तेन क्रीतमिति करणात् * **तेन क्रीतमित्यत्र करणादिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-देवदत्तेन क्रीतं यज्ञदत्तेन क्रीतमिति।**

सूत्रार्थ—'तृतीयान्तप्रातिपदिक से क्रीतार्थ में यथाविहित प्रत्यय हो'। गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम्। 'तेन' यह करण में तृतीया है।

एकदेशी आचार्य—**तेन क्रीतमिति**। 'तेन क्रीतम्' सूत्र पर करण पद से क्रीत अर्थ में प्रत्यय कहना चाहिये। इससे जहाँ 'देवदत्तेन क्रीतं, यज्ञदत्तेन क्रीतम्' में कर्तृतृतीया है वहाँ तृतीयान्तप्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में प्रत्यय नहीं होगा।

* अकर्त्रेकान्तात् * **अकर्त्रेकान्तादिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—देवदत्तेन पाणिना क्रीतमिति** * संख्यैकवचनाद् द्विगोश्चोपसंख्यानम् * **संख्याया इति वक्तव्यम्। इहाऽपि यथा स्यात्—पञ्चभिः क्रीतं पञ्चकम्। सप्तकः शत्यः साहस्रः। किं पुनः कारणं न सिध्यति? एकवचनान्तादिति वक्ष्यति तस्याऽयं पुरस्तादपकर्षः। 'एकवचनात्'। एकवचनान्तादिति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—शूर्पाभ्यां क्रीतं शूर्पैः क्रीतमिति। 'द्विगोश्च'। द्विगोश्चेति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्-द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पं त्रिशूर्पमिति।**

अकर्त्रेकान्तादिति। कर्त्ता का अवयव से भिन्न करणपद से ही क्रीतार्थ में प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'देवदत्तेन पाणिना क्रीतम्' में कर्त्तृपद देवदत्त का अवयव ही पाणि है, अतः उससे प्रत्यय नहीं हुआ। **संख्यैकवचनादिति**। संख्या से भी क्रीतार्थक प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'पञ्चभिः क्रीतं पञ्चकं, सप्तभिः क्रीतं सप्तकम्' में 'शताच्च ठन्यतावशते' ५.१.२१ से यत् और ठन् तथा 'सहस्रेण क्रीतं साहस्रम्' में 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' ५.१.२७ से अण् सिद्ध होता है। यहाँ संख्यापद से संख्यावाची ही गृहीत हैं, 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से बोध्य संख्या नहीं, अत एव भाष्यकार ने 'पञ्चकम्, सप्तकम्' आदि ही उदाहरण दिया है, 'बहुकम्' आदि नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वपक्षी—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि 'सप्तकं, पञ्चकम्' आदि में तृतीयान्त से क्रीतार्थक प्रत्यय प्राप्त नहीं है?

उत्तरपक्षी—**एकवचनान्तादिति**। आचार्य एकवचनान्त का अपवाद वार्तिक में 'संख्या' बोल रहे हैं। पुरस्तादपवादन्याय से 'संख्या' 'एकवचनात्' का अपवाद है। 'एकवचनात्' पद से 'एकवचनान्तात्' अर्थ समझना चाहिये। इससे द्विवचनान्त अथ वा बहुवचनान्त से विग्रह होने पर 'शूर्पाभ्यां क्रीतं, शूर्पैः क्रीतम्' में क्रीतार्थक प्रत्यय नहीं होगा। **द्विगोश्चेति**। द्विगु से भी क्रीतार्थक प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पं, त्रिभिः शूर्पैः क्रीतं त्रिशूर्पम्' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास, तद्धितोत्पत्ति तथा 'अध्यर्द्ध-पूर्वात्-' ५.१.२८ से लुक् है।

यद्येकवचनान्तादित्युच्यते-मुद्गैः क्रीतं मौद्गिकं माषैः क्रीतं माषिकमिति न सिध्यति। परिमाणस्य संख्याया यदेकवचनं तदन्तादिति वक्तव्यम्। तत्तर्ह्येकवचनान्तादिति वक्तव्यम्? तस्मिँश्च क्रियमाणे बहुवक्तव्यं भवति। न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति—शूर्पाभ्यां क्रीतं शूर्पैः क्रीतमिति? *उक्तं वा* उक्तं वा किमुक्तम्? अनभिधानादिति।

आक्षेपभाष्य—**यद्येकवचनान्तादिति**। यदि एकवचनान्त से 'तेन' क्रीतम्' अर्थ में प्रत्यय कह रहे हैं तो जहाँ बहुवचनान्त से विग्रह है वहाँ 'मुद्गैः क्रीतम्' इस विग्रह में 'मौद्गिकम्' 'माषैः क्रीतम् माषिकम्' में बहुवचनान्तप्रकृतिक मुद्ग और माषपद से क्रीतार्थक प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**परिमाणस्येति**। परिमाण का जो संख्यावाची प्रातिपदिक, तदन्त एकवचनान्त से क्रीतार्थक प्रत्यय कहेंगे। मुद्ग और माष परिमाणवाची नही है, अतः इससे बहुवचन से भी विग्रह करने पर भी प्रत्यय हो जायेगा।

आक्षेपभाष्य—**तत्तर्ह्येकवचनेति**। तो क्या 'परिमाण की संख्या का जो एकवचन' ऐसा वचन कहना चाहिये?, यदि ऐसा वचन कहते हैं तो वक्तव्यबाहुल्य होने से गौरव होगा।

सिद्धान्ती—**न वक्तव्यमिति**। 'परिमाण की संख्या का जो एकवचन' ऐसा वचन कहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**कस्मान्नेति**। यदि 'परिमाणस्य संख्याया यदेकवचनम्' ऐसा नहीं कहेंगे तो 'शूर्पाभ्यां क्रीतं, शूर्पैः क्रीतम्' में जहाँ संख्यावाचिभिन्नप्रातिपदिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शूर्प द्विवचनान्त एवं बहुवचनान्त से विग्रह है वहाँ क्रीतार्थक प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**उक्तं वेति**। इसका उत्तर दिया जा चुका है।

प्रश्नभाष्य—**किमुक्तमिति**। इसका क्या उत्तर दिया है।

उत्तरभाष्य—**अनभिधानेति**। यहाँ तद्धितवृत्ति विग्रह के अर्थ को नहीं कह पा रही है, विग्रह और वृत्ति दोनों ही भिन्नार्थक हो रहे हैं, अतः अनभिधान होने से यहाँ उक्तविग्रह में शूर्पपद से क्रीतार्थक प्रत्यय उप्तन्न नहीं होगा।

यद्येवं 'करणादकर्त्रेकान्ता'दित्यपि न वक्तव्यम्। कर्त्तुः कर्त्रेकान्ताद्वा कस्मान्न भवति? अनभिधानात्। {तेन क्रीतम्}।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि अनभिधान से 'शूर्पाभ्यां क्रीतम्' इत्यादि में क्रीतार्थक प्रत्यय का अभाव कहेंगे तो 'देवदत्तेन पाणिना क्रीतम्' में क्रीतार्थक प्रत्यय का अभाव बताने के लिए 'अकर्त्रेकान्तात्-' वचन भी नहीं करना चाहिये।

इतर आचार्य—**कर्त्तुरिति**। यदि उक्तवचन नहीं कहेंगे तो विग्रह में क्रीतार्थक प्रत्यय का अभाव कैसे कहेंगे?

सिद्धान्ती—**अनभिधानादिति**। हम यहाँ अनभिधान होने से ही प्रत्यय का अभाव कहेंगे।। **तेन-**।।

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ५.१.३८

संयोगोत्पातयोः को विशेषः? संयोगो नाम स भवति इदं कृत्वेदमवाप्यत इति। उत्पातो नाम स भवति—यादृच्छिको भेदो वा छेदो वा पद्मं वा पर्णं वा।

सूत्रार्थ—'तस्य निमित्तं संयोगः उत्पातो वा' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से यथाविहित ठन् आदि प्रत्यय हों'। संयोग=सम्बन्ध, उत्पात=शुभ अथवा अशुभ का सूचक। जैसे—शतस्य निमित्तः शत्यः शतिको वा धनसम्पत्तिसंयोगः। शतस्य निमित्तं शत्यं शतिकं वा दक्षिणाक्षिस्फुरणम्।

पूर्वपक्षी—**संयोगेति**। संयोग और उत्पातशब्द का क्या अर्थ है?, अर्थात् संयोग और उत्पात में कौन सी विशेषता है? जिससे हम उसे समझ सकें।

उत्तरपक्षी—**संयोगो नामेति**। 'इदं कृत्वेदम् अवाप्यते' अर्थ संयोग है। जैसे—काम्य याग से स्वर्ग, पुत्र आदि की प्राप्ति होती है। यहाँ जिस याग आदि करण से फलविशेष के साथ संयोग हो वह यागादि ही संयोग है। परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पात फल के प्रति कारण नहीं होता है, अपि तु शुभ, अशुभ का सूचक ही उत्पात है। जैसे—वस्त्र आदि का अपने आप **भेदः**-फट जाना, जूता आदि का स्वतः टूट जाना; इससे अशुभ की आशङ्का होती है। पात्र आदि में स्वतः पद्म, पर्ण आदि शुभपदार्थों का गिर जाना शुभसूचक उत्पात है। संयोग और उत्पात में यही भेद है।

* तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम् * **तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेमभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्** * सन्निपाताच्च * **सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्। सान्निपातिकम्।**

सिद्धान्त वार्तिक—**तस्येति**। 'तस्य निमित्तम्' प्रकरण में वात, पित्त, श्लेष्म पद से शमन और कोपन अर्थ में भी यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय कहना चाहिये। वातस्य शमनं वातिकं, वातस्य कोपनं वातिकम्। इसी तरह 'पैत्तिकं, श्लैषिकम्। **कोपनम्**=वृद्धिः। **सन्निपाताच्चेति**। सन्निपात पद से भी शमन और कोपन अर्थ में ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये। सन्निपातस्य संयोग उत्पातो वा सान्निपातिकम्। {**तस्य निमित्तम्-**}।

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ५.१.३९

* यत्प्रकरणे ब्रह्मवर्चसाच्च * **यत्प्रकरणे ब्रह्मवर्चसाच्चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। ब्रह्मर्चसस्य निमित्तं संयोगः ब्रह्मवर्चस्यः उत्पातो वा।**

पूर्वसूत्र 'तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ' ५.१.३८ से 'संयोगोत्पातौ' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ वा' इस अर्थ में गो पद से तथा संख्या, परिमाण और अश्व आदि से भिन्न द्व्यच्क पद से यत् हो'। जैसे—गोनिमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः, 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७९ से वान्तादेश है। द्व्यच्—यशसो निमित्तं संयोग उत्पातो वा यशस्यः। इसी तरह-धन्यः, स्वर्ग्यः।

सिद्धान्त वार्तिक—**यत्प्रकरण इति**। ब्रह्मवर्चस पद से भी यत् कहना चाहिये। ब्रह्मवर्चसस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा ब्रह्मवर्चस्यः। ब्रह्मणो वर्चो ब्रह्मवर्चसं, तस्मात्, वार्तिक में 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' ५.४.७८ से समासान्त अच्प्रत्ययान्त ब्रह्मवर्चस पद निर्दिष्ट है।। **गोद्व्यचो-**।।

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ५.१.४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** तदस्मिन् दीयतेऽस्मा इति च * तदस्मिन् दीयतेऽस्मा इति चेति वक्तव्यम्। पञ्च वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयतेऽस्मै पञ्चकः। सप्तकः। अष्टकः। नवकः। दशकः। तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। यद्धि यस्मै दीयते तस्मिन्नपि तद्दीयते तत्र तदस्मिन् दीयते इत्येव सिद्धम्।** {तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभ}।

'वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः' यह प्रथमाबहुवचनान्त निर्देश है। 'दीयते' एकवचनान्त है, अतः 'तदस्मिन्वृद्धिर्दीयते, तदस्मिन्नायो दीयते' इत्यादिक्रम से प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होगा। मूल से अधिक साहुकार द्वारा ग्रहण किया हुआ भाग वृद्धि, ग्रामादि में जमीन्दार द्वारा लिया गया भाग आय, विक्रेता द्वारा मूल्य से अधिक लिया गया धन लाभ, रक्षा के लिए राजा द्वारा लिया गया राजभाग शुल्क और नौकरी आदि के लिए दिया गया अवैधधन **उपदा**=उत्कोच कहलाता है।

एकदेशी आचार्य—**तदस्मिन्दीयत इति**। 'तदस्मिन्दीयते' अर्थ में चतुर्थ्यर्थ में भी यथाविहितप्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—'पञ्च वृद्धिः, आयः, लाभः, शुल्कः उपदा वा अस्मै दीयत इति पञ्चकः'। यहाँ 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' ५.१.२२ से कन् प्रत्यय चतुर्थ्यर्थ में है। इसी तरह 'सप्तकः, अष्टकः, नवकः, दशकः' में भी व्युत्पत्ति करनी चाहिये।

आक्षेपक आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या चतुर्थ्यर्थ में प्रत्ययविधानार्थ 'तदस्मिन्दीयते स्मा इति च' यह वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। सम्प्रदान की अधिकरणत्वविवक्षा होने से अधिकरण में प्रत्यय होने पर भी सम्प्रदानत्व का लाभ हो जायेगा। जैसे—

सममब्राह्मणे दानं, द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
सहस्रगुणमाचार्येऽनन्तं वेदपारगे।।

में सम्प्रदानत्व की अधिकरणविवक्षा है।। **तदस्मिन्-**।।

पूरणार्द्धाट्ठन् ५.१.४८

*** ठन्प्रकरणेऽन्नन्तादुपसंख्यानम् * ठन्प्रकरणेऽन्नन्तादुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। द्वितीयिकः। तृतीयिकः। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'पूरणा'दित्युच्यते, न चैतत्पूरणान्तम्, अनैतत्पर्यवपन्नम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'तदस्मिन्वृद्ध्यादिर्दीयते' अर्थ में पूरणप्रत्ययान्त और अर्धशब्द से ठन् प्रत्यय हो'। जैसे—पूरणप्रत्ययान्त द्वयोः पूरणः द्वितीयः, 'द्वेस्तीयः' ५.२. ५४ से पूरणप्रत्ययान्त द्वितीय पद, एवं 'त्रयाणां पूरणस्तृतीयः, 'त्रेः सम्प्रसारणं च' ५.२.५५ से त्रिशब्द से पूरणार्थक तीय प्रत्यय, प्रकृति को सम्प्रसारण, पूर्वरूप होकर तृतीय पद है। 'द्वितीयः तृतीयो वा वृद्ध्यादिर्दीयतेऽस्मिन्निति द्वितीयकस्तृतीयकः। अर्द्धमस्मिन्दीयतेऽर्द्धिकः'। यहाँ कार्षापण अर्थ में रूढ अर्धशब्द का ही ग्रहण है।

एकदेशी—**ठन्प्रकरण इति**। जैसे—'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ सूत्र में 'अस्त्रियाम्' का अधिकार कर विहित टाप् आदि प्रत्ययों का ही ग्रहण होता है वैसे 'पूरणार्धाट्ठन्' प्रकरण में पूरण शब्द से प्रत्यय नहीं करके 'तस्य पूरणे डट्' ५.२.४८ आदि से विहित डट् आदि प्रत्यय का ही ग्रहण कहना चाहिये। जैसे—द्वितीय से द्वितीयकः, तृतीय से तृतीयकः। 'द्वयोः पूरणाद् भागे तीयादन्' ५.३.४८ से अन् है।

अन्य आचार्य—**किम्पुनरिति**। क्या कारण है कि 'द्वितीयकस्तृतीयकः' में अन्नन्त से कन् नहीं हो पा रहा है?

वार्तिकमतानुयायी पूर्वपक्षी—**पूरणादिति**। पूरण से प्रत्यय कहा जा रहा है। 'द्वितीयकः' आदि में अन्प्रत्ययान्त द्वितीय, तृतीय पद पूरणप्रत्ययान्त नहीं है। अन्प्रत्यय होने से 'एततपर्यवसन्नम्' यह व्यवहित है।

पूरणं नामार्थस्तमर्थमाह—तीयशब्दः पूरणं सोऽसौ भवति। पूरणान्तात्स्वार्थे भागेऽन्, सोऽपि पूरणं भवत्येव। {पूरणार्द्धाट्ठन्}।

सिद्धान्ती—**पूरणं नामेति**। पूरण वही है जो पूरण अर्थ को कहे। पूरणप्रत्ययान्त द्वितीय, तृतीय से 'पूरणाद् भागे तीयादन्' ५.३.४८ से स्वार्थ=स्वम्=प्रकृतिस्तस्या अर्थः स्वार्थः' प्रकृत्यर्थ में अन्प्रत्यय विहित है, अतः वह भी पूरण ही होगा। इस तरह पूरणप्रत्ययान्त से ही ठन् सिद्ध हो जा रहा है, उसके लिए अन्प्रत्ययान्त से ठन्विधान के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।। **पूरणार्धा-**।।

सम्भवत्यवहरतिपचति ५.१.५२

*** तत्पचतीति द्रोणादण्च * तत्पचतीति द्रोणादण्चेति वक्तव्यम्। द्रोणं पचति द्रौणी द्रौणिकी। {सम्भवत्यवहरतिपचति}।**

'तद्धरति वहत्यावहति भाराद् वंशादिभ्यः' ५.१.५० से द्वितीयान्त 'तद्' पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तत्सम्भवत्यवहरति पचति' अर्थ में द्वितीयान्त से यथाविहित प्रत्यय हों'। जैसे—'प्रस्थं सम्भवति=स्वस्मिन् समावेशयति प्रास्थिकः कटाहः'। 'आर्हाद-गोपुच्छ–' ५.१.१९ सूत्र में अपरिमाणपर्युदास है, अतः ठक् के अभावपक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से ठञ् प्रत्यय है। यहाँ 'सम्भवति' का 'समावेशयति' अर्थ है, अतः अकर्मकत्व की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। एवम् 'प्रस्थमवहरति= उपसंहरति, पचति वेति प्रास्थिकी ब्राह्मणी'।

वार्तिक—**तत्पचतीति**। 'तत्पचति' अर्थ गम्य होन पर द्वितीयान्त द्रोणप्रातिपदिक से अण्प्रत्यय एवं 'च'करण से यथाविहित प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—द्रोणं पचति द्रौणी, अण्, ङीप्, अण् के अभावपक्ष में प्राग्दीव्यतीय ठञ् ५.१.१८ प्रत्यय होकर द्रौणिकी। {**सम्भवत्यवहरतिपचति**}।

कुलिजाल्लुक्खौ च ५.१.५५

*** कुलिजाच्चेति सिद्धे लुक्खग्रहणानर्थक्यं पूर्वस्मिंस्त्रिकभावात् * कुलि-जाच्चेत्येव सिद्धं, नाऽर्थो लुक्खग्रहणेन। किं कारणम्? 'पूर्वस्मिंस्त्रि-कभावात्'। पूर्वस्मिन् योगे सर्व एष त्रिको निर्दिश्यते—द्व्याढकी द्व्याढकिकी द्व्याढकीना।**

स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से '-द्विगोः-' ५.१.२८ और 'सम्भवत्यवहरतिपचति' ५.१.५२, '-कन्' ५.१.५४ तथा '-अन्यतरस्याम्' ५.१.५३ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'कुलिजान्तद्विगु से सम्भवति आदि अर्थों में विकल्प से लुक् और ख हो'। 'आर्हात्-' ५.१.१९ सूत्र में परिमाणपर्युदास है, अतः यहाँ 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से विहित ठञ् का 'अध्यर्द्धपूर्वात्-' ५.१.२८ से नित्य लुक् प्राप्त होने पर प्रकृत से लुग्विकल्प है। सूत्र में 'च' पद पठित है, उससे ठन् भी होगा। इस तरह यहाँ ठञ् का लुक्, ख प्रत्यय और ठन्, इन तीनों का विकल्प है। ठन्, ख और ठञ् और लुक् का अभावपक्ष में ठञ् का श्रवण होगा। द्वाभ्यां कुलिजाभ्यां क्रीता द्विकुलिजाद्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी, द्वैकुलिजिकी।

सिद्धान्ती आचार्य—**कुलिजाच्चेति**। आचार्य को प्रकृतसूत्र के स्थान पर मात्र 'कुलिजाच्च' इतना ही पढना चाहिये था। इससे पूर्वसूत्र 'आढकाचित-पात्रात्खोऽन्यतरस्याम्' ५.१.५३ तथा 'द्विगोः ष्ठँश्च' ५.१.५४ में त्रिक=(त्रयोऽवयवा यस्य स त्रिकः, 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' से कन्नन्त त्रिकशब्द है') द्व्याढकी, द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना निर्दिष्ट है; 'च' पद के द्वारा उसी का यहाँ भी बोध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। इस तरह प्रकृतसूत्र में 'लुक्खौ' ग्रहण नहीं करना पडता है। {कुलिजा-लुक्खौ च}।

तदस्य परिमाणम् ५.१.५७

संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु ५.१.५८

* संज्ञायां स्वार्थे * **संज्ञायां स्वार्थे प्रत्यय उत्पाद्यः। पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। त्रिकाः शालङ्कायनाः। सप्तका ब्रह्मवृक्षाः** * ततः परिमाणिनि * **ततः परः प्रत्ययः परिमाणिनीति वक्तव्यम्। पञ्चकः सङ्घः। दशकः सङ्घः** * जीवितपरिमाणे चोपसंख्यानम् * **जीवितपरिमाणे चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। षष्टिर्जीवितपरिमाणमस्य षाष्टिकः। साप्ततिकः।**

सूत्रार्थ—'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में प्रथमान्तसमर्थसूबन्त से यथाविहितप्रत्यय हों'। जैसे—'प्रस्थं परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः। ५.१.५७.

यद्यपि पूर्वसूत्र का उत्तरसूत्र में अनुवर्त्तन है तथापि सिद्धान्ती आचार्य संज्ञा अर्थ गम्य होने पर स्वार्थ में ही प्रत्यय बताते हैं—**संज्ञायामिति**। संज्ञा अर्थ गम्य होने पर संख्यावाची से स्वार्थ-प्रकृत्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। 'आ दशभ्यः संख्याः संख्येये वर्त्तन्ते न तु संख्यानमात्रे' इस सिद्धान्त से अष्टादशपर्यन्त संख्या संख्येय अर्थ में है। इससे पर 'एकोनविंशतिः' से यावत्पर्यन्त संख्यान और संख्या दोनों में है। जो शकुनि पञ्चत्वसंख्यायुक्त पञ्चशब्द से वाच्य हैं, वे पञ्चकशब्द से भी वाच्य हैं। इस तरह परिमाण और पमिमाणिभाव नहीं होने से स्वार्थ में ही प्रत्यय कहना चाहिये। इसी तरह 'त्रिकाः शालङ्कायनाः, सप्तकाः ब्रह्मवृक्षाः' भी होगा। **ततः परिमाणिनि**। इसके बाद के दो अर्थो संघ और सूत्राध्ययन को 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में ही कहना चाहिये। 'पञ्चत्वमस्य संघस्य परिमाणं पञ्चकः संघः' इसी तरह 'दशकः संघः' भी होगा। 'अष्टत्वमस्य सूत्राध्ययनस्य परिमाणमिति अष्टकं पाणिनीयम्' है।

एकदेशी आचार्य—**जीवितपरिमाणे चेति**। संघादि अर्थो में विहित प्रत्यय जीवितपरिमाण अर्थ में अप्राप्त हैं, अतः अतिरिक्तवचन है। जीवितस्य परिमाणं जीवितपरिमाणं **तस्मिन्**=आयुः वाच्य होने पर संख्यावाची से यथाविहित प्रत्यय कहना चाहिये। षष्टिर्जीवितपरिमाणमस्येति षाष्टिकः, एवं साप्तितिकः, 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से ठञ् है।

* जीवितपरिमाणे चेत्यनर्थकं वचनं कालादिति सिद्धत्वात् * **जीवित-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिमाणे चेत्यनर्थकं वचनम्। किं कारणम्? 'कालादिति सिद्धत्वात्'। कालादित्येव सिद्धम्। इह यस्य षष्टिर्जीवितपरिमाणं षष्टिमसौ भूतो भवति, तत्र 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी'त्येव सिद्धम्। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् *इह वचने हि लुक्प्रसङ्गः* इह हि क्रियमाणे लुक्प्रसज्येत—द्विषाष्टिकः। त्रिषाष्टिकः। अनेन सति लुग्भवति। तेन सति कस्मान्न भवति? आर्हादित्युच्यते। न सिध्यति।

अन्य आचार्य एकदेशी का खण्डन करते हैं—**जीवितपरिमाणे चेति**। 'कालात्' ५.१.७८ ऐसा अधिकार कर आचार्य ने 'तमधिष्टो भृतो भूतो भावी' ५.१.८० सूत्र पढा है। यहाँ भूतपद के द्वारा स्वसत्ता से व्याप्तकाल गृहीत है। उसी से ठञ् होकर 'षष्टिं भूतः षाष्टिकः' सप्ततिं भूतः साप्ततिकः' हो जायेगा, अतः इसके लिए 'जीवितपरिमाणे चोपसंख्यानम्' यह वार्तिकवचन व्यर्थ है। इस वार्तिकवचन के करने पर अन्य दोष भी है, जिसे स्पष्ट करते हैं—**इह वचने हीति**। 'जीवितपरिमाणे चोसंख्यानम्' ऐसा अतिरिक्तवचन पढ कर प्रत्ययविधान करने पर 'द्विषाष्टिकः, त्रिषाष्टिकः' में 'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से प्रत्यय का लुक् प्राप्त होगा। परन्तु 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' ५.१.८० से प्रत्ययविधान करने पर लुक् नहीं होता है, अतः इसी से प्रत्यय कहना चाहिये।

पूर्वपक्षी—**तेन सतीति**। 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' ५.१.८० से विहित ठञ् को 'अध्यर्द्धपूर्वाद्द्विगोः-'५.१.२८ से लुक् क्यों नहीं होता है?

उत्तरपक्षी—**आर्हादिति**। 'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ सूत्र में 'आर्हात्-' ५.१.१९ का अनुवृत्ति होती है, अतः आर्हीय का ही लुक् होगा; जब कि 'तमधीष्टः-' ५.१.८० सूत्र 'तदर्हति' ५.१.६३ से पर में है, अतः इससे विहित प्रत्यय का लुक् नहीं होता है।

किं कारणम्? न हीमे कालशब्दाः। किं तर्हि? संख्याशब्दा इमे। इमेऽपि कालशब्दाः। कथम्? संख्या संख्येये वर्त्तते। यदि तर्हि यो यः शब्दः काले वर्त्तते स स कालशब्दः रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवति, रमणीयं कालं भूतः, शोभनं कालं भूतः।

इसका क्या कारण है? आक्षेपक आचार्य—**न हीम इति**। 'षष्टिः, सप्ततिः' ये कालवचन नहीं है, अपि तु संख्यावचन हैं। 'कालात्' ५.१.७८ का अधिकार कर 'तमधीष्टः-' ५.१.८० का विधान होने से कालवचन से ही प्रत्यय कहा जा रहा है, वह संख्यावचन से कैसे होगा?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरपक्षी—**इमेऽपीति**। 'षष्टिः, सप्ततिः' आदि भी कालवाची हैं। संख्या संख्येय में होती है। संख्येयकाल में शक्त संख्यावाचिशब्दों का भी कालवाचकत्व उपपन्न होने से 'षाष्टिकः' आदि में प्रत्यय उपपन्न हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि संख्येय काल में शक्त होने से संख्यावाची को कालवाची मानेंगे तो काल में जो-जो विद्यमान हैं, वे सभी कालशब्द होंगे। इससे 'रमणीयं कालं भूतः, शोभनं कालं भूतः' में रमणीय और शोभन पद से भी ठञ् की अतिव्याप्ति होगी।

अथ मतमेतत्काले दृष्टः शब्दः कालशब्दः, कालं यो न व्यभिचरतीति, न रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवती। जीवितपरिमाणे तूपसंख्यानं कर्त्तव्यम्।

इस अतिव्याप्ति का वारण करते हैं—**अथ मतमेतदिति**। काल में दृष्ट उसी को काल शब्द मानना चाहिये जो कभी भी काल से व्यभिचरित न हो। रमणीयादि शब्द कभी कालविशेष में रहते भी हैं तथा उनका कभी कालविशेष में अभाव भी होता है, अतः रमणीय आदि जो काल में व्यभिचरित हैं, उसे काल शब्द नहीं भी कहा जायेगा। इस तरह उससे 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' ५.१.८० से ठञ् की अतिव्याप्ति नहीं है। परन्तु जो जीवित परिमाण है, वह भी कालशब्द से व्यभिचरित नहीं है, अतः कालशब्द से जीवित परिमाण का ग्रहण हो जायेगा।

इह चोपसंख्यानं कर्त्तव्यं—वार्षशतिको वार्षसहस्रिक इति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? न हि वर्षशतशब्दः संख्या। किं तर्हि? संख्येये वर्त्तते वर्षशतशब्दः। एवं तर्हि- * अन्येभ्योऽपि दृश्यते खारशताद्यर्थम् * अन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? खारशताद्यर्थम्। खारशतिको राशिः खारसहस्रिको राशिः।

इतर आचार्य—**इहेति**। 'वार्षशतिकः', वार्षसहस्रिकः' शब्द में ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये। 'संज्ञासंङ्घसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ के द्वारा संख्या से प्रत्यय विहित है। वर्षशत और वर्षसहस्र पद संख्यान्त है, संख्या नहीं है। यहाँ तदन्त से प्रत्ययविधि अप्राप्त है। वर्षशत आदि पद संख्या नहीं हैं, अपि तु संख्येय हैं। 'वर्षशतमसौ भूतो भवति, वर्षसहस्रमसौ भूतो भवति' में 'तमधीष्टो भृतो भूतो भवति' ५.१.८० से प्रत्यय अप्राप्त होने से उक्त में प्रत्यय कहना चाहिये।

अन्य आचार्य इसका समाधान करते हैं—**एवन्तर्हीति**। 'तमधीष्टो भृतो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूतो भावी' ५.१.८० सूत्र पर 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' ऐसा अतिरिक्तवचन पढेंगे। इससे **अन्येभ्यः**=संख्याभिन्न असंख्या वर्षशत तथा वर्षसहस्र से भी 'तमसौ भूतः' अर्थ में ठञ् हो जायेगा तथा खारशतादि से भी 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में प्रत्यय हो जायेंगे। खारशतं परिमाणमस्य खारशतिकः, खारसहस्रं परिमाण-मस्य खारसहस्रिको राशिः। यहाँ खारी शब्द का पर्याय अदन्त खारशब्द वार्तिककार के वचन से साधु है।

अयं तर्हि दोषः—'इह वचने हि लुक्प्रसङ्ग' इति। न ब्रूमो यत्र क्रियमाणे दोषस्तत्र कर्त्तव्यमिति। किं तर्हि? यत्र क्रियमाणे न दोषस्तत्र कर्त्तव्यमिति। क्व चक्रियमाणे न दोषः? परमार्हात्।

इतर आचार्य—**अयं तर्हीति**। यदि 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' वचन पढते हैं तो '**इह**=द्वे षष्टी परिमाणमस्य द्विषाष्टिकः' में प्रत्यय के लुक् की आपत्ति होगी।

उत्तरपक्षी—**न ब्रूम इति**। हम यह नहीं कह रहे हैं कि जहाँ पाठ करने से दोष हो वहाँ पाठ कीजिये। यदि 'आर्हादगोगुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्' ५.१.१९ पर उक्त वार्तिकवचन पढेंगे तो 'अध्यर्द्धद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' ५.१.२८ से लुक् की आपत्ति होगी। 'तदर्हति' ५.१.६३ पर्यन्त ही 'आर्हात्' है तथा वहीं तक विहित प्रत्ययों का यथाविधि लुक् है। उक्त वचन को 'तदर्हति' ५.१.६३ से पर 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.७८ सूत्र पर पढेंगे; इससे यहाँ तद्धितलुक् की आपत्ति नहीं होगी।

तत्तर्ह्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। 'काला'दित्येव सिद्धम्। ननु चोक्तं-'नेमे कालशब्दाः, किं तर्हि संख्याशब्दा' इति। ननु चोक्तम्—'इमेऽपि कालशब्दाः। कथम्? संख्या संख्येये वर्त्तते। ननु चोक्तं—'यदि तर्हि यो यः शब्दः काले वर्त्तते स स कालशब्दो, रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवती'ति।

अन्य आचार्य—**तत्तर्ह्युपसंख्यानमिति**। तो क्या 'वार्षशतिकः, वार्षसहस्रिकः, खारशतिकः, खारसहस्रिकः' आदि की सिद्धि के लिए 'तदस्य परिमाणम्' सूत्र पर 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' यह अतिरिक्त वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। उक्त वचन के अभाव में भी 'वार्षशतिकः' आदि की सिद्धि बताते हैं—**कालादित्येवेति**। यहाँ भी 'कालात्-' ५.१.७८ से ही ठञ् सिद्ध हो जायेगा। आप ने वर्षशत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि को कालशब्द न कह कर संख्याशब्द कहा था, यह आप कर पक्ष उचित नहीं है। ये सभी ही कालशब्द ही हैं। मैं अभी-अभी इसी सूत्र पर 'संख्या संख्येये वर्त्तते कह आया हूँ तथा उसकी व्याख्या भी की है। उसके अनुसार वर्षशत तथा वर्षसहस्र पद कालवाची है। उससे ठञ् हो जायेगा। इस पर आप ने आपत्ति दी थी-'संख्या संख्येये वर्त्तते' पक्ष मानने पर जो-जो काल अर्थ में शक्त हैं, ये सभी काल शब्द होंगे, इससे रमणीय आदि में प्रत्यय की आपत्ति होगी'।

*** उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्? 'अनभिधाना'दिति। अनभिधानाद्रमणीयादिषूत्पत्तिर्न भविष्यति * स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः * स्तोमे डो विधेयः। किं प्रयोजनम्? 'पञ्चदशाद्यर्थः'। पञ्चदशः स्तोमः सप्तदशः स्तोम इति।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम्

●

इस आपत्ति का वारण करने के लिए मैंने अनभिधानहेतु पहले ही दे दिया है। इससे अनभिधान के द्वारा रमणीय, शोभन आदि पदों से प्रत्ययों की उत्पत्ति नहीं होगी। **स्तोमे डविधिरिति**। **स्तोमे**=मन्त्रसमूह वाच्य होने पर 'पञ्चदशः' आदि के लिए 'ड'प्रत्यय भी कहना चाहिये। यहाँ विंशति में 'ति विंशतेर्डिति' ६.४.१४२ से तिलोपार्थ तथा 'त्रयस्त्रिंशत्' में 'अत्' इस टिभाग का लोप के लिए डित्करण है, अत एव कहीं-कहीं पर 'टिलोपार्थम्' ऐसा भी मूल में पाठ है। 'पञ्चदश परिमाणमस्य स्तोमस्य पञ्चदशः स्तोमः, सप्तदश परिमाणमस्य स्तोमस्य सप्तदशः स्तोमः' में सर्वत्र 'ड' प्रत्यय तथा टिलोप है।। **संख्यायाः संज्ञा-**।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्-षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५.१.५९

इमे विंशत्यादयः सप्रकृतिकाः सप्रत्ययकाश्च निपात्यन्ते, तत्र न ज्ञायते का प्रकृतिः कः प्रत्ययः कः प्रत्ययार्थ इति? तत्र वक्तव्यमियं प्रकृतिरयं प्रत्ययोऽयं प्रत्ययार्थ इति। इमे ब्रूमो—द्विशब्दादयं दशदर्थाभिधायिनः स्वार्थे शतिच्प्रत्ययो निपात्यते विन्भावश्च। द्वौ दशतौ विंशतिः।

यहाँ सूत्र में पङ्क्ति आदि शब्दों का निपातन है। उसकी प्रकृति एवं प्रत्यय आदि का ज्ञान नहीं हो पा रहा है; अतः उसके विषय में प्रश्न करते हैं—**इमे विंशत्यादय इति**। यहाँ सर्वप्रथम पङ्क्ति शब्द निपातित है। परन्तु उसकी प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थ के विषय में प्रश्न नहीं करके विंशति आदि के विषय में ही प्रश्न है। पङ्क्ति शब्द छन्दोविशेष तथा सन्निवेशविशेष में रूढ है। अवयवार्थ के अनुसार इसकी प्रवृत्ति नहीं है; अतः पङ्क्तिविषयक प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थ पर विचार नहीं करके विंशति आदि के विषय में ही पूर्वपक्ष करते हैं। प्रकृतिप्रत्ययप्रकरण में विंशति आदि शब्दों का उच्चारण है; अतः ये शब्द सप्रकृतिक और सप्रत्ययक निपातित पढे जा रहे हैं। यहाँ 'सह' पद विद्यमानार्थक है, तुल्यार्थक नहीं। सप्रकृतिक और सप्रत्ययक विंशति आदि पदों में ज्ञान नहीं हो पा रहा है कि इसमें प्रकृति क्या है, प्रत्यय क्या है, तथा प्रत्ययार्थ क्या है? पञ्चम्यन्त पद से पर में प्रत्ययविधान है। यहाँ कहीं भी पञ्चम्यन्त पद का उच्चारण नहीं है, जिसे हम प्रकृति समझ सकें। लोक में केवल प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता है, अपितु सप्रकृतिक का प्रयोग होता है। लोक में विंशति आदि प्रयोगार्ह हैं; अतः इनको प्रत्यय भी नहीं कहा जा सकता है। प्रत्ययों का मात्र शास्त्र में ही प्रयोगार्हता है। जैसे 'शताच्च ठन्यतावशते' ५.१.२१ में 'ठन्यतौ' प्रयुक्त है। विधि और निपातन में कुछ भेद है। जहाँ अवयव का निर्देश और समुदाय का अनुमान होता है उसे विधि कहते हैं। परन्तु जहाँ समुदाय श्रुत है तथा अवयव का अनुमान किया जाता है, उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निपातन कहते हैं। यहाँ निपातनविषयक प्रश्न कर भगवान् भाष्यकार 'का प्रकृतिः, कः प्रत्ययः, कः प्रत्ययार्थः' कह कर प्रत्ययार्थविषयक ही प्रश्न कर रहे हैं। 'का प्रकृतिः' ऐसा पूर्वपक्ष किया है। प्रकृति के ज्ञात होने पर प्रकृत्यर्थ का स्वतः ज्ञान हो जायेगा, इस लिए 'कः प्रकृत्यर्थः' ऐसा पूर्वपक्ष नहीं किया है। लोक में विंशति आदि शब्द संख्या और संख्येय अर्थ में हैं। इस तरह विंशति आदि शब्द प्रसिद्धार्थ में शक्त हैं। लोक में प्रसिद्ध अर्थ में प्रत्ययार्थ का विचार कर विंशति आदि का साधुत्वबोधन कराया जा रहा है। इस तरह यहाँ स्पष्टरूप से बता देना चाहिये कि विंशति आदि शब्दों में 'यह प्रकृति है, यह प्रत्यय है, तथा यह प्रत्ययार्थ है'।

उत्तरभाष्य—**इमे ब्रूम इति**। यहाँ पूर्वपक्ष का उत्तरपक्ष में उद्यतत्व दिखानें के लिए प्रत्ययार्थ सर्वनाम 'इदम्' पद का 'इमे' निर्देश है। 'द्वौ दशतौ परिमाणमस्य सङ्घस्य इति विंशतिः' में द्वि प्रकृति से शतिच् प्रत्यय है, प्रकृति को विन् आदेश और नकार को अनुस्वारादेश होकर विंशति शब्द निपातित है। यहाँ पूर्वसूत्र 'संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ से 'सङ्घ' पद की अनुवृत्ति है। अत एव 'गवां विंशतिः' प्रयोग होता है। यदि संघ और संघी की तादात्म्यविवक्षा करेंगे तो 'विंशतिर्गावः' ऐसा प्रयोग होगा। यहाँ शब्दस्वभाव से स्त्रीत्व और एकवचन है।

* विंशत्यादयो दशदर्थे चेत्समासवचनानुपपत्तिः * **विंशत्यादयो दशदर्थे चेत्समासो नोपपद्यते—विंशतिगवमिति। किं कारणम्? द्रव्यमनभिहितं तस्याऽनभिहितत्वात् षष्ठी प्राप्नोति—षष्ठ्यन्तं च समासे पूर्वं निपतति, तत्र गोविंशतिरिति प्राप्नोति। न चैवं भवितव्यम्। भवितव्यञ्च, विंशतिगवं तु न सिध्यति। इह च त्रिंशत्पूली, चत्वारिंशत्पूली, समानाधिकरणलक्षणः समासो न प्राप्नोति। वचनञ्च विधेयं—विंशतिः। द्वित्वाद्दशतोर्द्वयोर्द्विवचनमिति द्विवचनं प्राप्नोति। एवं तर्हि परिमाणिनि विंशत्यादयो भविष्यन्ति।**

आक्षेपक आचार्य—**विंशत्यादय इति**। यदि दशदर्थ में विंशति, त्रिंशत् आदि पदों का निपातन करेंगे तो 'विंशतिगवम्' इत्यादि में समास नही हो सकेगा। यहाँ 'समासो नोपपद्यते' से समास और वचन दोनों की अनुपपत्ति समझनी चाहिये। समासमात्र सिद्ध नही है, अथ वा वचनमात्र सिद्ध नहीं है। यहाँ विंशति पद से दो दशत् का कथन होगा, दशत्सम्बन्धी द्रव्य का नहीं। इस तरह दशत् की अपेक्षा से 'गवां द्वौ दशतौ' ऐसा व्यतिरेकोपजन होने से गोपदोत्तरषष्ठी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होकर 'गवां विंशतिः' ऐसा वाक्य होगा। समानाधिकरणपदनिबन्धन द्विगु होता है। 'गवां विंशतिः' में असमानाधिकरण होने से द्विगु नहीं हो सकेगा, अपितु 'षष्ठी' २.२.८ सूत्र से षष्ठी समास होगा। सूत्र में प्रथमान्तनिर्दिष्ट षष्ठी पद है; अतः विग्रह में षष्ठ्यन्त की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वनिपात होने पर 'गवां विंशतिः' इस विग्रह में 'गोविंशतिः' की अनिष्टापत्ति होगी। इष्ट रूप 'विंशतिगवम्' सिद्ध नहीं हो सकेगा। 'शतसहस्राच्च निष्कात्' ५.२.११६ में प्रत्ययविधानज्ञापन से तथा 'क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम्' वा.३०५० इस वार्तिकवचन से ज्ञापन के द्वारा 'गुणेन षष्ठी न समस्यते' २.२.११ यह निषेधवचन संख्या में प्रवृत्त नहीं होता है; अतः 'भवितव्यञ्च विंशतिगवम्' ऐसा बोल रहे हैं।

अन्यत्र भी दोष दिखाते हैं—**इह चेति**। 'पूलानां त्रिंशदिति त्रिंशत्पूली, पूलानां चत्वारिंशदिति चत्वारिंशत्पूली' में दोनों पदों का वैयधिकरण्य है; अतः समानाधिकरणपद के अभाव में द्विगु अप्राप्त रहेगा। एवं 'द्वौ दशतौ इति विंशतिः, त्रयो दशत इति त्रिंशत्, चत्वारो दशत इति चत्वारिंशत्' में वचन अप्राप्त होगा। जहाँ दो सङ्घ है, वहाँ विंशति में द्विवचन, तीन संघ वाला त्रिंशत्, चार संघ वाला चत्वारिंशत् में बहुवचन प्राप्त होगा, जब कि वहाँ सर्वत्र एकवचन इष्ट है; अतः इष्ट एकवचन के लिए उक्तविग्रहपक्ष में सर्वत्र एकवचन विधेय होगा, जो गौरव है। यहाँ भाष्यकार ने 'वचनं धियम्' ही कहा है। इससे सर्वत्र लिङ्ग का विरोध नहीं है।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। 'तदस्य परिमाणम्' ५.१.५७ का अधिकार है। यहाँ षष्ठ्यन्त 'अस्य' पद से परिमाणी वाच्य है; अतः परिमाणी अर्थ में प्रत्यय करेंगे। परिमाणी दो प्रकार का होता है—१-द्रव्यसंघात, २-भिन्नद्रव्य। संघ एक ही होता है; अतः विंशति, त्रिंशत् आदि में एकवचन सिद्ध हो जायेगा। परन्तु जब द्रव्यों का परिमाणी मानेंगे तब 'विंशतिगवं, त्रिंशत्पूली' में समानाधिकरणसमास सिद्ध होकर 'विंशतिर्गावः, विंशतिगवम्' त्रिंशत्पूलाः त्रिंशत्पूली' सिद्ध हो जायेगा।

* परिमाणिनि चेत् पुनः स्वार्थे प्रत्ययविधानम् * **परिमाणिनि चेत् पुनः स्वार्थे प्रत्ययो विधेयः—विंशकः सङ्घः** * षष्ठीवचनविधिश्च * **षष्ठी च विधेया। गवां विंशतिः। द्रव्यमभिहितं तस्याऽभिहितत्वात् षष्ठी न प्राप्नोति। एकवचनञ्च विधेयं—विंशतिर्गावः। गोभिः सामानाधिकरण्याद् बहुषु च बहुवचनमिति बहुवचनं प्राप्नोति।**

परिमाणी अर्थ में प्रत्ययनिपातन करने पर अन्य आचार्य स्वार्थ में प्रत्यय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधान बताते हैं—**परिमाणिनि चेदिति**। यदि परिमाणी अर्थ में प्रत्यय का निपातन करेंगे तो 'विंशकः सङ्घः' में स्वार्थ में प्रत्यय कहना होगा। इसका भाव इस प्रकार है—द्वौ दशतौ परिमाणं यस्य स विंशतिः' ऐसा कहने से विंशतिपद से सङ्घ अर्थ वाच्य है। पुनः जब 'विंशतिः परिमाणं यस्य सङ्घस्य' ऐसा विग्रह करेंगे तग परिमाणी सङ्घान्तर के असम्भव होने से 'विंशकः सङ्घः' की सिद्धि के लिए 'विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन् स्वार्थेऽसंज्ञायाम्' ५.१.२४ से विहित ड्वुन् प्रत्यय स्वार्थ में ही कहना होगा। **षष्ठीवचनविधिश्चेति**। सङ्घ परिमाणी अर्थ में केवल विंशति आदि का नित्य प्रयोग इष्ट नहीं है। परन्तु भिन्नद्रव्य परिमाणी में प्रत्ययोत्पत्ति मानने पर विंशतिपद से द्रव्य वाच्य होगा। इस तरह व्यतिरेक का अभाव होने से 'गवां विंशतिः' में षष्ठी प्राप्त नहीं होगी। एवं द्रव्य-सामानाधिकरण्य होने से विंशतिपदोत्तर बहुवचन की आपत्ति होगी। इस आपत्ति को दूर करने के लिए आप को 'गवां विंशतिः' आदि में गो आदि पदों से उत्तर में षष्ठीविधि तथा विंशति आदि में एकवचनविधि कहना पडेगा।

* अनारम्भो वा प्रातिपदिकविज्ञानाद्यथा सहस्रादिषु * **अनारम्भो वा पुनर्विंशत्यादीनां न्याय्यः। कथं सिध्यति? 'प्रातिपदिकविज्ञानात्'। कथं प्रातिपदिकविज्ञानम्? विंशत्यादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि। 'यथा सहस्रादिषु'। तद्यथा—सहस्रमयुतमर्बुदमिति न चाऽनुगमः क्रियते, भवति चाऽभिधानम्।**

अन्य आचार्य प्रकृत सूत्र का खण्डन करते हैं—**अनारम्भो वेति**। वार्तिक में 'वा' पद 'तर्हि' अर्थ में है। विंशति आदि पदों का साधुत्व बताने के लिए प्रकृत सूत्र का आरम्भ नहीं करेंगे। जैसे सहस्र, अयुत, अर्बुद आदि पदों में प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थ का अनुगम नहीं किया जाता है; फिर नियत लिङ्ग और नियत संख्या होने से 'दाराः, आपः' की तरह इन पदों को रूढ मान कर अर्थबोध होता है, वैसे विंशति आदि को प्रयोगभेद से संख्या और संख्येय में तथा नियत लिङ्ग और वचन में शक्त मान कर रूढिशक्ति के द्वारा अर्थबोध हो जायेगा। आचार्य ने व्युत्पन्न तथा अव्युत्पन्न दोनों ही पक्षों को कहा है। व्युत्पन्न शब्दों के पक्ष में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ तथा अव्युत्पन्न शब्दों के पक्ष में 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' १.२४५ सूत्र पढा है। इस तरह विंशति आदि को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक मान कर प्रयोगभेद से जैसे 'अक्षा भुज्यन्तां भज्यन्तां दीव्यन्ताम्' में एक ही अक्ष पद का शकटाक्ष, बिभितिकाक्ष और देवनाक्ष अर्थ होता है, वैसे ही प्रयोगभेद से विंशति आदि पदों को भी शब्दस्वभाववश रूढ होने से नियत संख्या, लिङ्ग और संख्येय का बोध कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेंगे। इसके लिए प्रकृतसूत्रों में विंशति आदि का पाठ नहीं करेंगे।

'यथा सहस्रादि'ष्वित्युच्यते, अथ सहस्रादिष्वपि कथं भवितव्यम्, सहस्रं गवां सहस्रं गावः, सहस्रगवं, गोसहस्रमिति? यावताऽत्राऽपि सन्देहो नाऽसूया कर्त्तव्या यत्राऽनुगमः क्रियते। ननु चोक्तं 'विंशत्यादयो दशदर्थे चेत्समासवचनानुपपत्तिः। परिमाणिनि चेत् पुनः स्वार्थे प्रत्ययविधानं, षष्ठीवचनविधिश्चे'ति। नैष दोषः— समुदाये विंशत्यादयो भविष्यन्ति।

इदानीम् इतर आचार्य सूत्र का समर्थन करते हैं—**यथेति**। आप ने सहस्र, अयुत, अर्बुद आदि पदों को अव्युत्पन्न कह दिया। सहस्र, अयुत, अर्बुद आदि पद अव्युत्पन्न क्यों हैं? यदि आप इन्हें अव्युत्पन्न मान लेंगे तो 'सहस्रं गवां, सहस्रं गावः, सहस्रगवं, गोसहस्रम्' ये शब्द कैसे होंगे? सहस्र आदि पदों में प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थ की कल्पना करने पर ही सङ्घ और सङ्घी की भेदविवक्षा में 'गवां सहस्रम्' तथा तादात्म्यविवक्षा में 'गावः सहस्रम्' प्रयोग होगा। द्विगु होने पर 'सहस्रगवम्' तथा षष्ठी तत्पुरुष होने पर 'गोसहस्रम्' रूप होगा। ये सभी के सभी रूप तभी उपपन्न होते हैं, जब सहस्र आदि पदों को व्युत्पन्न मान कर प्रत्ययार्थ संघ माना जाये। इस तरह जब सहस्र आदि पद व्युत्पन्न हो गये, तब आप को विंशति आदि को भी व्युत्पन्न ही मानना पडेगा, तथा उसमें प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थ की कल्पना करनी पडेगी। फिर जब 'गवां सहस्रम्' आदि में भेद में षष्ठी की सिद्धि के लिए प्रत्ययार्थ तथा प्रकृत्यर्थ की कल्पना कर रहे हैं, तब वहाँ सहस्र आदि पदों में प्रकृत्यर्थ है, अथ वा नहीं, इसका सन्देह भी नहीं करना चाहिये। इससे सहस्र, विंशति आदि पदों का रूढपक्ष गिर गया।

इस तरह विंशति आदि का व्युत्पत्तिपक्ष सिद्ध हो जाने पर व्युत्पत्तिपक्ष में प्राप्त पूर्व दोषों का उद्धार करते हैं—**ननु चोक्तमिति**। व्युत्पत्तिपक्ष में समास और वचन की अनुपपत्ति, प्रत्ययार्थ परिमाणी होने पर स्वार्थ में प्रत्ययविधान, षष्ठीविधि तथा वचनविधि कहा था। वस्तुतः ये दोष नहीं रहेंगे। वह इस तरह कि 'द्वौ दशतौ परिमाणमस्य समुदायस्येति विंशतिः, त्रयो दशतः परिमाणमस्य समुदायस्येति त्रिंशत्' में यहाँ समुदाय अर्थ में प्रत्ययविधान करेंगे।

किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? सङ्घ इति वर्त्तते। सङ्घः समूहः समुदाय इत्यनर्थान्तरम्। त एते विंशत्यादयः समुदाये सन्तो भाववचना भवन्ति, भाववचनाः सन्तो गुणवचना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवन्ति, गुणवचनाः सन्तोऽविशिष्टा भवन्त्यन्यैर्गुणवचनैः। अन्येषु च गुणवचनेषु कदा चिद् गुणो गुणिविशेषको भवति। तद्यथा—पटः शुक्ल इति। कदाचिद् गुणिना गुणो विशेष्यते। तद्यथा—पटस्य शुक्ल इति। तद्यथा तावदुच्यते—'विंशत्यादयो दशदर्थे चेत्समासवचनानुपपत्ति'रिति, सामानाधिकरण्यं तदा गुणगुणिनोः। वचनपरिहारस्तिष्ठतु तावत्। 'परिमाणिनि चेत् पुनः स्वार्थे प्रत्ययविधान'मिति, संहनने वृत्तः संहनने वर्त्तिष्यते। सङ्ख्यासंहनने वृत्तो द्रव्यसंहनने वर्त्तिष्यते। अथ षष्ठी तदा गुणिना गुणो विशेष्यते। वचनपरिहार उभयोरेवम्। उभयोरपि पक्षयोरेवं कृत्वा वचनपरिहारः। यदि तर्हीमे विंशत्यादयो गुणवचनाः स्युः सधर्मिभिरन्यैर्गुणवचनैर्भवितव्यम्। अन्ये च गुणवचना द्रव्यस्य लिङ्गसंख्ये अनुवर्त्तन्ते। तद्यथा—शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बला इति। यदसौ द्रव्यं श्रितो गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च, तद् गुणस्याऽपि भवति। विंशत्यादयः पुनर्नानुवर्त्तन्ते। अन्येऽपि वै गुणवचना नाऽवश्यं द्रव्यस्य लिङ्गसंख्ये अनुवर्त्तन्ते। तद्यथा—गावो धनं, पुत्त्रा अपत्यम्, इन्द्राग्नी देवता, विश्वेदेवा देवता, यावन्तस्ते तां वाशितामनुयन्ति सर्वे ते दक्षिणा समुद्ध्या इति।

प्रश्नभाष्य—**किं वक्तव्यमिति**। तो क्या यहाँ समुदाय अर्थ में प्रत्यय कहना पडेगा?

खण्डनभाष्य—**न हीति**। यहाँ समुदाय अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यदि समुदाय अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए अतिरिक्तवचन नहीं पढेंगे तो 'समुदाय अर्थ में प्रत्यय हो' इस अर्थ का लाभ कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**सङ्घ इतीति**। प्रकृतसूत्र से पूर्व सूत्र 'संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु' ५.१.५८ में 'सङ्घ' पद पठित है, वहाँ से सप्तम्यन्त 'सङ्घे' पद की अनुवृत्ति होने से द्वि आदि प्रकृति से दशत् प्रत्यय सङ्घ अर्थ में होगा। सङ्घ, समूह और समुदाय यह तीनों पर्याय शब्द हैं। समूह और सङ्घ के पर्याय होने से 'वृक्षाणां विंशतिः' यह प्रयोग भी हो जायेगा। इस तरह प्राणी और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्राणी उभय का समुदाय सङ्घ होगा। जो अन्य दोष दिया था—'परिमाणिनि चेत् पुनः स्वार्थे प्रत्ययविधानम्' यह भी दोष नहीं रहेगा। वह इस तरह कि दशत् द्रव्य और सङ्घ अर्थों में प्रत्यय का निपातन है, द्रव्यसङ्घ में नहीं। यहाँ पर द्रव्य, द्रव्यसङ्घ, दशत् और दशत्सङ्घ का पारमार्थिकभेद नहीं है। बुद्धि के द्वारा परिकल्पित अर्थनिबन्धनशब्द बुद्धि को ही अर्थाकार करते हैं तथा वास्तवभेद नहीं होने पर भी अर्थबोध कराते हैं। निपातनसामर्थ्य से विशिष्टदशद्वयात्मक सङ्घ में शक्त पद भाववचन होते हैं। यहाँ भावपद से धर्म्ममात्र कहा गया है। भाववचन होते हुए **गुणवचनाः**={गुणमुक्तवन्तो वचनाः} गुण को कह कर द्रव्य को कहते हैं, एवं गुणवचन होकर अन्य गुणवचन शुक्ल आदि के साथ **अविशिष्टाः**=सामान्य शब्द हो जाते हैं। अत एव शत, सहस्र आदि में षष्ठी-समास उपपन्न हो जाता है। अन्य गुणवचनों में शक्त गुणपद कभी-कभी **गुणि-विशेषकः**={गुणिनं विशिनष्टीति गुणिविशेषकः, 'कर्म्मण्यण्' ३.२.१ से अण्, एवम् अणन्त से स्वार्थ में कन् प्रत्यय} द्रव्य को विशेषित करते हैं। जैसे गुणी द्रव्य के विशेष्य होने पर 'पटः शुक्लः' ऐसा सामानाधिकरण्येन बोध होगा। अथ वा 'शुक्लोऽस्ति यस्य स शुक्लवान्' में मतुप् कर 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' वा.१.४.३६ से मतुप् का लुक् है। कभी-कभी जब **गुणिना**=द्रव्य से गुण को विशेषित करेंगे तब 'पटस्य शुक्लः' ऐसा प्रयोग होगा। आपने इससे पूर्व विंशति आदि को दशदर्थ में शक्त मानने पर समास और वचन की अनुपपत्ति दी थी; उसमें मैं समास का परिहार कर रहा हूँ। जब द्रव्य को विशेष्य मानेंगे तब **गुण**=संख्या और **गुणी**=द्रव्य का **सामानाधिकरण्यम्**=समानवचनकत्व होगा। जैसे 'सहस्रं गावः'। परन्तु जब **गुणिना**=द्रव्य से **गुणः**=संख्या को विशेषित करेंगे, तब 'गवां शतं, गवां विंशतिः, गवां सहस्रम्' ऐसा वाक्य होगा। इससे समास का परिहार हो गया। वचनपरिहार शेष है; उसे अभी वैसे ही रहने दीजिये; आगे उसका वारण हो जायेगा। आप ने अन्य दोष 'विंशकः सङ्घः' में स्वार्थ में प्रत्ययविधान कहा था, उसे दूर किये देता हूँ। वहाँ स्वार्थ में प्रत्यय की आपत्ति नहीं होगी। वह इस तरह कि सङ्घ ही संहनन है। दशद्द्वय का सङ्घ अर्थ में प्रवृत्त विंशति पद परिमाणी गवादिसङ्घ अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न करा देगा। अर्थात् द्रव्यसङ्घ संहनन अर्थ में स्वप्रकृतिक प्रत्ययघटित अन्य वृत्ति को प्राप्त करा देगा। इस तरह 'विंशतिः परिमाणमस्य गोसङ्घस्येति विंशकः सङ्घः' में सङ्घ अर्थ में प्रत्यय उपपन्न हो जायेगा। स्वार्थ में प्रत्ययविधान की आपत्ति नहीं होगी। यहाँ संख्यासंहनन में शक्त विंशति आदि पद द्रव्यसंहनन में ही शक्त हो जायेंगे। 'द्रव्यसंहनने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्त्तिष्यते' में 'परार्थाभिधानं वृत्तिः' विवक्षित है। वस्तुतः विंशतिपद कभी भी गोसङ्घ अर्थ में शक्त नहीं है। यदि 'गवां विंशतिः' ऐसा वाक्य बोलेंगे तो **गुणिना**=द्रव्य से गुण को विशेषित माना जायेगा।

अब वचनपरिहार करते हैं—**वचनपरिहार इति**। **उभयोः**= समुदायाभिधानपक्ष अथ वा द्रव्याभिधानपक्ष चाहे जो भी मानिये, दोनों ही पक्षों में इस तरह वचन परिहार करेंगे—

यदि समुदायाभिधानपक्ष मानेंगे तो समुदाय के एकत्व होने से स्वभावतः एकवचन ही होगा। इस तरह समुदायाभिधानपक्ष में वचनदोष निरस्त हो गया। यदि विंशति आदि गुणवचन=द्रव्य में विशेषण होंगे तो इसका समानधर्मा अन्य गुणवचन होना चाहिये। अन्य गुणवचन द्रव्य के लिङ्ग और संख्या का अनुवर्त्तन करते हैं। जैसे—'शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लः कम्बलः, शुक्लौ कम्बलौ, शुक्लाः कम्बलाः' में विशेष्य द्रव्यवचन का लिङ्ग और संख्या का विशेषण गुणवचन शुक्ल पद अनुगमन कर रहा है। यहाँ गुण द्रव्याश्रय है; अतः द्रव्य का जो लिङ्ग और संख्या, वही गुण का भी है। परन्तु द्रव्यवचन में विशेषण होने पर भी विंशति आदि पद द्रव्य के लिङ्ग और वचन का अनुगमन नहीं करते हैं। शत प्रातिपदिक से पूर्व सभी विंशति आदि प्रातिपदिक एकवचनान्त तथा नित्य स्त्रीलिङ्ग हैं, एवं शत प्रातिपदिक नित्य नपुंसक तथा एकवचनान्त है। प्रचयविवक्षा होने पर एकशेष के द्वारा 'विंशती विंशतयः, शते शतानि' ऐसा द्विवचन एवं बहुवचन भी होता है। गुणवचन द्रव्य, लिङ्ग और संख्या का अनुगमन करें ही, ऐसी व्याप्ति नहीं है। कहीं-कहीं गुणवचन द्रव्य, लिङ्ग और संख्या का अनुवर्त्तन करते हैं तथा कहीं-कहीं नहीं भी करते हैं। जैसे—'शुक्लं वस्त्रं, शुक्ला शाटी, शुक्लौ कम्बलौ' आदि में गुणवचन शुक्लादि द्रव्य के लिङ्ग और संख्या का अनुगमन करते हैं परन्तु 'गावो धनम्, पुत्रा अपत्यम्, इन्द्राग्नी देवता, विश्वेदेवा देवता, यावन्तस्ते तां वाशितामनुयन्ति सर्वे ते दक्षिणा समृद्ध्या' इति–यहाँ पर गुणवचन द्रव्य के लिङ्ग और संख्या का अनुवर्त्तन नहीं कर रहे हैं। यहाँ गो आदि द्रव्यों में धन आदि गुणवचन हैं। धनादिसाकाङ्क्षभेदक तथा आनयन आदि क्रिया में परतन्त्र होने से गुणवचन हैं। जैसे—'शुक्लम्' ऐसा कहने से 'किं शुक्लम्' ऐसी द्रव्य की आकाङ्क्षा होती है। 'शुक्लं वस्त्रम्' में शुक्ल पद द्रव्य का भेदक है। 'शुक्लमानय' ऐसा कहने से आनयनक्रिया में द्रव्यानयन के विना शुक्ल का आनयन असम्भव है, अतः द्रव्यपारतन्त्र्य होने से शुक्ल गुण है। जैसे 'धनम्' ऐसा कहने से 'किं तद्' ऐसी आकाङ्क्षा होती है। 'गावो धनम्' ऐसा कहने से गो की प्रतीतिहेतुता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से धन पद भेदक भी है; एवं 'धनमानय' ऐसा कहने से गवादिद्रव्यानयनक्रिया में पारतन्त्र्य होने से धन गुण है। उपर्युक्त वाक्यों में द्रव्यवचन गवादि का लिङ्ग और संख्या का गुणवचन धन आदि अनुगमन नहीं कर रहे हैं।

अथात्राऽननुवृत्तौ हेतुः शक्यो वक्तुम्? बाढं शक्यो वक्तुम्। कामं तर्ह्युच्यताम्।

प्रश्नभाष्य—**अथाऽत्रेति**। क्या आप **अत्र**='गावो धनम्' इत्यादि में द्रव्य का लिङ्ग और संख्या का गुणवचन के द्वारा अनुगमन नहीं करने का कारण बता सकते हैं?

उत्तरभाष्य—**बाढमिति**। अवश्य बता सकता हूँ। यहाँ प्राश्निक आचार्य ही कहते हैं—**काममिति**। यदि बता सकते हैं तो बताइये।

इह कदाचिद् गुणः प्राधान्येन विवक्षितो भवति। यद्यथा-पञ्चोडुपशतानि तीर्णानि, पञ्चफलकशतानि तीर्णानि पञ्चवध्रीशतानि तीर्णानि, अश्वैर्युद्धमसिभिर्युद्धमिति। न चाऽसयो युध्यन्ते। असिगुणाः पुरुषा युध्यन्ते। गुणस्तु खलु प्राधान्येन विवक्षितो भवति।

उत्तरपक्षी आचार्य 'गावो धनम्' इत्यादि में प्रधान के लिङ्ग और संख्या का गुण द्वारा अनुगमन नहीं किये जाने का कारण बताते हैं—**इहेति**। कभी-कभी वाक्य में गुण ही प्राधान्येन विवक्षित होता है। जैसे—'पञ्चोडुपशतानि तीर्णानि, पञ्चफलकशतानि तीर्णानि, पञ्चवध्रीशतानि तीर्णानि'। यहाँ 'तीर्णानि' पद में निष्ठासंज्ञक क्त प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में। क्तार्थ कर्त्ता में संज्ञालक्षण गुण का ही अन्वय होने से तरणक्रिया में गुणवचन संख्या का प्राधान्य है। परन्तु तत्त्वतः संख्येय उडुपों का ही तरण में कर्त्तृत्व है। अथ वा करण उडुप आदि की कर्त्तृत्वविवक्षा में ही ये उदाहरण हैं। एवम् 'अश्वैर्युद्धम्, असिभिर्युद्धम्' में 'कर्त्तृकरणयोस्तृतीया' २.३.१८ से क्रमशः अश्व पद से कर्त्ता अर्थ में तथा असि पद से करण अर्थ में तृतीया है। युद्धक्रिया में अश्व अधिकरण तथा असि करण है; अतः उपकारी होने से ये दोनों यद्यपि गुण={अप्रधान} हैं, तथापि प्रकृत में प्रहारक्रिया में प्राधान्येन विवक्षित हैं।

इह तावद् गावो धनमिति, धिनोतेर्धनम्। एको गुणः स च प्राधान्येन विवक्षितः—पुत्रा अपत्यमिति। अपतनादपत्यम्। एको गुणः स प्राधान्येन विवक्षितः।

'गावो धनम्' इत्यादि में धन आदि का गुणवचनत्व बताते हैं—**इह ताव-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिति। धिनोति=प्रीणयति यत्तद्धनम्' इस व्युत्पत्ति से प्रीतिहेतुता धन में है। 'गावो धनम्' में प्रीतिहेतुता होने से समुदाय में धनत्व है, एक-एक गोपिण्ड में नहीं है; अतः एकवचनान्त धन पद का बहुवचनान्त गो पद से विशेषति किया जा रहा है। इसका भाव इस प्रकार है-जिस धर्म्म का धर्म्मी के साथ अभेदप्रतिपादन किया जाता है, एवं धर्म यदि प्रत्येक धर्म्मी में परिसमाप्त है, तो उसे भी धर्मी की तरह ही मान कर द्विवचन, बहुवचन होते हैं। जैसे 'शुक्लौ घटौ, नीला घटाः'। परन्तु प्रकृत में 'गावो धनम्' में धर्म='धनम्' प्रत्येक में परिसमाप्त नहीं है, अपि तु समुदाय में परिसमाप्त है; अतः धर्मी से अभिन्न होने से धनपदोत्तर बहुवचन का अभाव है। यहाँ आश्रित संख्या-विशेष गोपिण्ड धन को विशेषित करते हुए समुदाय की प्रीतिहेतुता का बोध करा रहे हैं। यदि 'गौर्धनम्' ऐसा एकवचनान्त कहा जाये तो विवक्षित समुदाय में पर्याप्त प्रीतिहेतुता का लाभ नहीं हो पा रहा है; अतः गो पद भी 'धनम्' की संख्या का अनुवर्त्तन नहीं कर पा रहा है। 'पुत्रा अपत्यम्' में अपतन-हेतुता समुदाय में है, प्रत्येक में नहीं। लिङ्ग के लोकाश्रयी होने से अपत्य पद क्लीब में प्रयुक्त है। यदि प्रत्येक में अपतनहेतुता विवक्षित होगी तो 'पुत्रा अपत्यानि' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग भी होगा। 'गावो धनम्, पुत्रा अपत्यम्' इत्यादि में सर्वत्र एक ही गुण समुदाय में पर्याप्त है; अतः सर्वत्र गुणवचन से एकवचन तथा द्रव्यवचन से बहुवचन श्रुत है।

इन्द्राग्नी देवता विश्वेदेवा देवतेति। दिवेरैश्वर्यकर्मणो देवस्तस्मात् स्वार्थे तल्। एको गुणः स प्राधान्येन विवक्षितः। यावन्तस्ते तां वाशितामनुयन्ति सर्वे ते दक्षिणा समुद्धया इति। दक्षेर्वृद्धिकर्मणो दक्षिणा। एको गुणः स प्राधान्येन विवक्षितः तस्यैकत्वादेकवचनं भविष्यति।

एवम् 'इन्द्राग्नी देवता, विश्वेदेवा देवता' में ऐश्वर्यार्थक दिवु धा.पा.११०७ धातु से 'दीव्यतीति देवः' पचाद्यच् ३.१.१३४, द्योतनशीलार्थक देव शब्द निष्पन्न है। 'देवात्तल्' ५.४.२७ से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होकर तलन्त देवता शब्द गुणवचन है। 'इन्द्राग्नी देवता' में द्रव्यवचन द्विवचनान्त तथा गुणवचन एकवचनान्त है। यहाँ देवतात्व समुदाय में पर्यवसित है। यदि प्रत्येक में पर्यवसित होगा तो 'इन्द्राग्नी देवते, विश्वेदेवा देवताः' ऐसा द्विवचनान्त तथा बहुवचनान्त भी देवता पद होगा। एवं वृद्ध्यर्थक दक्ष धा.पा.६०८ धातु से दक्षिणा पद है। 'यावन्तस्ते तां वाशितामनुयन्ति सर्वे ते दक्षिणा समुद्धया' में द्रव्यवचन 'सर्वे ते' के बहु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनान्त होने पर भी गुणवचन 'दक्षिणा' एकवचन में ही है। यहाँ भी समुदाय का दक्षिणात्व विवक्षित है। यदि प्रत्येक का दक्षिणात्व की विवक्षा करेंगे तो 'सर्वे ते दक्षिणाः' ऐसा बहुवचनान्तप्रयोग भी होगा।

विंशत्यादिषु चाऽप्येको गुणः स प्राधान्येन विवक्षितस्तस्यैकत्वादेकवचनं भविष्यति। अयं तर्हि विंशत्यादिषु भाववचनेषु दोषः— 'गोविंशतिरानीयता'मिति भावानयने चोदिते द्रव्यानयनं न प्राप्नोति।

उसी तरह 'विंशति' आदि में एक ही गुणवचन है। उससे विंशतिसंख्या समुदितद्रव्यसमवायिनी होगी। शुक्ल आदि की तरह प्रत्येक में परिसमाप्त नहीं होगी; अतः संख्येयगत लिङ्ग और संख्या का भजन नहीं करेगा। प्राधान्येन गुण की विवक्षा होने पर अन्य आचार्य दोष देते हैं—**अयं तर्हीति**। विंशति आदि के भाववचन सिद्ध होने पर 'गोविंशतिरानीयताम्' ऐसा कहने से गुणवचन विंशति आदि का ही आनयन प्राप्त होगा; जब कि यहाँ द्रव्यानयन इष्ट है; अतः इष्ट का असिद्धिरूप दोष स्पष्ट है।

नैष दोषः। इदं तावदयं प्रष्टव्यः—अथेह गौरनुबन्ध्योऽजोऽग्नीषोमीय इति, कथमाकृतौ चोदितायां द्रव्ये आरम्भणालम्भनप्रोक्षणविशसंनादीनि क्रियन्त इति? असम्भवात्। आकृतावारम्भणादीनां सम्भवो नास्तीति कृत्वाऽऽकृतिसहचरिते द्रव्ये आरम्भणादीनि क्रियन्ते। इदमप्येवञ्जातीयकमेव, असम्भवाद् भावानयनस्य द्रव्यानयनं भविष्यति। अथ वाऽव्यतिरेकात्।।

इतर आचार्य इस दोष का मार्जन करते हैं—**नैष दोष इति**। 'गौरनुबन्ध्योऽजोऽग्नीषोमीयः' में आरम्भण, आलम्भन, प्रोक्षण और विशसंन **आकृतौ**=गोत्व आदि जाति को कहा गया है; परन्तु यहाँ गोत्व आदि जाति को आरम्भण आदि नहीं करके गोत्वावच्छिन्न द्रव्य में ही किया जाता है। यहाँ पूछना चाहिये— जब जाति को आरम्भण आदि कहा जा रहा है, तब द्रव्य को क्यों होता है? तो इसका उत्तर दिया जायेगा-'असम्भवात्'। आरम्भण, आलम्भन, प्रोक्षण और विशसंन आकृति=जाति में असम्भव हैं; अतः जात्यवच्छिन्न द्रव्य में होते हैं। वैसे प्रकृत में भी 'गोविंशतिरानीयताम्' ऐसा कहने पर भाव का आनयन प्रेरित होगा। भाव का आनयन असम्भव है; अतः द्रव्य का ही आनयन होगा। इसी को इतरपक्ष में भी समाधान करते हैं—**अथ वेति**। जाति और जात्यवच्छिन्न व्यक्ति तथा गुण और गुणी का तात्त्विक भेद नहीं है; अतः उन-उन आरम्भण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि एवम् आनयन आदि क्रियाओं में द्रव्य को ही धर्म कहा जा रहा है। {पङ्क्तिविंशति-}।

छेदादिभ्यो नित्यम् ५.१.६४
पन्थो ण नित्यम् ५.१.७६

* छेदादिपथिभ्यो विग्रहदर्शनान्नित्यग्रहणाऽनर्थक्यम् * **छेदादिपथिभ्यो नित्यग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'विग्रहदर्शनात्'। विग्रहो दृश्यते— छेदमर्हति पन्थानं गच्छतीति। विकारार्थं तर्हीदं नित्यग्रहणं कर्त्तव्यं विकारेण विग्रहो मा भूदिति 'विराग विरङ्गञ्च' 'पन्थो ण नित्य'-मिति** * विकारार्थमिति चेदकङ्ङादिभिस्तुल्यम् * **विकारार्थमिति चेदकङ्ङादिभिस्तुल्यमेतद्। यथाऽकङ्ङादिभिर्विकारैर्विग्रहो न भवत्येवमाभ्यामपि न भविष्यति।**

यहाँ 'तदर्हति' ५.१.६३ सूत्र अनुवृत्त है। 'नित्यम्' यह क्रियाविशेषण है।

सूत्रार्थ—'तन्नित्यमर्हति' इस अर्थ में द्वितीयान्त छेदादि से यथाविहित प्रत्यय हों'। यहाँ नित्य पद से पौनःपुन्य वाच्य है। छेदं नित्यमर्हतीति च्छैदिको वेतसः।

जैसे 'एकगोपूर्वाट्ठञ्नित्यम्' ५.२.११८ सूत्र में नित्यग्रहण कर आचार्य ने मतुप् प्रत्यय की निवृत्ति की है, वैसे प्रकृत में अन्य प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने से प्रत्ययान्तर की निवृत्ति के लिए मतुब्ग्रहण नहीं हो सकता है। प्रकृत में 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणट्ठक्' ५.१.१९ से मात्र ठक् प्रत्यय ही विधेय है। यहाँ इतर प्रत्यय प्राप्त नहीं है। 'पन्थानं गच्छतीति पान्थः' में पथिन् शब्द से ण प्रत्यय तथा प्रकृति को पन्थ आदेश है। एवम् उक्त विग्रह में ही 'पथः ष्कन्' ५.१.७५ से विधानसामर्थ्य से ष्कन् प्रत्यय होता है। यहाँ भी इतर प्रत्ययों का अभाव ही है। इस तरह नित्यग्रहण का प्रत्ययान्तर की निवृत्ति फल नहीं हो सकता है। जैसे 'त्रेर्मम्नित्यम्' ४.४.२० सूत्र में नित्यग्रहण से नियम किया जाता है कि मप् प्रत्यय से इतर त्र्यन्त का प्रयोग नहीं किया जाये, वैसे प्रकृत में वाक्यप्रयोग भी इष्ट होने से नित्यग्रहण से वाक्यप्रयोग का निवारण भी फल नहीं है। 'नित्यं छेदमर्हति' इस अर्थ के असम्भव होने से नित्यग्रहण प्रत्ययार्थ में भी विशेषण नहीं हो सकता है। कोई भी पदार्थ नित्य छेद के योग्य नहीं है। जो छिन्न वेतस आदि अर्थ हैं, उनका भी कालान्तर में ही छेदन देखा जाता है, नित्य नहीं। यद्यपि 'नित्यं पन्थानं गच्छति' यह अर्थ सम्भव है, तथापि 'कदाचिद् गच्छति' ऐसा भी प्रयोग होने से 'नित्यं पन्थानं गच्छति' अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पान्थ शब्द का प्रयोग नहीं देखा जाता है।

शिष्टप्रयोग में ही वाक्य देखे जाने से 'नित्यं क्रीडाजीविकयोः' २.२.१७ की तरह वाक्यनिवृत्ति भी नित्यग्रहण का फल नहीं है, ऐसा मान कर भाष्यकार नित्यग्रहण का खण्डन करते हैं—**छेदादिपथिभ्य इति**। 'छेदमर्हति, पन्थानं गच्छति' ऐसा विग्रहवाक्य भी देखा जाता है, तथा 'छैदिकः, पान्थः' ऐसा प्रत्यान्त प्रयोग भी देखा जाता है; अतः व्यावर्त्य नहीं होने से प्रकृत में नित्यग्रहण व्यर्थ है।

अन्य आचार्य नित्यग्रहण का सार्थक्योपपादन करते हैं—**विकारार्थमिति**। आचार्य 'छेदादिभ्यो नित्यम्' ५.१.६४ सूत्र पर 'विराग विरङ्ग्च' ग.सू.६७ पढते हैं तथा 'पन्थो ण नित्यम्' ५.१.७६ सूत्र पढते हैं। यहाँ पूर्व गणसूत्र में विरागशब्द को विरङ्गादेश तथा उत्तरसूत्र में पथिन् को पन्थ आदेश है। विरङ्गादेश नित्य ठक्प्रत्ययविषय तथा पन्थादेश नित्य णप्रत्यय विषय ही हों, इनसे वाक्य न हो, इसके लिए नित्यग्रहण किया गया है। अन्यथा उभयविकारों की सर्वविषयसाधुता की भी आशङ्का हो सकती थी। एवं यहाँ प्रत्ययविधान अन्वाचीयमान समझा जाता है।

अब इतर आचार्य 'विकारार्थं तर्हीदं नित्यग्रहणं कर्त्तव्यम्' पक्ष का खण्डन करते हैं—**विकारार्थमितीति**। यदि नित्यग्रहण को विकारार्थक मानेंगे तो यह अकङ् आदि के तुल्य है। जैसे 'सुधातुरकङ् च' ४.१.९७, 'कल्याणादीनामिनङ्' ४.१.१२६ में प्रत्ययसन्नियोग से विधीयमान आदेशों का प्रत्यय के अभाव में आदेशप्रसङ्ग नहीं होता है, वैसे प्रकृत में प्रत्ययसन्नियोग से विधीयमान विरङ्गादेश और पन्थादेश प्रत्यय के अभाव में नहीं हो सकेगा; अतः विकारार्थ भी नित्यग्रहण नहीं कर सकते हैं।

किं पुनरिहाऽकर्त्तव्यं—नित्यग्रहणं क्रियते, आहो स्विदन्यत्र कर्त्तव्यं न क्रियते? इहाऽकर्त्तव्यं क्रियते। एष एव न्यायो यदुत—'सन्नियोगशिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यपायः। यद्यथा—देवदत्त-यज्ञदत्ताभ्यामिदं कर्त्तव्यमिति देवदत्तापाये यज्ञदत्तोऽपि न करोति। {छेदादिभ्यो नित्यम्}।

अन्य आचार्य—**किं पुनरिति**। क्या आप 'अकङ्ङादिभिस्तुल्यम्' इस वाक्य से 'सुधातुरकङ् च' ४.१.९७ इत्यादि में नित्यग्रहण करना चाहिये' ऐसा बता रहे हैं, अथ वा जैसे 'सुधातुरकङ् च' ४.१.९७ इत्यादि में नित्यपद का ग्रहण नहीं किया गया है, वैसे प्रकृत दोनों सूत्रों में भी नित्यग्रहण नहीं करना चाहिये,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह बताना चाहते हैं?

उत्तरभाष्य—**इहाऽकर्त्तव्यमिति**। प्रकृत दोनों सूत्रों में नित्यग्रहण नहीं करना चाहिये था, परन्तु आचार्य उसे कर रहे हैं, यही बताया जा रहा है। यहाँ यही पक्ष उचित भी है। 'विराग विरङ्गञ्च' ग.सू. ६७ तथा 'पन्थो ण नित्यम्' ५.१.७६ में प्रत्ययसन्नियोग से प्रकृति को आदेश कहा गया है। यदि यहाँ प्रत्यय का अभाव होगा तो प्रकृति को विकारादेश भी नहीं हो सकेगा। जैसे 'श्रुवः शृ च- ३.१.७४ सूत्र में प्रत्ययसन्नियोग से प्रकृति श्रु को शृ आदेश कहा गया है, परन्तु जब प्रत्यय नहीं होगा तब प्रकृति को शृ आदेश भी नहीं होगा। वैसे प्रकृत में ठक् प्रत्यय के सन्नियोग से विराग को विरङ्गादेश तथा ण प्रत्यय के सन्नियोग से पथिन् को पन्थादेश है। जब ठक् और ण प्रत्यय नहीं होंगे तब प्रकृति को उक्त आदेश भी नहीं हो सकेंगे। इस पक्ष में लोकसिद्धन्याय है—सन्नियोगशिष्टों में किसी भी एक का अभाव होने पर दोनों का अभाव हो जाता है। जैसे 'देवदत्त और यज्ञदत्त दोंनों मिल कर अमुक कार्य करें' ऐसा विधि करने पर यदि कोई भी एक नष्ट हो जाता है तो दूसरे का भी अपाय=कार्य में अप्रवृत्ति ही होती है। {**छेदा-**}।

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ५.१.७१

* यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम् * **यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। यज्ञकर्मार्हतीति यज्ञियो देशः। ऋत्विक्कर्मार्हति—आर्त्विजिनं ब्राह्मणकुलमिति। {यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ}।**

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक यज्ञ और ऋत्विक् पद से अर्हति अर्थ में क्रमशः घ और खञ् प्रत्यय हो'। यज्ञमर्हतीति यज्ञियः। ऋत्विजमर्हतीति आर्त्विजीनो यजमानः।

वार्तिक—**तत्कर्मार्हतीति**। 'यज्ञकर्मार्हति' अर्थ में यज्ञ पद से तथा 'ऋत्विक्कर्मार्हति' अर्थ में ऋत्विक् पद से क्रमशः घ और खञ् प्रत्यय कहना चाहिये। 'यज्ञकर्मार्हति यज्ञियो देशः। 'ऋत्विक्कर्मार्हति आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम्'। {**यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ**}।

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ५.१.७२

* तद्वर्त्तयतीत्यनिर्द्देशस्तत्राऽदर्शनात् * **तद्वर्त्तयतीत्यनिर्द्देशः। अगमाको निर्द्देशोऽनिर्द्देशः। पारायणं को वर्त्तयति—यः परस्य करोति। तुरायणं को वर्त्तयति यश्च पुरोडाशान्निर्वर्त्तयति। 'तत्राऽदर्शनात्'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न च तत्र प्रत्ययो दृश्यते * इङ्यज्योश्च दर्शनात् * **इङ्यज्योश्च प्रत्ययो दृश्यते। यः पारायणमधीते स पारायणिक इत्युच्यते। यस्तुरायणेन यजते स तौरायणिक इत्युच्यते।**

'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ का अपवाद 'आर्हादगोपुच्छसंख्या- परिमाणाट्ठक्' ५.१.१९ आदि से ठक् आदि का आर्हीय अर्थों में निरूपण है। ठक् आदि अपवाद प्रत्यय प्रकृत सूत्र से निवृत्त हो गये; अतः यहाँ से सामान्यशास्त्र 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ से विहित ठञ् प्रत्यय ही अधिकृत होंगे। 'पारायणतुरायणचान्द्रायणम्' यह समाहारद्वन्द्व द्वितीयान्त है।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक पारायण, तुरायण और चान्द्रायण से वर्त्तयति अर्थ में ठञ् हो' पारायणं वेदाध्ययनं, तद्वर्त्तयति=आवर्त्तयतीति पारायणिकश्छात्रः। तुरायणो यज्ञविशेषस्तं वर्त्तवतीति तौरायणिको यजमानः। चान्द्रायणं कृच्छ्रविशेषस्तं वर्त्तयतीति चान्द्रायणिकः।

आक्षेपभाष्य—**तद्वर्त्तयतीति**। 'तद्वर्त्तयति' यह अर्थनिर्देश है, जब कि यहाँ 'पारायणिकः' प्रयोग गुरु में तथा 'तौरायणिकः' प्रयोग ऋत्विक् में नहीं देखा जाता है। 'पारायणं वर्त्तयति' ऐसा कहने से **परस्य**=शिष्य का पारायण गुरु करता है; अतः 'पारायणिकोऽध्यापकः' ऐसा प्रयोग होना चाहिये। गुरु द्वारा उच्चरित वस्तुविशेष का शिष्य मात्र अनुवर्त्तन करता है, निष्पादन नहीं। वस्तुविशेष का उच्चारण अध्यापक के ही अधीन है; अतः 'पारायणं वर्त्तयति' ऐसा विग्रह में अध्यापक अर्थ वाच्य होने पर प्रत्यय प्राप्त हो रहा है, जब कि इस अर्थ में प्रत्यय इष्ट नहीं है; अपितु अध्येता छात्र वाच्य होने पर ही प्रत्यय इष्ट है। इसी तरह यज्ञविशेष तुरायण को क्रियाओं सहित ऋत्विक् ही निष्पादन करता है, मूर्ख होने से यजमान चुप ही बैठा रहता है; अतः ऋत्विक् अर्थ वाच्य होने पर 'तौरायणिकः' प्रयोग प्राप्त हो रहा है। परन्तु गुरु अध्येता अर्थ में 'पारायणिकः' तथा ऋत्विक् अर्थ में 'तौरायणिकः' का **तत्राऽदर्शनात्**= प्रयोग नहीं है। यहाँ इन अर्थों में प्रत्यय का प्रयोग नहीं देखा जाता है। यहाँ जिन अर्थों में प्रत्यय देखा जाता है, उसका प्रतिपादन करते हैं—**इङ्यज्योश्चेति**। 'पारायणमधीते' इस वाक्य में इङ् अध्ययने धा.पा.१०७१ धातु से कर्त्ता अर्थ में लट् है; अतः जो वेदाध्ययन का कर्त्ता है वह पारायणिक कहा जाता है। एवं जो '**तुरायणेन**=संवत्सरसाध्य यज्ञविशेषकरण से यजन करता है, वह यजमान तौरायणिक कहा जाता है। इस तरह द्वितीयान्त प्रातिपदिक पारायण से प्रत्यय प्राप्त होने पर भी तृतीयान्त प्रातिपदिक तुरायण से अप्राप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही होगा; इस तरह अव्याप्ति भी हो रही है।

*** न वोभयोर्निर्वर्त्तकत्वात् * न वैष दोषः। किं कारणम्? उभयोर्निर्वर्त्तकत्वात्। यश्चैवाऽधीते यश्च परस्य करोत्युभौ तौ वर्त्तयतः। यश्च यजते यश्च पुरोडाशान्निर्वर्त्तयत्युभौ तौ वर्त्तयतः। उभयत्र कस्मान्न भवति? अनभिधानात्। {पारायणतुराण}।**

समाधानभाष्य—**न वेति**। जो छात्र पारायण करता है तथा जो ऋत्विक् शिष्य के लिए पारायण निष्पन्न करता है, वे दोनों ही पारायणक्रिया के कर्त्ता हैं। दोनों से पारायणक्रिया निष्पन्न हो रही है; अतः दोनों में कर्तृत्व है। इस तरह अध्येता छात्र अर्थ वाच्य होने पर द्वितीयान्त प्रातिपदिक पारायण से ठञ् होगा, अध्येता गुरु अर्थ वाच्य होने पर नहीं। एवं जो यजमान देवता को उद्देश्य कर स्वीय द्रव्य का परित्याग करता है, तुरायणनिर्वर्त्तन में उसका कर्तृत्व है; अतः सूत्र को यथान्यास ही रहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**उभयत्रेति**। यदि अध्ययननिष्पत्ति में गुरु एवं शिष्य दोनों का कर्तृत्व है, तथा यजन में यजमान और ऋत्विक् दोनों का कर्तृत्व है, तो दोनों अर्थों में ठञ् क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अनभिधानादिति**। अनभिधान होने से अध्यापक और याजक अर्थ में प्रत्यय नहीं होगा। {**पारायणतुरायण-**}।

योजनं गच्छति ५.१.७४

*** योजनं गच्छतीति क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् * योजनं गच्छतीति क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। क्रोशशतं गच्छतीति क्रौशशतिकः। योजनशतं गच्छतीति यौजनशतिक इति।**

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक योजनशब्द से गच्छति अर्थ में ठञ् हो' योजनं गच्छति यौजनिकः।

वार्तिक—**क्रोशशतेति**। द्वितीयान्त प्रातिपदिक क्रोशशत और योजनशत से भी ठञ् कहना चाहिये। क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः। योजनशतं गच्छति यौजनशतिकः।

*** ततोऽभिगमनमर्हतीति च * ततोऽभिगमनम् अर्हतीति च क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। क्रोशशतादभिगमनमर्हति क्रौशशतिको भिक्षुः। योजनशताद् अभिगमनमर्हति यौजनशतिको गुरुः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततोऽभिगमनमिति। ततः=पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक क्रोशशत और योजनशत से 'अभिगमनमर्हति' अर्थ में ठञ् कहना चाहिये। क्रोशशतादभिगमनमर्हति क्रौशशतिको भिक्षुः। योजनशतादभिगमनमर्हति यौजनशतिको गुरुः।{**योजनं-**}।

उत्तरपथेनाऽऽहृतं च ५.१.७७

* आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदाद् उपसंख्यानम् * **आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तार- पूर्वपदादुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्**। वारि—**वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः। वारिपथेनाऽऽहृतं वारिपथिकम्**। वारि। जङ्गल—**जङ्गलपथेन गच्छति जाङ्गलपथिकः। जङ्गलपथेनाऽऽहृतं जाङ्गलपथिकम्**। जङ्गल। स्थल—**स्थलपथेन गच्छति स्थालपथिकः। स्थलपथेनाऽऽहृतं स्थालपथिकम्**। स्थल। कान्तार—**कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः। कान्तारपथेनाऽऽहृतं कान्तारपथिकम्**।

यहाँ 'च' पद से 'गच्छति' अर्थ का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक उत्तरथ से 'आहृतम्' और 'गच्छति' अर्थ वाच्य होने पर ठञ् हो'। उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः। उत्तरपथेनाऽऽहृतम् औत्तरपथिकम्।

वार्तिक—**आहृतप्रकरण इति**। आहृतप्रकरण में वारि, जङ्गल, स्थल और कान्तर पूर्वपद रहते ठञ् कहना चाहिये। पूर्वपद और उत्तरपद समास में रूढ है; अतः यह समास में हीं प्रवृत्त होगा। 'वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः। वारिपथेनाऽऽहृतं वारिपथिकम्। सर्वत्र मूल में विग्रह स्पष्ट है।

* अजपथशङ्कुपथाभ्यां च * **अजपथशङ्कुपथाभ्यां चेति वक्तव्यम्। अजपथेन गच्छति आजपथिकः। अजपथेनाऽऽहृतमाजपथिकम्। शङ्कुपथेन गच्छति शाङ्कुपथिकः। शङ्कुपथेनाऽऽहृतं शाङ्कुपथिकम्।**

अजपथेति। अजपथ और शङ्कुपथ तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'आहृतम्' और 'गच्छति' अर्थ में ठञ् कहना चाहिये। अजपथेन गच्छति आजपथिकः। अजपथेनाऽऽहृतम् आजपथिकम्। इसी तरह 'शाङ्कुपथिकः, शाङ्कुपथिकम्' में भी व्युत्पत्ति करनी चाहिये।

* मधुकमरिचयोरण्स्थलात् * **मधुकमरिचयोरण् स्थलाद्वक्तव्यः। स्थालपथं मधुकम्। स्थालपथं मरिचम्**। {उत्तरपथेनाहृतञ्च}।

मधुकमरीचयोरिति। मधुक और मरिच अर्थ वाच्य होने पर स्थल पूर्वपद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से अण् कहना चाहिये। स्थलपथेनाऽऽहृतं स्थालपथं मधुकम्। इसी तरह 'स्थालपथं मरिचम्'। यहाँ मुख्य गमन के असम्भव होने से आहृत अर्थ में प्रत्यय होगा। परन्तु अन्य अधिष्ठित का रथादिवत् गौण गमन सम्भव होने से गमन में भी प्रत्यय होगा। {उत्तरपथेना-}।

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ५.१.८०

* अधीष्टभृतयोर्द्वितीयानिर्देशोऽनर्थकस्तत्राऽदर्शनात् * **अधीष्टभृतयोर्द्वितीयानिर्देशोऽनर्थकः। किं कारणम्? 'तत्राऽदर्शनात्'। न ह्यसौ मासमध्येष्यते। किं तर्हि? मुहूर्त्तम् असावधीष्टो मासं तत्कर्म करोति** * सिद्धं तु चतुर्थीनिर्देशात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'चतुर्थीनिर्देशात्'। चतुर्थीनिर्देशः कर्त्तव्यः—तस्मायधीष्ट इति। स तर्हि चतुर्थीनिर्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति, मासार्थो मुहूर्तो मासः।** {तमधीष्टो भृतो}।

'अधीष्टः, भृतः, भूतः' में क्त प्रत्यय तथा 'भावी' में णिनि प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में है। अधीष्टः=सत्कार कर व्यापार में लगाया गया, भृतः=वेतन से खरीदा गया, भूतः=स्वसत्ता से व्याप्त काल, भावी=स्वसत्ता से व्याप्यमान अनागत काल।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक से अधीष्ट आदि अर्थों में ठञ् हो'। मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः। मासं भृतो मासिकः कर्म्मकरः। मासं भृतो मासिको व्याधिः। मासं भावी मासिको व्याधिः। यहाँ सर्वत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंख्योगे' २.३.५ से द्वितीया है।

आक्षेपभाष्य—**अधीष्टभृतयोरिति**। अधीष्ट और भृत अर्थ में द्वितीयानिर्देश व्यर्थ है। **असौ**=अध्यापक अथ वा भृत्य द्वारा किया गया व्यापार का मास से अत्यन्तसंयोग नहीं है, अपितु अवकाश के दिनों को छोड कर कार्यदिवस में कुछ समय ही कार्य करता है। जैसे दस बजे से चार बजे तक। दिन में कार्य किया तो रात्रि में कार्य नहीं करेगा, एवं सामूहिक अवकाश के दिनों में भी कार्य नहीं करेगा। अथ वा यदि रात्रिसेवा है तो दिन को कार्य करे, यह असम्भव है। दिन अथ वा रात्रि में कुछ समय कार्य करके ही मास भर कार्य कर लेता है। यावत् काल अध्येषण और भरण किया जा रहा है, उससे प्रत्यय इष्ट नहीं है। अध्येषणभरणव्यापार से व्याप्त काल से प्रत्यय इष्ट है, परन्तु यहाँ प्राप्त नहीं हो पा रहा है। एवम् अध्येषणभरण से मास व्याप्त भी नहीं है; अतः सूत्र में 'तम्' यह द्वितीयान्तनिर्देश व्यर्थ है। **सिद्धं त्विति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः द्वितीयानिर्देश नहीं करके चतुर्थीनिर्देश कर 'तस्मायधीष्टो भूतः' ऐसा पढना चाहिये। इस तरह 'मासाय अधीष्टः भूतो वा' ऐसा विग्रह कर चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से प्रत्यय होगा। 'मासव्यापिव्यापारार्थमधीष्टः, मासव्यापिव्यापारार्थं भूतः' ऐसा अर्थ होगा।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या उक्त चतुर्थीनिर्देश करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। लक्षण लक्ष्य में परतन्त्र होता है; अतः लक्ष्यानुरोध से 'तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम्' मान कर अध्येषण भरण से व्याप्त मुहूर्त आदि कालवाचक मास आदि शब्द ही प्रकृत में लिए जायेंगे। परन्तु भूत और भावी अर्थ में मुख्यार्थ में शक्त ही पद लिये जायेंगे। इस तरह मासार्थो मुहूर्तो मासस्तमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः। इसी तरह 'मासिकः कर्म्मकरः'। {तमधीष्टा-}।

अवयसि ठंश्च ५.१.८४

* अवयसि ठंश्चेत्यनन्तरस्याऽनुकर्षः * **अवयसि ठंश्चेत्यनन्तरस्याऽनुकर्षो द्रष्टव्यः। द्वेष्यं विजानीया'द्यबमंप्यनुवर्त्तत' इति। तदाऽऽचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टेऽवयसि ठंश्चेत्यनन्तरस्याऽनुकर्ष इति।** {अवयसि}।

यहाँ 'च'करण से 'षण्मासाण्ण्यच्च' ५.१.८३ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक षण्मास से भूत अवयस् वाच्य होने पर ण्यत् और ठन् हो'। षण्मासं भूतः षाण्मास्यः, षाण्मासिको वा व्याधिः। यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंख्योगे' २.३.५ से द्वितीया है।

भाष्यवचन—**अवयसीति**। यहाँ 'च' पद व्यवधानशून्य ण्यत् ५.१.८३ का ही अनुवर्त्तन करना चाहिये। कहीं-कहीं पर व्यवहित का भी अनुवर्त्तन देखा जाता है। जैसे 'द्वितीयाटौस्वेनः' २.४.३४ सूत्र में 'एतद्' २.४.३३ की तरह 'इदम्' २.४.३२ का भी अनुवर्त्तन होता है, वैसे प्रकृत में भी 'ण्यत्' ५.१.८३ की तरह 'यप्' ५.१.८२ की अनुवृत्ति की आशङ्का भी उठा सकता था। यहाँ किसी को भ्रम न हो, इसके लिए वार्तिककार आचार्य ने अनुग्रह कर अनन्तर का ही अनुवर्त्तन स्पष्ट कर दिया है। {अवयसि}।

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ५.१.९०

* षष्टिके संज्ञाग्रहणम् * **षष्टिके संज्ञाग्रहणं कर्त्तव्यम्। मुद्गा अपि हि षष्टिरात्रेण पच्यन्ते तत्र मा भूदिति** * उक्तं वा * **उक्तं वा।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमुक्तम्? * अनभिधानादिति * {षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते}।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक षष्टिरात्र पद से निपातन के द्वारा कन् प्रत्यय तथा रात्र पद का लोप हो'। 'षष्टिकाः पच्यन्ते' यह बहुवचननिर्देश अविवक्षित है। 'षष्टिरात्रेण पच्यन्ते इति षष्टिको धान्यविशेषः।

वार्तिककार—**षष्टिक इति**। मुद्ग भी साठ रात्रियों में परिपक्व होता है, उस अर्थ में षष्टिक निपातन हो, अपि तु षष्टिक पद का धान्यविशेष अर्थ में ही प्रयोग हो, इसके लिए सूत्र में संज्ञापद का निवेश करना चाहिये—'षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते संज्ञायाम्'।

भाष्यकार वार्तिक का खण्डन करते हैं—**उक्तं वेति**। मुद्ग अर्थ वाच्य होने पर 'षष्टिरात्रेण पच्यन्ते' ऐसा विग्रह कर अनभिधान होने से कन् और रात्र पद का लोप नहीं होगा। {**षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते**}।

तदस्य ब्रह्मचर्यम् ५.१.९४

* तदस्य ब्रह्मचर्यमिति महानाम्न्यादिभ्य उपसंख्यानम् * **'तदस्य ब्रह्मचर्य'मिति महानाम्न्यादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। महानाम्नीनां ब्रह्मचर्यं माहानाम्निकम्। आदित्यव्रतिकम्** * तच्चरतीति च * **तच्चरतीति च महानाम्न्यादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। महानाम्नीश्चरति माहानाम्निकः। आदित्यव्रतिकः। नैष युक्तो निर्देशस्तच्चरतीति। महानाम्न्यो नाम ऋचः, न च ताश्चर्यन्ते, व्रतं तासां चर्यते। नैष दोषः—साहचर्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति—महानाम्नीसहचरितं व्रतं महानाम्न्यो व्रतमिति।**

'कालाध्वनोरत्यन्तसंख्योगे' २.३.५ से अत्यन्तसंयोग में कालवाची 'तद्' पद से सूत्र में द्वितीयानिर्देश है।

सूत्रार्थ—'कालवाचि द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ब्रह्मचर्यम् अस्य अर्थ में ठञ् हो'। मासं ब्रह्मचर्यमस्येति मासिको ब्रह्मचारी।

अथवा 'प्रथमान्त कालवीचि प्रातिपदिक से 'अस्य' इस षष्ठ्यर्थ में षष्ठी-निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य होने पर ठञ् प्रत्यय हो'। मासो ब्रह्मचर्यमस्येति मासिको ब्रह्मचारी। वाक्य में मास प्रधान है; अतः उससे प्रथमा ही है, द्वितीया नहीं। यहाँ षष्ठीविषय में प्रथमा का विधान है। इस तरह शब्दकौस्तुभ एवं प्रदीपग्रन्थ में इस सूत्र की द्विविध व्याख्या है।

भाष्यकार—**तदस्येति**। 'तदस्य ब्रह्मचर्यम्' में षष्ठ्यन्त महानाम्नी आदि प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ प्रत्ययार्थ ब्रह्मचर्य है; अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामर्थ्यात् समर्थविभक्ति षष्ठी लभ्य है। महानाम्नीनां ब्रह्मचर्यं माहानाम्निकम्। नित्यस्त्रीलिङ्ग महानाम्नी पद ऋग्विशेष में शक्त है; अतः भासितपुंस्क नहीं होने से यहाँ 'भस्याऽढे तद्धिते' वा.१२०४ से पुंवद्भाव नहीं है। यदि यहाँ पुंवद्भाव होता तो माहानामिक रूप होता। आदित्यव्रतस्य ब्रह्मचर्यम् आदित्यव्रतिकम्। **तच्चरतीति चेति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'महानाम्न्यादिभ्यः' की अनुवृत्ति है; अतः वार्तिकार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक महानाम्नी आदि से चरति अर्थ में ठञ् हो'। महानाम्नीश्चरतीति माहानाम्निकः। आदित्यव्रतं चरतीति आदित्यव्रतिकः।

आक्षेपक आचार्य—**नैष युक्त इति**। महानाम्नीनामक ऋग्विशेष हैं; वे स्वयम् अनुष्ठित नहीं होती हैं, अपितु उन ऋग्विशेष का व्रत होता है।

समाधानभाष्य—**नैष दोष इति**। महानाम्नीसहचरित व्रत भी 'तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम्' से महानाम्नी होगा। यहाँ पर 'व्रतम्' के एकवचन तथा नपुंसक होने पर भी 'महानाम्न्यः' यह स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन में निर्देश है। इससे लिङ्ग और संख्या का परित्याग नहीं करता हुआ महानाम्नी पद है।

* अवान्तरदीक्षाभ्यो डिनिः * **अवान्तरदीक्षाभ्यो डिनिर्वक्तव्यः। अवान्तरदीक्षी तिलव्रती। देवव्रती** * अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च * **अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च वक्तव्यो डिनिश्च वक्तव्यः। अष्टाचत्वारिंशकः। अष्टाचत्वारिंशी** * चातुर्मास्यानां यलोपश्च * **चातुर्मास्यानां यलोपश्च वक्तव्यो ड्वुंश्च डिनिश्च वक्तव्यः। चातुर्मासकः। चातुर्मासी।**

अवान्तरदीक्षाभ्य इति। यहाँ बहुवचननिर्देश से इसे गणपाठ समझना चाहिये। द्वितीयान्त अवान्तरदीक्षा आदि प्रातिपदिक से डिनि प्रत्यय कहना चाहिये। 'अवान्तरदीक्षां चरतीति अवान्तरदीक्षी। तिलव्रतं चरतीति तिलव्रती। देवव्रतं चरतीति देवव्रती। यहाँ डित्करण से टिलोप है। यद्यपि यहाँ अल्लोप से भी इष्ट रूप सिद्ध था, तथापि 'अष्टाचत्वारिंशत्' में टिलोपार्थ डित्करण है। यह आगे वार्तिक में स्पष्ट है। **अष्टाचत्वारिंशत इति**। यहाँ 'च' पद से 'डिनिः' का अनुवर्त्तन है; अतः अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से ड्वुन् और डिनिः दोनों प्रत्यय होंगे। वृत्तिविषय में संख्येय वर्ष में अष्टाचत्वारिंशत् शब्द है। 'चतुर्षु वेदेषु अष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणि व्रतं चरतीति अष्टाचत्वारिंशकः' यह ड्वुन्पक्ष में रूप होगा। एवं डिनिपक्ष में 'अष्टाचत्वारिंशी' रूप होगा।

अथ किमिदं चातुर्मास्यानामिति? * चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे * **चतुर्मासाण्ण्यो वक्तव्यो यज्ञे तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे। चतुर्षु-चतुर्षु मासेषु भवानि चातुर्मास्यानि यज्ञाः** * संज्ञायामण् * **संज्ञायामण्**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्तव्यः। चतुर्षु मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी। {तदस्य ब्रह्म-चर्यम्}।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमिदमिति**। 'चातुर्मास्य' इस शब्द का क्या अर्थ है, एवं कैसी व्युत्पत्ति है।

उत्तरभाष्य—**चतुर्मासादिति**। 'चतुर्षु मासेषु भवानि चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि' यहाँ 'चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे' वा.५.१.६४ से ण्य प्रत्यय है। ण्य-प्रत्ययान्त द्वितीयान्त प्रातिपदिक चातुर्मास्य से ड्वुन् और डिनि प्रत्यय तथा यलोप कहना चाहिये। चातुर्मास्यं चरतीति चातुर्मासिकः, चातुर्मासी। **संज्ञायामिति**। संज्ञा गम्य होने पर चातुर्मास्य से अण् प्रत्यय तथा यलोप कहना चाहिये। 'चतुर्षु मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी'। यहाँ ण्य, ण्यान्त से अण् और यलोप, स्त्रीत्वविवक्षा में अण्लक्षण ङीप् ४.१.१५ है। **{तदस्य-}**।

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ५.१.६५

आख्याग्रहणं किमर्थम्? 'तस्य दक्षिणा यज्ञेभ्य' इतीत्युच्यमाने य एव संज्ञीभूतका यज्ञास्तत उत्पत्तिः स्याद्—आग्निष्टोमिक्यः, राजसूयिक्यः, वाजपेयिक्यः। यत्र वा यज्ञशब्दोऽस्ति—नावयज्ञिक्यः पाकयज्ञिक्यः। इह न स्यात्—पाञ्चौदनिक्यः दाशौदनिक्यः। आख्या-ग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति, ये च संज्ञीभूतका यज्ञा ये च न संज्ञीभूतका, यत्र च यज्ञशब्दोऽस्ति यत्र च नास्ति तदाख्या-मात्रात् सिद्धं भवति। {तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः}।

सूत्रार्थ—'यज्ञाख्य षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'तस्य दक्षिणा' अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो'। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा।

सूत्र में 'यज्ञेभ्यः' ऐसा बहुवचननिर्देश कर दीजिये। इससे स्वरूप का ग्रहण नहीं होकर यज्ञार्थाभिधायी से प्रत्यय लब्ध हो जायेगा; आख्याग्रहण क्यों है? इस आशय से पूर्वपक्ष है—**आख्याग्रहणमिति**।

उत्तरभाष्य—**तस्येति**। यदि आख्या पद का ग्रहण नहीं करके मात्र 'तस्य दक्षिणा यज्ञेभ्यः' ऐसा सूत्र पढते तो जो **संज्ञीभूतकाः**=सर्वलोकप्रसिद्ध यज्ञ हैं, उसी से प्रत्ययोत्पत्ति होती। जैसे—'अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिक्यः, राजसूयस्य दक्षिणा राजसूयिक्यः, वाजपेयस्य दक्षिणा वाजपेयिक्यः'। यहाँ सर्वत्र ठञ् एवं ठञ्लक्षण ङीप् ४.१.१५ है। अथवा 'यज्ञेभ्यः' इस बहुवचननिर्देश से यज्ञशब्दान्त से 'तस्य दक्षिणा' अर्थ में प्रत्यय होता। जैसे 'नवयज्ञस्य दक्षिणा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नावयज्ञिक्यः। पाकयज्ञस्य दक्षिणाः पाकयज्ञिक्यः। पञ्चौदनस्य दक्षिणाः पाञ्चौदनिक्यः, दशौदनस्य दक्षिणा दाशौदनिक्यः' में संज्ञीभूत नहीं होने तथा यज्ञशब्दान्त नहीं होने से प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस तरह आख्यापदरहित 'यज्ञेभ्यः' इस बहुवचननिर्देश में अव्याप्ति हो रही है। आख्याग्रहण करने पर कोई दोष नहीं होता है। आख्याग्रहण करने से जो **संज्ञीभूतकाः**=लोकप्रसिद्ध अग्निष्टोमादि तथा '**न संज्ञीभूतकाः**'= लोक में प्रसिद्धि को अप्राप्त पञ्चौदन आदि, यज्ञ-शब्दान्त नवयज्ञ आदि तथा जो यज्ञशब्दान्त नहीं हैं, उन दशाह आदि का भी ग्रहण हो जाता है तथा सभी से 'तस्य दक्षिणाः' अर्थ में प्रत्ययोत्पत्ति हो जाती है। {**तस्य च-**}।

तत्र च दीयते कार्यं भववत् ५.१.९६

* कार्यग्रहणमनर्थकं तत्र भवेन कृतत्वात् * **कार्यग्रहणमनर्थकम् किं कारणम्? 'तत्र भवेन कृतत्वात्'। यद्धि मासे कार्यं मासे भवं तद् भवति, तत्र 'तत्र भव' इत्येव सिद्धम्।**

'तस्मिन्निति तत्र' सप्तम्यन्त से त्रल् प्रत्यय है। 'भवेन तुल्यं भववत्' 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ से वति प्रत्यय है।

सूत्रार्थ—'तत्र दीयते, तत्र कार्यम्' इन दोनों अर्थों में सप्तम्यन्त प्राति-पदिक से भववत् प्रत्यय हो'। जैसे 'प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यम्' 'प्रावृष एण्यः' ४.३.१७ से एण्य प्रत्यय है। 'शरदि दीयते कार्यं वेति शारदम्' 'सन्धि-वेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' ४.३.१६ से अण् प्रत्यय है।

'कालात्' ५.१.७८ का अधिकार है; अतः 'दीयते, कार्यम्' इन दोनों अर्थों में सप्तम्यन्त से भववत् प्रत्यय प्राप्त होने पर कार्यार्थ का भवार्थ में अन्तर्भाव होने से भवार्थ में प्रत्यय विहित होने पर 'तत्र भवः' ४.३.५३ से ही 'कार्यम्' अर्थ में भी प्रत्यय हो जायेगा; अतः 'कार्यम्' अर्थ में प्रत्ययविधान को व्यर्थ मान कर प्रश्न करते हैं—**कार्यग्रहणमिति**। मासाधिकरण कार्य भी मासाधिकरण भव होता है; अतः भवार्थ में प्रत्यय होने से कार्यार्थ में भी हो जायेगा। यहाँ सप्तम्यन्त से कार्यार्थ में प्रत्यय नहीं करना चाहिये।

किमिदं भवान् कार्यग्रहणमेव प्रत्याचष्टे, न पुनर्दीयतेग्रहणमपि? यथैव हि यन्मासे कार्यं तन्मासे भवं भवत्येवं यदपि मासे दीयते, तदपि मासे भवं भवति, तत्र 'तत्र भव' इत्येव सिद्धम्। न सिध्यति, न तन्मासे दीयते। किं तर्हि? मासे गते। एवं तर्ह्यौपश्लेषिक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मधिकरणं विज्ञास्यते। एवं तर्हि योगविभागोत्तरकालमिदं पठितव्यं—तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः' 'तत्र च दीयते', ततः—'कार्यं भववत्'। कालादिति। {तत्र च दीयते}।

अन्य आचार्य—**किमिदमिति**। आप कार्यग्रहण का ही खण्डन क्यों कर रहे हैं? भव अर्थ में प्रत्ययविधान करने पर 'दीयते' अर्थ का भी भवार्थ से ग्रहण हो जायेगा; अतः 'मासे भवं मासिकं, मासे दीयते मासिकम्' में भी भवार्थ में 'दीयते' अर्थ का ग्रहण कर 'दीयते' ग्रहण का प्रत्याख्यान क्यों नहीं करते हैं? इस पर प्राश्निक आचार्य अपना कारण स्पष्ट करते हैं—**न सिध्यतीति**। भवार्थ से 'दीयते' अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि 'मासे दीयते' में अधिकरणसप्तमी नहीं है, अपि तु 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' २.३.३६ की सति सप्तमी है; जब कि 'तत्र भवः' ४.३.५३ में अधिकरणसप्तमी है। 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'न्याय से 'भववत्' इस अतिदेशसामर्थ्य से 'तत्र दीयते' में भावलक्षणसप्तमी है; अतः 'तत्र भवः' अर्थ से 'तत्र दीयते' अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकेगा। 'मासे दीयते' में **'मासे गते**=व्यतीते सति दीयते' ऐसा अर्थ है।

आक्षेपक आचार्य—**एवं तर्हीति**। 'मासे दीयते' में मासपदोत्तर सप्तमी को आप औपश्लेषिक मानिये। जैसे 'वटे गावः शेरते' में औपश्लेषिक का सामीप्य अर्थ में प्रयोग होने से 'वटसमीपे गावः शेरते' अर्थ होता है, वैसे 'मासे दीयते' में मासपदोत्तरसप्तमी को औपश्लेषिक मान कर 'माससमीपे दीयते' अर्थ करेंगे। एवं 'तत्र भवः' ४.३.५३ में भी सप्तमी को औपश्लेषिक मानेंगे। इससे भवार्थ और 'दीयते' अर्थ की तुल्यता होने से ही 'दीयते' अर्थ भी गृहीत हो जायेगा; अतः सूत्र में 'दीयते' ग्रहण को भी व्यर्थ मानिये।

समाधानभाष्य—**एवन्तर्हीति**। 'तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः' ५.१.९५ सूत्र के अनन्तर प्रकृतसूत्र का योगविभाग कर 'तत्र च दीयते' यह प्रथमयोग पढ़ेंगे, तथा 'कार्यं भववत्' यह द्वितीययोग पढ़ेंगे। 'कालात्' ५.१.७८ का अधिकार आ रहा है। इससे 'दीयते' यह मात्र प्रत्ययविध्यर्थ होगा, अतिदेशार्थ नहीं। इस योगविभाग से 'अग्निष्टोमे दीयते आग्निष्टोमिकं भक्तम्' में भी प्रत्यय सिद्ध हो जाता है। कोई आचार्य यहाँ भव अर्थ में ही प्रत्यय मान कर 'अग्निष्टोमे दीयते' में दीयमान को भी भवार्थ मान कर 'क्रतुयज्ञेभ्यश्च' ४.३.६८ से ठञ् प्रत्यय का विधान करते हैं; परन्तु उनका यह पक्ष उचित नहीं है। वह इस तरह कि 'तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः' ४.३.६६ से 'व्याख्यातव्यनाम्नः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद की अनुवृत्ति 'क्रतुयज्ञेभ्यश्च' में होती है; अतः व्याख्या- तव्यनामा से ही प्रत्ययविधान होने से प्रकृत में प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा; अतः यहाँ वार्तिककार ने मात्र कार्य पद का ही प्रत्याख्यान किया है, 'दीयते' का नहीं। 'प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानाम्' इस वचन से 'द्वयोर्वाजपेययोर्दीयते द्वैवाजपेयिकम्' में भी योगविभाग से ठञ् हो जाता है, अन्यथा 'कालाट्ठञ्' ४.३.११ से ठञ् होने पर उसका 'द्विगोर्लुगनपत्ये' ४.१.८८ से लुक् होता, जिससे 'द्वैवाजपेयिकम्' सिद्ध नहीं हो सकता था। {तत्र च दीयते-}।

व्युष्टादिभ्योऽण् ५.१.९७

* अण्प्रकरणेऽग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम् * **अण्प्रकरणेऽग्निपदादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। त्रीणीमान्यण्ग्रहणानि, 'व्युष्टादिभ्योऽण्' 'समयस्तदस्य प्राप्तमृतोरण्'। 'प्रयोजनं विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयो'-रिति। तत्र न ज्ञायते कतरस्मिन्नण्प्रकरणेऽग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्?**

यहाँ 'तत्र दीयते कार्यम्' ५.१.९६ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्त व्युष्टादि से 'दीयते' और 'कार्यम्' अर्थ में अण् हो'। व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम्। 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' ७.३.३ से आदि वृद्धि का निषेध तथा यकार से पूर्व ऐजागम है।

वार्तिककार—**अण्प्रकरण इति**। अण्प्रकरण में अग्निपदादि का ग्रहण कर उससे भी अण् कहना चाहिये। 'अग्निपदे दीयते कार्यं वा आग्निपदम्'।

आक्षेपक का प्रश्नभाष्य—**त्रीणीमानीति**। 'व्युष्टादिभ्योऽण्' ५.१.९७, 'समयस्तदस्य प्राप्तम्' ५.१.१०४ का अधिकार कर 'ऋतोरण्' ५.१.१०५ में आचार्य ने अण्पद का उच्चारण किया है। एवं 'विशाखाऽऽषाढादण् मन्थदण्डयोः' ५.१.११० में भी आचार्य ने अण् पढा है। यहाँ पता नहीं चल पा रहा है कि किस अण्प्रकरण में 'अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्' वचन माना जाये?

अविशेषात् सर्वत्र 'व्युष्टादिभ्योऽण् भवती'त्युक्त्वाऽग्निपदादिभ्यश्चेति वक्तव्यम्। अग्निपदे दीयते कार्यं वा आग्निपदम्। पैलुमूलम्। 'समयस्तदस्य प्राप्तमृतोरण्'। 'अग्निपदादिभ्यश्चे'ति वक्तव्यम्। उपवस्ता प्राप्तोऽस्यौपवस्त्रम्। प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम्। 'प्रयोजनं विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः'। 'अग्निपदादिभ्यश्चे'ति वक्तव्यम्। चूडा प्रयोजनमस्य चौडम्। श्रद्धा प्रयोजनमस्य श्राद्धम्। {व्युष्टादिभ्योऽण्}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**अविशेषादिति**। 'अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्' यह सामान्य निर्देश है, अतः तीनों अण्प्रकरण ग्रहण कीजिये। 'व्युष्टादिभ्योऽण्' ५.१.९७ में ग्रहण करने से 'तत्र दीयते कार्यं वा' अर्थ में 'आग्निपदम्, पैलुमूलम्' होगा। 'समयस्तदस्य प्राप्तम्' ५.१.१०४ का अधिकार कर 'ऋतोरण्' ५.१.१०५ प्रकरण में पाठ करने से जैसे 'तदस्य प्राप्तम्' अर्थ में ऋदन्त से अण् होकर 'औपवस्त्रम्, प्राशित्रम्' होता है, वैसे इसी अर्थ में 'आग्निपदम्, पैलुमूलम्' भी होगा। 'विशाखऽऽषाढादण् मन्थदण्डयोः' ५.१.११० प्रकरण में पाठ करने से मन्थ और दण्ड वाच्य होने पर अण् होकर 'चौडं, श्राद्धम्' भी हो जायेगा। वार्तिकस्थ आदि पद को सादृश्यार्थक मान कर अविशेषग्रहण है। {**व्युष्टादिभ्योऽण्**}।

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ५.१.१११

* छप्रकरणे विशिपूरिपदिरुहिप्रकृतेरनात् सपूर्वपदादुपसंख्यानम् * **छप्रकरणे विशिपूरिपदिरुहिप्रकृतेरनात् सपूर्वपदादुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्।** विशि—**गेहानुप्रवेशनीयम्**। विशि। पूरि—**प्रपापूरणीयम्**। पूरि। पदि—**गोप्रपदनीयम्। अश्वप्रपदनीयम्।** पदि। रुहि—**प्रासादारोहणीयम्।**

'समयस्तदस्य प्राप्तम्' ५.१.१०४ से षष्ठ्यन्त 'अस्य' एवं 'प्रयोजनम्' ५.१.१०९ का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'प्रथमान्त प्रातिपदिक अनुप्रवचनादि से 'अस्य प्रयोजनम्' अर्थ में छ प्रत्यय हो'। अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्। आश्वलायनगृह्यसूत्र में उपनयनाङ्ग कुछ कर्म अनुप्रवचन पद से कहे गये हैं।

वार्तिक—**छप्रकरण इति**। केवल अन का पूर्वपद के साथ सम्बन्ध नहीं होने से सामर्थ्यात् तदन्त अर्थ लेना चाहिये। सपूर्वपद अनान्त विश प्रवेशने धा.पा. १४२५, पूरी आप्यायने धा.पा.११५१, १८०४, पद गतौ धा.पा.११६९, १८९९, रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च धा.पा.८५९ पद से भी छ प्रत्यय कहना चाहिये। गेहानुप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गेहानुप्रवेशनीयम्। प्रपापूरणं प्रयोजनमस्य प्रपापूरणीयम्। गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम्। अश्वप्रपदनं प्रयोजनमस्य अश्वप्रपदनीयम्। प्रासादारोहणं प्रयोजनमस्य प्रासादारोहणीयम्।

* स्वर्गादिभ्यो यत् * **स्वर्गादिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति। स्वर्ग्यम्। धन्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्** * पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् * **पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः। पुण्याहवाचनम्। शान्तिवाचनम्। स्वस्तिवाचनम्।।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वर्गादिभ्य इति। प्रथमान्त प्रातिपदिक स्वर्गादिगणपठित शब्दों से 'प्रयोजनमस्य' अर्थ में यत् प्रत्यय कहना चाहिये। स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम्। धनं प्रयोजनमस्य धन्यम्। यशः प्रयोजनमस्य यशस्यम्। आयुः प्रयोजनमस्य आयुष्यम्। ठञ् प्राप्त होने पर स्वर्गादि से यद्विधि है। **पुण्याहवानादिभ्य इति।** प्रथमान्त प्रातिपदिक पुण्याहवाचनादिगणपठित से पर में 'प्रयोजनमस्य' अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य पुण्याहवाचनम्। इसी तरह 'शान्तिवाचनम्। स्वस्तिवाचनम्' भी होगा। यहाँ सर्वत्र 'तदस्य प्रयोजनम्' अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् है। {**अनुप्रवचनादिभ्यश्च**}।

ऐकागारिकट् चौरे ५.१.११३

* एकागारान्निपातनानर्थक्यं ठञ्प्रकरणात् * **एकागारान्निपातनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'ठञ्प्रकरणात्'। ठञ्प्रकृतः सोऽनुवर्त्तिष्यते। इदं तर्हि प्रयोजनं—चौर इति वक्ष्यामीति। इह मा भूद्—एकागारं प्रयोजनमस्य भिक्षोरिति। यद्येतावत् प्रयोजनं स्याद्—'एकागाराच्चौर' इत्येव ब्रूयात्।**

एकम्=असहायम्, अगारम्=गृहम् प्रयोजनम्=प्रयोजकम् अस्य चौरस्येति ऐकागारिकश्चौरः। यहाँ एकागार पद से निपातन के द्वारा णिकट् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे णित्त्वाद् आदि अच् को वृद्धि-आदेश होगा। बालमनोरमाकार इकट् प्रत्यय करते हैं; अतः उनके मत में वृद्धि-आदेश चिन्त्य है। यहाँ 'प्रयोजनम्' ५.१.१०९ से ठञ् प्रत्यय के द्वारा भी 'ऐकागारिकश्चौरः' सिद्ध था; पुनः सूत्रारम्भ व्यर्थ पड कर नियम करेगा—'एकागार पद से प्रयोजन अर्थ में प्रत्यय हो तो प्रत्ययार्थ चौर वाच्य होने पर ही हो, अन्यत्र नहीं'। इससे 'एकागारं प्रयोजनमस्य भिक्षोः' इस विग्रह में वाक्य ही रहेगा।

यहाँ भाष्यकार प्रकृतसूत्र का खण्डन करते हैं—**एकागारादिति।** 'प्रयोजनम्' ५.१.१०९ सूत्र का अधिकार आ रहा है; उसी से ठञ् प्रत्यय के द्वारा 'ऐकागारिकः' सिद्ध हो जायेगा; अतः प्रकृत में निपातन व्यर्थ है।

अन्य आचार्य सूत्रपक्ष का पोषण करते हैं—**इदं तर्हीति।** ठञ् प्रत्यय के द्वारा सिद्ध होने पर प्रकृतसूत्र का आरम्भ किया जा रहा है' अतः आरम्भ व्यर्थ पड कर चौर अर्थ में नियम करेगा—'चौर अर्थ वाच्य होने पर ही 'ऐकागारिकः' निपातन हो'। इससे 'एकागारं प्रयोजनमस्य भिक्षोः' ऐसा विग्रह में जहाँ भिक्षु वाच्य है, वहाँ प्रत्ययोत्पत्ति नही होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**यद्येतावदिति**। यदि भिक्षु अर्थ वाच्य होने पर प्रत्ययप्रतिषेध ही प्रयोजन था तो 'एकागाराच्चौरे' इतना सूत्र रखना चाहिये था, इससे चौर अर्थ वाच्य होने पर ही प्रत्यय होता, भिक्षु अर्थ में नहीं। {**ऐकागा-**}।

आकालिकडाद्यन्तवचने ५.१.११४

* आकालान्निपातनानर्थक्यं ठञ्प्रकरणात् * **आकालान्निपातनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'ठञ्प्रकरणात्'। 'ठञ्प्रकृतः सोऽनुवर्त्तिष्यते। इदं तर्हि प्रयोजनम्—एतस्मिन् विशेषे निपातनं करिष्यामि-समानकालस्याद्यन्तविवक्षायामिति** * आकालाट्ठंश्च * **आकालाट्ठंश्च ठञ्च वक्तव्यः। आकालिकी। आकालिका।** {आकालिकडाद्यन्तवचने}।

आद्यन्तवचन वाच्य होने पर आकालिकट् निपातन है। 'समानकालौ आद्यन्तौ यस्येति आकालिकः' समानकाल के स्थान पर आकाल आदेश और इकट् प्रत्यय का निपातन है।

खण्डनभाष्य—**आकालेति**। आकाल पद से निपातन के द्वारा इकट् प्रत्यय का विधान व्यर्थ है। 'प्राग्वतेष्ठञ्' ५.१.१८ का प्रकरण चल रहा है; अतः उसी से ठञ् प्रत्यय होकर 'आकालिकः' रूप हो जायेगा।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। ठञ् प्रत्यय के द्वारा सिद्ध होने पर प्रकृतसूत्र का आरम्भ व्यर्थ पड कर नियम करेगा—'आद्यन्तवचन वाच्य होने पर ही समानकाल को आकाल आदेश हो और निपातन के द्वारा इकट् प्रत्यय हो'। इससे निपातन में प्रकृतित्वेन समानकाल पद ही गृहीत होगा। समान पद एकवाची है; अतः 'समानकालौ=एककालौ आद्यन्तौ अस्य स आकालिकः' आदिः=जन्म, अन्तः=विनाशः। जन्म और विनाश के अव्यहितकालत्व होने से यहाँ एककालता है। यदि यहाँ विधि किया जाये तो आद्यन्तवचन की क्लेश से प्रतीति होगी; अतः निपातन का सहारा लिया गया है। **आकालाट्ठन्निति**। आकाल पद से ठन् प्रत्यय तथा 'च' करण से ठञ् प्रत्यय भी कहना चाहिये। यहाँ भी आकाल पद में वही व्युत्पत्ति है, जो पहले बतायी जा चूकी है। ठञ् प्रत्यय होने पर 'आकालिकी' में ठञ्लक्षण ङीप् है। ठन् होने पर टाप् होकर 'आकालिका' रूप होगा, यह दोनों प्रत्ययों में भेद है। {**आकालाकल-**}।

तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः ५.१.११५

इदमयुक्तं वर्त्तते। किमत्राऽयुक्तम्? 'यत्तत्तृतीयासमर्थं क्रिया चेत् सा भवती'त्युच्यते, कथं च तृतीयासमर्थं नाम क्रिया स्यात्?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक से तुल्य अर्थ में वति प्रत्यय हो, जो तुल्य है वह क्रिया हो तो'। इसका फलितार्थ है—'तृतीयान्त से तुल्या क्रिया अर्थ में वति हो'। जैसे 'ब्राह्मणेन तुल्यमधीते इति ब्राह्मणवदधीते क्षत्रियः'। इससे 'ब्राह्मण-कर्तृकाऽध्ययनसदृशं क्षत्रियकर्तृकाऽध्ययनम्' बोध होगा।

आक्षेपभाष्य—**इदमयुक्तमिति**। यहाँ 'इदम्' पद से सूत्रबोध्य वाक्यार्थस्वरूप परामृष्ट है। प्रकृतसूत्र से जो अर्थबोध हो रहा है, वह सम्भव नहीं है। इसका अयुक्तत्व स्पष्ट करते हैं—**यत्तत्तृतीयेति**। द्रव्यवचन प्रातिपदिक से तृतीयाविभक्ति का विधान है। जब कि साधारणरूपा क्रिया अद्रव्यवचन है। 'तेन' यह क्रिया में विशेषण है। यहाँ द्रव्यवचन और अद्रव्यवचन का परस्पर विशेषणविशेष्यभाव होना असम्भव होने पर सूत्रबोध्यवाक्यार्थस्वरूप असम्भव होने से अयुक्त है। कभी भी तृतीयासमर्थ क्रिया नहीं हो सकती है।

नैतदयुक्तम्। सर्व एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्त्तन्ते, ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यः शूद्र इति। आतश्च गुणसमुदाये, एवं ह्याह—

तपः श्रुतञ्च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारकम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः।।

खण्डनभाष्य—**नैतदयुक्तमिति**। यहाँ सूत्रबोध्य वाक्यार्थ का विशेषण-विशेष्यभाव अयुक्त नहीं है। उसे स्पष्ट करते हैं—**सर्व एत इति**। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये सभी के सभी शब्द गुणसमुदाय में हैं। 'सर्व एते शब्दाः' में 'एतद्' पद से उपमानोपमेयभावविषय शब्द कहे गये हैं। इन शब्दों का गुणसमुदाय में होना स्पष्ट करते हैं—**एवं ह्याहेति**। **तपः**=चान्द्रायण आदि व्रत, **श्रुतम्**=वेदाङ्ग और वेद आदि का अध्ययन और **योनि**=ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मणी में जन्म लेना, यह तीनों ब्राह्मणकारक हैं। जो तपः और श्रुत से रहित है वह मात्र जातिलक्षण एकदेशाश्रय ब्राह्मण है, पूर्ण ब्राह्मण नहीं। यहाँ तपः, श्रुत और योनि ये तीन गुणसमुदाय ब्राह्मण कहे जा रहे हैं। तपः आदि ब्राह्मणव्यवहार के निमित्त हैं। जो तपः और श्रुत से हीन है, उसका ब्राह्मणक्रिया में अधिकार नहीं है।

{'ब्राह्मणस्य कारकं ब्राह्मणकारम्' में शेषषष्ठीसमास है। 'तृजकाभ्यां कर्त्तरि' २.२.१५ से कर्ता में जो षष्ठी का समासनिषेध है, एवं 'कर्तरि च' २.२.१६ से भी कर्तृषष्ठी का ही समासनिषेध है। एवं तृच्निमित्तक और अकनिमित्तक कर्म में षष्ठी का समासनिषेध है, शेषषष्ठी का नहीं। यहाँ तृच्निमित्ता और अच्निमित्ता षष्ठी नहीं है।}

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथा गौरः शुच्याचारः पिङ्गलः कपिलकेश इत्येतानप्यभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्तीति। समुदायेषु च शब्दा वृत्ता अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते। तद्यथा—पूर्वे पञ्चाला उत्तरे पञ्चालाः। तैलं भुक्तं घृतं भुक्तम्। शुक्लो नीलः कृष्ण इति। एवमयं ब्राह्मणशब्दः समुदाये वृत्तोऽवयवेष्वपि वर्त्तते।

अब भाष्यकार ब्राह्मण में लोकप्रसिद्ध बाहुल्येन दृष्ट गुणों को कहते हैं— **यथा गौर इति**। गौरः=

अष्टवर्षा तु या दत्ता श्रुतशीलसमन्विते।
सा गौरी, तत्सुतो यस्तु स गौर परिकीर्तितः।।

शुच्याचारः=धर्मशास्त्र के अनुसार पवित्र आचरण, पिङ्गल वर्ण और कपिल केश, इन आभ्यन्तर गुणों को भी कुछ लौकिक लोग **ब्राह्मण्ये**=ब्राह्मणशब्दार्थ गुणसमुदाय में **कुर्वन्ति**=मानते हैं। यद्यपि गौरत्वादि गुण पुरा काल में भी देखे जाते थे, तथापि कहीं-कहीं भाष्यकार के समय में भी दृष्ट थे; अतः उनका भी ब्राह्मण में अन्वय देखा जाता है; अतः वे भी व्यञ्जक हैं। ये गौरत्वादि गुण जहाँ होंगे, वे सभी भी ब्राह्मण पद से व्यवहृत किये जायेंगे। उपर भाष्यकार ने 'तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः' ऐसा कहा है। यहाँ प्रश्न उठता है कि तपः, श्रुत और योनि, इत्येतत् त्रितयसमुदाय में पर्यवसित ब्राह्मण पद समुदायैकदेश योनिमात्र में कैसे शक्त होगा?, इसे स्पष्ट करते हैं— **समुदायेषु चेति**। समुदायरूप अर्थ का अवयव में आरोप कर प्रयोग होता है, प्राप्त अर्थ का परित्याग कर नहीं। इस तरह जहाँ समुदाय शब्द तदेकदेश अवयव में प्रयुक्त है वहाँ भागत्यागलक्षणा नहीं मानी जा सकती है। जैसे पाञ्चाल पद समुदाय में शक्त है, परन्तु पाञ्चालैकदेश पूर्व अथ वा उत्तर में समुदाय शब्द का आरोप कर 'पूर्वे पञ्चालाः, उत्तरे पञ्चालाः' ऐसा प्रयोग होता है। यहाँ इतर अर्थ का परित्याग नहीं है। एवं घृतैकदेश तथा तैलैकदेश भुक्त होने पर भी 'घृतं भुक्तम्, तैलं भुक्तम्' ऐसा प्रयोग करते हैं। यहाँ भी पदार्थैक-देश में समुदायशब्द का आरोप है। यदि तैल आदि द्रव्यों में संस्कृतविशिष्ट मात्रा अर्थ में तैल आदि शब्द हैं, तो तैल आदि का समुदायशब्दत्व होगा। यदि पदार्थैकदेश का उपयोग होगा 'तैलं भुक्तम्' इत्यादि प्रयोग अवयवशक्ति मान कर होगा। परन्तु यदि तैल, घृत, पाञ्चाल आदि को जाति शब्द मान लिया जाये तो जो जाति समुदाय और अवयव में समान रूप से रहती है, अतः 'समुदायेषु च वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते' का उदाहरण 'पूर्वे पञ्चालाः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि नहीं हो सकेंगे।

भाष्यकार अन्य उदाहरण भी स्पष्ट करते हैं—**शुक्लो नील इति**। शुक्ल, नील, कृष्ण ये भी समुदाय शब्द हैं; परन्तु 'शुक्ला शाटी, नीलं वस्त्रं, कृष्णं फलम्' ऐसा पदार्थैकदेश में भी प्रयोग देखा जाता है। वैसे ही तपः, श्रुत और योनि में दृष्ट ब्राह्मण पद के समुदायैकदेश योनि में भी होने से 'तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः' कहा है। इसे प्रकृत में इस तरह घटाना चाहिये—'ब्राह्मणवदधीते क्षत्रियः' में जो ब्राह्मणकर्त्तृकाऽध्ययनक्रिया उपमेय में सूनी जा रही है, उसी में ब्राह्मण शब्द है। 'ब्राह्मणेन तुल्यमधीते इति ब्राह्मणवदधीते क्षत्रियः' में अध्ययनक्रिया में विशेषण होने से 'तुल्यम्' यह नपुंसक तथा द्वितीयान्त है। ब्राह्मणाध्ययन के साथ क्षत्रियाध्ययन की तुल्यता सम्भव है; अतः सामर्थ्यात् ब्राह्मण पद की शक्ति उपपन्न हो रही है, तथा तृतीयासमर्थ की क्रियावाचकता भी उपपन्न हो रही है।

यदि तर्हि तृतीयासमर्थं विशेष्यते प्रत्ययार्थोऽविशेषितो भवति। तत्र को दोषः? तृतीयासमर्थात् क्रियावाचिनो गुणतुल्येऽपि प्रत्ययः स्यात्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः, पुत्रेण तुल्यः पिङ्गल इति। अस्तु तर्हि प्रत्ययार्थविशेषणं—'यत्तत्तुल्यं क्रिया चेत् सा भवती'ति। एवमपि तृतीयासमर्थमविशेषितं भवति। तत्र को दोषः? तृतीयासमर्थादक्रिया-वाचिनः क्रियातुल्येऽपि प्रत्ययः प्राप्नोति—'स्थूलेन तुल्यः पुत्रः स्थूलेन तुल्यो यातीति। नैष दोषः। 'यत्तत्तुल्यं क्रिया चेत् सा भवती'त्युच्यते, तुलया च सम्मितं तुल्यम्। यदि च तृतीयासमर्थमपि क्रिया, प्रत्ययार्थोऽपि क्रिया ततस्तुल्यं भवति।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तर्हीति**। चूँकि एक विशेषण का दो विशेष्य के साथ अन्वय बाधित है; अतः तृतीयासमर्थ को विशेष्य मान लेने पर प्रत्ययार्थ विशेषित नहीं हो सकेगा। इसमें दोष यह होगा कि तृतीयासमर्थ क्रियावाची से गुणतुल्य {यहाँ 'गुणैस्तुल्यं गुणतुल्यम्' ऐसा विग्रह करना चाहिये।} अर्थ में भी प्रत्यय होने से 'पुत्रेण तुल्यः स्थूलः, पुत्रेण तुल्यः पिङ्गलः' में भी पुत्रवत्-स्थूलः, पुत्रवत्पिङ्गलः' की आपत्ति होगी। इस तरह प्रत्ययार्थ को विशेष्य मानने में दोष है।

अन्य आचार्य—**अस्तु तर्हीति**। यदि तृतीयासमर्थ को विशेष्य मानने में दोष है तो प्रत्ययार्थ को विशेष्य मानिये। इस पक्ष में सूत्रार्थ—'यत्तत्तुल्यं क्रिया चेत् सा भवति' होगा। इससे क्रियातौल्य में ही वति होने से 'ब्राह्मणवदधीते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षत्रियः' में प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी। एवं जहाँ गुण तुल्य है वहाँ 'पुत्रेण तुल्यः स्थूलः' में प्रत्यय का अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं होगा।

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। यदि प्रत्ययार्थ को विशेष्य करेंगे तो तृतीया-समर्थ विशेष्य नहीं हो पायेगा। इससे दोष यह होगा कि तृतीयासमर्थ क्रिया-वाची से क्रियातुल्य होने पर भी प्रत्यय प्राप्त होने लगेंगे। इससे 'स्थूलेन तुल्यः पुत्रः, स्थूलेन तुल्यो याति' में स्थूल पद से वति की अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**नैष दोष इति**। प्रत्ययार्थ को विशेष्य मानने पर 'यत्तुल्यं क्रिया चेत् सा भवति' ऐसा अर्थ किया जा रहा है। यहाँ प्रत्ययार्थ के विशेषित होने पर सामर्थ्यात् तृतीयासमर्थ भी विशेषित हो जायेगा। तुला के **सम्मितम्**=सदृश तुल्य होता है। जैसे तुला द्रव्यविशेष का परिच्छेद करती है वैसे ही जो तत्सदृश वस्त्वन्तर का परिच्छेद करे, उसे तुल्य कहले हैं। प्रत्ययार्थ विशेषित होने पर सामर्थ्यवशात् प्रकृत्यर्थ भी विशेषित होता है। अक्रिया के तुल्य क्रिया नहीं होती है; अतः सामर्थ्यात् क्रियावाची से ही प्रत्यय होगा। गौणमुख्यन्याय से यहाँ क्रियाशब्द से क्रियावान् का भी ग्रहण नहीं होगा। मुख्यार्थ सम्भव होने पर गौण अर्थ का ग्रहण असम्भव है। 'स्थूलेन तुल्यः पुत्रः' इत्यादि में क्रिया पद नहीं दिया गया है; अतः दो क्रियाओं की तुल्यता का बोध नहीं होता है। अत एव पुत्र आदि की क्रिया का बोध नहीं हो पा रहा है। 'स्थूलेन तुल्यो याति' में भी 'स्थूलेन यस्तुल्यः स्थौल्येन गुणेन स याति' इस अर्थ का बोध हो रहा है; अतः यहाँ भी क्रियातुल्यता नहीं है। परन्तु यदि यहाँ 'स्थूलेन तुल्यं याति' ऐसी क्रियातुल्यत्व की विवक्षा की जाये तो 'स्थूलवद् याति' ऐसा वत्यन्तप्रयोग ही होगा।

अथ वा पुनरस्तु 'यत्तृतीयासमर्थं क्रिया चेत् सा भवती'त्येव। ननु चोक्तं—'प्रत्ययार्थोऽविशेषित' इति। तत्र को दोषः? तृतीया-समर्थात् क्रियावाचिनो गुणतुल्येऽपि प्रत्ययः प्राप्नोति, पुत्त्रेण तुल्यः स्थूलः, पुत्त्रेण तुल्यः पिङ्गल' इति?

तृतीयासमर्थ को विशेषित करने के पक्ष में भी दोष का वारण करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा तृतीयासमर्थ को विशेष्य मानिये। इस पक्ष में 'यत् तृतीया-समर्थं क्रिया चेत् सा भवति' ऐसा अर्थ होगा। इस पक्ष में आप ने कहा था कि तृतीयासमर्थ को विशेष्य मानने पर प्रत्ययार्थ विशेष्य नहीं हो पा रहा है। प्रत्ययार्थ के विशेष्य नहीं होने पर गुणतुल्य में भी तृतीयासमर्थ क्रियावाची से 'पुत्रेण तुल्यः स्थूलः, पुत्रेण तुल्यः पिङ्गलः' में वति प्रत्यय की अतिव्याप्ति दी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नैष दोषः। यत्तत् तृतीयासमर्थं क्रिया चेत् सा भवती'त्युच्यते। तुलया च सम्मितं तुल्यम्। यदि च तृतीयासमर्थमपि क्रिया प्रत्ययार्थोऽपि क्रिया ततस्तुल्यं भवति। किं पुनरत्र ज्यायः? प्रत्ययार्थविशेषणमेव ज्यायः। कुत एतत्? एवं चैव हि कृत्वाऽऽचार्येण सूत्रं पठितं, वतिना सामानाधिकरण्यं कृतम्। अपि च वतेरव्ययेषु पाठो न कर्त्तव्यो भवति। क्रियायामयं भवल्लिङ्गसंख्याभ्यां न योक्ष्यते। {तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः}।

यह दोष नहीं रहेगा। वह इस तरह कि तृतीयासमर्थ को विशेषित करने के पक्ष में यत् तृतीयासमर्थ क्रिया चेत् सा भवति' अर्थ होगा। **'तुलया सदृशम्**=सदृशं तुल्यम्' यह तुल्य पद का अर्थ है। हम तृतीयासमर्थ को भी क्रिया तथा प्रत्ययार्थ को भी क्रिया मानेंगे। इस तरह प्रत्ययार्थ और तृतीयासमर्थ, दोनों को विशेषित कर देंगे। तृतीयासमर्थ क्रिया और प्रत्ययार्थ क्रिया, दोनों के तुल्य होने पर वति प्रत्यय कहेंगे। 'पुत्त्रेण तुल्यः स्थूलः, पुत्त्रेण तुल्यः पिङ्गलः' में तृतीयासमर्थ क्रिया होने पर भी प्रत्ययार्थ क्रिया का अभाव है, अतः तुल्य नहीं होने से 'पुत्त्रेण तुल्यः स्थूलः' आदि में वति प्रत्यय का अतिप्रसङ्ग नहीं होगा।

अन्य आचार्य—**किं पुनरत्रेति**। आप ने तृतीयासमर्थ और प्रत्ययार्थ दोनों को विशेषित कर दिया, यहाँ उचित क्या है?, दोनों को विशेषित करना चाहिये, अथ वा अन्यतर को विशेषित होने पर भी सभी दोष निरस्त हो जा रहे हैं, तभी लक्ष्यों की सिद्धि हो जा रही है?

समाधानभाष्य—**प्रत्ययार्थेति**। प्रत्ययार्थ को विशेष्य मान कर शेष को विशेषण मानना ही उचित है। वह इस तरह कि आचार्य 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' सूत्र पढ कर 'वतिः' और 'तुल्यं क्रिया' को समानविभक्तिक पढते हैं। प्रत्ययार्थविशेषणपक्ष में ही इनका सामानाधिकरण्य उपपन्न होता है। अथ च प्रत्ययार्थ को विशेष्य मानने के पक्ष में अन्य लाघव भी है। वति प्रत्यय का क्रिया के साथ अन्वय करने पर वह अव्यय होगा। लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होने से अव्यय असत्त्ववचन होता है। क्रिया भी असत्त्ववचन है, उसका विशेषण होने से वति भी असत्त्ववचन ही होगा। इस तरह अव्ययसंज्ञाविधान के लिए वति का अव्ययप्रकरण में पाठ नहीं करना पडेगा, इससे लाघव भी होगा। {तेन तुल्यं-}।

तत्र तस्येव ५.१.११६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमर्थमिदमुच्यते? न 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वति'रित्येव सिद्धम्?

'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ से 'वतिः' की अनुवृत्ति है। सूत्र में श्रुत 'इव' पद का प्रत्येक के साथ अन्वय है।

सूत्रार्थ—'तत्र इव और तस्य इव अर्थ में क्रमशः सप्तम्यन्त तथा षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से वति प्रत्यय हो'। मधुरायामिव मधुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः। चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य भावः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। प्रकृत सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? यहाँ सम्पूर्ण सूत्र पर पूर्वपक्ष है। प्राश्निक आचार्य का आशय इस प्रकार है—'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' २.३.७२ से तुल्यार्थ 'इव' के योग में तृतीया विहित है; उस तृतीया से ही सभी विभक्तियों का अर्थ तृतीया से सम्बद्ध है। जैसे 'ब्राह्मण इवाऽधीते' से 'ब्राह्मणेन तुल्यमधीते' अर्थ होता है, यहाँ तृतीया से प्रथमा सम्बद्ध है। 'ब्राह्मणमिव पश्यति' इस वाक्य से 'ब्राह्मणेन तुल्यं पश्यति' अर्थबोध होने से तृतीया से द्वितीयाविभक्त्यर्थ सम्बद्ध है। 'ब्राह्मणेनेवाऽधीतम्' इस वाक्य से 'ब्राह्मणेन तुल्यमधीतम्' यह अर्थबोध होता है; अतः यहाँ भी 'इव' के योग में तुल्यार्थयोगा तृतीया से तृतीयार्थ व्याप्त है। 'ब्राह्मणाय इव वैश्याय ददाति' में 'ब्राह्मणेन तुल्यं वैश्याय ददाति' अर्थबोध है। यहाँ भी तुल्यार्थयोगा तृतीया से 'इव'योग में चतुर्थ्यर्थ सम्बद्ध है। 'ब्राह्मणादिव वैश्यादधीते' इस वाक्य से भी 'ब्राह्मणेन तुल्यं वैश्यादधीते' ऐसा वाक्यार्थबोध होता है। यहाँ तुल्यार्थयोगा तृतीया से 'इव'योग में पञ्चम्यर्थ सम्बद्ध है। 'ब्राह्मणस्येव क्षत्रियस्य गृहम्' में 'ब्राह्मणेन तुल्यं क्षत्रियस्य गृहम्' अर्थबोध है; अतः यहाँ तुल्यार्थयोगा तृतीया से 'इव' योग में षष्ठ्यर्थ सम्बद्ध है। 'ब्राह्मण इव क्षत्रिये वर्त्तते' इस वाक्य से 'ब्राह्मणेन तुल्यं क्षत्रिये वर्त्तते' बोध होता है; अतः यहाँ तुल्यार्थयोगा तृतीया से 'इव' योग में सप्तम्यर्थ सम्बद्ध है। इस तरह तुल्यार्थ-योग में विहित तृतीया से षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ सम्बद्ध है; अतः पूर्व सूत्र 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ से तृतीयान्त से वति प्रत्यय करेंगे। यहाँ क्रियातौल्य में इससे प्रत्यय विहित है। 'मधुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः, चैत्रवन्मैत्रस्य भावः' में क्रियातौल्य नहीं होने पर प्रत्यय की अप्राप्ति होगी, इस दोष का वारण करने के लिए हम सूत्र से क्रियापद हटा कर मात्र 'तेन तुल्यं चेद्वतिः' इतना ही सूत्र पढेंगे। इससे 'मधुरायामिव स्रुघ्ने प्राकाराः' इस वाक्य से जो अर्थबोध हो रहा है, 'मधुरया तुल्याः स्रुघ्ने प्राकाराः' से भी वही अर्थबोध होगा। एवं 'चैत्रस्येव मैत्रस्य भावः' इस वाक्य से जो अर्थबोध हो रहा है, 'चैत्रेण तुल्यः मैत्रस्य भावः' इस वाक्य से भी वही अर्थबोध होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ मधुरा शब्द से मधुरा का अवयव प्राकार तथा चैत्र पद से भाव कहा जा रहा है। इस तरह जब षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त से भी 'इव'योग में ही वति सिद्ध हो जा रहा है, तब 'तत्र तस्येव' ५.१.११६ सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

न सिध्यति—तृतीयासमर्थात्तत्र यदाऽन्येन कर्त्तव्यां क्रियामन्यः करोति तदा प्रत्यय उत्पाद्यते, न च काचिदिवशब्देन योगे तृतीया विधीयते।

अन्य आचार्य 'इव'योग में षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त से वति प्रत्यय का अभाव बताते हैं—**न सिध्यतीति**। 'गवा तुल्यो गवयः' इत्यादि में वति प्रत्यय की निवृत्ति के लिए क्रियापद का ग्रहण कर 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ सूत्र पढना चाहिये। इससे क्रियातौल्य में ही वति प्रत्यय होगा। क्रियापद का ग्रहण करने से गुण और द्रव्य की तुल्यता होने पर वति प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा। क्रियापद का ग्रहण करने पर षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त से इवार्थ में पूर्वसूत्र से वति प्राप्त नहीं है; अतः उत्तर सूत्र 'तत्र तस्येव' ५.१.११६ का आरम्भ है। 'इव' शब्द वाचक नहीं है, अपि तु 'धवश्च खदिरश्च' इत्यादि में 'च' शब्द की तरह 'गौरिव गवयवः' इत्यादि में उपमान का द्योतक है; अतः यह भेदनिबन्धन षष्ठ्यादिहेतुरूप व्यतिरेक का हेतु नहीं हो सकता है। परन्तु तुल्य पद उपमान का वाचक है, अतः 'देवदत्तेन तुल्यः, देवदत्तस्य तुल्यः' इत्यादि में व्यतिरेक का हेतु हो सकता है। अतः प्राकार आदि सम्बन्धोपजनित सप्तम्यन्त और भाव आदि सम्बन्धोपजनित षष्ठ्यन्त से इवार्थ में 'तत्र तस्येव' से वति प्रत्यय होगा।

यहाँ पर किसी का यह भी पक्ष है कि 'तत्र तस्येव' सूत्र के स्थान पर मात्र 'इव' इतना ही सूत्र रखिये। पूर्वसूत्र से 'तेन' और 'वतिः' का अनुवर्त्तन करेंगे। इवशब्दप्रयोग होने पर शेषविषय में सभी विभक्तियाँ प्राप्त होंगी, ऐसा अनुमान करेंगे। इससे 'तेन इव वतिः' ऐसा अर्थ होने से जहाँ इवशब्दप्रयोग होने पर सभी विभक्तियों का ग्रहण हो रहा है, वहाँ षष्ठी और सप्तमी का भी ग्रहण होगा। व्याख्यान के द्वारा इतर की निवृत्ति हो जाने से प्रथमा, द्वितीया आदि में अतिव्याप्ति नहीं होगी। इस तरह षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त से इवार्थ में वति प्रत्यय हो जायेगा।

इस पक्ष का खण्डन करते हैं—**तृतीयासमर्थादिति**। अन्य द्वारा की जाने वाली क्रिया को यदि अन्य करता है तो तृतीयासमर्थ से वति प्रत्यय होता है। परन्तु इवशब्द के योग में किसी से तृतीया विहित नहीं है; अतः तृतीयान्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Acc. 39803 31403

से इव का योग नहीं हो सकेगा। इस तरह मात्र 'इव' सूत्र रखने पर प्रत्यय प्राप्त नहीं हो रहा है; अतः 'तत्र तस्येव' ऐसा सूत्र किया गया हैं। इसका भाव इस प्रकार है—इव शब्द असत्त्ववचन अव्यय होने से द्योतक है, वाचक नहीं; अतः भेदनिबन्धन षष्ठी और सप्तमी का कारण नहीं बन सकता है। इस तरह इव शब्द के योग में सर्वविभक्त्यर्था तृतीया नहीं हो सकेगी। एवम् इव शब्द के योग में शेषविषय में तृतीया का ज्ञापन भी नहीं किया जा सकेगा; अतः ऐसा मानते हुए इव शब्द के योग में तृतीया प्राप्त नहीं होने पर अन्य विभक्ति तृतीया का आश्रय किया गया है।

ननु च सप्तम्यपि न विधीयते। एवं तर्हि सिद्धे सति यदिवशब्देन योगे सप्तमीसमर्थाद्वतिं शास्ति, तज्ज्ञापयत्याचार्यो—'भवतीवशब्देन योगे सप्तमी'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'देवेष्विव नाम' 'ब्राह्मणेष्विव नाम'—एष प्रयोग उपपन्नो भवति। {तत्र तस्येव}।

आक्षेपक आचार्य—**ननु चेति**। आप इवशब्द के योग में तृतीया का विधानाऽभाव बता रहे हैं; जब कि इवशब्द द्योतक है तो उसके योग में कहीं सप्तमी भी प्राप्त नहीं हो सकेगी। फिर आप सप्तम्यन्त से इवार्थ में वति कैसे करेंगे।

समाधानभाष्य—**एवं तर्हीति**। मात्र 'इव' इतना सूत्र रखने पर पूर्वसूत्र 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५.१.११५ से तृतीयान्त 'तेन' की अनुवृत्ति कर 'इव' के योग में इसी ज्ञापक से अनुमित तृतीयान्त से वति प्रत्यय सिद्ध होने पर आचार्य ने जो 'तत्र' ५.१.११६ ऐसा सप्तमीनिर्देश किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'इवयोग होने पर शेषविषय में सप्तमी होती है'। यहाँ तृतीया इष्ट नहीं है; अतः उसका ज्ञापन नहीं किया जा रहा है।

प्राश्निक आचार्य—**किमतस्येति**। आप ने 'तत्र' ५.१.११६ग्रहण सामर्थ्य से 'भवतीवशब्देन योगे सप्तमी' ज्ञापन किया है। इससे उपमानविशेषण और उपमेयविशेषण में सप्तमी होगी, इसका क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**देवेष्विवेति**। 'देवेष्विव, ब्राह्मणेष्वि' में इव के योग में सप्तमी का साधुत्व ही इस ज्ञापन का प्रयोजन है। यहाँ 'देवेष्विव मनुष्येषु नाम, ब्राह्मणेष्विव देवेषु नाम' ऐसा अर्थ है। अब यहाँ इतरपक्ष उठ सकता है कि निष्प्रयोजन उच्चरित पद ही ज्ञापक होता है। 'तत्र' ५.१.११६ इस सप्तम्यन्त पदग्रहण का 'मधुरायामिव मधुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः' इत्यादि में प्राकाराधेयापेक्षाधि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करणविहित सप्तम्यन्त से वति प्रत्यय का विधान प्रयोजन है। एवं यहाँ दूसरी अनुपपत्ति भी होगी। वह यह कि ज्ञापन के द्वारा सप्तमी का अनुमान करने पर अधिकरण सप्तमी से वति प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस तरह यहाँ 'तत्र' ५.१.११६पद सप्रयोजनक है, निष्प्रयोजनक नहीं; अतः व्यर्थ नहीं होने से वह उक्त अर्थ का ज्ञापक नहीं हो सकेगा। इस आक्षेप को दूर करने के लिए यहाँ यह पक्ष मानना चाहिये—

'तत्र' ५.१.११६ में आचार्य ने तन्त्र के द्वारा दो सूत्रों का उच्चारण किया है, यह भाष्यकार का अभिप्राय है। यहाँ प्रथमसूत्र से स्वलक्षणविहित षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त से वति प्रत्यय का विधान है, तथा दूसरे से इवशब्द के योग में 'तस्य' के अर्थ में 'तत्र' यह सप्तमी का विधान है। सप्तमी से षष्ठी का बाध न हो, यह 'तस्य' का प्रतिप्रसव है। {तत्र-}।

तदर्हम् ५.१.११७

किमर्थमिदमुच्यते-न 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वति'रित्येव सिद्धम्? न सिध्यति। तृतीयासमर्थात्तत्र यदाऽन्येन कर्त्तव्यां क्रियामन्यः करोति तदा प्रत्यय उत्पाद्यते, इह पुनः द्वितीयासमर्थादात्मार्हायां क्रियायामर्हति कर्त्तरि निश्चितबलाधाने प्रत्यय उत्पाद्यते—'ब्राह्मणवद् भवान् वर्त्तते' 'एतद् वृत्तं ब्राह्मणमर्हती'ति।।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक से अर्हति अर्थ में वति हो' विधिमर्हतीति विधिवत् पूज्यते।

'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ यहाँ 'क्रिया' पद का अनुवर्त्तन है। इससे द्वितीयान्त से अर्हण की कर्त्री क्रिया वाच्य होने पर वति प्रत्यय का विधान है। जैसे 'राजानमर्हति वृत्तमिति राजवद् वर्त्तते, ब्राह्मणमर्हति वृत्तमिति ब्राह्मणवद् वर्त्तते'। यदि यहाँ 'राज्ञा तुल्यं वर्त्तते' ऐसा विग्रह माना जाये तो 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ से वति सिद्ध हो जायेगा। पूर्वसूत्र से मण्डूकप्लुत्या क्रिया पद का प्रकृत में अनुवर्त्तन करने से 'राजानमर्हति च्छत्रम्' में वति की अतिव्याप्ति नहीं है। 'राजवद् वृत्तमस्य' इत्यादि में भी 'तत्र तस्येव' ५.१.११६ से वति हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य ने प्रकृत में 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ को उपलक्षणविधया रखा है। इस तरह इससे तथा 'तत्र तस्येव' ५.१.११६ से उपर्युक्त में वति सिद्ध हो जा रहा है। यदि 'तदर्हम्' सूत्र को 'राजवद् वर्त्तते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा' में जहाँ भेदाऽभाव होने से भेदनिबन्धसादृश्याभाव है, वहाँ वति प्रत्यय प्राप्त नहीं; अतः तदर्थ 'तदर्हम्' सूत्र का आरम्भ माना जाये, तो यह पक्ष उचित नहीं है। यहाँ भी राजत्वेन प्रसिद्ध जो पृथु, भरत, भगीरथ आदि राजा हैं, वे साम्प्रतिक राजाओं के उपमान हैं; अतः यहाँ भी भेदनिबन्धन होने से वति प्रत्यय सिद्ध है, अतः प्राश्निक आचार्य प्रश्न करते हैं—**किमर्थमिति**। आचार्य प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों कर रहे हैं? 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ से ही वति सिद्ध हो जायेगा।

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। यहाँ पूर्वसूत्र से वति सिद्ध नहीं है। इसका कारण स्पष्ट करते हैं—**तृतीयासमर्थादिति**। अन्य कर्त्ता के द्वारा आचरणीय क्रिया को जब अन्य कर्त्ता आचरण करता है, तब 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' ५.१.११५ के द्वारा तृतीयासमर्थ से वति प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। परन्तु प्रकृत में राजशब्द सामान्यवचन अथ वा प्रसिद्धविशेषविषय है। जैसे 'राजवदयं वर्त्तते पृथुः', तब सादृश्य नहीं होने से वति प्राप्त नहीं है। 'चिच्छेद कृतहस्तवत्' में 'कृतहस्तमर्हति च्छेदनमिति कृतहस्तवत्' में अर्हण गम्य है, सादृश्य नहीं। परन्तु प्रकृतसूत्र 'तदर्हम्' ५.१.११७ से क्रियाभेद में वति नहीं है, अपि तु द्वितीयासमर्थ का वाच्य अर्थ स्वीय की अर्हा जो क्रिया, उससे वाच्य होने पर क्रियारूप कर्त्ता में शक्त अर्ह धातु से **निश्चितबलाधाने**=निश्चित अर्थ का अन्ययोगनिवृत्त्यर्थ **बलाधाने**=पुनः उपादान के द्वारा ग्रहण होने पर वति प्रत्यय उत्पन्न हो रहा है। 'एतद् वृत्तं ब्राह्मणमर्हति' इस अर्थ में 'ब्राह्मणवद् भवान् वर्त्तते' में वति प्रत्यय है। {**तदर्हम्**}।

उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ५.१.११८

अर्थग्रहणं किमर्थं—'नोपसर्गाच्छन्दसि धातावित्येवोच्येत? धातुर्वै शब्दः। शब्दे कार्यस्याऽम्भवादर्थे कार्यं विज्ञास्यते।

यह सूत्र मात्र छन्दोविषय है।

सूत्रार्थ—'धात्वर्थविशिष्ट साधन में वर्त्तमान उपसर्ग से पर में स्वार्थ में वति प्रत्यय हो'। ग्रदुद्वतो निवतः। यहाँ 'उद्गतात्' अर्थ में 'उद्वतः' पञ्चम्यन्त है। उत् उपसर्ग से वति प्रत्यय है। एवं 'निर्गतात्' अर्थ में 'नि' उपसर्ग से स्वार्थ में वति प्रत्यय होकर 'निवतः' यह पञ्चम्यन्त रूप है।

प्रश्नभाष्य—**अर्थग्रहणमिति**। आचार्य ने 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' सूत्र पढा है। उसके स्थान पर 'उपसर्गाच्छन्दसि धातौ' इतना ही सूत्र रखिये। धातु शब्द है। 'उपसर्गात्' का 'धातौ' के साथ अन्वय असम्भव होगा, अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामर्थ्यवश धातुरूपशब्द में कार्य के असम्भव होने से धात्वर्थ में कार्य होगा। इससे धात्वर्थ में शक्त उपसर्ग से स्वार्थ में वति प्रत्यय प्राप्त हो जायेगा। इसके लिए अर्थग्रहण क्यों है?

कः पुनः धात्वर्थः? क्रिया। इदं तर्हि प्रयोजनम्—उत्तरपदलोपो यथा विज्ञायेत—धातुकृतोऽर्थो धात्वर्थ इति। कः पुनर्धातुकृतोऽर्थः? साधनम्। किं प्रयोजनम्? साधनेऽयं भवल्लिँङ्गसंख्याभ्यां योक्ष्यते— उद्गतानि उद्वतः। निगतानि निवत इति।

अन्य प्राश्निक आचार्य—**कः पुनरिति**। धात्वर्थ क्या है?

उत्तरभाष्य—**क्रियेति**। धात्वर्थ क्रिया है। इस पक्ष में सूत्रार्थ होगा— 'धात्वर्थ क्रिया में शक्त उपसर्ग से स्वार्थ में वति प्रत्यय हो'। इस तरह अर्थपद के व्यर्थ होने पर उसका सार्थक्योपपादन करते हैं—**इदं तर्हीति**। 'धात्वर्थे' में 'धातुकृतोऽर्थः धात्वर्थः' ऐसा 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' वा.१३१० से उत्तरपद का लोप है; अतः यहाँ मध्यमपदलोपी समास है। यहाँ अवशिष्ट धातुपद ही 'धातुकृतः' अर्थ को बता रहा है; अतः कृतपद का अप्रयोग ही लोप है। 'धातुकृतोऽर्थः' में धातुपद से क्रिया वाच्य है; अतः क्रियाकृत अर्थ लेना चाहिये। सूत्र में 'धात्वर्थे' पद में बहुव्रीहि का आश्रयण है। 'धातुः=धात्वर्थः क्रिया बर्थः=प्रयोजनं यस्य असौ धात्वर्थस्तस्मिन्'। क्रियासापेक्ष कर्मादि व्यवहार है; अतः धात्वर्थ क्रिया से कर्मादिव्यवहारयुक्त कारक अर्थ वाच्य है।

इसी को सिद्धान्ती आचार्य स्पष्ट करते हैं—**साधनमिति**। यहाँ धात्वर्थ **साधन**=कारक है। 'तादृश साधन कर्म में शक्त उपसयर्ग से स्वार्थ में वति हो' यह सूत्रार्थ है। वृत्तिविषय, क्रियाविशेषनिरूपितशक्त्याधार और विशिष्टशक्त्याधारद्रव्य में उपसर्ग शक्त है; अतः उससे विहित वति प्रत्यय का भी वृत्तिविषय आदि ही अर्थ होगा। इस तरह वृत्तिविषय आदि में शक्त उपसर्ग सत्त्ववाची है; अतः उससे विहितं वति प्रत्यय भी सत्त्ववाची ही होगा, असत्त्ववाची नहीं। इस तरह यहाँ विहित वति प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा नही हो सकेगी। इसी वात को भाष्यकार ने 'साधनेऽयं भवद्' आदि पदों से कहा है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—उद्गतानि उद्वत इत्यादि। यहाँ नपुंसक के प्रसङ्ग में 'उद्वतः, निवतः' ऐसा प्रयोग छान्दस है।

*** स्त्रीपुंसाभ्यां वत्युपसंख्यानम् * स्त्रीपुंसाभ्यां वत्युपसंख्यानं कर्त्तव्यं— स्त्रीवत् पुंवदिति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? इमौ नञ्स्नञौ**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'प्राग्भवना'दित्युच्येते, तौ विशेषविहितौ सामान्यविहितं वतिं बाधेयाताम् ।

एकदेशी आचार्य—**स्त्रीपुंसाभ्यामिति**। स्त्री और पुंस् पद से भी वति कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि वति प्रत्यय का विधान करने पर स्त्री और पुंस् पद से प्राप्त नहीं हो रहा है?

एकदेशी—**इमाविति**। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ सूत्र में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिक का उच्चारण कर आचार्य ने स्त्री पद से नञ् और पुंस् पद से स्नञ् प्रत्यय का विधान किया है। यह विशेषविधि है। एवम् 'भवनात्' यह मर्यादा में पञ्चमी है; अतः 'धान्यानां भवने क्षत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व तक 'स्त्रीपुंसाभ्याम्' ४.१.८७ का अधिकार है। यहाँ प्रकृत वतिप्रकरण में वतिप्रत्यय सामान्य है। विशेष से सामान्य का बाध होता है। जैसे 'सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्यन्याय' में विशेष तक्रदान से सामान्य दधिदान का बाध होता है, वैसे विशेष विहित नञ् और स्नञ् प्रत्यय से सामान्य वति का बाध हो जायेगा। 'स्त्रीवत्, पुंवत्' ऐसा प्रयोग इष्ट है; अतः इसके लिए 'स्त्रीपुंसाभ्यां वत्युपसंख्यानम्' ऐसा अतिरिक्तवचन पढना चाहिये।

नैष दोषः। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न वत्यर्थे नञ्स्नञौ भवत' इति, यदयं 'स्त्रियाः पुंव'दिति निर्देशं करोति। एवमपि 'स्त्रीव'दिति न सिध्यति। योगापेक्षं ज्ञापकम्। {उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे }।

विना अतिरिक्त वचन पढे 'स्त्रीवत्, पुंवत्' की सिद्धि बताते हैं—**नैष दोष इति**। प्रकृत में नञ् और स्नञ् से वति का बाध नहीं होगा। आचार्य ने 'स्त्रियाः पुंवत्' ६.३.३४ ऐसा सूत्र पढ कर अपने आचारण से स्पष्ट किया है कि वत्यर्थप्रकरण में नञ् और स्नञ् बाधक नहीं होते हैं। यदि नञ् और स्नञ् से वति का बाध होता तो आचार्य 'स्त्रियाः पुंवत्-' ६.३.३४ सूत्र न पढते।

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। आचार्य ने 'स्त्रियाः पुंवत्-' सूत्र पढा है; अतः स्नञ् से वति का बाधाभाव की कल्पना करेंगे। इस तरह नञ् से वति का बाध होने से 'स्त्रीवत्' यह इष्ट रूप नहीं हो सकेगा; अतः इसके लिए 'वत्युपसंख्यानम्' ऐसा अतिरिक्तवचन पढना चाहिये।

उत्तरपक्षी का खण्डनभाष्य—**योगापेक्षमिति**। 'स्त्रियाः पुंवत्-' ६.३.३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्देश से उक्त ज्ञापन को हम **योगापेक्षम्**=सूत्रसापेक्ष मानेंगे। अर्थात् 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ से वति का बाध नहीं होता है। इससे जैसे स्नञ् से वति का बाध नहीं होता है, वैसे नञ् से भी वति का बाध नहीं होगा; अतः 'स्त्रीवत्' रूप भी साधु हो जायेगा। {**उपसर्गाच्छन्दसि-**}।

तस्य भावस्त्वतलौ ५.१.११९

*** स्त्रीपुंसाभ्यां त्वतलोरुपसंख्यानम् * स्त्रीपुंसाभ्यां त्वतलोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। स्त्रीभावः स्त्रीत्वं स्त्रीता। पुंभावः पुंस्त्वं पुंस्तेति।**

सूत्रार्थ—'षष्ठ्यन्त समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय हो'। घटस्य भावो घटत्वं घटता। 'त्वान्तं क्लीबम्' लि.अनु.१२० से त्वान्त को क्लीब में तथा 'तलन्तं स्त्रियाम्' लि. अनु.१७ से तलन्त को स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करना चाहिये।

वार्तिककार—**स्त्रीपुंसाभ्यामिति**। षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक स्त्री और पुंस् पद से भी भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय कहना चाहिये। 'स्त्रिया भावः स्त्रीभावः स्त्रीत्वं स्त्रीता। पुंसो भावः पुंभावः पुंस्त्वं, पुंस्ता। यहाँ विग्रहवाक्य का समास भी होता है; अतः भगवान् भाष्यकार समस्त 'स्त्रीभावः, पुंभावः' पद भी बोल रहे हैं।

किं पुनः कारणं न सिध्यति? इमौ नञ्स्नञौ 'प्राग्भवना'-दित्युच्येते, तौ विशेषविहितौ-सामान्यविहितौ त्वतलौ बाधेयाताम्।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि स्त्रीत्वं-स्त्रीता, पुंस्त्वं-पुंस्ता असिद्ध है?

उत्तरभाष्य—**इमाविति**। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ के द्वारा स्त्रीपद से नञ् तथा पुंस् पद से स्नञ् विशेष विहित है, एवं 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ यह सामान्य विहित है। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व तक 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ का अधिकार है। विशेष विहित नञ् और स्नञ् से सामान्यविहित त्व और तल् का तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा बाध प्राप्त हो रहा है जिससे 'स्त्रीता-स्त्रीत्वं, पुंस्ता-पुंस्त्वम्' यह इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो पा रहा है; अतः इष्ट रूप की सिद्धि के लिए अतिरिक्त 'स्त्रीपुंसाभ्यां त्वतलोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक पढना चाहिये।

*** वावचनं च * वावचनं च कर्त्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? नञ्स्नञावपि यथा स्यातां, स्त्रीभावः स्त्रैणं पुंभावः पौंस्नमिति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्य प्राप्त होने पर विकल्प से प्रत्ययविधानार्थ वार्तिक का अवतरण करते हैं—**वा वचनमिति**। विकल्प से त्व और तल् कहना चाहिये। इससे उक्त विग्रह में नञ् होकर 'स्त्रैणः' और स्नञ् होकर 'पौंस्नः' रूप भी होगा।

*** अपवादसमावेशाद्वा सिद्धम् * अपवादसमावेशाद्वा सिद्धमेतत्। तद्यथा—इमनिच्प्रभृतिभिरपवादैः समावेशो भवत्येवम् आभ्यामपि भविष्यति।**

अपवादसमावेशाद्वेति। अथ वा अपवाद का समावेश करने से जैसे 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' ५.१.१२२ में प्रकृतिविशेष से विहित इमनिच् आदि प्रत्ययों से अपवाद का भी समावेश होकर त्व और तल् भी होता है, वैसे प्रकृत में अपवाद प्रत्यय नञ् और स्नञ् से सामान्य प्रत्यय त्व और तल् का समावेश हो जायेगा। इस तरह 'स्त्रैणः, पौंस्नः' की तरह 'स्त्रीता-स्त्रीत्वम्, पुंस्ता-पुंस्त्वम्' भी हो जायेगा।

नैवेश्वर आज्ञापयति नाऽपि धर्मसूत्रकाराः पठन्तीमनिच्प्रभृतिभिरपवादैः समावेशो भवतीति। किं तर्हि? 'आ च त्वा'दित्यस्माद् यत्नादिमनिच्प्रभृतिभिरपवादैः समावेशो भवति, न चैतावत्राभ्यन्तरौ।

अन्य आचार्य इसका खण्डन करते हैं—**नैवेश्वर इति**। इमनिच् आदि अपवादों के द्वारा त्व और तल् का समावेश होने में ईश्वरीय आदेश भी नहीं है, तथा धर्मशास्त्रकार भी ऐसा आदेश करने के लिए नहीं देते हैं। ईश्वर के भय से विरुद्ध कर्म का भी आचरण होता है। अदृष्ट अर्थों में धर्मशास्त्र का प्रयोजन है। उसका भी आदेश नहीं है, जिससे इमनिच् आदि से त्व और तल् का समावेश किया जा सके। इस तरह यहाँ समावेश का दृष्ट अथवा अदृष्ट कोई भी प्रयोजन नहीं है; अपि तु अपवाद से सामान्य का समावेश करने के लिए सूत्रकार स्वयम् 'आ च त्वात्' ५.१.१२० सूत्र का आरम्भ कर 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक समावेश करते हैं। इस तरह 'आ च त्वात्' ५.१.१२० से ऊर्ध्व तथा 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक ही विशेष से सामान्य का समावेश होने से विशेष नञ् और स्नञ् से सामान्य त्व और तल् का समावेश नहीं हो सकेगा।

एतावप्यभ्यन्तरौ। कथम्? 'अपवादसदेशा अपवादा भवन्ती'ति एतच्चैव न जानीमः—अपवादसदेशा अपवादा भवन्तीति?

इतर आचार्य—**एतावप्यत्रेति**। त्व और तल् भी अपवाद के अभ्यन्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ सूत्र का आरम्भ कर 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व तक स्त्री और पुंस् प्रातिपदिक से नञ् और स्नञ् का अधिकार किया है। उसके अन्दर ही 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ सूत्र पढा है; अतः विशेष नञ् और स्नञ् के अभ्यन्तर ही सामान्य त्व और तल् है। इस तरह यहाँ विशेष नञ् और स्नञ् से सामान्य त्व और तल् का समावेश हो जायेगा। अपवाद के समानदेश वाला अपवाद होता है।

अन्य आचार्य—**एतच्चैवेति**। हम यही नहीं समझ पा रहे हैं कि अपवाद का समानदेश वाला भी अपवाद होता है। 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४. १.८७ विधि है, अथ वा अधिकार है, अथ वा परिभाषारूप है? तीनों में यहाँ किसी एक रूप का निश्चय नहीं हो पा रहा है। उक्त सूत्र का विधिपक्ष भी सम्भव होना ही निश्चयाऽभाव में हेतु है। यदि इसका अधिकारपक्ष तथा कार्यकालपरिभाषापक्ष माना जाये तो प्रत्येक सूत्र और प्रत्येक अर्थ में 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' ४.१.८७ की उपस्थिति होने से अपवाद नञ् और स्नञ् के द्वारा सामान्य त्व और तल् का समावेश हो जायेगा। परन्तु यदि 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व में निर्दिष्ट अर्थों की अपेक्षा कर नञ् और स्नञ् का निधान करेंगे, एवं यथोद्देश-परिभाषा मानेंगे, तो त्व और तल् का अभ्यन्तरत्व नहीं हो पायेगा। एवं 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' ४.१.८५ इत्यादि सूत्रों से विहित प्रतिसूत्र में ण्य आदि प्रत्ययों की उपस्थितिसामर्थ्य से ही बाध सम्भव है, फिर इसका बाध बताने के लिए वार्तिककार ने जो 'ण्यादयोऽर्थविशेषलक्षणाद् अण्णपवादात् पूर्व-विप्रतिषिद्धम्' महाभा. ४.१.८५ कहा था, वह व्यर्थ है।

अपि च कुत एतद्—एतावप्यभ्यन्तराविति, न पुनः पूर्वौ वा स्यातां परौ वा? एवं तर्हि वक्ष्यति—'आ च त्वा'दित्यत्र चकार-करणस्य प्रयोजनं—'नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशो भवती'ति।

आक्षेपक आचार्य—**अपि चेति**। 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्'पक्ष में 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व तक के अर्थों में स्त्री प्रातिपदिक से नञ् और पुंस् प्रातिपदिक से स्नञ् विहित है। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से पूर्व के सभी अर्थों में नञ् और स्नञ् उपस्थित होना चाहिये। 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ से भाव अर्थ में त्व और तल् विहित है। यहाँ यदि भाव पद का ज्ञान अर्थ माना जाये, अथ वा ज्ञानसामान्य अर्थ माना जाये, तो इस अर्थ में नञ् की उपस्थिति स्त्री प्रातिपदिक से और स्नञ् की उपस्थिति पुंस्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिपदिक से होगी। यहाँ 'आ च त्वात्' ५.१.१२० सूत्र से पूर्व 'तस्य भावस्त्वतौ' ५.१.११९ हो रहा है, अतः यह पूर्व है, 'आ च त्वात्' ५.१.१२० का अभ्यन्तर नहीं। यदि आप नञ् और स्नञ् को अभ्यन्तर कह रहे हैं, तो इसे 'आ च त्वात्' ५.१.१२० के पर होना चाहिये, पूर्व नहीं?

समाधानभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'आ च त्वात्' ५.१.१२० सूत्र में आचार्य ने 'च' पद का ग्रहण किया है। प्रकृतसूत्र के भाष्य पर सिद्धान्ती आचार्य 'च' करण का प्रयोजन बतायेंगे—'नञ् और स्नञ् का भी समावेश हो सके, इस लिए सूत्र में 'च'करण है'। इससे नञ् और स्नञ् भी अभ्यन्तर होगा।

* तस्य भाव इत्यभिप्रायादिष्वतिप्रसङ्गः * **तस्य भाव इत्यभिप्रायादिष्वतिप्रसङ्गो भवति। इहापि प्राप्नोति-'अभिप्रायो देवदत्तस्य मोदकेषु भोजने'। ये नो भावास्ते नो भावा—पुत्राः पुत्रैश्चेष्टन्त इति** * सिद्धं तु यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलौ * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने तस्मिन् गुणे वक्तव्ये प्रत्ययेन भवितव्यं, न चाऽभिप्रायादीनां भावाद् द्रव्ये देवदत्तशब्दो वर्त्तते।**

आक्षेपक आचार्य—**तस्य भाव इति**। यदि 'आ च त्वात्' ५.१.१२० सूत्र में चकारग्रहण से पूर्व का भी समावेश करेंगे तो 'तस्य भावस्त्वतौ' ५.१.११९ का भी समावेश होगा। यहाँ निर्दिष्ट भाव पद से अनाश्रित प्रवृत्तिविशेष जितने भी अर्थ हैं, उन सभी का ग्रहण होने से अतिव्याप्ति होगी। अतिप्रसङ्गस्थलों को स्पष्ट करते हैं—**इहाऽपीति**। 'अभिप्रायो देवदत्तस्य मोदकेषु भोजने। ये नो भावास्ते नो भावा-पुत्राः पुत्रैश्चेष्टन्त इति। भावशब्दवाच्य यावान् अर्थ का ग्रहण करने से प्रकृतवाक्य में षष्ठ्यन्त से त्व और तल् की आपत्ति होगी। 'ये नो भावाः=अस्माकं येऽभिप्रायास्ते नित्यमेवास्माकं भवन्ति' अर्थ है। यहाँ भाव पद से 'भवन्ती'ति भावाः' में 'भवतेश्चेति वक्तव्यम्' का.वा.३.१.१४३ से कर्त्ता अर्थ में ण प्रत्यय है।

समाधानभाष्य—**सिद्धं त्विति**। 'तस्य भावस्त्वतौ' ५.१.११९ सूत्र में भाव पद से द्रव्य आदि में आश्रित जाति कही जा रहा है; अतः जाति वाच्य होने पर ही षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से त्व और तल् होंगे। जैसे—'घटस्य भावो घटत्वम्' आदि। यदि भाव पद का अनाश्रित प्रवृत्तिनिमित्तविशेष वाच्य मान कर सभी अर्थों का ग्रहण करेंगे तो 'यस्य भावात् त्वलौ' ऐसा सूत्र पढना पडेगा। इससे 'पुत्रस्य भावात्' ऐसा कहने से पुत्र का भाव पितृशब्द में है;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः पुत्रभाव में 'पितृत्वम्' ऐसा प्रयोग होने लगेगा। एवं पितृभाव में पुत्रत्व ऐसा गुणग्रहण होगा। अभिप्राय आदि का विद्यमानत्व से द्रव्य में देवदत्तशब्द नहीं है; अतः वहाँ प्रत्यय का अतिप्रसङ्ग नहीं होगा। 'न च अभिप्रायादीनां भावाद् द्रव्ये देवदत्तशब्दो वर्त्तते' में भाव पद से विद्यमान तथा द्रव्य पद से लिङ्ग, संख्या आदि विशेष्यभूत सत्त्वभावापन्न अर्थ कहा जा रहा है। विशिष्ट में और धर्म में शक्ति मानने के पक्ष में शब्द के द्वारा वाच्य गुण की प्रवृत्ति बोधनार्थ होगी, अथ वा व्यक्तिमात्रपदार्थपक्ष में शब्द के द्वारा अवाच्य गुण का भाव से त्व, तल् आदि अभिधेय शब्दसन्निवेश होगा। गुणमात्रवृत्ति रूप आदि शब्दों से गुणसमवायी सामान्य अर्थों में भावप्रत्यय होगा। जैसे 'रूपत्वम्'। परन्तु गुण और गुणी में शक्त शुक्ल आदि पद हैं, अथ वा 'शुक्लवान् घटः' अर्थ में गुण और गुणी का अभेद मान कर जहाँ 'शुक्लो घटः' प्रयोग हो रहा है, उन गुणवृत्ति शुक्ल आदि पदों से गुणसमवायी सामान्य में भावप्रत्यय होगा। परन्तु जहाँ शुक्ल आदि पद मात्र गुणी अर्थ में शक्त हैं, उन से मात्र गुण अर्थ में प्रत्यय होगा। अणु, महत्, दीर्घ, ह्रस्व आदि पद नित्य ही परिमाणी अर्थ में हैं, परिमाणमात्र में नहीं; अतः अणु, महत् आदि पदों से परिमाण गुण में भावप्रत्यय है। भिन्नवर्णव्यक्तिसमवेत सामान्य और विशेष में प्रत्यय होकर षत्व, णत्व आदि रूप होंगे। गो आदि जब जातिमात्रवाची होंगे तब उनसे शब्दस्वरूप में प्रत्यय होगा। यह इस प्रकार है—अर्थजाति में शब्द-स्वरूप का निश्चय होता है—जो गो शब्द है, वही अर्थ है, इससे यहाँ प्रवृत्तिनिमित्त शब्दस्वरूप ही है, अन्य नहीं। परन्तु यदि गो आदि पद द्रव्यवाची होंगे तो गो आदि से जाति में प्रत्यय होगा-गोत्वम् आदि। यद्यपि समास, कृत्, तद्धित मात्र सम्बन्ध को नहीं कहते हैं, तथापि सम्बन्धी में शक्त होकर प्रवृत्तिनिमित्त-रूपसम्बन्ध की अपेक्षा करते हैं; अतः कृत, तद्धित और समास से सम्बन्ध में भावप्रत्यय होगा। अत एव 'राजपुरुषत्वम्' ऐसा भावप्रत्ययान्त से स्वस्वामिभाव की प्रतीति होती है। 'पाचकत्वम्' में भावप्रत्ययान्त से क्रियाकारकसम्बन्ध की प्रतीति है।

तद्धितान्त से भावप्रत्यय होने पर 'औपगवत्वम्' में अपत्यापत्यवत् सम्बन्ध का बोध हो रहा है। 'गोत्रं च चरणैः सह' म.भा. ४.१.६३ इस भाष्यवचन से अपत्यप्रत्ययान्त से भावप्रत्यय करके 'औपगवत्वम्' में भावप्रत्यय का वाच्य अर्थ जाति है, यह भी एक पक्ष है। इस विषय में 'समासकृत्तद्धितेषु सम्बन्धा-भिधानमन्यत्र रूढ्यभिन्नरूपाऽव्यभिचरितसम्बन्धेभ्यः' (प्रदीप ५.१.११९) कहा है। इस तरह रूढि, अभिन्नरूप और अव्यभिचरितसम्बन्ध से अन्यत्र समास, कृत्,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धित में भावप्रत्यय से सम्बन्धमात्र वाच्य होता है। जैसे—रूढि—'गौरखर, सप्तपर्ण और लोहितशालि आदि पद जातिविशेषाऽवच्छिन्न द्रव्यवाची हैं; इन से जाति में ही प्रत्यय होगा। एवं 'कुम्भकारत्वं, हस्तित्वम्' में जाति में ही भावप्रत्यय होगा। अभिन्नरूप-नीलवान् घटः, शुक्लवान् घटः' में 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्यः' वा.१.४.१९ से तद्धितलुक् होने पर 'नीलो घटः, शुक्लो घटः' आदि पद यद्यपि तद्धितान्त हैं, तथापि उनसे भावप्रत्यय गुण में होते हैं, सम्बन्ध में नहीं।

गुण और गुण तथा जाति और जातिमान् की तरह मतुब्लुक् होने पर नील, शुक्ल आदि गुणपद में 'सोऽयम्' यह प्रत्यभिज्ञा होगी, इस तरह यहाँ भेदसम्बन्ध नहीं बन सकेगा; अतः 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्यः' वा.१.४.१९ से मतुब्लुक् होने पर अभेद से ही द्रव्य और गुण को भी गुणी मान कर दोनों का कथन होगा, भेद्र करके मत्वर्थ की उत्पत्ति नहीं है। एवम् अव्यभिचरितसम्बन्ध—'सतो भावः सत्ता, सत्त्वम्' में जाति में ही भावप्रत्यय है। सद् वस्तु सत्तासम्बन्ध का व्यभिचार नहीं करती है; अतः सत्तासम्बन्ध की अपेक्षा किये विना सम्बन्ध में भावप्रत्यय नहीं हो सकेगा। परन्तु राजा और पुरुष का सम्बन्ध कादाचित्क होता है; अतः कादाचित्क की अपेक्षा करने वाला राजपुरुष पद स्वार्थ को कह रहा है; इस लिए राजपुरुष पद से सम्बन्ध में भावप्रत्यय होगा—'राजपुरुषत्वम्'; अतः सभी पदार्थों के रहने पर भी नित्यसमवायिनी शब्दप्रवृत्तिहेतुसत्ता ही भावप्रत्ययपदवाच्या है, सत् और सत्ता का समवाख्यसम्बन्ध नहीं। 'धवखदिरत्वम्' इत्यादि जातिद्वन्द्व से जातिसमुदाय में, एवं 'कुत्वम्' इत्यादि में संज्ञास्वरूपसंज्ञी में प्रत्यय शक्त है।

किं पुनर्द्रव्यं के गुणाः? शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा गुणास्ततोऽन्यद् द्रव्यम्। किं पुनरन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमहोस्विद् अनन्यद्? गुणस्याऽयं भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशं कुर्वन् ख्यापयत्यन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमिति।

प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ का भेदबोध के लिए प्रश्न करते हैं—**किं पुनरिति**। द्रव्य कौन है, और गुण कौन है?

उत्तरभाष्य—**शब्दस्पर्शेति**। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये गुण हैं, इससे भिन्न द्रव्य है। यहाँ शब्द आदि उपलक्षणविधया पराश्रय होने से सभी भेदक जाति आदि के भी बोध है; अतः शब्द आदि की तरह पराश्रित भेदक जाति आदि भी गुण हैं।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरन्यदिति**। आप ने शब्द आदि को गुण तथा शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि से भिन्न को द्रव्य कहा है। आप यह स्पष्ट करें कि शब्द आदि से भिन्न द्रव्य होता है, अथ वा अभिन्न होता है?

उत्तरभाष्य—**गुणस्याऽयमिति**। गुण से द्रव्य का भेद सर्वलोक प्रसिद्ध है, उसी को मान कर आचार्य ने भी भावप्रत्यय की व्यवस्था की है; अतः शब्द से द्रव्य भिन्न होता है।

अनन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यं, न ह्यन्यदुपलभ्यते। पशोः खल्वपि विशसितस्य पर्णशते न्यस्तस्य नाऽन्यच्छब्दादिभ्य उपलभ्यते।

यद्यपि शब्द आदि से द्रव्य अभिन्न होता है, फिर भी लोक में शब्द और द्रव्य का भेद देखा जाता है; अतः उसे ही मान कर भावप्रत्यय का विधान किया गया है। परन्तु वस्तुतः '**न ह्यन्यदुपलभ्यते**'=शब्द से भिन्न द्रव्य का दर्शन नहीं होता है, अपि तु शब्द और द्रव्य का अभेदेन बोध होता है। लोक में नीलादि रूप से भिन्न घटादि द्रव्य का ज्ञान नहीं होता है, अपि तु घटादि द्रव्य से अभिन्न ही नील आदि की प्रतीति होती है। इसी को और अधिक स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार अनुपलब्धिप्रमाण को दृढ करते हैं—**पशोः खल्वपीति**। अनुपलब्धि को मीमांसक तथा वैयाकरण दोनों ही प्रमाण मानते हैं। पृथक् अवयवों की उपलब्धि न होना ही अनुपलब्धि है। जैसे—एक में पृथक् अवयव उपलब्ध नहीं है। अवयवों का सन्निवेश ही पशु है, परन्तु अनेक अवयवों में विभक्त पशु का भी अभेदेन बोध होता है। एवं '**पर्णशते न्यस्तस्य**'=अनेक पत्तों में विभक्त होने पर भी वृक्ष में भेदव्यवहार नहीं होता है, अपि तु अभेदव्यवहार ही होता है; उसी तरह शब्द आदि से अभिन्न ही द्रव्य है, भिन्न नहीं।

अन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्। तत्त्वनुमानगम्यम्। तद्यथा—ओषधिवनस्पतीनां वृद्धिह्रासौ, ज्योतिषां गतिरिति।

शब्द आदि से भिन्न की अनुमानगम्यता बताते हैं—**अन्यदिति**। शब्द आदि गुण से द्रव्य भिन्न होता है, परन्तु अनुपलब्धिप्रमाण के द्वारा उसका पार्थक्येन ग्रहण नहीं होने से द्रव्यग्रहण से ही गुण का ग्रहण होता है, भाष्यकार ने इस विषय का प्रतिपादन कर दिया है। अब यहाँ '**अन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्**' इत्यादि ग्रन्थ से द्रव्य से भिन्न गुण का प्रतिपादन करते हैं। गुण से भिन्न द्रव्य अनुमानगम्य है। इसे दृष्टान्तों से स्पष्ट करते हैं—**तद्यथेति**। जैसे ओषधि, वनस्पति आदि का वृद्धि और ह्रास एवं **ज्योतिषाम्**=नक्षत्रमण्डल की गति प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं होने पर भी अनुमान गम्य है, वैसे गुण से भिन्न द्रव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की प्रत्यक्ष उपलब्धि नहीं होने पर भी दोनों का परस्पर भेद अनुमानगम्य है— 'द्रव्यं गुणेभ्योऽन्यद्, विशेषवत्त्वात्, यद्यतो विशेषवत् तत्ततोऽन्यद्, यथा लौहकार्पासे परस्परस्मात्'। जैसे नक्षत्रों की प्रत्यक्ष गति नहीं देखे जाने पर भी अनुमान के द्वारा उनमें गति का ज्ञान करते हैं, वैसे अनुमान के द्वारा गुण से भिन्न द्रव्य का ज्ञान हो जायेगा।

कोऽसावनुमानः? इह समाने वर्ष्मणि परिणाहे चाऽन्यत्तुलाग्रं भवति लोहस्याऽन्यत् कार्पासानाम्। यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। तथा-कश्चित् स्पृशन्नेव च्छिनत्ति, कश्चिल्लम्बमानोऽपि न च्छिनत्ति। यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। तथा कचिदेकेनैव प्रहारेण व्यपवर्गं करोति। कश्चिद् द्वाभ्यामपि न करोति। यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्।

प्रश्नभाष्य—**कोऽसाविति**। अनुमान में पक्ष, साध्य, हेतु और दृष्टान्त, ये चार पदार्थ होते हैं। जैसे 'पर्वतो वह्निमान् धूमाद्, महानसवत्' में पर्वत पक्ष है, वह्नि साध्य है, धूम हेतु है, एवं महानसवत् यह दृष्टान्त है। प्रकृत में गुण पक्ष है, गुणभिन्न द्रव्य साध्य है, एवम् ओषधि और वनस्पति का वृद्धि और ह्रास दृष्टान्त है। यहाँ हेतु अज्ञात है; अतः हेतुविषयक पूर्वपक्ष करते हैं। पुल्लिङ्ग में निर्दिष्ट अनुमान पद 'अनुमीयतेऽनेनेति अनुमानः'=करणघञन्त अनुमानशब्द हेतुवाची है।

उत्तरभाष्य—**इह समान इति**। समान आकृति में समान **वर्ष्मणि**= उच्छ्राय(सङ्कोच) और **परिणाह**=विस्तार में लौहनिर्मित वस्तु आकृति में समान दीखने पर भी कार्पासनिर्मित वस्तु की अपेक्षा अधिक वजनी होता है। जब दोनों समान आकृति में दीख रहे हैं तब एक का हलका एवं दूसरे का भारी होने में विशेष ही हेतु माना जायेगा। यहाँ तुलाग्र का नमन और उन्मन विशेष ही हेतु है। अन्य विशेष भी स्पष्ट करते हैं—**तथेति**। समान आकृति में दीखने वाला आयुध भी **'कश्चित् स्पृशन्नेव'**=लौहनिर्मित आयुध स्पर्शमात्र से ही छेदन करता है, परन्तु **'कश्चिल्लम्बमानोऽपि'**=कार्पासनिर्मित आयुध को यदि जोर से प्रहार भी किया जाये, तब भी नहीं काट सकता है। यहाँ इसमें हेतु द्रव्यकृतविशेष ही है। अन्य विशेष भी स्पष्ट करते हैं—**तथेति**। **'कश्चिदेकेनैव प्रहारेण'**=समान आयुध से कोई-कोई बली मनुष्य एक ही वार में बली चढाने हेतु भैंसा आदि को **व्यपवर्गम्**=दो टुकडों में कर देता है। परन्तु समान इन्द्रिय वाला, समान आकृति वाला दुर्बल व्यक्ति उसी तीक्ष्ण तलवार आदि से उसी भैंसा आदि को दो वार में भी विभाग नहीं कर पाता है। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी इसमें विशेष ही हेतु है। वैसे ही गुण से द्रव्य का भेदज्ञान में भी विशेष हेतु ही समझना चाहिये।

अथ वा यस्य गुणान्तरेष्वपि प्रादुर्भवत्सु तत्त्वं न विहन्यते तद् द्रव्यम्।

इसी को अन्य पक्ष में भी पुष्ट करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा अन्य गुणों के उत्पन्न होने पर भी जिस में **'तत्त्वं न विहन्यते'**=एकाकारा बुद्धि होती है, उसे द्रव्य कहते हैं। जैसे—आमलक श्वेत दीखता है, उबालने पर कृष्ण, पदार्थान्तरसंयोग से रक्त, पीत आदि दिखता है, फिर भी उसमें 'तदेवेदं द्रव्यम्' ऐसी एकाकारा बुद्धि ही रहती है। एवं बैर में भी गुणान्तरसंयोग होने पर एकाकारा बुद्धि ही होती है; अतः गुणाश्रय द्रव्य है, तद्वद् अन्य भी द्रव्य होंगे। यदि रूपादि आलम्बना ही आमलकबुद्धि होती तो पूर्व रूप का विनाश के अनन्तर उत्तर रूप उत्पन्न होने पर 'तदेवेदमामलकम्' ऐसी बुद्धि नहीं होती, परन्तु भिन्नाकार आमलक में भी 'तदेवेदमामलकम्' ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है; अतः रूपाश्रय द्रव्य है। जो लोग पाकज रूप आदि की उत्पत्ति होने पर द्रव्य का विनाश नहीं मानते हैं, उनके मत में प्रत्यभिज्ञा का आश्रय लेकर 'तदेवेदमामलकम्' ऐसा कहा है। परन्तु जिनके मत में पाकज रूप के उत्पन्न होने पर पूर्व द्रव्य का नाश होकर द्रव्यान्तर का आरम्भ होता है, उनके मतमें द्रव्य के भेद होने पर भी द्रव्यगत जाति अभिन्न होगी, अतः उस जाति को लेकर जातिप्रत्यभिज्ञा के द्वारा 'तदेवेदमामलकम्' ऐसा प्रयोग होगा। जाति का आधार द्रव्य है, अतः जाति के अभाव में 'तदेवेदमामलकम्' इस प्रत्यभिज्ञा का अभाव होने से द्रव्याश्रय जाति का भी बोध नहीं हो सकेगा; चूँकि जाति का बोध हो रहा है, अतः तदाश्रय द्रव्य की सत्ता है।

किं पुनस्तत्त्वम्? तद्भावस्तत्त्वम्। तद्यथा आमलकादीनां फलानां रक्तादयः पीतादयश्च गुणाः प्रादुर्भवन्ति, आमलकं' 'बदर'मित्येव भवति। अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनं-गुणसंद्रावो द्रव्यमिति।

गुण से भिन्न द्रव्य की सत्ता होने में अन्य तर्क भी देते हैं—**अन्वर्थमिति**। अर्थान्वित द्रव्यव्यवहार से भी रूपादिभिन्न द्रव्य सिद्ध है। एवं गुणसंद्राव से भी गुण से पृथक् द्रव्य की सत्ता है—सन्द्रूयते=सङ्क्रम्यते=आश्रीयते इति सन्द्रावः' यहाँ 'समियुद्रुदुवः' ३.३.२३ से कर्म अर्थ में घञ् है।

यदि तर्हि षष्ठीसमर्थाद् गुणे प्रत्यया उत्पद्यन्ते किमियता सूत्रेण? एतावद् वक्तव्यं—'षष्ठीसमर्थाद् गुण' इति। 'षष्ठीसमर्थाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुण' इतीयत्युच्यमाने द्विगुणा रज्जुस्त्रिगुणा रज्जुः—अत्रापि प्राप्नोति। नैष दोषः। किं कारणम्? गुणशब्दोऽयं बह्वर्थः। अस्त्येव समेष्ववयवेषु वर्त्तते। तद्यथा—द्विगुणा रज्जुस्त्रिगुणा रज्जुरिति। अस्ति द्रव्यपदार्थकः, तद्यथा—'गुणवानयं देश' इत्युच्यते यस्मिन् गावः सस्यानि च वर्त्तन्ते। अस्त्यप्रधाने वर्त्तते। तद्यथा-यो यत्राऽप्रधानं भवति स आह—'गुणभूता वयमत्रे'ति। अस्त्याचारे वर्त्तते। तद्यथा-'गुणवानयं ब्राह्मण' इत्युच्यते यः सम्यगाचारं करोति। अस्ति संस्कारे वर्त्तते। तद्यथा—'संस्कृतमन्नं गुणव'दित्युच्यते। अथ वा सर्वत्रैवाऽयं गुण-शब्दः समेष्ववयवेषु वर्त्तते। तद्यथा—'द्विगुणम् अध्ययनं त्रिगुण-मध्ययनमित्युच्यते। चर्चागुणान् क्रमगुणाँश्चाऽपेक्ष्य भवति न संहिता-गुणांश्चर्चागुणांश्च।

प्रश्नभाष्य—**यदि तर्हीति**। यदि गुण से भिन्न द्रव्य की सत्ता है तो 'तस्य गुणे त्वतलौ' इतना ही सूत्र रखिये। इससे षष्ठीसमर्थ से गुण अर्थ में त्व और तल् की उत्पत्ति हो जायेगी। इस तरह जब लघुन्यास से कार्य हो रहा था, तब 'यस्य गुणस्य भावात् त्वतलौ' ऐसा गुरुभूत न्यास करने की क्या आवश्यकता है?

आक्षेपभाष्य—**एतावदिति**। षष्ठीसमर्थ से गुण अर्थ में प्रत्यय कहने पर षष्ठ्यन्त रज्जुशब्द से अवयवलक्षण गुण वाच्य होने पर त्व और तल् का प्रसङ्ग होगा। यहाँ त्व और तल् कैसे प्राप्त हैं?

इसे उत्तरपक्षी आचार्य स्पष्ट करते हैं—**गुणशब्दोऽयमिति**। 'यस्य गुणस्य भावात् त्वतलौ' ऐसा ही सूत्र रखेंगे। गुणशब्द बह्वर्थ है। गुणपद सभी अवयवों में भी शक्त है। जैसे—द्विगुणा रज्जुस्त्रिगुणा रज्जुः। गुणशब्द द्रव्य अर्थ में भी शक्त है। जैसे—'गुणवानयं देशः' उसी देश को कहते हैं जिसमें गो और सस्य अधिक मात्रा में हों। गुण पद अप्रधान अर्थ में भी है; अत एव जहाँ जिसकी प्रधानता नहीं है, वहाँ वह अपने लिए कहता है—गुणभूता वयमत्र। हम यहाँ अप्रधान=गौण है। आचार अर्थ में भी गुण शब्द शक्त है। जैसे—'गुणवानयं ब्राह्मणः' यह उस ब्राह्मण को कहा जाता है जो आचारसम्पन्न होता है। संस्कार अर्थ में भी गुणशब्द शक्त है। जैसे—संस्कृत अन्न को 'गुण-वदन्नम्' ऐसा कहते हैं। चूँकि यह गुणपद बह्वर्थक है, अतः 'यस्य गुणस्य भावात् त्वतलौ' ऐसा सूत्र करने पर भी गुण शब्द से विशिष्ट गुणशब्दप्रवृत्तिनिमित्त-रूप का ग्रहण होने से अतिव्याप्ति नहीं है। अथ वा गुणशब्द सर्वत्र सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवयवों में है। जैसे—पद, क्रमलक्षण अवयवद्वयसंयोग से 'द्विगुणमध्ययनम्', एवं पद, क्रम, संहितालक्षण अवयवत्रयसंयोग से 'त्रिगुणमध्ययनम्' ऐसा प्रयोग होता है। **चर्चागुणान्**=पदविच्छेदगुणों एवं क्रमगुणों की अपेक्षा कर 'द्विगुणम् अध्ययनम्' 'त्रिगुणमध्ययनम्' ऐसा प्रयोग होता है, संहितागुण और चर्चागुण की अपेक्षा से नहीं। पदक्रमाध्यायी को 'द्विगुणमधीते' कहा जाता है। यदि वह वेदान्तरसंहिता अथ वा वेदान्तरपद का अध्ययन करता है तो अध्ययनक्रम के भेद से एक ही अध्ययन को द्विगुण नहीं होने से उसके लिए 'द्विगुणमधीते' ऐसा प्रयोग नहीं होगा। यद्यपि क्रमपाठ में पदों की आवृत्ति होने से अधिक गुण भी होता है, तथापि युक्तितः साम्य उपपन्न हो जायेगा। 'गुणवानयं देशः' में भी गो, सस्य आदि देश का अवयव होने से देश के सम अवयव कहे जाते हैं। जैसे देश का अवयव अर्थक्रियाकारी है, वैसे गो, सस्य आदि भी अर्थक्रियाकारी हैं; अतः उपचारवशात् गो, सस्य आदि को देशावयवत्व कहा है। 'गुणभूतावयवम्' में भी गृह आदि अवयवसदृश आत्मनिर्देश है। 'गुणवानयं ब्राह्मणः' इत्यादि में भी ब्राह्मण आदि शब्दार्थ गुणसमुदाय एकदेशाचारवाची गुणपद है। यहाँ आचार का साम्य है।

यद्येवं—'गुणवदन्न'मिति गुणशब्दो नोपपद्यते, न ह्यन्नस्य रूपादयो गुणाः समा भवन्ति। नाऽवश्यं वर्ष्मतः परिमाणत एव वा साम्यं भवति। किं तर्हि? युक्तितोऽपि। आतश्च युक्तितो-यो हि मुद्गप्रस्थे लवणप्रस्थं प्रक्षिपेन्नाऽदो युक्तं स्यात्। यदि तावददेरन्नं नादोऽत्तव्यं स्यात्, अथाऽनितेरन्नं नाऽदो जग्ध्वा प्राण्यात्।

आक्षेपभाष्य—**यद्येवमिति**। यदि प्रमाणतः अवयव को साम्य मान कर गुणशब्द की प्रवृत्ति मानेंगे तो 'द्विगुणा रज्जुस्त्रिगुणा रज्जुः' में गुणशब्द उपपन्न हो जायेगा। परन्तु प्रमाणतः साम्य नहीं होने से 'गुणवदन्नम्' में गुणपद उपपन्न नहीं हो सकेगा। यहाँ अन्न का रूप आदि गुण सम नहीं है।

अन्य आचार्य—**नावश्यमिति**। यहाँ यह भी आवश्यक नहीं है कि **वर्ष्मतः**= उच्छ्राय(अल्पपरिमाण) अथ वा **परिमाणतः**=महत् परिमाण से भी अन्न के गुण, रूप आदि साम्य ही हों। अपि तु **युक्तितः**= अर्थक्रिया में जो योग्य है, वह भी सम होता है; अतः अर्थक्रिया में योग्य सम को लेकर अन्न के रूप आदि गुण सम हो जायेंगे। युक्तितः साम्य नहीं मानने पर जो दोष आ रहा है, उसे स्पष्ट करते हैं—**यदि तावदिति**। यदि युक्तितः साम्य नहीं मानेंगे तो वह अन्नपदवाच्य नहीं होगा; पुनः उसकी गुणवत्ता कैसे हो सकती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है? युक्तितः साम्य होने पर ही अद भक्षणे धा.पा.१०११ धातु से कर्म में क्त प्रत्यय करके 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' ८.२.४२ से नत्व होकर अन्न पद है। इस तरह **अत्तव्यम्**=भक्षण करने योग्य ही अन्न होता है। एवम् अन प्राणने धा.पा.१०७० से अन्नशब्द निष्पन्न है, जिसे खाकर मनुष्य प्राणवान् होता है। यदि युक्तितः साम्य नहीं मानेंगे तो अन्न भक्षणीय और प्राणरक्षण में समर्थ नहीं हो सकेगा; अतः 'गुणवदन्नम्' में भी युक्तितः रूप आदि गुणों को साम्य मानना चाहिये।

शुक्लादिषु तर्हि वर्त्त्यभावाद् वृत्तिर्न प्राप्नोति, शुक्लत्वं शुक्लतेति। किं पुनः कारणं शुक्लादय एवोदाह्रियन्ते, न पुनर्वृक्षादयोऽपि, वृक्षत्वं वृक्षतेति।

आक्षेपक आचार्य अन्यत्र अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**शुक्लादिषु तर्हीति**। 'पटः शुक्लः' की तरह 'पटस्य शुक्लः' ऐसा भिन्नविभक्ति प्रयोग भी देखा जाता है; अतः शुक्ल आदि गुणमात्रवचन भी हैं। 'पटस्य शुक्लत्वम्' इत्यादि में गुण अर्थ में ही त्व, तल् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं; फिर जब शुक्ल आदि पद स्वयं गुण अर्थ में शक्त हैं, तब उनका गुण में ही प्रवृत्तिनिमित्त कैसे सम्भव है? परन्तु शुक्ल आदि पदों को गुणसमवायी में शक्त मानेंगे तो सामान्य अर्थ में त्व, तल् आदि प्रत्यय हो जायेंगे। परन्तु द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। इस तरह यदि शुक्ल आदि पदों को गुण अर्थ में मानेंगे तो **वर्त्त्यभावात्**=(वर्त्तनं वर्त्ती) वृत्ति नहीं होने से शुक्ल आदि पदों से त्व, तल् आदि प्रत्यय अप्राप्त होंगे जिससे 'शुक्लत्वं, शुक्लता' की असिद्धि होगी।

आक्षेपक आचार्य—**किं पुनरिति**। आप शुक्ल आदि से ही 'शुक्लता, शुक्लत्वम्' की असिद्धि क्यों दे रहे हैं? वृक्ष आदि शब्द भी जातिमात्रवचन हैं, अतः उससे पुनः जाति अर्थ में प्रत्ययों की प्राप्ति नहीं होने से 'वृक्षत्वं, वृक्षता' की भी असिद्धि हो रही है। आप को यहाँ भी अप्राप्ति दीखानी चाहिये थी।

अस्त्यत्र विशेषः, उभयवचना ह्येते द्रव्यं चाहुर्गुणञ्च। यो द्रव्यवचनास्ततो वृत्तिर्भविष्यति। इमेऽपि तर्हि उभयवचनाः। कथम्? आरभ्यते मतुब्लोपो 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्भवती'ति। यतो द्रव्यवचनास्ततो वृत्तिर्भविष्यति। डित्थादिषु तर्हि वर्त्त्यभावाद् वृत्तिर्न प्राप्नोति-डित्थत्वं डित्थता। डाम्भिट्टता डाम्भिट्टत्वमिति। तत्राऽपि— 'कचित् प्राथमकल्पिको डित्थो डाम्भिट्टश्चे'ति। तेन कृतां क्रियां गुणान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वा यः कश्चित् करोति स उच्यते-डित्थत्वं त एतड्डाम्भिट्टत्वं त एतत्। एवं डित्थाः कुर्वन्त्येवं डाम्भिट्टाः कुर्वन्ति।

'वृक्षत्वं, वृक्षता' में प्रत्यय की अप्राप्ति नहीं दिखाने का कारण स्पष्ट करते हैं—**अस्त्यत्रेति**। वृक्ष आदि पद द्रव्यवचन तथा गुणवचन दोनों हैं। चूँकि द्रव्यवचन भी है; अतः उससे प्रवृत्तिनिमित्त जाति वाच्य होने पर प्रत्यय हो जायेगा।

इतर आचार्य 'शुक्लत्वं, शुक्लता' आदि में प्रत्यय का अप्राप्तिवारण करते हैं—**इमेऽपि तर्हीति**। शुक्ल आदि पद भी **उभयवचनाः**=गुणवचन एवं द्रव्य-वचन हैं। 'शुक्लोऽस्ति यस्याऽसौ शुक्लवान् घटः' अर्थ में 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्यः' वा.१.४.३६ से मतुप् का लुक् होकर 'शुक्लो घटः' प्रयोग होता है; अतः यहाँ शुक्ल पद द्रव्यवचन है। उससे प्रवृत्तिनिमित्त जाति वाच्य होने पर 'शुक्लत्वं, शुक्लता' में प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी।

आक्षेपक आचार्य—**डित्थादिषु तर्हीति**। डित्थ आदि यदृच्छाशब्द हैं। पुरुष की इच्छावशेन इनकी प्रवृत्ति है। यहाँ डित्थ आदि शब्दों में कुछ भी अर्थगत प्रवृत्तिनिमित्त की अपेक्षा नहीं है; अतः डित्थ आदि से अर्थगत प्रवृत्तिनिमित्त का सर्वथा अभाव होने से 'डित्थस्य भावो डित्थत्वं, डित्थता, डाम्भिट्टस्य भावो डाम्भिट्टत्वं, डाम्भिट्टता' में प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा।

उत्तरपक्षी—**तत्राऽपीति**। 'प्रथमकल्पे भवः प्राथमकल्पिकः'=प्रथम कल्प में डित्थ और डाम्भिट्ट नाम का कोई व्यक्ति था; उसके द्वारा की गयी क्रिया और गुण को जो कोई करता है, वह डित्थ और डाम्भिट्ट कहलाता है। इसी तरह डित्थ और डाम्भिट्ट सहचरित गुण और क्रिया भी देखी जाती है। उस गुण और क्रिया का अन्यत्र भी व्यवहार होने से डित्थ आदि शब्दों का गुण और क्रिया ही प्रवृत्तिनिमित्त है; अतः उसके वाच्य होने पर त्व, तल् आदि प्रत्यय हो जायेंगे।

यस्तर्हि प्राथमकल्पिको डित्थो डाम्भिट्टश्च तस्य वर्त्त्यभावाद् वृत्तिर्न प्राप्नोति। नैष दोषः। यथैव तस्य काथञ्चित्कः प्रयोग एवं वृत्तिरपि भविष्यति।

आक्षेपक आचार्य—**यस्तर्हीति**। यदि प्राथमकल्पिक डित्थ आदि के गुण और क्रिया को वर्त्तमानकालिक डित्थ में आरोप कर जाति में प्रत्यय करेंगे तो जो प्राथमकल्पिक डित्थ है, उसमें किसी डित्थ का गुण और क्रिया का अतिदेश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होने से प्राथमकल्पिक डित्थ से प्रवृत्तिनिमित्त जाति अर्थ में प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। 'स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा' १.१.६८ से शब्द का वाच्य अर्थ शब्द भी होता है, ऐसा मान्य है; अतः डित्थ आदि शब्दों का जैसे काथञ्चित्क प्रयोग है, वैसे शब्दस्वरूप को अर्थ में आरोप कर प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी। विनयादिगण में कथञ्चित् शब्द का प्रयोग है, अतः 'कथञ्चिदेव काथञ्चित्कः' में 'विनयादिभ्यश्च' ५.४.३४ से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय है।

* यद्वा सर्वे भावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावस्तदभिधाने * **किमेभिस्त्रिभिर्भावग्रहणैः क्रियते? एकेन शब्दः प्रतिनिर्दिष्यते द्वाभ्यामर्थः। यद्वा सर्वे शब्दाः स्वेनाऽर्थेन भवन्ति स तेषामर्थ इति तदभिधाने वा त्वतलौ भवत इति वक्तव्यम्। नैवमन्यत्र भवति। न हि 'तेन रक्तं रागा'दित्यत्र शब्देन रक्ते प्रत्यया उत्पद्यन्ते। शब्देऽसम्भवादर्थेन रक्ते प्रत्यया भविष्यन्ति। तत्तर्ह्यन्यतरत् कर्त्तव्यं सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—'तस्य भाव इत्यभिप्रायादिष्वतिप्रसङ्ग' इति?** * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्?** * अनभिधानादिति * **अनभिधानादभिप्रायादिषूत्पत्तिर्न भविष्यति।**

इसी को अन्य प्रकार से भी सिद्ध करते हैं—**यद्वा सर्व इति**। यहाँ वार्तिकार्थ इस प्रकार है—'**सर्वे भावाः**=भवन्ति ये ते भावाः=शब्दाः (भवतेश्च' वा.३.१.१४३ से कर्त्ता अर्थ में भू धा.पा.१ से ण प्रत्यय) **स्वेन भावेन**=स्वशब्दवाच्य अर्थ के द्वारा (भवति येनासौ भावः=अर्थः, करण में तृतीया) जिस प्रवृत्तिनिमित्त से **भवन्ति**=वाच्यार्थबोधन के लिए प्रयुक्त होते हैं, उन शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्तरूप अर्थ ही भाव है; अतः **तदभिन्ने**=उन प्रवृत्तिनिमित्तरूप अर्थ के वाच्य होने पर अर्थ को उद्देश्य कर तादृश अर्थ का वाचक शब्द से त्व, तल् आदि प्रत्यय होंगे।

प्रश्नभाष्य—**किमेभिस्त्रिभिरिति**। 'यद्वा सर्वे भावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावस्तदभिधाने' इस वार्तिक में तीन वार भाव पद पढा गया है। 'यद्वा सर्वे भावाः' में पहला, 'स्वेन भावेन भवन्ति' में दूसरा, 'स तेषां भावस्तदभिधाने' में तीसरा भाव पद है। प्रकृत वार्तिक में तीन वार भाव पद का ग्रहण कर इन तीन भाव पदों से कौन-कौन सा अर्थ वाच्य है?

उत्तरभाष्य—**एकेन शब्द इति**। 'यद्वा सर्वे भावाः' में प्रयुक्त भावपद से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द का निर्देश है। **द्वाभ्यामर्थः**='स्वेन भावेन भवन्ति'घटक भावपद तथा 'स तेषां भावस्तदभिधाने'=घटक भावपद से अर्थ का निर्देश है। इस तरह भावपद का निर्वचन कर भाष्यकार स्वयम् उक्त वार्तिक का अर्थ बताते हैं—**यद्वा सर्वे शब्दा इति**। सभी शब्दों के प्रयोग में उनका प्रवृत्तिनिमित्तरूप अर्थ ही कारण है; अतः प्रवृत्तिनिमित्तरूप अर्थ के वाच्य होने पर उसका वाचक शब्द से उस अर्थ में त्व, तल् प्रत्यय होंगे। इससे प्रवृत्तिनिमित्तरूप अर्थ वाचकशब्द का सम्बन्धी है, यह अर्थ आया। इससे प्रकृति और प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध दिखाया गया है। अन्यत्र शब्दार्थसम्बन्धी प्रत्ययार्थ का निर्देश है, शब्दसम्बन्धी का नहीं। अन्यत्र शब्दसम्बन्धी प्रत्ययार्थ के असम्भव होने से निर्देश नहीं है। 'तेन रक्तं रागात्' ४.२.१ में प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध नहीं है। यहाँ शब्दार्थ में प्रत्यय असम्भव है, अतः रक्त अर्थ में प्रत्यय होता है।

अन्य आचार्य—**तत्तर्ह्यन्यतरदिति**। आप ने 'यस्य गुणस्य भावात्' ऐसा भी पढ दिया, तथा 'यद्वा सर्वे भावाः स्वेन भावेन भन्ति स तेषां भावस्तदभिधाने' भी पढ दिया। यहाँ किसी को भी सूत्र माना जा सकता है। इससे सूत्रभेदरूप दोष होगा।

यथान्यासवादी आचार्य—**यथान्यासमेवेति**। सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। यथान्यासपक्ष में आप ने 'तस्य भाव इत्यभिप्रायादिष्वतिप्रसङ्गः' ऐसा कह कर 'अभिप्रायो देवदत्तस्य मोदकेषु भोजने' इत्यादि में त्व, तल् की आपत्ति दिखायी थी, इस अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए मैं पहले ही बता चुका हूँ—**उक्तं वेति**। अभिप्राय, यदृच्छा आदि अर्थों में शब्दों से प्रत्यय का विधान नहीं है; अतः अनभिधान होने से अभिप्राय आदि में त्व, तल् की अतिव्याप्ति नहीं है। 'गोत्वम्, अश्वत्वम्' इत्यादि कहने पर अभिप्राय आदि अर्थों की उपस्थिति नहीं होती है, अपि तु गो-अश्वादिगत प्रकार=जाति अर्थ की उपस्थिति होती है। 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ सूत्र में 'भवन्ति अनेनेति भावाः' में 'कृत्यल्युटो बहुलम्' ३.३.११३ सूत्र से बाहुलकात् करण अर्थ में भू सत्तायां धातु से घञ् प्रत्यय होकर भावशब्द निष्पन्न है। यहाँ करण के द्वारा शब्द-प्रवृत्तिनिमित्त का ग्रहण होने से द्रव्यवाची शब्दाभिधायी अथ वा शुक्ल आदि से त्व, तल् आदि प्रत्यय होंगे।

* त्वतल्भ्यां नञ्समासः पूर्वविप्रतिषिद्धं त्वतलोः स्वरसिद्ध्यर्थम् * **त्वतल्भ्यां नञ्समासो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। किं प्रयोजनम्? 'त्वतलोः स्वरसिद्ध्यर्थम्'। त्वतलोः स्वरसिद्धिर्यथा स्यात्। त्वतलोरवकाशः-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावस्य वचनं प्रतिषेधस्याऽवचनम्—ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता। नञ्समासस्याऽवकाशः—प्रतिषेधस्य वचनं भावस्याऽवचनम्—अब्राह्मणः। अवृषलः। उभयवचने उभयं प्राप्नोति—अब्राह्मणत्वं अब्राह्मणता। नञ्समासो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन।

वार्तिककार—**त्वतल्भ्यामिति**। नञ्समास और त्व, तल् के युगपत् प्राप्त होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा नञ्समास से स्वरसिध्यर्थ त्व और तल् का बाध कहना चाहिये। इससे त्व और तल् की स्वरसिद्धि होगी। अन्यथा परत्वात् यदि त्व और तल् होने के पश्चात् नञ्समास करेंगे तो अव्ययपूर्वपद प्रकृतिस्वर के द्वारा आद्युदात्त होने लगेगा। परन्तु नञ्समास होने पर यदि त्व प्रत्यय करते हैं तो प्रत्ययस्वर के द्वारा अन्तोदात्त होता है। तल् प्रत्यय होने पर 'लिति' ६.१.१९३ स्वर के द्वारा मध्योदात्त होता है, एतदर्थ पूर्वविप्रतिषेध आश्रित है।

इसे उदाहरणों स्पष्ट करते हैं—**त्वतलोरवकाश इति**। 'ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता' में त्व और तल् चरितार्थ है, एवम् 'अब्राह्मणः, अवृषलः' में नञ्समास चरितार्थ है। 'न ब्राह्मणस्य भावः' में नञ्समास तथा त्व, तल् दोनों की प्राप्ति एक- कालावच्छेदेन हो रही है। अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश होने से दोनों का समान बल है; अतः पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'नञ्' २.२.६ सूत्र से 'तस्य भावस्त्वतलौ' ५.१.११९ का बाध हो जायेगा। इस तरह पहले समास होगा तथा समस्त 'अब्राह्मण'-पद से त्व और तल् होकर 'ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता' प्रयोग है। यहाँ समासोत्तर प्रत्यय होने से त्व प्रत्यय होने पर प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त तथा तल्प्रत्यय होने पर लित्स्वर से मध्योदात्त होगा। तदर्थ यहाँ पूर्वविप्रतिषेध आश्रित है।

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। नाऽत्र त्वतलौ प्राप्नुतः। किं कारणम्? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति, यावता ब्राह्मणशब्दः प्रतिषेधमपेक्षते।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या उक्त पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्य इति**। यह पूर्वविप्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है। 'न ब्राह्मणस्य भावः' में असामर्थ्य होने से त्व और तल् की प्राप्ति नहीं होगी। यहाँ असामर्थ्य स्पष्ट करते हैं—**सापेक्षमिति**। सापेक्ष असमर्थ होता है। 'न ब्राह्मणस्य भावः' में प्रत्ययार्थ की ही प्रधानता होगी। जब कि यहाँ ब्राह्मणपदार्थ नञर्थ की अपेक्षा कर रहा है; अतः सापेक्ष होने से जैसे 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः' में वृत्ति का अभाव है, वैसे नञर्थ में सापेक्ष होने से असामर्थ्यात् यहाँ तद्धितवृत्ति प्राप्त नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नञ्समासोऽपि तर्हि न प्राप्नोति। किं कारणम्? कथमसामर्थ्यादेव। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थं भवती'ति, यावता ब्राह्मणशब्दो भावमपेक्षते।

अन्य आचार्य—**नञ्समासेऽपीति**। यदि 'न ब्राह्मणस्य भावः' में असामर्थ्य होने से तद्धितवृत्ति अप्राप्त है तो 'न ब्राह्मणः अब्राह्मणस्तस्य भावोऽब्राह्मणत्वम्' में भी ब्राह्मण पद भाव की अपेक्षा करने से सापेक्ष है; अतः यहाँ समास नहीं होना चाहिये।

प्रधानमत्र तदा ब्राह्मणशब्दः, भवति च प्रधानस्य सापेक्षस्याऽपि समासः। इदं तर्हि प्रयोजनं-'नञ्समासादन्यो भाववचनः स्वरोत्तरपदवृद्ध्यर्थ'मिति वक्ष्यति, तत्र व्यवस्थार्थमिदं वक्तव्यम्।

उत्तरभाष्य—**प्रधानमत्रेति**। 'न ब्राह्मणः अब्राह्मणः' में तत्पुरुष है। तत्पुरुष में उत्तरपद प्रधान होने से यहाँ ब्राह्मण पद प्रधान है। प्रधान ब्राह्मण पद भाव अर्थ में सापेक्ष है। सापेक्ष प्रधान का भी समास होता है; अतः प्रकृत में नञ्समास हो जायेगा।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। इसी सूत्र पर वार्तिककार 'नञ्समासादन्यो भाववचनः स्वोत्तरपदवृद्ध्यर्थम्' कहेंगे। इस वार्तिक पर व्यवस्था के लिए पूर्वविप्रतिषेध कहना चाहिये। इसका भाव इस प्रकार है—नञ्समास और त्व-तल् प्रत्यय एक साथ प्राप्त होने पर न्याय से ही पहले नञ्समास सिद्ध हो रहा है। इस तरह नञ्समास सिद्ध होने पर त्व-तल्वचन नियमार्थक होगा—'त्वतलोरेव कर्त्तव्ययोः पूर्वं नञ्समासो भवति, नाऽन्यत्र भावप्रत्यये' इति। इस नियम से अन्य भावप्रत्यय नञ्समास से पूर्व होगा तथा बाद में नञ्समास। यहाँ नियमार्थवचन से ही न्याय का बाध हो रहा है। इससे त्व-तल् से भिन्न 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' ५.१.१२२ इत्यादि से जहाँ 'अप्रथिमा' इत्यादि में प्रत्यय तथा नञ्समास दोनों विधेय हैं, वहाँ पहले तद्धितोत्पत्ति तथा बाद में नञ्समास होने से अव्ययपद पूर्वप्रकृतिस्वर के द्वारा आद्युदात्त नञ्स्वर होता है। एवम् 'अशौक्ल्यम्' इत्यादि में पहले 'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च' ५.१.१२३ से तद्धितोत्पत्ति होगी तथा बाद में नञ्समास होने पर उत्तरपद की वृद्धि सिद्ध होगी।

*** वा च्छन्दसि * वा च्छन्दसि नञ्समासो वक्तव्यः। 'निर्वीर्यतां वै यजमान आशास्ते अपशुतां गौः। अयोनित्वाय। अशिथिलत्वाय। अगोतामनपत्यताम्'। भवेदिदं युक्तमुदाहरणम्—'अयोनित्वाय' 'अशि-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थिलत्वाये'ति। इदं त्वयुक्तम्—'अपशुता'मिति। न ह्यसौ समास-भावमाशास्ते। किं तर्हि? उत्तरपदाभावमाशास्ते—न पशोर्भावः पशुर्मा भूवमिति।

वा च्छन्दसीति। वेद में कहीं-कहीं पर पहले त्व-तल्, बाद में नञ्समास; तथा कहीं-कहीं पर पहले नञ्समास तथा बाद में त्व-तल् प्रत्यय कहना चाहिये। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**निर्वीर्यतामिति**। 'अपशुताम्, अयानित्वाय, अशिथिलत्वाय, अगोताम्, अनपत्यताम्' में सर्वत्र पहले भावार्थ त्व और तल् प्रत्यय है तथा बाद में नञ्समास है; अतः यहाँ सर्वत्र नञ्स्वर होगा।

आक्षेपभाष्य—**भवेदिदमिति**। 'अयोनित्वाय, अशिथिलत्वाय' यह तद्धितोत्पत्ति के अनन्तर नञ्समास का वैदिक उदाहरण हो सकता है, परन्तु 'अपशुताम्' यह युक्त उदाहरण नहीं है। यह समास भाव की आशा नहीं करता है। यहाँ समास पद से समासार्थ जात्यन्तरयुक्त वस्तु कहा जा रहा है। यह 'अपशु'पद तद्भाव को नहीं कह रहा है। यहाँ अपशुपद से पशुसदृश अर्थ वाच्य है। इसे ही स्पष्ट करते हैं—**किं तर्हि उत्तरपदाभावमिति**। यहाँ उत्तरपदार्थ पशुत्व के अभाव की आशा कर रहा है—'हम पशु न हों'। इस तरह 'वा च्छन्दसि' पद के अभाव में भी पहले भावार्थक प्रत्यय तथा बाद में नञ्समास सिद्ध हो जा रहा है। यहाँ 'न पशोर्भावः अपशुत्वम्' ऐसा कहने से नञ् का भाव के साथ सम्बन्ध है, पशु के साथ नहीं।

* नञ्समासादन्यो भाववचनः स्वरोत्तरपदवृद्ध्यर्थम् * **नञ्समासादन्यो भाववचनो भवति विप्रतिषेधेन। किं प्रयोजनम्? 'स्वरोत्तरपद-वृद्ध्यर्थम्'। स्वरार्थमुत्तरपदवृद्ध्यर्थं च। स्वरार्थं तावद्-अप्रथिमा अम्रदिमा। उत्तरपदवृद्ध्यर्थम्—अशौक्ल्यम्। अकार्ष्ण्यम्।**

विप्रतिषेधवादी—**नञ्समासादन्य इति**। नञ्समास और त्व-तल्भिन्न-भाव-प्रत्ययार्थतद्धित दोनों के एक साथ प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा भाव-प्रत्यय इमनिच् आदि से नञ्समास का बाध कहना चाहिये। इस बाध का प्रयोजन स्वर तथा उत्तरपद की वृद्धि है। जैसे—स्वरार्थ—'अप्रथिमा, अम्रदिमा' में नञ्स-मास तथा 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' ५.१.१२२ की एककालावच्छेदेन प्रवृत्ति हो रही है। यहाँ पहले भावप्रत्यय इमनिच् होगा तथा बाद में नञ्समास। इससे अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा आद्युदात्त नञ्स्वर होगा। यदि यहाँ पहले समास करते तथा बाद में तद्धितोत्पत्ति तो 'चितः' ६.१.१६३ के द्वारा अनिष्ट अन्तोदात्त होता। उत्तरपदवृद्ध्यर्थपरविप्रतिषेध का उदाहरण है—अशौक्ल्यम्, अकार्ष्ण्यम्'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ नञ्समास तथा 'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च' ५.१.१२३ की समानकाल में प्रवृत्ति होकर परविप्रतिषेध के द्वारा पहले ष्यञ् तथा बाद में नञ्समास होगा। पहले ष्यञ् होने से ञिल्लक्षणा वृद्धि होकर 'शौक्ल्यं, कार्ष्ण्यम्' के साथ नञ्समास होने से उत्तरपदवृद्धिघटित 'अशौक्ल्यं, अकार्ष्ण्यम्' रूप होता है। {तस्य-}।

आ च त्वात् ५.१.१२०

किमर्थश्चकारः? अनुकर्षणार्थः। त्वतलावनुकृष्येते। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृतौ त्वतलावनुवर्त्तिष्येते। अत उत्तरं पठति * आ च त्वादिति चकारकरणमपवादसमावेशार्थम् * **आ च त्वादिति चकारकरणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अपवाद- समावेशार्थम्'। इमनिच्प्रभृभिर-पवादैः समावेशो यथा स्यात्।**

यहाँ 'त्वतलौ' ५.१.११९ का अनुवर्त्तन है। 'आङ्' यह अव्यय मर्यादा अर्थ में है। 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक त्व, तल् का अधिकार है। वक्ष्यमाण विशेषविहितप्रत्ययों से त्व, तल् का बाध न हो, गुणवचन आदि से कर्म अर्थ में भी त्व, तल् हो सके, इसके लिए सूत्र है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। 'आ त्वात्' इतना ही सूत्र रखिये, 'च'ग्रहण क्यों करते हैं? 'त्वतलोः' में स्वरितत्वप्रतिज्ञा है, अतः स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर उत्तरसूत्र में 'त्वतलोः' की अनुवृत्ति सिद्ध है। इस तरह जब अनुवृत्ति सिद्ध हो रही थी, तब उसी का विधान करने के लिए आचार्य प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?, ऐसा सम्पूर्ण सूत्र पर आक्षेप हो सकता था, परन्तु उसने ऐसा इसलिए नहीं किया कि 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२३ से कर्म अर्थ में ष्यञ् आदि का विधान है। विशेषविहित होने से ष्यञ् त्व और तल् का अपवाद होगा। तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा विशेष से सामान्य का बाध विहित है; अतः प्रकृत में भी विशेष्य ष्यञ् से सामान्य त्व, तल् का बाध होने लगेगा। परन्तु जब विशेषसूत्र 'आ च त्वात्' ५.१.१२० पढते हैं, तब विशेष्य ष्यञ् से सामान्य त्व, तल् का समावेश होता है, बाध नहीं। इस तरह सूत्र का सामान्यसमावेशार्थ प्रयोजन मानते हुए पूर्वपक्षी आचार्य ने मात्र 'च'ग्रहण पर ही आक्षेप किया है, सम्पूर्ण सूत्र पर नहीं। एवं दूसरी वात यह भी है कि यदि प्रकृतसूत्र का आरम्भ नहीं किया जाये तो यह ज्ञान करना अत्यन्त कठिन होगा कि उत्तरसूत्रों में त्व, तल् की अनुवृत्ति है, अथवा नहीं?; जब कि प्रकृतसूत्र का आरम्भ करने पर सम्पूर्ण सन्देह निवृत्त हो जाता है; अतः प्रकृतसूत्र का आरम्भ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**अनुकर्षणार्थ इति**। त्व, तल् का अनुकर्षण हो सके, इसके लिए प्रकृतसूत्र में 'च'ग्रहण है। अन्यथा विधेय का ग्रहण नहीं होने से 'आ त्वात्' यह अवधिनिर्देश व्यर्थ होता।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यदि 'च'ग्रहण नहीं करेंगे तो 'आ त्वात्' ऐसा अवधिमात्र का निर्द्देश होगा। विधेयनिर्द्देश के विना अवधिनिर्द्देश अनुपपन्न है; अतः अर्थापत्तिप्रमाण से विधेय त्व, तल् का आक्षेप हो जाने से विधेय अर्थ की उपलब्धि हो जायेगी, इसके लिए 'च'ग्रहण आवश्यक नहीं है। वैयाकरणों को अर्थापत्तिप्रमाण मान्य है। जैसे—'न मु ने' ८.२.३ सूत्र पर नाभावाऽन्यथाऽनुपपत्त्या मुत्व का असिद्धत्वाभाव कल्पित है, वैसे प्रकृत में अर्थापत्त्या विधेय का लाभ सम्भव है; अतः उसके लिए 'च'ग्रहण आवश्यक नहीं है।

उत्तरभाष्य—**अत उत्तरमिति**। अपवादप्रत्यय 'नञ्स्नञौ-'४.१.८७ का समावेश के लिए 'च'ग्रहण है। इमनिच्प्रभृति अपवादप्रत्ययों से सामान्य नञ्, स्नञ् ४.१.८७ का समावेश हो सके, इसके लिए 'च'ग्रहण है। यदि 'च'ग्रहण नहीं करते तो 'आ त्वात्' इतना ही मात्र सूत्र होता। इससे 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ से पूर्व के अर्थों में त्व, तल् हो, यही अर्थ होता। इस तरह गुणवचन से कर्म अर्थ में ही त्व, तल् प्रत्यय होगा, अपवाद के साथ उसका समावेश नहीं हो सकेगा। 'च'ग्रहण करने पर अपवाद के साथ सामान्य का समावेश होता है, बाध नहीं।

नैतदस्ति प्रयोजनम्। 'आ त्वा'दित्येवेमनिच्प्रभृतिभिरपवादैः समावेशो भविष्यति। इदन्तर्हि प्रयोजनम्—आ त्वाद्याः प्रकृतयस्ताभ्यः त्वतलौ यथा स्यातां यतश्चोच्येते। एतदपि नाऽस्ति प्रयोजनम्। आ त्वादित्येव आ त्वाद्याः प्रकृतयस्ताभ्यः त्वतलौ भविष्यतो यतश्चोच्येते। इदन्तर्हि प्रयोजनम्—आ त्वाद्येऽर्थास्तत्र त्वतलौ यथा स्यातां यतश्चोच्येते। एतदपि नाऽस्ति प्रयोजनम्। आ त्वा'दित्येव आ त्वाद्यास्तत्र त्वतलौ भविष्यतो यत्र चोच्येते।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। इमनिच् प्रभृति अपवादप्रत्ययों से सामान्य नञ्, स्नञ् ४.१.८७ का समावेश 'च'ग्रहण का प्रयोजन नहीं हो सकता है। यदि 'आ त्वात्' इतना ही सूत्र रखेंगे तो 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक जो प्रकृति, उससे परमें त्व, तल् हो' ऐसा अर्थ होगा; इससे भी अपवाद इमनिच् आदि से सामान्य नञ्, स्नञ् ४.१.८७ का समावेश हो जायेगा।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'ब्रह्मणस्त्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तक की जो गुणवचन ब्राह्मणादि प्रकृति, उससे परमें कर्म अर्थ वाच्य होने पर त्व, तल् हो सके, इसके लिए 'च'ग्रहण है।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। 'च'ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। 'आ त्वात्' ऐसा मात्र अवधि का निर्देश करने पर भी 'ब्रह्मणत्वः' ५.१.१३६ से पूर्व में निर्दिष्ट गुणवचन ब्राह्मण आदि प्रकृति से त्व, तल् प्रत्यय भी हो जायेंगे।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'ब्रह्मणत्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक के निर्दिष्ट अर्थ में त्व, तल् हो सके, तदर्थ 'च'ग्रहण है। मात्र 'कर्मणि' ५.१.१२३ एक ही अर्थ का निर्देश है। परन्तु भाष्यकार 'योऽर्थाः' ऐसा बवुवचननिर्देश कर रहे हैं; अतः जाति में एकत्व का ही बहुत्वनिर्देश समझना चाहिये। इसका तात्पर्य इस प्रकार है—यदि अवधिमती प्रकृति का आश्रयण करेंगे तो अपवाद प्रत्यय इमनिच् आदि के साथ सामान्य प्रत्यय नञ्, स्नञ ४.१.८७ का भी समावेश हो जायेगा। परन्तु गुणवचन आदि से कर्म अथ वा त्व, तल् का विधान सिद्ध नहीं हो पा रहा है; अतः 'च'ग्रहण से अवधिमान् अर्थ का ग्रहण होने से कर्म अर्थ में भी त्व, तल् का विधान सम्भव हो जा रहा है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। 'च'ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। 'आ त्वात्' मात्र इतना ही सूत्र रखेंगे। इससे सामान्यतया ब्राह्मण गुणवचन आदि प्रकृति तथा कर्म अर्थ का ग्रहण करेंगे। उसकी अपेक्षा से अवधिनिर्देश है; अतः प्रकृति और अर्थ का ग्रहण होने से प्रकृति से अर्थ में त्व, तल् का विधान सम्भव हो जा रहा है। इस तरह अर्थग्रहण के लिए भी 'च'ग्रहण आवश्यक नहीं है।

इदन्तर्हि प्रयोजनम्—आ त्वाद्याः प्रकृतयस्ताभ्यः त्वतलौ यथा स्यातां, यस्याश्च प्रकृतेरेतस्मिन् विशेषेऽन्यः प्रत्यय उत्पद्यते। किं कृतं भवति? स्त्रीपुंसाभ्यां त्वतलोरुपसंख्यानं चोदितं तन्न वक्तव्यं भवति। {आ च त्वात्}।

सिद्धान्ती आचार्य 'च'ग्रहण का प्रयोजन देते हैं—**इदं तर्हीति**। 'ब्रह्मणत्वः' ५.१.१३६ सूत्र से पूर्व तक की प्रकृति से पर में त्व, तल् प्रत्यय हों, एवं जिस प्रकृतिविशेष से इस विशेष अर्थ में प्रत्ययविशेष विहित है, वह प्रत्यय भी इस अर्थ में हो, इसके लिए 'च'ग्रहण है। जैसे—'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ' भवनात्' ४.१.८७ से स्त्री और पुंस् प्रकृति से 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व तक के सभी अर्थों में नञ् और स्नञ् विहित हैं; अतः भाव अर्थ में भी स्त्री और पुंस् से क्रमशः नञ् और स्नञ् होकर 'स्त्रैणः, पौंस्नः' रूप होगा तथा 'स्त्रीत्वम्, पुंस्त्वम्' भी होगा। प्रकृतिविशेष स्त्री और पुंस् से क्रमशः प्रत्ययविशेष नञ्, स्नञ् विहित है, वह सामान्य त्व, तल् का बाधक होगा। परन्तु 'च'ग्रहण से नञ्, स्नञ् से त्व, तल् का समावेश है, बाध नहीं। इस 'च'करण से ही वार्तिककार द्वारा स्त्री, पुंस् प्रातिपदिक से किया गया त्व, तल् का विधान व्यर्थ हो जाता है। {आ च त्वात्}।

न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवण-वटबुधकतरसलसेभ्यः ५.१.१२१.

कस्याऽयं प्रतिषेधः? त्वतलोरित्याह। नैतदस्ति प्रयोजनम्। इष्येते नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्त्वतलौ, अब्राह्मणत्वम् अब्राह्मणतेति। अत उत्तरं पठति— *न नञ्पूर्वादित्युत्तरस्य प्रतिषेधः* न नञ्पूर्वादित्युत्तरस्य भावप्रत्ययस्य प्रतिषेधः क्रियते। नैतदस्ति प्रयोजनम्। परिगणिताभ्यः प्रकृतिभ्य उत्तरो भावप्रत्ययो विधीयते, न च तत्र का चिन्नञ्पूर्वा प्रकृतिर्गृह्यते।

सूत्रार्थ—'त्व, तल् से ऊर्ध्व जो भावप्रत्यय हैं, वे नञ्तत्पुरुष से न हों, चतुर, सङ्गत, लवण, वट, युध, कत, रस और लस को छोड कर'। जैसे—'अपतित्वम्, अपटुत्वम्'। यहाँ 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' ५.१.१२८ से यक् नहीं होता है।

प्रकृतसूत्र में प्रतिषेध्यविषय का ग्रहण नहीं है। प्रकृतसूत्र से अनन्तरपूर्व में विहित त्व, तल् प्रत्यय नञ्तत्पुरुष 'अब्राह्मणत्वम्, अब्राह्मणता' में भी देखा जाता है; अतः प्राश्निक आचार्य प्रश्न करते हैं—**कस्याऽयमिति**। यह किसका प्रतिषेध है?

उत्तरभाष्य—**त्वतलोरिति**। 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा'न्याय से अनन्तरविहित त्व, तल् का प्रतिषेध है।

खण्डनभाष्य—**इष्यत इति**। नञ्पूर्वतत्पुरुष से त्व तल् इष्ट है; जैसे—'अब्राह्मणत्वम्, अब्राह्मणता'; अतः 'न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात्' से त्व, तल् का प्रतिषेध नहीं हो सकता है।

उत्तरभाष्य—**अत उत्तरमिति**। 'न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात्' ५.१.१२१ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर में विहित भावप्रत्ययों का प्रतिषेध है। इससे इस सूत्र का अधिकार माना जायेगा।

खण्डनभाष्य—**परिगणिताभ्य इति**। इस सूत्र से उत्तर में 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' ५.१.१२२ इत्यादि सूत्रों में पृथु आदि प्रकृति का परिगणन है। इसमें कहीं पर भी नञ्पूर्वा प्रकृति पठित नहीं होने से नञ्पूर्वा प्रकृति से स्वतः ही उत्तरभाव अप्राप्त होंगे; अतः उसके लिए 'न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात्' ५.१.१२१ यह निषेधवचन व्यर्थ है।

तदन्तविधिना प्राप्नोति। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते। यत्र तर्हि तदन्तविधिरस्ति- 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो य'गिति। यद्येतावत् प्रयोजनं स्यात् तत्रैवाऽयं ब्रूयात्—'पत्यन्ताद् यग् भवति, नञ्पूर्वात्तत्पुरुषान्ने'ति।

उत्तरपक्षी आचार्य—**तदन्तविधिनेति**। तदन्तविधि के द्वारा परिगणित प्रातिपदिक से भावप्रत्यय प्राप्त होने पर नञ्पूर्व तत्पुरुष से भी प्राप्त हो गया; अतः उसका प्रतिषेधवचन पढा गया है। पूर्वपक्षी आचार्य इस पक्ष का भी खण्डन करते हैं—**ग्रहणवतेति**। जिस प्रातिपदिक का प्रत्यक्ष उच्चारण कर प्रत्यय का विधान है, उसमें तदन्तविधि का प्रतिषेध होने से प्रकृत में तदन्तविधि के द्वारा नञ्पूर्व तत्पुरुष से भाव अर्थ में प्रत्यय प्राप्त नहीं है; अतः प्रतिषेधवचन व्यर्थ है।

उत्तरपक्षी—**यत्र तर्हीति**। जिन शास्त्रों में तदन्तविधि है, वहाँ नञ्पूर्वतत्पुरुष से भी भावप्रत्यय प्राप्त होगा; जैसे 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' ५.१.१२८। यहाँ नञ्पूर्वतत्पुरुष से भी प्रत्यय प्राप्त हो रहा है; अतः उसका प्रतिषेध कहेंगे।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येतावदिति**। यदि यहाँ इस सूत्र का प्रयोजन नहीं है तो 'न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात्' ५.१.१२१ सूत्र को 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' ५.१.१२८ के उत्तर में पढ देते—पत्यन्त से यक् हो, नञ्पूर्व पत्यन्त तत्पुरुष से न हो, ऐसा अर्थ होता।

एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्य्यः—'उत्तरो भावप्रत्ययो नञ्पूर्वाद् बहुव्रीहेर्भवती'ति। नेष्यते, त्वतलावेवेष्येते, अविद्यमानाः पृथवोऽस्य अपृथुः, अपृथोर्भावः—अपृथुत्वम्, अपृथुतेति। एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः—'उत्तरो भावप्रत्ययोऽन्यपूर्वात् तत्पुरुषाद् भवती'ति। नैवेष्यते, त्वतलावेवेष्येते, परमः पृथुः परमपृथुः, परमपृथोर्भावः परमपृथुत्वम्, परमपृथुता। एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः—'उत्तरो भावप्रत्ययः सापेक्षाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? 'नञ्समासादन्यो भाववचनः स्वरोत्तरपदवृद्ध्यर्थ'मित्युक्तं तदुपपन्नं भवति।

अन्य पूर्वपक्षी आचार्य—**एवं तर्हीति**। आचार्य ने 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' ५.१.१२८ के अनन्तर प्रकृत निषेधवचन नहीं पढ कर 'त्वतलौ' के अनन्तर पढा है। इसका प्रयोजन यह है कि इससे उत्तर भावप्रत्यय नञ्पूर्व बहुव्रीहि से होते हैं। इस ज्ञापन का भी अन्य आचार्य खण्डन करते हैं—**नेष्यत इति**। इस निषेधवचन से 'उत्तरो भावप्रत्ययो नञ्पूर्वाद् बहुव्रीहेर्भवति' ज्ञापन उचित नहीं है। वह इस तरह कि इससे पूर्व में विहित त्व, तल् प्रत्यय भी नञ्पूर्व बहुव्रीहि से इष्ट है। इसे विग्रहप्रदर्शनपूर्वक स्पष्ट करते हैं—**अविद्यमाना इति**। 'अविद्यमानाः पृथवोऽस्येति अपृथुः' 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वा.२.२.२४ से बहुव्रीहि तथा उत्तरपद का लोप है—'अपृथोर्भावः अपृथुत्वम्, अपृथुता।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। प्राप्ति का प्रकरण नहीं होने पर भी आचार्य ने निषेध किया है; अतः वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'उत्तरभावप्रत्यय नञ्पूर्व तत्पुरुष से भिन्न तत्पुरुष से पर में होते हैं'।

इस पक्ष का भी पूर्वपक्षी आचार्य खण्डन करते हैं—**नैवेष्यत इति**। यहाँ निषेधवचन से प्रकृत में 'उत्तरो भावप्रत्ययोऽन्यस्मात् तत्पुरुषाद् भवति' यह भी ज्ञापन उचित नहीं है। यहाँ इस निषेध से पूर्व में निर्दिष्ट त्व, तल् प्रत्यय भी नञ्पूर्व तत्पुरुष से भिन्न तत्पुरुष से होते हैं। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**परमः पृथुरिति**। 'परमश्चासौ पृथुश्च परमपृथुः, 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ से समास है। 'परमपृथोर्भावः परमपृथुता, परमपृथुत्वम्'। यहाँ निषेधवचन से पूर्व में विहित त्व, तल् प्रत्यय भी नञ्पूर्व तत्पुरुष से भिन्न तत्पुरुष से हो रहा है, जो इष्ट है; अतः उक्त ज्ञापन नहीं माना जा सकता है।

उत्तरपक्षी—**एवं तर्हीति**। प्रसङ्ग नहीं होने पर भी निषेधवचन व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'उत्तरभावप्रत्यय नञर्थसापेक्ष प्रातिपदिक से होते हैं'।

इतर आचार्य—**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरपक्षी—**नञ्समासादन्य इति**। इस ज्ञापन का फल यह है कि 'नञ्समास से भिन्न प्रातिपदिक से उत्तर भावप्रत्यय होगा'। इससे 'अप्रथिमा, अम्रदिमा' में इमनिच् प्रत्यय अपृथु, अमृदु से नहीं है, अपि तु पृथु और मृदु से है। इस तरह भावप्रत्ययान्त प्रथिमा, म्रदिमा के साथ बाद में नञ्समास होने से अव्यय-पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा 'अप्रथिमा, अम्रदिमा' आदि आद्युदात्त होगा। अन्यथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि नञ्पूर्व तत्पुरुष अपृथु, अमृदु से इमनिच् प्रत्यय करते तो 'चितः' ६.१. १६३ से अन्तोदात्त होता। इस ज्ञापन का दूसरा प्रयोजन उत्तरपद की वृद्धि है। जैसे 'अशौक्ल्यम्, अकार्ष्ण्यम्' में शुक्ल और कृष्ण पद से उत्तरभावप्रत्यय ष्यञ् होता है। इसके आदि अच् को वृद्धि होकर 'शौक्ल्यं, कार्ष्ण्यम्' रूप है। यदि नञ्पूर्व तत्पुरुष अशुक्ल, अकृष्ण से उत्तरभावप्रत्यय ष्यञ् करेंगे तो आदि अच् को वृद्धि होकर अनिष्टरूप 'आशुक्ल्यम्, आकृष्ण्यम्' होने लगेगा।

एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'सर्व एव तद्धिताः सापेक्षाद् भवन्ती'ति,-यदयं 'नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहिताऽलमर्थास्तद्धिता' इत्याह। {न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्}।

पूर्वपक्षी आचार्य इसका भी खण्डन करते हैं—**एतदपि नास्तीति**। 'नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहिताऽलमर्थास्तद्धिताः' ६.२.१५५ सूत्र पढ कर आचार्य ने सम्पादि, अर्ह, हित और अलम् अर्थ का वाचक जो तद्धित, गुणप्रतिषेध में शक्त नञ् से पर में जो तद्धितान्त उत्तरपद है, उसको अन्तोदात्त किया है। इससे आचार्य ज्ञापन करते हैं कि सभी तद्धित नञ्समाससापेक्ष होते हैं। इस तरह भगवान् भाष्यकार ने इस सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया है। 'सर्व एव तद्धिताः सापेक्षाद् भवन्ति' इस ज्ञापन के होने पर त्वान्त और तलन्त के साथ नञ्समास इदानीं विध्यर्थ होगा, नियमार्थक नहीं। अब यहाँ पूर्वपक्ष होता है कि 'सापेक्षादपि तद्धितोत्पत्तिः' पक्ष मानने पर चतुरादि से एक साथ नञ्समास और तद्धित की विवक्षा होने पर पर होने से तद्धितोत्पत्ति से समास का बाध हो जायेगा। इस तरह पहले तद्धितोत्पत्ति तथा बाद में नञ्समास होने पर 'अचातुर्यम्' इत्यादि रूप की आपत्ति हो रही है, जब कि सूत्र के अनुसार 'आचतुर्यम्' आदि रूप इष्ट हैं, वे कैसे होंगे, तो इस पक्ष में अनभिधान हेतु से चतुर आदि से ष्यञ् न कह कर समस्त अचतुर आदि से ष्यञ् कहा जायेगा। इससे इष्ट रूप 'आचतुर्यम्' इत्यादि ही होंगे। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२३ में ब्राह्मणादि को आकृतिगण मान कर अचतुर आदि से ष्यञ्विधान करेंगे। विवक्षाभेद से दो रूप मान कर भाष्यकार ने 'यथातथयथापुरयोः पर्यायेण' ७.३.२८ सूत्र का प्रत्याख्यान किया है। जब पहले भावविवक्षा तथा बाद में प्रतिषेधविवक्षा करेंगे तब 'अयाथातथ्यम्, अयाथापूर्व्यम्' ऐसा उत्तरपदवृद्धि-घटित रूप होगा। परन्तु पहले प्रतिषेधविवक्षा तथा बाद में भावविवक्षा करेंगे तब पूर्वपद को वृद्धि होकर 'आयथातथ्यम्, आयथापूर्व्यम्' रूप होगा। 'न पत्युर्भावः' में पति पद केवल प्रातिपदिक है, पत्यन्त प्रातिपदिक नहीं; अतः यक् ५.१.१२८ के अभाव में 'त्वतल्भ्यां नञ्समासः पूर्वविप्रतिषिद्धं त्वतलोः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरसिद्ध्यर्थम्' भा.वा.५.१.११६ इस वचन से नञ्समास के बाद त्व, तल् होगा। 'न पटोर्भावः, न मनुष्यस्य भावः, न द्विहायनस्य भावः' इत्यादि में पूर्वोक्त ज्ञापन से नञर्थ की अपेक्षा रहने पर भी पहले तद्धित प्रत्यय तथा बाद में नञ्समास होने से 'अपाटवम्, अमानुष्यकम्, अद्वैहायनकम्' इत्यादि रूप होगा। परन्तु 'न शुचिः अशुचिः' इस तत्पुरुषपद से 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' ५.१.१३१ से तद्धित होकर 'आशौचम्' ऐसा रूप होगा। यहाँ 'नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञ-कुशलनिपुणानाम्' ७.३.३० से पूर्वपद को वृद्धिविकल्प तथा उत्तरपद को नित्य वृद्धि है। इस तरह पूर्वपद को वृद्धि का अभाव होने पर 'अशौचम्' रूप भी होगा। 'न शुक्लस्य भावः' में नञ्समास होकर 'अशौक्ल्यम्' रूप ही होगा।

इस तरह इस सूत्र का प्रत्याख्यान हो जाने पर लक्ष्यदर्शनवशात् कहीं पर तद्धितप्रत्यय भवार्थ त्व, तल् आदि तथा निषेध की एक साथ विवक्षा होने पर ज्ञापन के द्वारा नञर्थ की अपेक्षा होने पर भी पहले यथा प्राप्त भावप्रत्यय तथा बाद में नञ्समास होगा। परन्तु सर्वत्र नञ्समास होने पर ही त्व और तल् प्रत्यय होंगे। इस तरह कहीं पर पहले भावविवक्षा तथा कहीं पर पहले निषेधविवक्षा है। {न नञ्पूर्वात्-}।

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५.१.१२२.

वावचनं किमर्थम्? वाक्यमपि यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृता महाविभाषा तया वाक्यमपि भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनं—'त्वतलावपि यथा स्याताम्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्—'आ च त्वा'दित्येतस्माद् यत्नात् त्वतलावपि भविष्यतः। अत उत्तरं पठति * पृथ्वादिभ्यो वावचनमण्समावेशार्थम् * **पृथ्वादिभ्यो वावचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अण्समावेशार्थम्'। अण्समावेशो यथा स्यात्—पार्थवं प्रथिमा।**

सूत्रार्थ—'पृथु आदि गणपठित षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव अर्थ वाच्य होने पर इमनिच् हो'। पृथोर्भावः प्रथिमा' मृदोर्भावो म्रदिमा। यहाँ उभयत्र 'र ऋतो हलादेर्लघोः' ६.४.१६१ से ऋकार को रेफादेश है।

पूर्वपक्षी—**वावचनमिति**। 'पृथ्वादिभ्य इमनिच्' इतना ही सूत्र रखिये, 'वा'-वचन क्यों पढते हैं?

एकदेशी आचार्य—**वाक्यमपीति**। 'पृथोर्भावः' ऐसा वाक्य भी रह जाये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा 'प्रथिमा' ऐसा इमनिच्प्रत्ययान्त भी प्रयोग हो, इसके लिए 'वा'ग्रहण किया गया है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'वा'ग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ से 'वा' की अनुवृत्ति हो रही है, उसी से पक्ष में वाक्य-प्रयोग का भी साधुत्वबोध हो जायेगा।

एकदेशी आचार्य—**इदं तर्हीति**। पृथु आदि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव अर्थ में इमनिच् भी हो, तथा त्व, तल् भी हो सकें, इसके लिए प्रकृतसूत्र में 'वा'ग्रहण किया गया है।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। 'वा'ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। 'आ च त्वात्' ५.१.१२० का अधिकार आ रहा है, उसी से त्व, तल् का भी विधेयकोटि में संग्रह हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—**अत उत्तरमिति**। जहाँ उत्सर्ग और अपवाद विकल्प से होते हैं, वहाँ विभाषा से वाक्यप्रयोग का ज्ञान होने पर अपवाद से मुक्त स्थल में उत्सर्ग भी प्रवृत्त नहीं होता है। जैसे 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' २.१.१८। एवं 'पीलाया वा' ४.१.११८ में विकल्पवनच से वाक्य का संग्रह है। प्रकृत में 'वा'वचन के अभाव में अनुवृत्त 'वा' पद से पक्ष में वाक्यप्रयोग का ही बोध होता है, जब कि यहाँ 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' ५.१.१३० इत्यादि से विहित अण् प्रत्यय का भी समावेश इष्ट है; वह विना वचन के सम्भव नहीं है; अतः अण्समावेशार्थ आचार्य ने 'वा'वचन किया है। {**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा**}।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५.१.१२४

*** ब्राह्मणादिषु चातुर्वर्ण्यादीनामुपसंख्यानम् * ब्राह्मणादिषु चातुर्वर्ण्यादीनामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। चातुर्वर्ण्यम्। चातुर्वैद्यम्। चातुराश्रम्यम्।**

सूत्रार्थ—'गुणोपसर्जनद्रव्यवाची और ब्राह्मण आदि से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् हो'। यहाँ 'भावः' ५.१.११९ और 'ष्यञ्' ५.१.१२३ की अनुवृत्ति है। जडस्य कर्म्म भावो वा जाड्यम्। मूढस्य कर्म्म भावो वा मौढ्यम्। ब्राह्मणस्य कर्म्म भावो वा ब्राह्मण्यम्।

वार्तिक—**ब्राह्मणादिष्विति**। ब्राह्मण आदि में चातुर्वर्ण्य आदि का परिगणन करना चाहिये। यहाँ चतुर्वर्ण इत्यादि से स्वार्थ में ही ष्यञ् होगा—'चत्वरो वर्णाश्चातुवर्ण्यम्। चतुर्वेदमेव चातुर्वेद्यम्। चत्वार आश्रमा एव चातुराश्रम्यम्।

*** अर्हतो नुम् च * अर्हतो नुम् च ष्यञ्च वक्तव्यः। अर्हतो**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव आर्हन्त्यम्। आर्हन्ती। {गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च}।

अर्हतो नुमिति। अर्हत् पद से भाव अर्थ में ष्यञ् तथा प्रकृति को नुमागम कहना चाहिये। अर्हतो भाव आर्हन्त्यम्। षित्करण से इसका स्त्रीलिङ्ग में भी प्रयोग है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—आर्हन्ती। 'षिद् गौरादिभ्यश्च' ४.१.४१ से ङीष्, 'यस्य हलः' ६.४.४६ से यलोप होकर स्त्रीलिङ्ग में आर्हन्ती रूप है। {**गुणवचनब्राह्म-**}।

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ५.१.१२५

किमिदं नलोपे वर्णग्रहणम् आहोस्वित् सङ्घातग्रहणम्? किं चाऽऽतः? यदि वर्णग्रहणं—स्तेयं, नलोपे कृतेऽयादेशः प्राप्नोति। अथ सङ्घातग्रहणम्, अन्त्यस्य लोपः कस्मान्न भवति? सिद्धोऽन्त्यस्य लोपो 'यस्ये'त्येव, तत्राऽऽरम्भसामर्थ्यात् सर्व्वस्य भविष्यति। {स्तेनाद्यन्नलोपश्च}।

सूत्रार्थ—'स्तेन पद से भाव अर्थ में यत् प्रत्यय तथा प्रकृति का अवयव न का लोप हो' स्तेनस्य भावः कर्म्म वा स्तेयम्।

प्रश्नभाष्य—**किमिदमिति**। 'नलोपश्च' में 'न्+अ=न' इस वर्णसमूह का लोप विधेय है, अथ वा 'न्'वर्णमात्र का लोप विधेय है? यदि 'न्'वर्णमात्र का लोप विधेय है तो अकार को उच्चारणार्थक समझेंगे।

अन्य आचार्य—**किं चाऽऽत इति**। 'नलोपः में 'न' से वर्णमात्र का ग्रहण किया जाये, अथ वा समुदाय का ग्रहण किया जाये, इसमें क्या भेद है?

इस पर प्राश्निक आचार्य भेद स्पष्ट करते हैं—**यदीति**। यदि वर्णमात्र का ग्रहण करेंगे तो 'न्'लोप होने पर 'स्ते+अ+य' इस दशा में 'एचोऽयवायावः' ६.१.८७ की प्रवृत्ति होने से अयादेश होकर 'स्तययम्' ऐसा अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी। यदि 'नलोप' में वर्णसमुदाय 'न्+अ=न' का लोप करते हैं तो 'न' का वर्णैकदेश 'न्' का लोप होगा। इस तरह उभयपक्षों में दोष आने से इष्ट रूप 'स्तेयम्' सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

प्रश्नभाष्य—**अथ सङ्घातेति**। यदि संघातग्रहण करते हैं तो 'न' का ही लोप कर रहे हैं, अन्त्य 'अ' का लोप क्यों नहीं होता है? 'नाऽनर्थकेऽलोऽन्त्यविधिः' परि.शे.१०५ परिभाषा का आदर नहीं करते हुए आक्षेपक का आक्षेप है। यहाँ 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ परिभाषासूत्र से अन्त्य अल् 'अ' का ही लोप प्राप्त होना चाहिये। यदि यह इष्ट था तो आचार्य 'स्तेनाद्यल्लोपश्च'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना ही सूत्र रखते। इससे 'यस्येति च' ६.१.१४८ के द्वारा अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता। परन्तु 'नलोपश्च' ऐसा कहने से 'न्' का ही लोप होगा। अथ वा वह भी ग्रहण नहीं करते। मात्र 'स्तेनाद्यत्' इतना ही सूत्र रखते। भसंज्ञा होने पर स्वतः 'यस्येति च' ६.१.१४८ से अल्लोप हो जाता। अल्लोप सिद्ध होने पर नलोपविधान ज्ञापन करता है—'यहाँ संघात का ग्रहण है।

इसी को सिद्धान्ती आचार्य कहते हैं—**सिद्धोऽन्त्स्येति**। यहाँ आरम्भसामर्थ्य से 'न्+अ=न' इस वर्णसमूह का लोप कहना चाहिये। {**स्तेनाद्यन्न-**}।

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ५.१.१३०

* अण्प्रकरणे श्रोत्रियस्य घलोपश्च * **अण्प्रकरणे श्रोत्रियस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यं घलोपश्च वक्तव्यः। श्रोत्रियस्य भावः श्रौत्रम्।** {हाय-नान्तयुवादि}।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

सूत्रार्थ—'हायनान्त और युव आदि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव और कर्म में अण् प्रत्यय हो। द्विहायनस्य भावः कर्म वा द्वैहायनम्। त्रिहायनस्य भावः कर्म वा त्रैहायनम्। यूनः कर्म भावो वा यौवनम्। स्थविरस्य कर्म भावो वा स्थाविरम्।

वार्तिक—**अण्प्रकरण इति**। अण्प्रकरण में श्रोत्रिय पद से अण्प्रत्यय तथा घलोप कहना चाहिये। श्रौत्रियस्य भावः श्रौत्रम्। 'छन्दसः श्रोत्रभावो घँश्च प्रत्ययः'पक्ष मानने पर 'घ' का लोप होगा। परन्तु यदि 'वाक्यार्थे पदवचनम्'पक्ष मानेंगे तो प्रकृत में 'घ' पद से 'घस्थानिक आदेश 'इय' रूप लक्षित होगा। {**हायनान्तयुवा-**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय प्रथम पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

प्रथम पाद भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम् ❁

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ५.२.४

* तिलादिभ्यः खञ्च * तिलादिभ्यः खञ्चेति वक्तव्यम्। तिल्यम्। तैलीनम्। किमर्थमिदमुच्यते? न यता मुक्ते 'धान्यानां भवने क्षेत्रे ख'ञित्येव सिद्धम्? न सिध्यति। किं कारणम्? * उमाभङ्गयोरधान्यत्वात् * 'धान्यानां भवने क्षेत्रे ख'ञित्युच्यते, न चोमाभङ्गे धान्ये। चमेषु यत्पठ्यते तद्धान्यं, न चैते तत्र पठ्येते। तत्तर्हि खञ्ग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'धान्यानां भवने क्षेत्रे ख'ञिति। यदि तदनुवर्त्तते—'व्रीहिशाल्योर्ढक्' 'यवयवकषष्टिकाद्य'दिति। 'खञ्चे'ति—खञपि प्राप्नोति। सम्बन्धमनुवर्त्तिष्यते—'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' 'व्रीहिशाल्योर्ढक्'। व्रीहिशाल्योर्ढग्भवति। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्'-'यवयवकषष्टिकाद्यत्' यवयवकषष्टिकाद्यद् भवति। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' 'विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः'। 'भवने क्षेत्रे ख'ञ्ग्रहणमनुवर्त्तते। 'धान्याना'मिति निवृत्तम्।

'यवयवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ से विधेयवचन 'यत्' और 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ की अनुवृत्ति है। 'भवन्ति अस्मिन् भूतानीति भवनम्', यहाँ 'करणाधिकरणयोश्च' ३.३.११७ से अधिकरण अर्थ में ल्युट् है। यहाँ भू धातु उत्पत्तिवाची धा.पा.१ विवक्षित है। 'धातूनामनेकार्थः'पक्ष लेकर इसका समाधान करना चाहिये। यहाँ 'धान्य का उत्पत्तिस्थाच् क्षेत्र' ऐसा अर्थ विवक्षित है। यदि यहाँ क्षेत्रपद का ग्रहण नहीं करते तो भू धातु सत्तार्थक धा.पा.१ लिया जाता। इससे 'यत्र विद्यते तद् भवनम्'पक्ष लेकर आधारसामान्य में प्रत्यय होने से गृह, कुसूल आदि अर्थ लिया जाता; अतः क्षेत्रपद का ग्रहण है। 'भवने क्षेत्रे' ऐसा उभय पद देने से धान्योत्पत्तिप्रदेश=क्षेत्र अर्थ ही लिया जाता है। इससे पुनरुक्ति नहीं है।

सूत्रार्थ—'धान्यविशेषवाची षष्ठ्यन्तप्रातिपदिक तिल, माष, उमा, भङ्ग और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अणु से यत् हो'। अभावपक्ष में खञ् होगा। उमा=अतसी। तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल्यं, तैलीनम्। माषाणां भवनं क्षेत्रं माष्यम्। माषीणम्। उमानां भवनं क्षेत्रम् उम्यम्। औमीनम्। भङ्गानां भवनं क्षेत्रं भङ्ग्यम्। भङ्गीनम्। अणूनां भवनं क्षेत्रम् अणव्यम्। आणवीयम्। 'ओर्गुणः' ६.४.१४६ से गुण और 'वान्तो यि प्रत्यये' ६.१.७६ से वान्तादेश है।

एकदेशी आचार्य—**तिलादिभ्य इति**। तिल आदि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'भवने क्षेत्रे' अर्थ में खञ् प्रत्यय भी कहना चाहिये। इससे 'तिलानां भवनं क्षेत्रम्' में जैसे यत्प्रत्ययान्त 'तिल्यम्' रूप होता है, वैसे खञ्प्रत्ययान्त 'तैलीनम्' रूप भी होगा।

आक्षेपक आचार्य—**किमर्थमिदमिति**। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से खञ् की अनुवृत्ति आ रही है। एवं 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ से विकल्प की भी अनुवृत्ति आ रही है। महाविभाषाग्रहण से वाक्य सिद्ध था, पुनः सूत्र में विभाषापद का ग्रहण किया है, वह व्यर्थ पड कर खञ् की अनुवृत्ति करा देगा। इस तरह जब तिल आदि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में खञ् सिद्ध हो जा रहा है, तब आप पुनः 'तिलादिभ्यः खञ्च'वचन का आरम्भ क्यों करते हैं?

एकदेशी आचार्य वार्तिक पढने का कारण स्पष्ट करते हैं—**न सिध्यतीति**। सूत्रकार धान्यवाची षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में खञ् का विधान कर रहे हैं; जब कि उमा और भङ्ग धान्यवाची नहीं हैं, अपि तु **'चमेषु यत्पठ्यन्ते'**=(यवाश्च मे माषाश्च मे इत्यादयः चमशब्दा विद्यन्ते येषु तेषु, पुनः-पुनः उच्चारण होने से चम शब्द से) चमशब्दवान् अनुवाक अर्थ में पठित है। जब कि आचार्य धान्यविशेषवाची से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में खञ् का विधान कर रहे हैं; अतः अप्राप्त होने से वार्तिक का आरम्भ है।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'तैलीनम्' आदि की सिद्धि के लिए 'तिलादिभ्यः खञ्च' ऐसा अतिरिक्तवचन का आरम्भ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। विना अतिरिक्त वचन पढे उक्त प्रयोगों की सिद्धि स्पष्ट करते हैं—**प्रकृतमिति**। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् खञ् की अनुवृत्ति आ रही है; उसी से यहाँ खञ् का लाभ हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तदिति**। यदि 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से खञ् की अनुवृत्ति करेंगे तो मध्य में 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२ और 'यव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ में भी उसका सम्बन्ध होगा। इस तरह 'व्रैहेयम्, शालेयम्, यव्यम्, यवक्यम्, षष्टिक्यम्' में खञ् की अतिव्याप्ति होने से 'व्रैहीनम्' आदि की आपत्ति होगी।

इस पक्ष का एकदेशी आचार्य खण्डन करते हैं—**सम्बन्धमिति**। हम सम्बन्ध की अनुवृत्ति करेंगे। इससे अनुवृत्त होता हुआ 'भवने क्षेत्रे खञ्' अपना सम्बन्धी 'तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः' के साथ ही अन्वित होगा, मध्य में 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२ और 'यवयवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ में अन्वित नहीं होगा। जैसे यात्रा पर प्रस्थित मनुष्य मध्य का ग्राम, पुर, गृह आदि का परित्याग करता हुआ अपना सम्बन्धी के यहाँ ही सम्बन्ध करता है, मध्य में प्राप्त ग्राम, गृह, मनुष्य आदि से नहीं, वैसे अनुवर्त्तन भी मध्य का परित्याग करता हुआ अपना सम्बन्धी से अन्वित होगा, इससे 'व्रैहीनम्' आदि की जो आपत्ति दी थी, वह निरस्त हो गयी।

अथ वा मण्डूकप्लुतयोऽधिकाराः। यथा मण्डूका उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छन्ति तद्वदधिकाराः * अथ वाऽन्यवचनाच्चकाराऽकरणात् प्रकृतस्याऽपवादो विज्ञास्यते यथोत्सर्गेण प्रसक्तस्याऽपवादः * **अन्यस्य प्रत्ययस्य वचनाच्चकारस्य चाऽनुकर्षणार्थस्याऽकरणात् प्रकृतस्य खञो ढग्यतौ बाधकौ भविष्यतो यथोत्सर्गेण प्रसक्तस्याऽपवादो बाधको भवति। अथ वैतज्ज्ञापय'त्यनुवर्त्तन्ते च नाम विधयो न चाऽनुवर्त्तनादेव भवन्ति। किं तर्हि? यत्नाद् भवन्ति'। अथ वा यता मुक्ते 'धान्यानां भवने क्षेत्रे ख'ञित्येव सिद्धम्। ननु चोक्तं—'न सिध्यति। किं कारणम्? उमाभङ्गयोरधान्यत्वा'दिति? नैष दोषः, धिनोतेर्धान्यम्, एते चापि धिनुतः। अथ वा शणसप्तदशानि धान्यानि।** {विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः}।

इसी का अन्य पक्ष में भी समाधान करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा मण्डूकप्लुतिन्याय से 'भवने क्षेत्रे खञ्' का अधिकार करेंगे। जैसे मण्डूक कूद-कूद कर चलता है। मध्य की भूमि से उसका सम्बन्ध नहीं होता है। वैसे 'भवने क्षेत्रे खञ्' का मध्य का सूत्र 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२ और 'यवयंवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ से सम्बन्ध नहीं करता हुआ 'विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः' ५.२.४ के ही साथ सम्बन्ध करेंगे। नदीश्रोतोन्याय से अनुवर्त्तन नहीं होने से मध्य के सूत्रों के साथ उसका सम्बन्ध नहीं होगा।

इसी को पक्षान्तर में पुनः सिद्ध करते हैं—**अथेति**। 'विभाषा तिलमाषोमा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भङ्गाणुभ्यः' ५.२.४ सूत्र में 'च' पद का ग्रहण नहीं किया गया है, जिससे 'भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ की अनुवृत्ति हो सके। अथ च मण्डूक चेतन होने से कूद-कूद कर जा सकता है, परन्तु शब्द में वह सम्भव नहीं है, फिर भी आकाङ्क्षा के द्वारा 'भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ की अनुवृत्ति कर लेंगे। आचार्य ने **'अन्यस्य प्रत्ययस्य वचनात्'**= 'यवयवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ सूत्र में यत् तथा 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२ में ढक् प्रत्यय कहा है। एवं प्रकृतसूत्र 'विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः' ५.२.४ सूत्र में 'च' पद का ग्रहण नहीं किया है, तथा विधेयपद का निर्देश भी नहीं किया है। ऐसी परिस्थिति में विधेयपद की आकाङ्क्षा होने पर यत्, ढक् और खञ् तीनों का अनुवर्त्तन करेंगे। इससे खञ् का लाभ हो जायेगा। यहाँ खञ् सामान्य प्रत्यय है तथा ढक् और यत् प्रत्ययविशेष हैं। तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा विशेष से सामान्य का बाध सिद्ध है; अतः प्रकृत में विशेष प्रत्यय ढक् और यत् से खञ् का बाध हो जायेगा। इस तरह प्रकृतसूत्र में 'विभाषा' का ग्रहण होने से यत् के अभावपक्ष में खञ् प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। इस तरह 'तिलादिभ्यः खञ् च' सूत्र पढने की आवश्यकता नहीं है।

इसी को पक्षान्तर में पुनः सिद्ध करते हैं—**अथ वैतदिति**। यहाँ अनुवर्त्तन से ही खञ् सिद्ध था, पुनः आचार्य ने जो विभाषाग्रहण किया वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'जिनका अधिकार किया गया है, वे आगे के सूत्रों में अनुवृत्त होते हुए भी जिन-जिन सूत्रों में विभाषा आदि गृहीत हैं, उन्हीं सूत्रों में अधिकृत होते हैं, अन्यत्र नहीं'। प्रकृत में विभाषा पद का ग्रहण है; अतः इसी में 'भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ की अनुवृत्ति होगी। मध्य में 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' ५.२.२ और 'यवयवकषष्टिकाद्यत्' ५.२.३ में 'विभाषा' आदि पदों के नहीं होने से खञ् का सम्बन्ध नहीं होगा। इससे यत् से मुक्त होने पर तिल आदि से खञ् प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा।

तिल आदि से 'भवने क्षेत्रे' अर्थ में खञ्विधान हेतु अतिरिक्तवचन पढने का पुनः निषेध करते हैं—**अथ वा यतेति**। तिल आदि से 'भवने क्षेत्रे' आदि अर्थों में विकल्प से यत् कहा जा रहा है। यत् के अभावपक्ष में 'धान्यानां 'भवने क्षेत्रे खञ्' ५.२.१ से ही खञ् सिद्ध हो जायेगा। आप ने उमा और भङ्ग को अधान्यवाची होने से खञ् का अभाव मान कर 'तिलादिभ्यः खञ्च' पढा था। इसकी भी आवश्यकता नहीं है। यहाँ भी विभाषाग्रहण से यत् के अभावपक्ष में खञ् सिद्ध हो जायेगा।

आक्षेपक ने अन्य आपत्ति उठायी थी—'उमाभङ्गयोरधान्यत्वात्', उसका वारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हैं—**ननु चोक्तमिति**। आप ने उमा और भङ्ग को अधान्यवाची कहा था, यह भी उचित नहीं है। 'धिनोति=प्रीणयति यत्तद् धान्यम्' इस व्युत्पत्ति से योगरूढिशक्ति के द्वारा उमा और भङ्ग पद भी धान्यवाची ही हैं। चमवान् अनुवाकों में अश्म आदि अधान्यवाची का भी परिगणन है, एवं कुछ धान्यवाची कोद्रव आदि का परिगणन नहीं किया गया है; अतः चम अनुवाकों को धान्य-परिग्रहणार्थ नहीं कहा जा सकता है।

उमा और भङ्ग का धान्यत्व सिद्ध करने के लिए स्मृतिवचन का उल्लेख करते हैं—**अथ वा शणेति**। 'शणसप्तदशानि धान्यानि' ऐसा स्मृतिवचन है। उमा और भङ्ग भी शणविशेष है; अतः इनका भी धान्यत्व होने से ही खञ् सिद्ध हो जायेगा। {**विभाषा–**}।

यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः ५.२.६

सम्मुखेति किं निपात्यते? * सम्मुखेति समस्याऽन्तलोपः * सम्मुखेति समस्याऽन्तलोपो निपात्यते। सममुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः।

सूत्रार्थ—'षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक यथामुख और सम्मुख से 'दर्शनः' अर्थ में ख प्रत्यय हो'। यथामुखं दर्शनो यथामुखीनः। सर्वस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः। 'यथाऽसादृश्ये' २.१.७ से सादृश्य अर्थ में अव्ययीभाव का निषेध है; अतः 'मुखस्य सदृशं यथामुखम्' (प्रतिबिम्बम्) में निपातन से अव्ययीभाव कहना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**सम्मुखेति किमिति**। आचार्य सम्मुख पद से क्या निपातन कर रहे हैं? प्रश्न में हेतु यह है कि 'सम्' यह हलन्त है, उससे 'सम्मुख' पद निष्पन्न हो जायेगा, पुनः निपातन क्यों है?

उत्तरभाष्य—**सम्मुखेति समस्येति**। यहाँ अभिमुख्यार्थक 'सम्' उपसर्ग का प्रवेश नहीं है, अपि तु सर्वार्थक सर्व पद का पर्याय अदन्त 'सम' प्रातिपदिक के साथ समास होकर 'सम' का अन्त्य 'अ'वर्ण का निंपातन से लोप है—'समम्=सर्वं मुखं सम्मुखमिति। सम्मुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः। {**यथा-**}।

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ५.२.९

'अयानयं नेय'इत्युच्यते, तत्र न ज्ञायते—कोऽयः कोऽनय इति? अयः—प्रदक्षिणम्। अनयः—प्रसव्यम्। प्रदक्षिणप्रसव्यगामिनां शाराणां यस्मिन् परैः पदानामसमावेशः सोऽयानयः। अयानयं नेयोऽयान-यीनः शारः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पूर्व सूत्र 'यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः' ५.२.६ से विधेय ख की अनुवृत्ति है। यहाँ 'अनु' यह पद आयाम अथ वा सादृश्य अर्थ में है। आद्य में 'यस्य चायामः' २.१.१६ से अव्ययीभाव है तथा द्वितीय में सादृश्य में अव्ययीभाव है। 'अनुपदं च सर्वान्नं च अयानयश्चेत्येषां समाहारः अनुपदसर्वान्नायानयम्। बद्धा च भक्षयति च नेयश्चेति बद्धाभक्षयतिनेयास्तेषु। यहाँ तिङन्त 'भक्षयति' का द्वन्द्वकुक्षि में आर्षप्रवेश समझना चाहिये। 'अनुपदसर्वान्नायानयम्' यह द्वितीयैकवचनान्त है।

सूत्रार्थ—'अनुपदादि द्वितीयान्त प्रातिपदिक से बद्धा आदि अर्थों में ख प्रत्यय हो'। अनुपदं बव अनुपदीना उपानत्। सर्वान्नानि भक्षयतीति सर्वान्नीनो भिक्षुः।

प्रश्नभाष्य—**अयानयमिति**। 'अयानयं नेयः' ऐसा विग्रह कर द्वितीयान्त प्रातिपदिक अयानय से नेय अर्थ में ख प्रत्यय कहा जा रहा है। 'अयानयः' में 'अय' और 'अनय' यह दो पद हैं। अय गतौ धा.पा.४७५ से 'अयनम् अयः' भाव में प्रत्यय करने से अय पद से गमनमात्र अर्थ परिलक्षित होगा। इस तरह अय और अनय पद परस्पर विरुद्ध अर्थ वाला है। 'अयानयं नेयः' ऐसा विग्रह में परस्पर विरुद्ध दो पदों का समन्वय कैसे सम्भव है? यहाँ पता नहीं चल पा रहा है कि अय क्या है तथा अनय क्या है?

उत्तरभाष्य—**अयः प्रदक्षिणमिति**। द्यूतक्रीडा में शारों का प्रदक्षिणपरिवर्त्तन अय, तथा प्रसव्यपरिवर्त्तन अनय है। द्यूतक्रीडा में जहाँ प्रदक्षिणप्रसव्यगामी 'शृणन्ति एभिर्द्यूतकाराः परस्परमिति शारास्तैः'=शारों का, **'पदानाम्'**=द्यूतक्रीडा हेतु निर्मित कोष्ठकों में अतिक्रमण नहीं होता है, उसे 'अयानयः' कहते हैं। द्यूतशास्त्र की मर्यादा यह है—

असहायस्य शारस्य परैर्नाक्रम्यते पदम्।
असहायस्तु शारेण परकीयेण बाध्यते।।

'अयानयः' में 'अयेन सहितः अयसहितः, अयसहितश्चासौ अनयश्च अयानयः' ऐसा मध्यमपदलोपी समास है। 'अयानयं नेयः अयानयीनः शारः'। णीञ् प्रापणे धा.पा.६२६ धातु द्विकर्मक है। अप्रधान होने पर भी 'अयानयम्' में कर्म में द्वितीया विभक्ति है। यद्यपि—

गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने निहृकृष्वहाम्।
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया।
प्रयोज्ये कर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा नियम होने से णीञ् प्रापणे धा.पा.९२६ हृञ् हरणे धा.पा.८९९, कृष विलेखने धा.पा.९९० और वह प्रापणे धा.पा.१००४ द्विकर्मक धातु के प्रधान-कर्म में ही प्रत्यय कहा है, तथापि प्रकृत में अप्रधान में भी द्वितीया की गयी है। परन्तु 'नेयः' में कृत्य प्रत्यय यत् प्रधान में ही है। {अनु-}।

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति ५.२.१०

परोवरेति किं निपात्यते? * परोवरेति परस्योत्त्ववचनम् * **परोवरेति परस्यौत्त्वं निपात्यते। यद्येवं 'परस्यौत्त्व'मिति प्राप्नोति। शकन्धुन्यायेन निर्देशः। अथ वा नैवं विज्ञायते—परस्यौत्त्वं निपात्यत इति। कथं तर्हि? परस्य शब्दरूपस्यादेरुत्वं निपात्यत इति। परांश्चावरांश्चानुभवति परोवरीणः। अथ परम्परेति किं निपात्यते?** * परपरतराणां परम्परभावः * **परपरतराणां परम्परभावो निपात्यते। परांश्च परतरांश्चानुभवति परम्परीणः।।**

'यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः' ५.२.६ से विधेयवचन 'खः' का यहाँ अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'द्वितीयान्त प्रातिपदिक परोवर, परम्पर और पुत्रपौत्र से अनुभवति अर्थ में ख प्रत्यय हो'।

यहाँ परोवर, परम्पर यह निपातन किया गया है; प्राश्निक आचार्य तद्विषयक प्रश्न करते हैं—**परोवरेति किमिति**। परोवर में क्या निपातन है?

वार्तिककार—**परोवरेति परस्येति**। 'परांश्च अवरांश्चाऽनुभवति' इस विग्रह में पर पद का अन्त्य अल् 'अ' को 'ओत्व' निपातन है। वार्तिक में आर्षत्वात् 'परस्य+ओत्वम्' ऐसा पदच्छेद मान कर 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' वा. ३६३२ से पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश है। भाष्यकार यहाँ पररूप एकादेश नहीं मान रहे हैं, अतः भाष्य में 'परस्यौत्वं निपात्यते' ऐसा वृद्धिनिर्देश कर रहे हैं।

आक्षेपक आचार्य वार्तिक पर भी आक्षेप करते हैं—**यद्येवमिति**। यदि 'परस्य+ओत्वम्' ऐसा पदच्छेद करेंगे तो 'वृद्धिरेचि' ६.१.८८ से पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश होकर 'परस्यौत्ववचनम्' ऐसा निर्देश करना चाहिये था।

वार्तिककार अपने वचन का समर्थन करते हैं—**शकन्ध्वादिष्विति**। वार्तिक में 'परस्य+ओत्ववचनम्' ऐसा पदच्छेद होने पर 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' वा.३६३२ से पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश है। परोवर में 'पर+अवर'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस दशा में परपदघटक अकार को ओत्व होकर 'पदो+अवर' इस दशा में 'एङः पदान्तादति' ६.१.१०९ से पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप-एकादेश होकर 'परोवर' शब्द है।

इसी का समाधान पक्षान्तर में भी करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा पर पद का अन्त्य अल् के स्थान में ओत्वनिपातन नहीं करके **'परस्य शब्दरूपस्य'**= द्वितीयशब्द अवर का आद्यवयव 'अ' के स्थान में उत्व निपातन करेंगे। इससे 'पर+उवर' इस दशा में 'आद् गुणः' ६.१.८७ से गुण-एकादेश होकर 'परोवर'पद निष्पन्न हो जाता है। इस तरह 'परांश्च अवरांश्चाऽनुभवति' इस विग्रह में निपातित परोवर पद से 'ख' प्रत्यय होकर 'परोवरीणः' रूप होगा।

जिज्ञासु आचार्य 'परम्पर'पद के निपातन की जिज्ञासा करते हैं—**अथेति**। परम्पर पद में क्या निपातन है?

समाधानभाष्य—**परम्परेतीति**। परपरतर पद को परम्परभाव निपातित है। 'परांश्च परतरांश्चानुभवतीति परम्परीणः'। अव्युत्पन्न परम्परा पद स्त्रीलिङ्ग है, उससे स्वार्थ में ष्यञ् होकर पारम्पर्य पद होगा। यदि कोई निपातित परोवर पद ये स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय कर पारोवर्य रूप चाहे तो वह असाधु होगा। इसका कारण यह है कि 'ख' प्रत्ययसन्नियोग से परोवर निपातित है; अतः साहचर्य-नियम से 'ख' प्रत्यय के अभाव में परोवर निपातन भी नहीं होगा। 'पुत्रपौत्र-मनुभवतीति पुत्रपौत्रीणः'। {परोवरपरम्पर-}।

समांसमां विजायते ५.२.१२

इह समांसमीना गौः, सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति सुब्लुक् प्राप्नोति * समांसमां विजायत इति यलोपवचनादलुग्विज्ञानम् * **'समांसमां विजायत' इति यलोपवचनादलुग्विज्ञानं भविष्यति। यदयं यलोपं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो—'नाऽत्र लुग्भवती'ति** * समांसमां विजायत इति यलोपवचनादलुग्विज्ञानमिति चेदुत्तरपदस्य लुग्वचनम् * **समांसमां विजायत इति यलोपवचनाद् अलुग्विज्ञानमिति चेदुत्तरपदस्य लुग्वक्तव्यः।**

विपूर्वक जनी भूतप्रादुर्भावे धा.पा.११४९ धातु गर्भविमोचन अर्थ में शक्त है। यहाँ धात्वर्थ के द्वारा कर्म का संग्रह होने से कर्म में 'समाम्' यह द्वितीया नहीं है। समांसमां विजायते इति समांसमीना गौः। प्रतिवर्ष प्रसव करने वाली।

यहाँ गर्भविमोजन सम्पूर्ण वर्ष में व्याप्त नहीं है, अतः अत्यन्तसंयोगलक्षणा द्वितीया भी नहीं है; अपि तु सप्तमी विभक्ति के साथ 'समायांसमायां विजायते'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा विग्रह करेंगे। 'नित्यवीप्सयोः' ८.१.४ से 'समायाम्' को वीप्सा में द्वित्व है। 'समायांसमायां विजायते' ऐसा विग्रह होने पर जब 'विजायते' अर्थ में 'ख' प्रत्यय करेंगे तब तद्धितान्तलक्षण प्रातिपदिकसंज्ञा होने से तन्निमित्तक कार्य की जिज्ञासा करते हैं—**इहेति**। 'समायांसमायां विजायते' अर्थ में 'समायांसमायाम्' से 'विजायते' अर्थ में 'ख' प्रत्यय है। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ से तद्धितान्तलक्षण प्रातिपदिकसंज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से प्रातिपदिकलक्षण सुब्लुक् प्राप्त है, फिर 'समांसमीना गौः' यह रूप कैसे होगा?

समाधानभाष्य—**समांसमामिति**। 'समायांसमायां विजायते' इस विग्रह में 'ख'प्रत्यय होने पर निपातन से पूर्वपदस्थ यकार का लोप किया गया है। यदि यहाँ सुब्लुक् होता तो 'ङि' के अभाव होने पर स्वतः याट् की निवृत्ति हो जाती। इस तरह यलोपवचन व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है-'पूर्वपद में यलोप से सुब्लुक् का बाध होता है'।

आक्षेपभाष्य—**उत्तरपदस्येति**। यदि पूर्वपद में यलोप से सुब्लुक् का बाध कर रहे हैं तो आप को उत्तरपद में सुब्लुक् कहना चाहिये, इससे 'समांसमीना' रूप हो जायेगा।

* सिद्धन्तु पूर्व्वपदस्य यलोपवचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्?** 'पूर्व्वपदस्य यलोपवचनात्'। **पूर्व्वपदस्य यलोपो वक्तव्यः**।

खण्डनभाष्य—**सिद्धन्त्विति**। पूर्वपद में यलोप का निपातन किया है; अतः उत्तरपद में स्वतः सुब्लुक् हो जायेगा। इसके लिए पृथक् वचन कहने की आवश्यकता नहीं है।

* अनुत्पत्तावुत्तरपदस्य च वावचनम् * **अनुत्पत्तौ पूर्व्वपदस्योत्तरपदस्य च यलोपो वक्तव्यः। समांसमां विजायते। समायांसमायां विजायत इति।**

'समांसमीना' की सिद्धि के लिए दूसरा पक्ष भी प्रस्तुत करते हैं—**अनुत्पत्ताविति**। अथ वा दूसरा पक्ष यह होगा कि पूर्वपद में निपातन के द्वारा याट् की अनुत्पत्ति करेंगे तथा पूर्वपद में ही सुप् का अलुक् करेंगे। उत्तरपद में 'ङि' को आम् और याडागम दोनों होगा तथा सुब्लुक् भी होगा। इस तरह द्वितीय रीति से भी निपातन के द्वारा 'समांसमीना गौः' ऐसा रूप हो जायेगा। इस पक्ष में निपातन के द्वारा 'समांसमायां विजायते' यही विग्रह करेंगे। मूल में 'समायांसमायां विजायते' ऐसा विग्रह लेखक के प्रमाद से किया गया है। {**समांसमां वि-**}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगवीनः ५.२.१४

आगवीन इति किं निपात्यते? * गोराङ्पूर्वपदाद् आ तस्य गोः प्रतिदानात् कारिणि खः * **गोराङ्पूर्वपदाद् आ तस्य गोः प्रतिदानात् कारिणि खो निपात्यते। आ तस्य गोः प्रतिदानात् कर्म्म करोति— आगवीनः कर्म्मकरः।** {आगवीनः}।

'आगवीनः' शब्द निपातित है। इसमें प्रकृति, प्रत्यय और प्रत्ययार्थविषयक प्रश्न करते हैं—**आगवीन इतीति**। 'आगवीनः' में कौन सी प्रकृति है, कौन प्रत्यय है तथा उस प्रत्यय का क्या अर्थ है?

उत्तरभाष्य—**गोराङ्पूर्वपदादिति**। आङ्पूर्वक गोप्रकृति से 'आ तस्य गोः प्रतिदानात् कारिणि'=गाय का प्रत्यर्पण पर्यन्त उसकी सेवा करने वाला (बटइया पालने वाला) कर्मकर अर्थ में 'ख'प्रत्यय निपातित है। प्रत्यर्पणपर्यन्त गोसेवा करने वाला 'आगवीनः' कहलाता है। {**आगवीनः**}।

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ५.२.२०

किं यः शालायामधृष्टः स शालीनः, कूपे वा यदकार्यं तत्कौपीनम्? नेत्याह। उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः—शालाप्रवेशनम् अर्हत्यधृष्टः स शालीनः। कूपाऽवतरणमर्हत्यकार्यं तत्कौपीनम्। {शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः}।

सूत्रार्थ—'अधृष्ट=विद्याविहीन मूर्ख अर्थ में 'शालीनः' और अकार्य अर्थ में 'कौपीनः' निपातित है'। शाला और कूप शब्द का मुख्यार्थवृत्तित्व मान कर पूर्वपक्ष करते हैं—**किं य इति**। क्या जो अन्यत्र **धृष्ट**=ढीठ है तथा **शालायाम्**=घर में अधृष्ट है, उस अर्थ में शाला पद से 'ख' प्रत्यय का निपातन कर 'शालीनः' प्रयोग प्राप्त है; एवं कूपलङ्घन आदि **अकार्य**=अकरणीय है, उस अर्थ में कूप आदि 'ख' प्रत्यय तथा आदि अच् को वृद्धि निपातित है?

समाधानभाष्य—**नेत्याहेति**। उपर्युक्त दोनों अर्थों में 'शालीनः' और 'कौपीनः' का निपातन नहीं है। उक्त दोनों शब्दों का अर्थों में प्रयोग स्पष्ट करते हैं—**उत्तरपदलोप इति**। लोक में प्रसिद्ध अर्थों में ही शब्दों का साधुत्वबोध होता है। लोक में शालीन पद अधृष्ट अर्थ में, तथा कौपीन पद अकार्य अर्थ में प्रसिद्ध है; अतः इन्हीं अर्थों में 'शालीनः, कौंपीनः' पद का साधुत्व है। इसके लिए प्रकृत में उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। जैसे 'शालां प्रवेशमर्हति अधृष्ट इति शालीनः'। अर्थात् घर से बाहर विद्वत्सभा में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोलने के भय से डर कर घर में घुसा रहने वाला शालीन कहा जाता है।

कौपीन पद को स्पष्ट करते हैं—**कूपाऽवरणमिति**। जो नरक में पात करा दे, उस पाप को कौपीन कहते हैं; वह अकार्य है। अकार्ययोग्यता होने से पुरुषलिङ्ग भी कौपीन पद बोध्य है। एवं पुरुषलिङ्ग का आच्छादकवस्त्र भी तत्साहचर्यात् कौपीन कहलाता है। {**शालीनकौपीने अ-**}।

व्रातेन जीवति ५.२.२१

'व्रातेन जीवती'त्युच्यते,-किं व्रातं नाम? नानाजातीया अनियत-वृत्तय उत्सेधजीविनः सङ्घा व्राताः। तेषां कर्म व्रातम्। व्रातकर्मणा जीवतीति व्रातीनः। {व्रातेन जीवति}।

स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर 'अध्वनो यत्खौ' ५.२.१६ से विधेयवचन 'ख' की अनुवृत्ति है।

यहाँ 'वातेन जीवति' ऐसा कहा जा रहा है। व्रातशब्द सङ्घवाची है। जो सङ्घवाची व्रात प्रातिपदिक है, उससे 'जीवति' अर्थ में 'ख' प्रत्यय करके 'व्रातीन' पद का प्रयोग नहीं है; अपि तु जो व्रात कर्म में जीवित है, उससे व्रातीनशब्द का प्रयोग है। जब कि व्रातकर्म में शक्त व्रात प्रातिपदिक से तद्धित होकर 'व्रातीयः' ऐसा प्रयोग होना चाहिये; अतः ऐसी परिस्थिति में प्रश्न करते हैं—**व्रातेनेति**। 'व्रातेन जीवति' ऐसा सूत्र पढा जा रहा है। व्रात क्या है?

उत्तरपक्षी आचार्य व्रातपद का अर्थ स्पष्ट करते हैं—**नानाजातीया इति**। चाण्डाल आदि अनेक जातीयों की वृत्ति निर्धारित नहीं है। वे जातियाँ **उत्सेध-जीविनः**=भार आदि ढोकर शरीर से अपनी जीविका चलाती हैं, बुद्धिवैभव से नहीं। उन जातियों का सङ्घ व्रात कहलाता है। उन व्रातों का कर्म व्रात कहलाता है। यहाँ 'व्रातानां कर्म' इस विग्रह में व्रात पद से 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ प्राप्त है। निपातन के द्वारा अण् से छ का बाध हो जाता है। उनमें से अन्यतम जो व्रातकर्म से अपनी जीविका चलाते हैं, उसे व्रातीन कहा जाता है। {**व्रातेन-**}।

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५.२.२३

'हैयङ्गवीन'मिति किं निपात्यते? * ह्योगोदोहस्य हियङ्ग्वादेशः संज्ञायां तस्य विकारे * **ह्योगोदोहस्य हियङ्ग्वादेशो निपात्यते संज्ञायां विषये तस्य विकार इत्येतस्मिन्नर्थे। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घृतम्। संज्ञायामिति किमर्थम्? ह्योगोदोहस्य विकार उदश्वित् अत्र मा भूदिति।

यहाँ ख प्रत्यय और प्रत्ययार्थ स्पष्ट है; अतः प्रकृतिविषयक प्रश्न करते हैं—**हैयङ्गवीनमिति**। आप 'हैयङ्गवीनम्' में क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**ह्योगोदोहस्येति**। संज्ञा गम्य होने पर ह्योगोदोह के स्थान में हियङ्गु आदेश है तथा विकार अर्थ में ख प्रत्यय निपातित है। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं घृतम्। जहाँ संज्ञाभिन्न अर्थ वाच्य है, वहाँ 'ह्योगोदोहस्य विकारः' ऐसा अर्थ करने पर प्रकृति को हियङ्गु आदेश तथा विकार अर्थ में ख प्रत्यय नहीं होगा। {**हैयङ्गवीनं-**}।

पक्षात्तिः ५.२.२५

*** मूल इति वक्तव्यम् * पक्षस्य मूलं पक्षतिः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। मूल इति वर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचा'विति। यदि तदनुवर्त्तते पाकेऽपि प्राप्नोति।**

'पक्षात्' पञ्चम्यन्त, 'तिः' प्रथमान्त होने से यह दो पदों का सूत्र है। वार्तिककार—**मूल इतीति**। 'पक्षान्मूले तिः' ऐसा सूत्र करना चाहिये था। इससे पक्ष का मूल वाच्य होने पर पक्षप्रातिपदिक से ति प्रत्ययं होगा—'पक्षस्य मूलं पक्षतिः'।

आक्षेपक आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'पक्षात्तिः' सूत्र पर 'मूल इति वक्तव्यम्' ऐसा वार्तिकवचन पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यहाँ इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। उक्त वार्तिक के अभाव में भी लक्ष्यसिद्धि स्पष्ट करते हैं—**इति वर्त्तत इति**। पूर्वसूत्र में मूल पद पढा गया है; वहीं से उसकी अनुवृत्ति हो जायेगी।

इतर आचार्य—**क्वेति**। इससे पूर्व किस सूत्र में मूल पद पढा गया है?

उत्तरभाष्य—**तस्येति**। 'तस्य पाकमूले पिल्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ' ५.२.२४ सूत्र में मूल पद पढा गया है, वहीं से उसका अनुवर्त्तन हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तदिति**। यदि पूर्व सूत्र 'तस्य पाकमूले पिल्वादि-कर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ' ५.२.२४ से मूल पद की अनुवृत्ति करेंगे तो वहाँ 'पाकमूले' ऐसा पढा है। जैसे 'मूल' की अनुवृत्ति हो रही है वैसे एकयोगनिर्दिष्ट होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से पाक पद की भी अनुवृत्ति होगी। इस तरह जैसे 'वृक्षस्य मूलम्' ऐसा विग्रह करके 'पक्षतिः' प्रयोग होता है, वैसे 'वृक्षस्य पाकः' इस विग्रह में भी 'पक्षतिः' प्रयोग की आपत्ति होगी।

मूल इत्यनुवर्त्तते, पाक इति निवृत्तम्। कथं पुनरेकयोगनिर्दिष्टयोरेकदेशोऽनुवर्त्तते एकदेशो वा निवर्त्तते? एकयोगनिर्दिष्टानाम् अप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति। तद्यथा—संख्याव्ययादेर्ङीप्'। 'दामहायनान्ताच्च'। 'संख्यादे'रित्यनुवर्त्तते, 'अव्ययादे'रिति निवृत्तम्। {पक्षात्तिः}।

अन्य आचार्य इस आपत्ति का वारण करते हैं—**मूल इतीति**। पूर्वसूत्र 'तस्य पाकमूले पिल्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ' ५.२.२४ से स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् मात्र मूल पद की ही अनुवृत्ति होगी तथा 'पाक'पद की निवृत्ति हो जायेगी।

आक्षेपक आचार्य—**कथं पुनरिति**। जब 'पाकमूले' ऐसा एकयोग में ही दो शब्दों का निर्देश है, तब क्या कारण है कि एक की अनुवृत्ति तथा दूसरे की निवृत्ति हो जायेगी, जब कि 'एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवित्तः सह वा निवृत्तिः' न्याय है?

समाधानभाष्य—**एकयोगनिर्दिष्टेति**। कहीं-कहीं पर स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से एकयोगनिर्दिष्टों में से एक की अनुवृत्ति तथा दूसरे की निवृत्ति होती है। जैसे 'संख्याऽव्ययादेर्ङीप्' ४.१.२६ सूत्र में 'संख्याऽव्ययादेः' ऐसा एकयोगनिर्दिष्ट है। परन्तु स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से उत्तरसूत्र में मात्र योगैकदेश 'संख्यादेः' की अनुवृत्ति होती है, तथा 'अव्ययादेः' की निवृत्ति हो जाती है; वैसे प्रकृत में स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल से योगैकदेश मूल की अनुवृत्ति तथा पाक की निवृत्ति हो जायेगी। {**पक्षात्तिः**}।

विनञ्भ्यां नानाञौ न सह ५.२.२७

इह नानेति सहार्थो गम्येत, द्वौ हि प्रतिषेधौ प्रकृतमर्थं गमयतः, न न सह सहैवेति। नैष दोषो, नाऽयं प्रत्ययाऽर्थः। किन्तर्हि? प्रकृतिविशेषणमेतद्—विनञित्येताभ्यामसहवाचिभ्यां नानाञौ भवतः। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थे। {विनञ्भ्यां नानाञौ}।

'नसह' यह सङ्घात पद पृथक् अर्थ में है। इससे प्रकृत्यर्थ का निर्देश है। 'विश्च नञ् च विनञौ, ताभ्यां विनञ्भ्याम्', पञ्चम्येकवचनान्त निमित्तवचन, 'ना च नाञ् च इति नानाञौ' प्रथमाद्विवचनान्त विधेयवचन है।

सूत्रार्थ—'असहार्थ पृथग्भाव में शक्त वि से स्वार्थ में ना और नञ् से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वार्थ में नाञ् प्रत्यय हो'। विना, नाना।

आक्षेपभाष्य—**इहेति**। नाना प्रातिपदिक से सह अर्थ का बोध हो रहा है। यहाँ अर्थबोध में हेतु देते हैं—**द्वौ हीति**। नञ्द्वय से प्रकृत्यर्थ में दार्ढ्यबोध होता हैं। प्रकृत में 'न न सह' ऐसा पदच्छेद है। इससे सहार्थ के अभाव का अभावबोध होने पर 'सहैव' ऐसा अर्थबोध होगा। यहाँ आक्षेपक ने 'नसह' से प्रत्ययार्थनिर्देश माना है।

उत्तरपक्षी इसका समाधान करते हैं—**नैष दोष इति**। यहाँ 'सहैव' का बोध नहीं होगा। इसका कारण स्पष्ट करते हैं—**नायमिति**। 'नसह' इस पद से प्रत्ययार्थ का निर्देश नहीं है। अपि तु 'नसह' पद प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। लोक में इन शब्दों की विशेषणता प्रकृत्यर्थ में ही देखी जाती है तथा लोक-प्रसिद्धशब्दों का ही व्याकरणशास्त्र से साधुत्वबोध होता है। इस तरह प्रकृतसूत्र का अर्थनिर्देश करते हैं—**विनञ्भ्यामिति**। असहवाचक वि पद से स्वार्थ में प्रत्यय और नञ्पद से स्वार्थ में नञ् प्रत्यय है।{**विनञ्भ्यां-**}।

वेः शालच्छङ्कटचौ ५.२.२८

कस्मिन्नर्थे शालजादयो भवन्ति? 'न सहे'ति वर्त्तते। भवेत्सिद्धं विशाले शृङ्गे विशङ्कटे शृङ्गे इति। इह तु खलु सङ्कटमिति सङ्गतार्थो गम्यते। 'प्रकट'मिति प्रगताऽर्थो गम्यते। 'उत्कट'मिति उद्गताऽर्थो गम्यते। एवं तर्हि साधने शालजादयो भवन्ति। किं वक्तव्यमेतद्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? उपसर्गेभ्य इमे विधीयन्ते, उपसर्गाश्च पुनरेवमात्मका, यत्र कश्चित् क्रियावाची शब्दः प्रयुज्यते, तत्र क्रिया-विशेषमाहुर्यत्र हि न प्रयुज्यते ससाधनां तत्र क्रियामाहुः। त एते उपसर्गेभ्यो विधीयमानाः ससाधनायां क्रियायां भविष्यन्ति। एवमपि भवेत्सिद्धं—विशाले शृङ्गे इति। इदं तु न सिध्यति विशालो विशङ्कटः। एतदपि सिद्धम्। कथम्? अकारो मत्त्वर्थीयः—विशाले अस्य स्तः विशालः। विशङ्कटे अस्य स्तः विशङ्कट इति।

सूत्रार्थ—'क्रियाविशिष्ट का वाचक वि पद से शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय हो'। जैसे 'विशालम्=विस्तृतम्। विशङ्कटम्=विस्तृतम्'।

प्रश्नभाष्य—**कस्मिन्निति**। शालच् आदि प्रत्यय किस अर्थ में होते हैं? इससे आगे 'सम्प्रोदश्च कटच्' ५.२.२९ इत्यादि प्रत्ययों की अपेक्षा से 'शालजादयो भवन्ति' ऐसा बहुवचननिर्देश है। पूर्व सूत्र 'विनञ्भ्यां नानाञौ नसह' ५.२.२७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से 'नसह' पद की अनुवृत्ति है। असहायरूप अर्थ सर्वत्र असम्भव है; अतः प्रश्न करते हैं—शालच् आदि प्रत्यय किस अर्थ में होते हैं? कहीं पर असहायत्वरूप अर्थ सम्भव है, उसे स्पष्ट करते हैं—**भवेदिति**। 'विशाले शृङ्गे, विशङ्कटे शृङ्गे' में असहायत्वरूप अर्थ सम्भव है। परन्तु जहाँ असहायत्वरूप अर्थ सम्भव नहीं है, उन स्थलों को स्पष्ट करते हैं—**इह त्विति**। 'सम्प्रोदश्च कटच्' ५.२.२९ से कटच् प्रत्यय होकर 'सङ्कटम्' पद है वहाँ सङ्गतरूप अर्थ विवक्षित है। एवं 'प्रकटम्' में प्रगतरूप अर्थ विवक्षित है। 'उत्कटम्' में उत्कटरूप अर्थ विवक्षित है। इस तरह अनुवृत्त 'नसह' पद से लब्ध असहायरूप अर्थ सर्वत्रसम्भव नहीं है, फिर शालच् आदि प्रत्यय किस अर्थ में होंगे?

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। **साधने**=कारक अर्थ में शालच् प्रत्ययों का विधान करना चाहिये।

आक्षेपभाष्य—**किमिति**। तो क्या साधन अर्थ में शालच् आदि प्रत्ययों का विधान करना चाहिये? उपसर्ग शब्दान्तरवाच्यक्रियाविशेषण के द्योतक होते हैं। क्रिया का वाचकपद के अभाव में क्रियान्तर का द्योतक उपसर्ग निरर्थक है। फिर जब क्रिया नहीं है, तब उसका साधन भी असम्भव होगा; अतः साधन अर्थ में शालच् आदि का प्रयोग कैसे सम्भव है? आप इस असम्भव साधन अर्थ में प्रत्यय का विधान कर रहे हैं। इसके लिए क्या आप को साधन अर्थ में प्रत्ययविधान के लिए पृथग्वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नहीति**। इसके लिए पृथग्वचन पढने की आवश्यकता नही है।

आक्षेपक—**कथमिति**। यदि पृथग्वचन नहीं पढेंगे तो 'साधन अर्थ में 'वि' आदि से शालच् आदि प्रत्यय हों' यह अर्थ कहाँ से आयेगा?

उत्तरभाष्य—**उपसर्गेभ्य इति**। लोक में क्रियावचनधातु से पूर्व, एवं वेद में पूर्व, पर तथा व्यवहित भी उपसर्गों का प्रयोग होता है। उपसर्ग भी क्रियावाची ही होते हैं। जहाँ किसी धातु के साथ उपसर्गों का प्रयोग होगा, वहाँ उपसर्ग क्रियाविशेष के वाचक होंगे; परन्तु जहाँ धातुरहित मात्र उपसर्गों का ही प्रयोग होगा, वहाँ क्रियोपर्जन साधनरूप अर्थ को कहेंगे। शब्द अपने अर्थ में नियतशक्ति वाला देखा जाता है। जैसे 'द्विदशाः' इत्यादि में कृत्वसुच् आदि अर्थ भी हैं। इस तरह उपसर्ग से क्रियाविशेष से विहित होने पर भी जहाँ क्रियारहित उपसर्गों का प्रयोग है, वहाँ 'वि' आदि उपसर्ग क्रियोपसर्जन साधन अर्थ में होंगे।

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। यदि क्रियासाधन में शक्त 'वि' आदि से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वार्थ में प्रत्यय मान लिया जाये तो इससे 'विशाले शृङ्गे' यह द्विवचनान्तप्रयोग उपपन्न हो जायेंगे; परन्तु 'विशालः शङ्कटः' की असिद्धि रहेगी। दो शृङ्गों का ही विगमनक्रियाकर्त्तृत्व है, गो आदि का नहीं। उत्तरपक्षी आचार्य 'विशालः, विशङ्कटः' की सिद्धि बताते हैं—**एतदपीति**। 'विशाले शृङ्ग अस्य स्त इति विशालः, विशङ्कटे शृङ्गे अस्य स्त इति विशङ्कटः' यहाँ उभयत्र 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ से मत्वर्थीय अच् प्रत्यय है। यहाँ अनभिधान होने से मतुप् प्रत्यय गो अर्थ में नहीं है। 'विशालवान्' ऐसा मतुबन्तप्रयोग होने पर भी विशालगोयुक्त गोष्ट आदि का ही बोध होगा, गो अर्थ का नहीं। {**वेः शालच्छ-**}।

सम्प्रोदश्च कटच् ५.२.२९

* कटच्प्रकरणे अलाबूतिलोमाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् * **कटच्प्रकरणे अलाबूतिलोमाभ्यो रजस्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। अलाबूकटः। तिलकटः। उमाकटः** * भङ्गायाश्च * **भङ्गायाश्चेति वक्तव्यम्। भङ्गाकटः।**

समाहारद्वन्द्व से पञ्चम्येकवचनान्त 'सम्प्रोदः' पद है। 'च' अव्यय पद, 'कटच्' प्रथमैकवचनान्त विधेय पद है। यह तीन पदों का सूत्र है।

सूत्रार्थ—'विशिष्टसाधनवाचक सम्, प्र और उद् से स्वार्थ में कटच् प्रत्यय हो'। यहाँ 'च'करण से पूर्वसूत्र 'वेः शालच्छङ्कटचौ' ५.२.२८ से 'वेः' की अनुवृत्ति कर 'वि' से पर में भी कटच् प्रत्यय होगा। जैसे—'सङ्कटम्, प्रकटम्, उत्कटम्, विकटम्'।

वार्तिककार—**कटच्प्रकरण इति**। कटच्प्रकरण में अलाबू, तिल और उमा षष्ठ्यन्त से रजः अर्थ वाच्य होने पर कटच् कहना चाहिये। यह विकार प्रत्ययों का अपवाद है। जैसे 'अलाबूनां रजः अलाबूकटः, तिलानां रजः तिलकटः, उमानां रजः उमाकटः'। **भङ्गायाश्चेति**। षष्ठ्यन्त भङ्गा पद से रजः वाच्य होने पर कटच् प्रत्यय कहना चाहिये। भङ्गानां रजः भङ्गाकटः।

* गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्यः * **गोष्ठजादयः प्रत्ययाः स्थानादिष्वर्थेषु पशुनामादिभ्यो वक्तव्याः। गोगोष्ठम्। अविगोष्ठम्** * सङ्घाते कटच् * **सङ्घाते कटच् प्रत्ययो वक्तव्यः। अविकटः। उष्ट्रकटः** * विस्तारे पटच् * **विस्तारे पटच् प्रत्ययो वक्तव्यः। अविपटः। उष्ट्रपटः** * द्वित्वे गोयुगच् * **द्वित्वे गोयुगच्शब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्यः। उष्ट्रगोयुगम्। खरगोयुगम्** * स्नेहने तैलच् * **स्नेहने तैलच्-शब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्यः। इङ्गुदतैलम्। सर्षपतैलम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्यम एकदेशी—**गोष्ठादय इति**। पशु अर्थ का वाचक गो, महिष आदि पदों से पर में स्थान आदि अर्थ वाच्य होने पर गोष्ठच् आदि प्रत्यय कहना चाहिये—गवां स्थानं गोगोष्ठम्। अवीनां स्थानमविगोष्ठम् इत्यादि। **सङ्घाते कटजिति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'पशुनामादिभ्यः' की अनुवृत्ति है। पशु आदि का वाचक गो आदि पदों से पर में सङ्घात गम्य होने पर कटच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'अवीनां सङ्घातः अविकटः'। उष्ट्राणां सङ्घात उष्ट्रकटः'। **विस्तारे पटजिति**। यहाँ भी पूर्ववार्तिक से 'पशुनामादिभ्यः' की अनुवृत्ति है। पशु आदि का वाचक गो आदि पदों से पर में विस्तार अर्थ गम्य होने पर पटच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'अवीनां विस्तारः अविपटः'। उष्ट्राणां विस्तार उष्ट्रपटः'। **द्वित्वे गोयुगजिति**। यहाँ भी पूर्ववार्तिक से 'पशुनामादिभ्यः' की अनुवृत्ति है। पशु आदि का वाचक पद से पर में प्रकृत्यर्थगत द्वित्व गम्य होने पर गोयुगच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'द्वौ उष्ट्रौ इति उष्ट्रगोयुगम्, द्वौ खरौ इति खरगोयुगम्'। **स्नेहने तैलजिति**। स्नेह अर्थ गम्य होने पर षष्ठ्यन्तप्रकृति से तैलच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—'इङ्गुदस्य स्नेह इङ्गुतैलम्, सर्षपस्य स्नेहः सर्षपतैलम्'।

* सम्भवने क्षेत्रे शाकटच् * **सम्भवने क्षेत्रे शाकटच्शब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्यः। इक्षुशाकटम्। मूलशाकटम्** * शाकिनच्च * **सम्भवने क्षेत्रे शाकिनशब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्यः। इक्षुशाकिनम्। मूलशाकिनम्।**

वार्तिक—**सम्भवने इति**। 'सम्भवनं क्षेत्रम्' यह अर्थ वाच्य होने पर षष्ठ्यन्त-प्रातिपदिक से शाकटच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'इक्षूणां सम्भवनं क्षेत्रम् इक्षुशाकटम्, मूलानां सम्भवनं क्षेत्रम् मूलशाकटम्'। **शाकिनच्चेति**। यहाँ 'च' पद से 'सम्भवने क्षेत्रे' का अनुवर्त्तन है। 'सम्भवनं क्षेत्रम्' यह अर्थ वाच्य होने पर षष्ठ्यन्तप्रातिपदिक से शाकिनच् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'इक्षूणां सम्भवनं क्षेत्रम् इक्षुशाकिनम्, मूलानां सम्भवनं क्षेत्रं मूलशाकिनम्'।

* उपमानाद्वा सिद्धम् * **उपमानाद्वा सिद्धमेतत्। गवां स्थानं गोष्ठम्। यथा गवां तद्वदुष्ट्राणाम्। कटज्न वक्तव्य इति। यथा नानाद्रव्याणां सङ्घातः कट एवमवयः संहता अविकटः। पटच्च न वक्तव्य इति। यथा पटः प्रस्तीर्णः एवमवयः प्रस्तीर्णा अविपटः। गोयुगशब्दश्च प्रत्ययो न वक्तव्य इति। गवोर्युगं गोयुगम्। यथा गवोर्युगं तद्वदुष्ट्रस्य—उष्ट्रगोयुगम्। तैलशब्दश्च प्रत्ययो न वक्तव्य इति। प्रकृत्यन्तरं तैलशब्दो विकारे वर्त्तते। एवं च कृत्वा तिल-तैलमित्यपि सिद्धं भवति। शाकटशब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्य एव।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शाकिनशब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्य एव।

मध्यम एकदेशी के वार्तिकों का खण्डन करते हैं—**उपमानाद्वेति**। पशुवाचक पदों से गोष्ठच् प्रत्यय कहना चाहिये। 'गोगोष्ठम्, अविगोष्ठम्' आदि उपमान से सिद्ध हो जायेंगे। 'गावस्तिष्ठन्ति यस्मिँस्तद् गोष्ठम्' में ष्ठा गतिनिवृत्तौ धा. पा. ९५३ धातु से अधिकरण अर्थ में 'घञर्थे कविधानम्' वा.३.३.५८ से 'क' प्रत्यय तथा लोकात् नपुंसक होकर 'गोष्ठम्' पद है। यहाँ गोष्ठसाधर्म्य होने से अवि आदि का स्थान भी गोष्ठ पद से कहा जायेगा। विशेषबोध के लिए उष्ट्र आदि के मध्य से किसी से भी विशेषित किया जा सकता है। मुख्यगोष्ठ का बोध के लिए गोष्ठ का विशेषण गो पद भी हो सकता है। इस तरह उपमान के द्वारा 'गोगोष्ठम्, अविगोष्ठम्, उष्ट्रगोष्ठम्' की सिद्धि हो जा रही है, उसके लिए अतिरिक्त गोष्ठच् प्रत्यय कहने की आवश्यकता नहीं है। एवं पशुवाचकपदों से सङ्घात अर्थ में कटच् प्रत्यय भी नहीं कहना चाहिये। यहाँ भी उपमान से 'अविकटः, उष्ट्रकटः' आदि प्रयोग सिद्ध हो जायेंगे। इसे स्पष्ट करते हैं—**यथा नानेति**। रज्जु, वीरण आदि नानाद्रव्यों का सङ्घात ही कट है। इस तरह कटप्रातिपदिक से संहत अर्थ की उपस्थिति हो रही है। रज्जु, वीरण आदि नानाद्रव्यों से निर्मित संहत कट के समानधर्मा होने से सङ्घात भी कटपदवाच्य होगा; उसका विशेषण जब अवि करेंगे तब उन्हीं अर्थों में 'अवीनां कटः अविकटः' प्रयोग हो जायेगा। इसके लिए पृथक् कटच् प्रत्यय कहने की आवश्यकता नहीं है। एवं पशु अर्थ का वाचक प्रातिपदिक से विस्तार अर्थ में पटच् प्रत्यय भी नहीं कहना चाहिये। पटच् प्रत्यय के अभाव में 'अविपटः, उष्ट्रपटः' की सिद्धि बताते हैं—**यथा पट इति**। अनेक तन्तुओं का विस्तार ही पटपदवाच्य है। इस तरह संहत तन्तु से निर्मित पट से विस्तार अर्थ की स्वतः उपस्थिति हो जायेगी। हम प्रकृत में पट प्रातिपदिक को विस्तारसामान्य अर्थ में लेंगे। इससे पट से भिन्न अन्य भी सङ्घात पट शब्द से वाच्य होगा। इस तरह जब हम विस्तारवाची पट प्रातिपदिक को अवि से विशेषित करेंगे, तब 'अवीनां पटः अविपटः', जब उष्ट्रपद से विशेषित करेंगे तब सम्बन्धित अर्थ में ही 'उष्ट्राणां पटः उष्ट्रपटः' प्रयोग भी हो जायेगा। इसके लिए पृथक् पटच् प्रत्यय कहने की आवश्यकता नहीं है। पशु अर्थ का वाचकपदों से द्वित्व की विवक्षा होने पर गोयुगच् प्रत्यय भी नहीं कहना चाहिये। इस प्रत्यय के अभापपक्ष में भी 'उष्ट्रगोयुगम्, खरगोयुगम्' की सिद्धि बताते हैं—**गवोर्युगमिति**। 'गवोर्युगं गोयुगम्'=दो बैलों की जोडी। युग पद से ग्रीवाबन्धन और काष्ठ इन दो अर्थों की उपस्थिति होती है। यान=सवारी का अङ्ग अर्थ में युग शब्द प्रायः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुल्लिङ्ग में व्यवहृत होता है। 'गवोर्युगं गोयुगम्' प्रयोग होकर द्वित्व का बोध हो रहा है। इसी को यदि मुख्यगोयुगत्व का बोध कराने के लिए गो से विशेषित करेंगे तब 'गोगोयुगम्'। एवं गोयुग का साधर्म्य होने से जब उष्ट्र आदि से विशेषित करेंगे, तब 'उष्ट्रगोयुगम्' प्रयोग हो जायेगा। षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से स्नेह अर्थ में तैलच् प्रत्यय भी नहीं कहना चाहिये। 'तिलेषु भवं तैलम्' में तिल पद से 'तत्र भवः' ४.३.५३ से अण् करके तैल शब्द विकार अर्थ में है। उसे स्नेहसामान्य में मान कर जब विशेष इङ्गुदी, तिल आदि से विशेषित करेंगे तब 'इङ्गुदस्य तैलम् इङ्गुदतैलम्, तिलस्य तैलं तिलतैलम्' ऐसा प्रयोग हो जायेगा। शाकटच् और शाकिनच् प्रत्यय अवश्य कहना चाहिये। इसके लिए 'सम्भवने क्षेत्रे शकटच्' और 'शाकिनच्च' वार्तिक रखना चाहिये। {**सम्प्रोदश्च-**}।

इनच्पिटच्चिकचि च ५.२.३३

* इनच्पिटच्काः चिकचिचिकादेशाश्च * **इनच्पिटच्काः प्रत्यया वक्तव्याः, 'चिक-चि-चिक' इत्येते च प्रकृत्यादेशा वक्तव्याः। चिकिनः। चिपिटः। चिक्कः** * क्लिन्नस्य चिल्पिल्लश्चाऽस्य चक्षुषी * **क्लिन्नस्य चिल्पिलित्येतौ प्रकृत्यादेशौ वक्तव्यौ लश्च प्रत्ययोऽस्य चक्षुषी इत्येतस्मिन्नर्थे। क्लिन्ने अस्य चक्षुषी चिल्लः। पिल्लः** * चुल् च * **चुल् च वक्तव्यः। चुल्लः। यद्यस्येत्युच्यते चिल्ले चक्षषी पिल्ले चक्षुषी इति न सिध्यति। तस्मान्नाऽर्थोऽस्यग्रहणेन। कथं चिल्लः पिल्ल इति? अकारो मत्वर्थीयः— चिल्ले अस्य स्तः चिल्लः, पिल्ले अस्य स्तः पिल्ल इति।** {इनच्पिटच्चिकचि च}।

'नेर्बिडज्बिरीसचौ' ५.२.३२ से पञ्चमी-एकवचनान्त 'नेः' पद की अनुवृत्ति है। 'इनच्-पिटच्' यह समाहारद्वन्द्व है तथा इसका प्रथमा-एकवचनान्त प्रयोग है। 'चिकचि' में भी 'चिक-चि' यह समाहारद्वन्द्व होकर प्रथमा-एकवचनान्त निर्देश है।

सूत्र में दो प्रत्यय तथा प्रकृति 'नि' के स्थान में दो आदेश है। परन्तु तीन प्रत्यय तथा प्रकृति को तीन आदेशविधान के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं—**इनच्पिटच्का इति**। इनच्, पिटच् और 'क' प्रत्यय तथा प्रकृति 'नि' को चिक, चि और चिक् आदेश कहना चाहिये। यहाँ प्रत्यय और आदेश को यथाक्रम समझना चाहिये। इनच् प्रत्यय तथा चिकादेश होने पर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से अल्लोप होकर 'चिकिनः'। 'चि' आदेश तथा पिटच् प्रत्यय के पक्ष में 'चिपिटः'। 'क' प्रत्यय तथा चिक् आदेश होने पर 'चिक्कः' रूप होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिककार—**क्लिन्नस्येति**। 'अस्य चक्षुषी' यह अर्थ वाच्य होने पर क्लिन्न प्रकृति के स्थान में चिल् और पिल् आदेश कहना चाहिये। 'क्लन्ने अस्य चक्षुषी इति चिल्लः, पिल्लः'। **चुल् चेति**। 'अस्य चक्षुषी' यह अर्थ वाच्य होने पर क्लिन्न प्रकृति के स्थान में चुल् आदेश तथा 'ल' प्रत्यय कहना चाहिये। 'क्लन्ने अस्य चक्षुषी इति चुल्लः'।

आक्षेपक आचार्य—**यद्यस्येति**। आपने 'अस्य चक्षुषी' अर्थ वाच्य होने पर क्लिन्न को चिल्, पिल् और चुल् आदेश कहा है। इससे जहाँ 'क्लिन्ने अनयोः चक्षुषी' ऐसा द्विवचनान्त से विग्रह होगा वहाँ प्रकृति क्लिन्न को उक्त आदेश नहीं होने से 'चिल्ले चक्षुषी, पिल्ले चक्षुषी, चुल्ले चक्षुषी' ऐसा इष्ट प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकेगा; जब कि यह प्रयोग भी इष्ट है; अतः इसकी सिद्धि के लिए वार्तिक से 'अस्य' पद हटा देना चाहिये। इससे द्विवचन का प्रयोग उपपन्न हो जायेगा।

अन्य आक्षेपक—**कथमिति**। वार्तिक में 'अस्य' पद नहीं रखेंगे तो 'चिल्लः, पिल्लः' ऐसा एकवचन का रूप कैसे होगा?

समाधानभाष्य—**अकार इति**। 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ गणपाठ में 'स्वाङ्गाद्धीनात्' ऐसा पाठ है। इससे 'चिल्ले अस्य स्तः इति चिल्लः, पिल्ले अस्य स्तः इति पिल्लः' ऐसा मत्वर्थीय अच्प्रत्ययान्त के द्वारा 'चिल्लः, पिल्लः' ऐसा एकवचन में भी रूप हो जायेगा। {इनच्पिटचिकचि}।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५.२.३७

प्रमाण इति किमयं प्रत्ययार्थः? * प्रमाणं न प्रत्ययार्थः * प्रमाण इति नाऽयं प्रत्ययार्थः। क्व तर्हि प्रत्यया भवन्ति? * तद्वति * तद्वति प्रत्यया भवन्ति। कुत एतत्? * अस्येति वर्त्तनात् * अस्येति हि वर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इत'जिति।

'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' से 'तदस्य' का अनुवर्त्तन कर प्रथमान्त से द्वयसच् आदि प्रत्ययों का विधान है। प्रकृतसूत्र में 'प्रमाणे' यह सप्तम्यन्त पद पढा गया है। इस शास्त्र में सप्तमीनिर्देश को प्रकृत्यर्थ भीं देखा जाता है। जैसे—'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५। एवं प्रत्ययार्थत्व भी देखा जाता है। जैसे—'कर्तरि कृत्' ३.४.६७। इस तरह दोनों सम्भव होने पर प्राश्निक आचार्य प्रश्न करते हैं—**प्रमाण इतीति**। क्या 'प्रमाणे' यह प्रत्ययार्थ है? यदि 'प्रमाणे' यह प्रत्ययार्थ होगा तो प्रमेयवाची से प्रमाण अर्थ में प्रत्यय होगा एवं योग्यतावश समर्थविभक्ति षष्ठी हो जायेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**प्रमाणं नेति**। यहाँ सप्तम्यन्त 'प्रमाणे' पद से प्रत्ययार्थ नहीं कहा जा रहा है।

प्रश्नभाष्य—**क्व तर्हीति**। यदि सप्तम्यन्त से प्रत्ययार्थ नहीं कहा जा रहा है तो प्रत्यय किस अर्थ में होंगे?

उत्तरभाष्य—**तद्वतीति**। तद्वान् अर्थ में प्रत्यय होंगे।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**कुत एतदिति**। यह कैसे जाना जाये कि तद्वान् अर्थ में प्रत्यय होते हैं?

समाधानभाष्य—**अस्येतीति**। 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' से 'तदस्य' पद की अनुवत्ति होती है। यहाँ 'अस्य' पद भी अनुवृत्त है। इससे तद्वान् अर्थ में प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा। इससे 'ऊरू प्रमाणमस्येति ऊरुद्वयसम्, ऊरुदध्नम्, ऊरुमात्रम्' प्रयोग तद्वान् अर्थ में होंगे।

* प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम * **प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मम मतौ—ऊरुद्वयसम्। ऊरुदध्नम्। जानुद्वयसम्। जानुदध्नम्** * प्रमाणे लः * **प्रमाणे लो वक्तव्यः। शमः दिष्टिः वितस्तिः** * द्विगोर्नित्यम् * **द्विगोर्नित्यं लो वक्तव्यः। द्विशमम्। त्रिशमम्। द्विदिष्टिः। त्रिदिष्टिः। द्विवितस्तिः। त्रिवितस्तिः। किमर्थमिदमुच्यते? संशये श्राविणं वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपकर्षः।**

प्रथमश्चेति। द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् यह तीन प्रत्यय पढे गये हैं। इसमें से मेरे मत में प्रथम प्रत्यय द्वयसच् तथा द्वितीय प्रत्यय दघ्नच् ऊर्ध्वमान में होंगे। यदि सूत्र में पठित प्रमाणपद को आयामवाची मानेंगे तो ऊर्ध्वमान में प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस तरह प्रमाण अर्थ से अलग हट कर द्वयसच् और दध्नच् प्रत्ययों का विधान होगा—'ऊरुद्वयसम्, ऊरुदध्नम्। जानुद्वयसम्, जानुदध्नम्'। अत एव उत्तरसूत्र 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' ५.२.३९ में परिमाणग्रहण चरितार्थ है। परन्तु यदि प्रकृतसूत्र में निर्दिष्ट प्रमाण पद को परिच्छेदकमात्र मानेंगे तो प्रकृतवार्तिक नियामक होगा—'प्रथम और द्वितीय प्रत्यय ऊर्ध्वमान में ही हो, अन्यत्र नहीं'। **प्रमाणे ल इति**। पूर्वाचार्य प्रसिद्ध लुक् की 'ल' यह संज्ञा है, उसका यहाँ समादर कर रहे हैं। लोक में प्रसिद्ध जो प्रमाण पद है; जैसे 'शमः, दिष्टिः, वितस्तः, हस्तः' इत्यादि, उससे परमें प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। यहाँ मात्रच् प्रत्यय का ही लुक् सम्भव है, प्रथम और द्वितीय का ऊर्ध्वमान में ही विधान है; अतः उक्त दोनों की यहाँ प्राप्ति नहीं होने से लुक् नहीं होगा। प्रथम और द्वितीय का ऊर्ध्वमान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में विधान कर दिया गया है; अतः पारिशेष्यात् यहाँ मात्रच् प्रत्यय का ही लुक् समझना चाहिये। जैसे 'शमः प्रमाणमस्येति शमः। वैसे ही 'दिष्टिः, वितस्तिः, हस्तः' इत्यादि में भी मात्रच् का लुक् समझना चाहिये। **द्विगोर्नित्यमिति**। प्रमाणद्विगु से परमें मात्रच् प्रत्यय का नित्यलुक् कहना चाहिये। तदन्तविधि नहीं होने से यहाँ लुक् प्राप्त नहीं था, अतः अतिरिक्तवचन पढा गया है। जैसे 'द्वौ शमौ प्रमाणमस्येति द्विशमम्। त्रयः शमाः प्रमाणमस्येति त्रिशमम्। द्वे दिष्टिः प्रमाणमस्येति द्विदिष्टिः'। इसी तरह 'त्रिदिष्टिः, द्विवितस्तिः, त्रिवितस्तिः' रूप होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'प्रमाणे लः' से ही 'द्विशमम्' इत्यादि में लुक् सिद्ध था, फिर उसी के लिए 'द्विगोर्नित्यम्' वार्तिक क्यों पढते हैं? वह व्यर्थ है?

समाधानभाष्य—**संशये इति**। 'प्रमाण अर्थ में शक्त प्रातिपदिक से 'अस्य' इस अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो' यह 'प्रमाणे लः' का अर्थ है। परन्तु 'द्विगोर्नित्यम्' का—'द्विगु से परमें सर्वत्र 'अस्य' इस अर्थ में तथा संशय अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो' यह अर्थ है। आचार्य वार्तिककार इसी सूत्र पर 'प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये' वार्तिक पढ कर संशय अर्थ में '**श्राविणं वक्ष्यति**'=मात्रच् प्रत्यय कहेंगे। पर होने से उसका श्रवण प्राप्त होगा। बाधकबाधनार्थ नित्यग्रहण होने से उसका भी लुक् ही हो, श्रवण न हो, इसके लिए 'द्विगोर्नित्यम्' वार्तिक का आरम्भ किया गया है। इस तरह 'प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये' इस अपवादवार्तिक का भी 'द्विगोर्नित्यम्' **अपकर्षः**=अपवाद है।

*** डट् स्तोमे * डट् स्तोमे वक्तव्यः। पञ्चदशः स्तोमः। सप्तदशः स्तोमः * शन्शतोर्डिनिः * शन्शतोर्डिनिर्वक्तव्यः। त्रिंशिनो मासाः। पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः * विंशतेश्च * विंशतेश्चेति वक्तव्यम्। विंशिनोऽङ्गिरसः।**

डट् स्तोम इति। मात्रच् प्रत्यय परिच्छेदक, उन्मान और परिमाण इन तीन अर्थों में कहा गया है। यहाँ आयामरूप प्रमाण सम्भव नहीं है; अतः परिच्छेदोपाधि का संख्या से परमें स्तोम अर्थ वाच्य होने पर डट् प्रत्यय होगा। जैसे 'पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य स्तोमस्येति पञ्चदशः स्तोमः'। इसी तरह 'सप्तदशः स्तोमः'। यहाँ डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप है। **शन्शतोरिति**। अनुवृत्त 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का 'शन्शतोः' विशेषण है; अतः तदन्त अर्थ कहेगा। 'शन्शतोः' इस षष्ठीद्विवचनान्त का पञ्चमी से विपरिणाम करेंगे। 'शन्नन्त और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शदन्त संख्यामात्रवाची से संख्येय प्रमेय गम्य होने पर डिनि प्रत्यय हो' यह वार्तिकार्थ है। जैसे शदन्त—'त्रिंशद्दिनानि प्रमाणमेषामिति त्रिंशिनो मासाः'। शन्नन्त—'पञ्चदश दिनानि प्रमाणमेषामिति पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः'। यहाँ डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप है। **विंतेश्चेति**। संख्यामात्रवाची विंशतिपद से संख्येय प्रमेय गम्य होने पर डिनि हो—'विंशतिः प्रमाणमेषामिति विंशिनोऽङ्गिरसः'। यहाँ 'विंशति+डिन्' इस दशा में 'तिविंशतेर्डिति:' ६.४.१४२ से तिलोप तथा 'यस्येति च' ६.४. १४८ से अल्लोप होकर 'विंशिनः' यह बहुवचनान्त रूप है। 'यस्येति च' ६. ४.१४८ से अल्लोप की कर्तव्यता मे 'तिविंशतेर्डिति:' ६.४.१४२ से किया गया तिलोप भाष्यकारवचन से 'असिद्धवदत्राऽऽभात्' ६.४.२२ के द्वारा असिद्ध नहीं होता है।

* प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये * **प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः। शममात्रम्। दिष्टिमात्रम्। वितस्तिमात्रम्। प्रस्थमात्रम्। कुडवमात्रम्। पञ्चमात्राः। दशमात्राः।**

प्रमाणपरिमाणाभ्यामिति। यहाँ रूढ प्रमाण और परिमाण पद भेदपूर्वक निर्दिष्ट है। प्रमाणवाची और परिमाणवाची पदों से संशय गम्य होने पर मात्रच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'शमः प्रमाणमस्य स्यान्न वेति शममात्रम्। दिष्टिः प्रमाणमस्य स्यान्न वेति दिष्टिमात्रम्। वितस्तिः प्रमाणमस्य स्यान्न वेति वितस्तिमात्रम्। प्रस्थः प्रमाणमस्य स्यान्न वेति प्रस्थमात्रम्। कुडवः प्रमाणमस्य स्यान्न वेति कुडवमात्रम्'। **संख्यायाः**=मानार्थवाचि पदों से स्वार्थ में मात्रच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'पञ्च स्युर्नवेति' ऐसा संशय करके पञ्च पद से स्वार्थ में मात्रच् प्रत्यय होगा। अथ वा 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२२ की तरह शक्तिविषय में संख्यामात्र वाचि प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में मात्रच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे 'पञ्चत्वसंख्या प्रमाणमेषां स्यान्न वेति पञ्चमात्राः। दशसंख्या प्रमाणमेषां स्यान्न वेति दशमात्राः'।

* वत्वन्तात् स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् * **वत्वन्तात् स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलं वक्तव्यौ। तावदेव तावद्द्वयसम्। तावन्मात्रम्। यावदेव यावद्द्वयसम्। यावन्मात्रम्।**

प्रमाणं प्रत्ययार्थो न तद्वत्यस्येति वर्त्तनात्।
प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम।।
तृतीयश्चाऽविशेषेण प्रस्थमात्रमपीष्यते।
प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यं डट् स्तोमे शच्शनोर्डिनिः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये।।

वत्वन्तान्तादिति। वत्वन्त से स्वार्थ में द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—'तत्परिमाणं यस्य काष्ठादेस्तत्—तावत्काष्ठादिकम्। 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' ५.१.३६ से वतुप् से होने पर वत्वन्त तावत् से स्वार्थ में द्वयसच् होकर 'तावद्द्वयसम्। मात्रच् होकर 'तावन्मात्रम्'। इसी तरह 'यावद्द्वयसम्, यावन्मात्रम्' भी होगा।

यहाँ संगृहीत श्लोकवार्तिकों की व्याख्या इसी सूत्र पर करता आया हूँ। पाठकगण वहीं से अर्थबोध करेंगे। {**प्रमाणे-**}

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५.२.३९

किमर्थं परिमाण इत्युच्यते, न प्रमाण इति वर्त्तते? एवं तर्हि सिद्धे सति यत्परिमाणग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽन्यत् परिमाणमिति * डावतावर्थवैशेष्यान्निर्देशः पृथगुच्यते * **डावतावर्थवैशेष्यान्निर्देशः पृथगुच्यते। नैतज्ज्ञापकसाध्यम् अन्यत् प्रमाणमन्यत् परिमाणमिति, उक्तोऽत्र विशेषः** * मात्राद्यप्रतिघाताय * **एवं च कृत्वा मात्रादीनां प्रतिघातो न भवति** * भावः सिद्धश्च डावतोः * **डावत्वन्ताच्च मात्रजादीनां भावः सिद्धो भवति।**

'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' ५.२.३६ से 'तदस्य' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अस्य तत्परिमाणम्' इस अर्थ में परिमाणवाचि प्रथमान्त यद्, तद् और एतद् से वतुप् प्रत्यय हो'। यत्परिमाणमस्य यावान्। तत्परिमाणमस्य तावान्। एतत्परिमाणमस्य एतावान्।

पूर्वसूत्र 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' ५.२.३७ में प्रमाण पद पढा गया है तथा प्रकृतसूत्र में परिमाण पद पढा जा रहा है।

आक्षेपक आचार्य प्रमाण और परिमाण को समानार्थ मान कर आक्षेप करते हैं—**किमर्थमिति**। पूर्वसूत्र 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' ५.२.३७ में प्रमाण पद की अनुवृत्ति हो रही है। समानार्थक प्रमाण से ही परिमाण का ग्रहण हो जायेगा; फिर प्रकृतसूत्र में आचार्य ने परिमाणपद का ग्रहण क्यों किया है? मूल में 'न प्रमाण इति वर्त्तते' ऐसा लिखा है। यहाँ काकू के द्वारा नञ् का प्रयोग है; अतः 'अनुवर्त्तत एव' ऐसा अर्थ करना चाहिये।

एकदेशी आचार्य—**एवं तर्हीति**। अनुवृत्त प्रमाण पद से ही परिमाण अर्थ का लाभ हो जाने पर आचार्य ने जो पृथक् परिमाणपद का ग्रहण किया, वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है-'प्रमाण से परिमाण भिन्न है'।

श्लोकवार्तिक—**डावताविति**। वतुब्निर्देश की अपेक्षा यहाँ वार्तिक में डावतु-निर्देश किया है। पूर्वाचार्यों की प्रक्रिया में वतुप् को डावतुनिर्देश किया है। यहाँ पर आचार्य पाणिनि ने वतुप्रत्यय का विधान कर 'आसर्वनाम्नः' ६.३.६१ से आत्त्वविधान किया है; जब कि पूर्वाचार्यों ने प्रकृत में डवतुप्रत्यय का विधान कर डित्त्वसामर्थ्य से टिलोप के द्वारा 'यावान्, तावान्, एतावान्' की सिद्धि की है। वतुप् प्रत्यय में **अर्थवैशेष्यात्**=विशेष्यते इति विशेषः, विशेषस्य भावो वैशेष्यम्' में 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२४ से ष्यञन्तप्रयोग है। 'अर्थस्य वैशेष्यम् अर्थवैशेष्यम्'=अर्थभेद मान कर ही प्रमाण से पृथक् परिमाण का ग्रहण करते हैं। इसके लिए यहाँ ज्ञापन की आवश्यकता नहीं है कि—'प्रमाण और परिमाण अभिन्न नहीं हैं'। अपि तु इन दोनों में भेद है, इसे मैं बता आया हूँ'—आयामस्तु प्रमाणं स्यात् परिमाणन्तु सर्वतः' इति। **मात्राद्य-प्रतीति**। यदि पूर्वसूत्र 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' ५.२.३७ में प्रमाण पद की अनुवृत्ति करके प्रमाणोपाधिक यद्, तद्, एतद् से वतुप् का विधान करेंगे तो यह वतुप् प्रत्यय विशेष विहित होगा तथा सामान्यविहित मात्रच् आदि होंगे। विशेष विहित वतुप् से सामान्यविहित मात्रच् आदि का बाध होने लगेगा। परन्तु जब परिमाणग्रहण करते हैं तब उपाधि के भिन्न होने से बाध्यबाधकभाव नहीं होता है; अतः प्रमाणोपाधि होने पर प्रकृत्यर्थ में 'तन्मात्रम्, यन्मात्रम्' भी होता है। **भावः सिद्धश्चेति**। पृथक् परिमाणग्रहण करने से वत्वन्त 'यावान्, तावान्, एतावान्' से मात्रच् प्रत्यय की सिद्धि भी हो जाती है। जैसे 'तत्परिमाणमस्य धान्यस्येति तावद् धान्यं राशीकृतम्। तावत्प्रमाणमस्य कुड्यादेरिति तावन्मात्रम्'। राशीकृत धान्य का जितना दैर्घ्य है, उतना ही दैर्घ्य इस कुड्य की भी है, यह इसका अर्थ है। परन्तु यदि समानविषयता होगी तो वह विशिष्ट प्रमेयरूप अर्थ वतुप् से ही हो जायेगा; उसके लिए वत्वन्त से मात्रच् प्रत्यय नहीं हो सकेगा। अपि तु वहाँ केवल 'तावत्' पद का ही प्रयोग होगा।

* वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्ये उपसंख्यानम् * **वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्ये उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते'। 'त्वावतः पुरूवसो'। 'यज्ञं विप्रस्य मावतः'। 'त्वत्सदृशस्य'। मत्सदृशस्ये'ति।**

डावतावर्थवैशेष्यान्निर्देशः पृथगुच्यते।
मात्राद्यप्रतिघाताय भावः सिद्धश्च डावतोः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वतुप्रकरण इति। सादृश्य वाच्य होने पर वतुप्रकरण में युष्मद् और अस्मद् से वेद में वतुप् प्रत्यय कहना चाहिये। 'सादृश्ये' यह विषयनिर्देश है। प्रत्यय का अर्थ सदृश ही होगा। इसे उदाहरणों से स्पष्ट किया है-'न त्वावाँ अन्य इति'। 'त्वावाँ' का अर्थ 'त्वत्सदृशः' है। '**त्वावतः**=त्वत्सदृशस्य, **मावतः**= मत्सदृशस्य' ऐसा अर्थ है। इस तरह पूर्वसूत्र में प्रमाण पद आयामार्थक ही है, तथा प्रकृतसूत्र में परिमाण पद सर्वतो मानार्थक है।

यहाँ संगृहीत श्लोकवार्तिक 'डावतावर्थवैशेष्यात्-' की इसी सूत्र पर खण्डशः व्याख्या की गयी है। पाठकगण वहीं से गतार्थ करेंगे। {**यत्तद्-**}

किमिदम्भ्यां वो घः ५.२.४०

केन विहितस्य किमिदम्भ्यां वतुपो वो घत्वमुच्यते? एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो—'भवति किमिदम्भ्यां वतु'बिति, यदयं किमिदम्भ्या-मुत्तरस्य वतुपो वो घत्वं शास्ति। अथ वा योगविभागः करिष्यते—'किमिदम्भ्याम्'। किमिदम्भ्यां वतुब्भवतीति। ततो 'वो घः'। वश्चाऽस्य घो भवतीति।

'तदस्य' ५.२.३६ और 'परिमाणे वतुप्' ५.२.३९ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'प्रथमान्त किम् और इदम् पद से 'अस्य तत्परिमाणम्' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो तथा वकार को घकार आदेश हो'। किं परिमाणमस्येति कियान्, इदं परिमाणमस्येति इयान्। व को घादेश, घ को इयादेश है। 'किम्+ इयत्' इस दशा में 'इदङ्किमोरीश्की' ६.३.९० से किम् को 'की' भाव तथा इदम् को 'इश्'भाव आदेश होकर 'कियान्, इयान्' रूप है।

आक्षेपक—**केनेति**। किस सूत्र से यहाँ वतुप् प्राप्त है, जिसके वकार को घकार आदेश कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**एतदेवेति**। आचार्य ने प्रकृतसूत्र में वतुप् प्रत्यय के व को घ आदेश किया है। प्रकृतसूत्र में किम् और इदम् से वतुप् विहित नहीं है; अतः आदेशविधान की अन्यथा अनुपपत्ति होने से अर्थापत्तिप्रमाण के द्वारा प्रत्यय का अनुमान करेंगे—'किम् और इदम् से वतुप् प्रत्यय होता है' जिसके व को घादेश विधान है।

इसी को प्रकारान्तर से सिद्ध करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा प्रकृतसूत्र का विभाग कर 'किमिदम्भ्याम्' यह प्रथमयोग तथा 'वो घः' यह दूसरा योग पढेंगे। पूर्वसूत्र से वतुप् का अनुवर्त्तन करेंगे। यही वतुप् द्वितीययोग में अनुवृत्त होकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवयवषष्ठी के द्वारा परिणत हो जायेगा। अर्थ होगा—'वतुप् के व को घ आदेश हो'। इससे वतुप् का लाभ हो जायेगा। {किमिदम्भ्यां-}।

किमः संख्यापरिमाणे डति च ५.२.४१

बहुष्विति वक्तव्यम्। इह मा भूत्-कियान्। कियन्तौ। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। किमित्येतत् परिप्रश्ने वर्त्तते, परिप्रश्नश्चाऽनिर्ज्ञाते, अनिर्ज्ञातश्च बहुषु। द्व्येकयोः पुनर्निर्ज्ञातम्। निर्ज्ञातत्वाद् द्व्येकयोः परिप्रश्नो न, परिप्रश्नाऽभावात् किमेव तावन्नाऽस्ति कुतः प्रत्ययः?

पूर्वसूत्र से 'तदस्य' ५.२.३६ की अनुवृत्ति है। 'संख्यायाः परिमाणं=परिच्छेदक इति संख्यापरिमाणं तस्मिन्'। किम् शब्द प्रश्न में है।

सूत्रार्थ—'काऽस्य संख्या' इस तरह का संख्यापरिच्छेदविषयक प्रश्न में शञ किम् प्रथमान्तप्रातिपदिक से 'अस्य' इस अर्थ में डति प्रत्यय हो'। का संख्या एतेषां ते कति। सूत्र में 'च' पद पठित है। उससे वतुप् की अनुवृत्ति होकर उक्त विग्रह में 'कियन्तः' रूप भी होगा।

एकदेशि भाष्य—**बहुष्विति**। किम् पद से संख्यापरिमाण गम्य होने पर बहुवचन में ही प्रत्यय कहना चाहिये। इससे जहाँ 'का संख्या परिमाणमस्य वर्गस्य' इत्याकारक जब वर्ग का अवयवगत संख्याविशेषविषयक प्रश्न होगा, तब प्रत्यय होकर 'कति वर्गाः' ऐसा प्रश्न होगा। तथा 'चतुष्कम्' आदि उसका उत्तर होगा; अतः यहाँ प्रत्यय की निवृत्ति के लिए प्रकृत में 'बहुषु' ऐसा पद पढना चाहिये। इससे उक्तविग्रह में एकवचन में 'कियान्' और द्विवचन में 'कियन्तौ' यह अनिष्ट प्रयोग नहीं होगा।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या प्रकृतसूत्र में 'बहुषु' पद का पाठ करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। 'बहुषु' पद का पाठ नहीं होने पर भी एकवचन और द्विवचन में प्रत्यय की प्राप्ति स्पष्ट करते हैं—**किमितीति**। किम् शब्द परिप्रश्न में है। परिप्रश्न अनिर्ज्ञात होता है। जब कि द्वित्व और एकत्व निर्ज्ञात होते हैं; अतः उस विषय में प्रश्न नहीं हो सकता है। इस तरह एकवचन और द्विवचन में जब प्रश्न नहीं हो सकता है तब प्रत्यय का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहाँ पर पूर्वसूत्र से 'अस्य' का अधिकार आता है; अतः जो संख्या जिज्ञास्य है, उसी में प्रत्यय उत्पन्न होना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये। यदि वर्गविशेषगत संख्याविशेषप्रश्न है, तब अवयवों में प्रत्यय होगा, व्यवहित संख्यासम्बन्धवर्ग में नहीं; अतः वहाँ भी 'कति गावोऽस्मिन् वर्गे' ऐसा प्रत्यय होगा। परन्तु यदि सङ्घ और सङ्घी की अभेदविवक्षा करेंगे तो 'कति गावोऽयं वर्गः' ऐसा वाक्य होगा। परिमाणोपाधिप्रकृत्यर्थ में 'कियान्' ऐसा प्रयोग होगा। परन्तु संख्याविषयक प्रश्न होने पर 'कियन्तः' ऐसा बहुवचनान्तप्रयोग ही होगा। {किमः संख्या-}।

संख्याया अवयवे तयप् ५.२.४२

इह कस्मान्न भवति-बहवोऽवयवा अस्याः संख्याया इति? अवयवे या संख्येत्युच्यते, न च काचित् सङ्ख्याऽस्ति यस्या बहुशब्दोऽवयवः स्यात्! ननु चेयमस्ति—सङ्ख्येत्येव। नैषा सङ्ख्या। किन्तर्हि? संज्ञैषा।

'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' ५.२.३६ से 'तदस्य' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'द्वित्र्यादिसंख्यका अवयवा यस्य अवयविनः' इस तरह का विग्रह होने पर अवयवीभूत संख्यावाचि प्रथमान्त से 'अस्य अवयविनः' अर्थ में तयप् हो'। पञ्च अवयवा अस्य अवयविन इति पञ्चतयं दारु।

भेदरहित संख्यालक्षण अर्थ का एकत्व आदि विशेष अवयव मान कर प्रश्न करते हैं—**इह कस्मान्नेति**। 'बहवोऽवयवा अस्याः संख्यायाः' इस विग्रह में बहु पद से तयप् प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अवयवे इति**। 'अवयवे याः संख्यास्ततस्तयप्' इस अर्थ में सूत्र किया गया है। इससे अवयव में जो संख्यावाची शब्द, उससे 'अस्य' इस अर्थ में अवयवी वाच्य होने पर तयप् प्रत्यय होता है। सामान्य और विशेष का अवयवावयविभाव सम्भव नहीं है। कोई ऐसी संख्या नहीं है जिसका बहुशब्द का वाच्य अर्थ अवयव हो सके; अतः उक्त विग्रह में बहु पद से तयप् प्रत्यय नहीं होता है। यद्यपि यहाँ पर 'बहवः एकत्वगुणा अवयवा अस्या विंशतिसंख्यायास्तत्समुदायस्वरूपायाः सा' इस तरह का विग्रह कर 'बहुतयी विंशतिः' में तयप् प्रत्यय हो सकता है, तथापि यहाँ विंशतिसंख्या के बहु-एकत्वावयवकत्व का व्यभिचार नहीं होने से प्रत्ययार्थ का प्रकृत्यर्थ विशेषण अनुपपन्न होगा।

अन्य आचार्य—**ननु चेयमिति**। आप कैसे कहते हैं कि अवयव अर्थ में शक्त संख्याशब्द बहु नहीं है? बहु पद भी 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से संख्याशब्दवाच्य संख्या अवयवी अर्थ में है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नैषेति**। 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ सूत्र में संख्यापद से संख्याविशेष का बोध नहीं कराया जा रहा है, अपि तु वहाँ एकत्व आदि संख्यात्वजातियुक्तों की संख्यासंज्ञा की जा रही है। यहाँ पर संख्याशब्द से प्रतिपाद्य सामान्यविशेष का अवयवित्व असम्भव है। 'बहुतयं यूथम्' यह प्रयोग अवयवावयवी की भेदविवक्षा में होता है। 'बहुतयं रूपम्' यह प्रयोग विचित्र रूप की अवयववित्वविवक्षा में होता है। परन्तु यदि शुक्ल आदि विशेषविषयरूप सामान्य की विवक्षा होगी तब सामान्य और विशेष में अवयवावयविभाव नहीं होने से 'बहुतयं रूपम्' प्रयोग नहीं हो सकेगा।

* अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययः * **अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययो भवतीति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—पञ्चावयवा दशावयवा इति।**

अवयवविधान इति। स्वार्थ में प्रत्यय न हो, इसके लिए अवयवविधान होने पर अवयवी अर्थ में प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिये। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**इह मा भूदिति**। 'अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययः' ऐसा वचन पढने से 'पञ्चावयवाः, दशावयवाः' में प्रत्यय नहीं होता है।

अथाऽवयविनीत्युच्यमानेऽवयवस्वामिनि कस्मान्न भवति—'पञ्च पश्ववयवा देवदत्तस्ये'ति? अवयवशब्दोऽयं गुणशब्दः। 'अस्ये'ति च वर्त्तते। तेन यं प्रत्यवयवो गुणस्तस्मिन्नवयविनि प्रत्ययेन भवितव्यम्।

'अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययः' वार्तिक में 'अवयविनि' पद पढा है। 'अवयवाः सन्त्यस्य' इस व्युत्पत्ति से अवयविपद का अवयवस्वामी भी वाच्य होगा, अतः अवयवस्वामी अर्थ वाच्य होने पर भी प्रत्यय प्राप्त है, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**अथेति**। 'अवयविनि' ऐसा कहने पर 'पञ्च पश्ववयवा देवदत्तस्य' में अवयवस्वामी अर्थ में प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अवयवशब्दोऽयमिति**। 'अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययः' में अवयवपद गुणवचन है। सम्बन्धिशब्द होने से गुणवचन नियत होता है; अतः 'अवयविनि' में सम्बन्धी अर्थ में इनि प्रत्यय है। जैसे 'पितृमान्' ऐसा सम्बन्धि शब्द का उच्चारण करने से पुत्र अर्थ ही वाच्य होता है, वैसे प्रकृत वार्तिक में सम्बन्धि शब्द मत्वर्थीय अवयवी का उच्चारण करने से सम्बद्ध अवयव से आरब्ध अवयवी अर्थ की ही उपस्थिति होगी, स्वामी अर्थ की नहीं; अतः 'पञ्च पश्ववयवा देवदत्तस्य' में अवयवस्वामी अर्थ में प्रत्यय नहीं होता है। एवं दूसरी बात यह भी है कि—'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ सूत्र से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अस्य' इस षष्ठ्यन्तपद की अनुवृत्ति उत्तरसूत्र 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ में होती है। परन्तु भाष्यकार ने 'सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ' म.भा.वा.५.२.११५ ऐसा कह कर इनि और ठन् का सप्तम्यर्थ में अभाव कहा है, अतः जिसके प्रति अवयव गुण होगा, उसी अवयवी के वाच्य होने पर प्रत्यय होगा, अन्य के नहीं।

कं च प्रत्यवयवो गुणः? समुदायम्। यद्येवमवयविनीत्यपि न वक्तव्यम्। अवयवेषु कस्मान्न भवति? 'अस्ये'ति वर्त्तते। {संख्याया अवयवे}।

जिज्ञासु आचार्य—**कं चेति**। किसके प्रति अवयव गुण होता है?

उत्तरभाष्य—**समुदायमिति**। समुदाय के प्रति अवयव गुण होता है।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि समुदाय के प्रति अवयव गुण होता है तो 'अवयवविधानेऽवयविनि प्रत्ययः' वार्तिक में 'अवयविनि' पद का ग्रहण भी नहीं कहना चाहिये। वार्तिक का शेष अर्थ सूत्र से ही आ जायेगा; अतः उक्त वार्तिक करने की आवश्यकता नहीं है।

जिज्ञासु आचार्य—**अवयवेष्विति**। यदि प्रकृतवार्तिक में 'अवयविनि' पद नहीं पढेंगे तो 'अवयवविधाने प्रत्ययः' मात्र इतना ही वार्तिक शेष होगा। इससे अवयव अर्थ में प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अस्येतीति**। 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' ५.२.३६ से 'अस्य' इस षष्ठ्यन्त पद की अनुवृत्ति होती है; अतः यहाँ 'अस्य' पद से अवयवी वाच्य होने से अवयवी अर्थ में ही प्रत्यय होगा, अवयव अर्थ में नहीं। **{संख्याया-}**।

उभादुदात्तो नित्यम् ५.२.४४

किमर्थमुदात्त इत्युच्यते? उदात्तो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं, प्रत्ययस्वरेणाऽप्येष स्वरः सिद्धः। न सिध्यति'चितोऽन्त उदात्तो भवती'त्यन्तोदात्तत्वं प्रसज्येत। अथोदात्त इत्युच्यमाने कुत एतदादेरुदात्तत्वं भविष्यति, न पुनरन्तस्येति? उदात्तवचनसामर्थ्याद् यस्याऽप्राप्तः स्वरस्तस्य भविष्यति। कस्य चाऽप्राप्तः? आदेः। अन्तस्य पुनश्चित्स्वरेणैव सिद्धम्।

'संख्याया अवयवे तयप्' ५.२.४२ से तयप् एवं 'द्वित्रिभ्यां तस्याऽयज्वा'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.२.४३ से 'तस्याऽयच्' पद की अनुवृत्ति होती है। 'नित्यम्' पद का ग्रहण होने से विकल्पार्थक 'वा' ५.२.४३ पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'तस्य' इस षष्ठ्यन्त से स्थानी का निर्देश है; अतः तयप् इस प्रथमान्त का षष्ठ्यन्त विपरिणाम होगा। इस तरह सूत्रार्थ—'उभ शब्द से विहित तयप् को नित्य अयच् आदेश हो तथा वह उदात्त हो'। 'उभयो मणिः' में अवयवी का अवयव द्वित्वनिमित्त व्यवहार है। 'उभौ पीतलोहितावयवौ यस्य स उभयः'। 'उभये देवमनुष्याः' में वर्गद्वय की अपेक्षा से प्रकटितभेद वाले वर्गी का कथन है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'उभादुदात्तो नित्यम्' में उदात्तविधान है। क्या आदि का अप्राप्त उदात्त को विधान के लिए यह वचन पढा गया है, अथ वा 'आमन्त्रितस्य च' ६.१.१९८ स्वर का बाध करने के लिए अन्त को उदात्तविधान के लिए पढा गया है?

उत्तरभाष्य—**उदात्तो यथेति**। आदि को उदात्त हो सके, इसके लिए उदात्तविधान है। आदेश अयच् का स्थानी तयप् पित् है। स्थानिवद्भाव के द्वारा 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से अयच् को अनुदात्तस्वर प्राप्त है। उसे भी बाध कर 'चितः' ६.१.१६३ से चित्स्वर प्राप्त होने पर आद्युदात्तविधान किया गया है।

अन्य आचार्य—**अथोदात्त इति**। प्रकृतसूत्र में उदात्तपद का पाठ कर देने से यह कैसे जाना जाये कि यहाँ पर आदि को ही उदात्तस्वर होगा, यदि आदि को हो सकता है तो वह अन्त को भी हो सकता है, वह अन्त को क्यों नहीं होगा, स्वरान्तरबाधन के लिए अन्त को ही उदात्त क्यों न हो जाये? अथ च 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते, नोत्तरान्' इस न्याय से प्रकृत में उदात्तग्रहण से चित्स्वर का ही बाध होगा, परशास्त्र आमन्त्रितस्वर ६.१.१९८ का नहीं।

उत्तरभाष्य—**उदात्तवचनेति**। आचार्य ने प्रकृतसूत्र में उदात्तपद का निर्देश किया है, तत्सामर्थ्य से जिसको स्वर अप्राप्त है, उसी को होगा। अनन्तर को नहीं होने से यहाँ आमन्त्रितस्वर की प्राप्ति नहीं होगी।

प्रश्नभाष्य—**कस्य चेति**। किसको अप्राप्त है?

उत्तरभाष्य—**आदेरिति**। आदि को उदात्त अप्राप्त है; अतः उसी को उदात्तस्वर होगा। 'चितः' ६.१.१६३ सूत्र से चित्स्वर के द्वारा अन्त को उदात्त प्राप्त है; अतः प्रकृतसूत्र से उसको उदात्त नहीं होगा। {उभादु-}।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५.२.४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इह कस्मान्न भवति-एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशत इति? * अधिके समानजातौ * समानजातावधिक इष्यते। अथेह कस्मान्न भवति—एकादश कार्षापणा अधिका अस्यां कार्षापणत्रिंशतीति? * इष्टं शतसहस्रयोः * शतसहस्रयोरधिक इष्यते। अथेहैकादशं शतसहस्रमिति कस्याधिक्ये भवितव्यम्?

यहाँ से मत्वर्थीयप्रकरण प्रारम्भ है।

सूत्रार्थ—'तदधिकमस्मिन्' इस तरह का विग्रह होने पर दशन्शब्दान्त समास से 'अस्मिन्' इस अर्थ में 'ड' प्रत्यय हो'। 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः' वा. १.१.७२ से प्रत्ययविधि की कर्तव्यता में तदन्तविधि का प्रतिषेध है, अतः सूत्र में अन्त पद का ग्रहण है। 'अस्मात्' इस पञ्चमी के अर्थ में 'अस्मिन्' यह सप्तमीनिर्देश है, अथ वा औपश्लेषिक सप्तमी है। एकादश अधिका अस्मिन्= अस्मादिति एकादशम्। यहाँ डित्त्वात् टिलोप है।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। 'एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते' ऐसा विग्रह होने पर दशान्त समस्त एकादशपद से 'ड' प्रत्यय होकर 'एकादशम्' रूप क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अधिके इति**। **सामान्य**=जाति के अधिक होने पर ही अधि अर्थ में शक्त समस्त दशान्त पद से 'ड' प्रत्यय होता है। इस तरह प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ का समानजातीयत्व होने पर ही प्रत्यय प्राप्त है, जब कि प्रकृत में प्रकृत्यर्थ माष तथा प्रत्ययार्थ कार्षापण असमान जाति हैं, अतः उक्त विग्रह में 'ड' प्रत्यय नहीं होता है।

आक्षेपक आचार्य—**अथेहेति**। यदि समानजाति से अधिक गम्य होने पर 'ड' प्रत्यय होता तो 'एकादश कार्षापणा अधिका अस्यां कार्षापणत्रिंशति' इस विग्रह में प्रकृत्यर्थ तथा प्रत्ययार्थ अभिन्न जाति हैं। यहाँ दशान्तप्रकृति से अधिकार्थ 'ड' प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

समाधानभाष्य—**इष्टं शतेति**। शत और सहस्र के अधिक होने पर ही समानजाति दशान्त से अधिक अर्थ में 'ड' प्रत्यय होता है। प्रकृत में जहाँ 'एकादश कार्षापणा अधिका अस्यां कार्षापणत्रिंशति' विग्रह किया जा रहा है, वहाँ त्रिंशत् अधिक कहा जा रहा है; अतः प्रत्यय प्राप्त नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**अथेहैकादशमिति**। 'एकादशम्, शतसहस्रम्' में शताधिक्य में प्रत्यय है, अथ वा सहस्राधिक्य में प्रत्यय है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्य संख्या तदाधिक्ये डः कर्त्तव्यो मतो मम **यस्य संख्या तदाधिक्ये डः कर्त्तव्यो मतो मम। यदि तावच्छतानि संख्यायन्ते, शताधिक्ये भवितव्यम्। अथ सहस्राणि संख्यायन्ते, सहस्राधिक्ये भवितव्यम्** *डविधाने परिमाणशब्दनामधिकस्याऽधिकरणाभावादनिर्देशः* **डविधाने परिमाणशब्दनामधिकस्याऽधिकरणाऽभावाद् अनिर्देशः। अगमको निर्देशोऽनिर्देशः। न ह्येकादशानां शतमधिकरणम्।**

उत्तरभाष्य—**यस्य संख्येति**। जिसकी संख्या है उसी के अधिक होने पर 'ड' प्रत्यय करना चाहिये, ऐसा मेरा मत है। 'एकादशं, शतसहस्रम्' में दो प्रकार का समास होगा। प्रथम—'शतानां सहस्रं शतसहस्रम्'। एवं दूसरा—'सहस्राणां शतं शतसहस्रम्'। उभयत्र 'संख्याया अल्पीयस्याः' भा.वा.२.२.३५ इस भाष्यवार्तिक से शत पद का पूर्वनिपात है। यदि 'शतानां सहस्रमिति शतसहस्रम्' ऐसा विग्रह मान कर शतसंख्या करेंगे तो प्रकृत्यर्थ के साथ उसी का अन्वय होगा—'एकादश शतानि अधिकानि अस्मिन् शतसहस्रे तदेकादशं शतसहस्रम्' प्रयोग होगा। परन्तु जब 'सहस्राणां शतं शतसहस्रम्' ऐसा विग्रह करेंगे तो यहाँ सहस्रसंख्या होगी तथा उसी के आधिक्य में 'ड' प्रत्यय होने से प्रकृत्यर्थ संख्येय सहस्र ही होगा—'एकादश सहस्राणि अधिकानि अस्मिन् शतसहस्रे तदेकादशं शतसहस्रम्'। इस तरह दोनों की संख्या होने पर तदाधिक्य में दशान्त से 'ड' प्रत्यय होगा। कहाँ पर शताधिक्य है, तथा कहाँ पर सहस्राधिक्य है, यह प्रकरण से निश्चय किया जायेगा। प्रत्ययार्थ के साथ तुल्यजातीयप्रकृत्यर्थ का आश्रयण करने से 'यस्य संख्या तदाधिक्ये' यह अर्थ लब्ध है; अतः इसे अपूर्ववचन नहीं माना जा सकता है।

आक्षेपक आचार्य सूत्रमत में निर्दिष्ट 'अस्मिन्' इस सप्तम्यन्तपद पर आक्षेप करते हैं—**डविधान इति**। डविधान के प्रति शत, सहस्र आदि परिमाणशब्दों के अधिक का अधिकरण नहीं होने से 'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः' यह (अनिर्देश=तत्त्व का अभाव होने से} अनिर्देश है। शतसंख्याऽधिकरण में एकादश का अन्तर्भाव असम्भव है। अन्तर्भाव होने से 'वृक्षे शाखा' की तरह अधिकरण होगा, यह ग्रन्थ का तात्पर्य है।

सिद्धन्तु पञ्चमीनिर्देशात् **सिद्धमेतत्। कथम्? 'पञ्चमीनिर्देशात्'। पञ्चमीनिर्देशः कर्त्तव्यः—'तदस्मादधिक'मिति। स तर्हि पञ्चमीनिर्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। यद्यपि तावद् व्यापके वैषयिके वाऽधिकरणत्वे संभवो नास्ति—औपश्लेषिकमधिकरणं विज्ञास्यते—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकादश कार्षापणा उपश्लिष्टा अस्मिञ्छते—एकादशं शतम् ।

***अधिके समानजाताविष्टं शतसहस्रयोः ।**
यस्य संख्या तदाधिक्ये डः कर्त्तव्यो मतो मम ।।*

एकदेशिभाष्य—**सिद्धं त्विति**। 'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः' के स्थान पर 'तदस्मादधिकमिति दशान्ताड्डः' ऐसा पञ्चमीनिर्देश कर सूत्र पढ देंगे। इससे 'एकादश शतानि अस्माच्छतात्' ऐसा विग्रह होने से एकादश का अधिकरण शत नहीं हो रहा है। उक्त विग्रह में एकादश का अवधि शत सम्भव है; अतः दोष नहीं है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या 'अस्मिन्' इस सप्तम्यन्त के स्थान पर 'अस्मात्' इस पञ्चम्यन्तपद का निर्देश कर सूत्र पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यहाँ सप्तम्यन्त के स्थान पर पञ्चम्यन्तपद पढने की आवश्यकता नहीं है। विना पञ्चम्यन्तपद पढे उस अर्थ की उपस्थिति बताते हैं—**यद्यपीति**। सप्तमी से तीन प्रकार का अधिकरण बोध्य है—१-अभिव्यापक, २-वैषयिक, और ३-औपश्लेषिक। यद्यपि 'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः' सूत्र में 'अस्मिन्' यह सप्तम्यन्तपद अभिव्यापक और वैषयिक अर्थ में सम्भव नहीं है, तथापि यहाँ औपश्लेषिक अधिकरण सम्भव है। जैसे 'वटे गावः शेरते' ऐसा कहने से 'वटसमीपे' अर्थ उपस्थित होता है, न कि वटाधिकरण। यहाँ औपश्लेषिक मानने पर समीप का अवधि ही वट हो रहा है, वैसे ही 'एकादश कार्षापणा अधिका उपश्लिष्टा अस्मिञ् शते' ऐसा कहने से शत के समीप में एकादश अधिक अर्थ सम्भव होने से सप्तम्यन्त पद में भी शतपद अवधि ही बनेगा, आधार नहीं; अतः औपश्लेषिक सप्तम्यन्त से भी वही अर्थ आ रहा है, जो पञ्चम्यन्त से आयेगा। {तदस्मिन्निति-}।

शदन्तविंशतेश्च ५.२.४६

किमर्थं शद्ग्रहणेऽन्तग्रहणम्? * शद्ग्रहणेऽन्तग्रहणं प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेरधिकार्थम् * शद्ग्रहणेऽन्तग्रहणं क्रियते। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणं भवती'तीह न प्राप्नोति—एकत्रिंशं शतम्, इष्यते चाऽत्राऽपि स्यादिति,-तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीत्यन्तग्रहणम्। एवमर्थमिदमुच्यते। अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हीति?

पूर्वसूत्र 'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड् डः' ५.२.४५ से 'तदस्मिन्नधिकम्' की अनुवृत्ति है। 'शदन्तश्च विंशतेश्च' ऐसा इतरेतरयोगद्वन्द्व करके सौत्रत्वात् वचन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यत्यय, अथ वा समाहारद्वन्द्व करके सौत्रत्वात् लिङ्गव्यत्यय करना चाहिये।

सूत्रार्थ—'तदस्मिन्नधिकम्' इस विग्रह में प्रथमान्त शदन्त और विंशतिपद से 'अस्मिन्' अर्थ में 'ड' प्रत्यय हो'। जैसे—शदन्त—त्रिंशदधिका अस्मिन्निति त्रिंशं शतम्। यहाँ डित्त्वात् टिभाग का लोप है। विंशति—विंशतिरधिका अस्मिन्निति विंशं शतम्। यहाँ 'तिविंशतेर्डिति' ६.४.१४२ से तिलोप है।

केवल शत् प्रातिपदिक असम्भव है; अतः शत् प्रत्यय का ही ग्रहण होगा। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहितः स तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' परिभाषा परि.शे. २४ से तदन्तरूप अर्थ की उपस्थिति हो जायेगी, पुनः इसके लिए अन्तग्रहण क्यों है? ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**शद्ग्रहण इति**। 'एकत्रिंशं शतम्, एकचत्वारिंशं शतम्' इत्यादि में प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से तदन्त अर्थ का लाभ नहीं हो पा रहा है। चूँकि यहाँ शत् प्रत्यय त्रि और चतुर् से विहित है, एकत्रि और एकचतुर् से नहीं; अतः प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से तदन्त अर्थ का लाभ सम्भव नहीं होने से सूत्र में अन्तग्रहण किया गया है।

आक्षेपक—**अस्ति प्रयोजनमिति**। तो क्या अन्तग्रहण का यही प्रयोजन है?

अन्य आचार्य—**किमिति**। तो क्या अन्तग्रहण का यह प्रयोजन आप को नहीं लगता है? इस पर आप और क्या कहना चाहते हैं?

*** सङ्घातग्रहणं च * सङ्घातग्रहणञ्च कर्त्तव्यम्। इह मा भूद्—गोत्रिंशदधिकाऽस्मिञ्छत इति * विंशतेश्च * विंशतेश्चाऽन्तग्रहणं कर्त्तव्यम्। इहाऽपि यथा स्याद्—एकविंशं शतम्। चकारात् सङ्ख्याग्रहणं च कर्त्तव्यम्। इह मा भूद्—गोविंशतिरधिकाऽस्मिञ्छत इति। {शदन्तविंशतेश्च}।**

उत्तरभाष्य—**संख्याग्रहणमिति**। 'संख्याया अवयवे तयप्' ५.२.४२ सूत्र से 'संख्यायाः' इस पञ्चम्यन्तपद की अनुवृत्ति करनी चाहिये। जैसे नृसिंह आदि पद जात्यन्तर के वाचक हैं, वैसे एकत्रिंशत् आदि पद भी अन्य संख्या तथा अन्य जाति के वाचक हैं, संख्यासमूह के नहीं। परन्तु जब संख्यापद का अनुवर्त्तन करेंगे, तब संख्यावाचक ही होंगे। **विंशतेश्च**। विशतिपद से पर में भी अन्तग्रहण करना चाहिये। इससे 'एकविंशं शतम्' में भी 'ड' प्रत्यय हो जायेगा। 'एकविंशतेश्च' वार्तिक में 'च'पदग्रहण का प्रयोजन बताते हैं—**चकारादिति**। चकारग्रहण से पूर्वसूत्र 'संख्याया अवयवे तयप्' ५.२.४२ से 'संख्यायाः' इस पञ्चम्यन्तपद का अनुवर्त्तन करना चाहिये। 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' परि.शे.३२ इस परिभाषा से 'एकविंशं शतम्' इत्यादि तदन्तस्थलों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में 'ड' प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अतः तदर्थ विंशतिपद से पर में भी अन्तग्रहण करना चाहिये। संख्यापद का अनुवर्त्तन करने से 'गवां विंशतिः गोविंशतिः, गोविंशतिरधिकाऽस्मिञ्छते' में गोविंशतिपद से 'ड' प्रत्यय नही होता है। {शदन्त-}।

सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट् ५.२.४७

* निमाने गुणिनि * 'निमाने गुणिनी'ति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? गुणेषु मा भूत् * भूयसः * भूयस इति च वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? भूयसो वाचिकायाः सङ्ख्याया उत्पत्तिर्यथा स्यादल्पीयसो वाचिकायाः सङ्ख्याया उत्पत्तिर्मा भूदिति * एकोऽन्यतरः * 'एकश्चेदन्यतरो भवती'ति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—'द्वौ यवानां त्रय उदश्वित' इति * समानाम् * समानां चेति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—'एको यवानामध्यर्द्धमुदश्वित' इति।

'तदस्य सञ्जातं तारकरदिभ्य इतच्' ५.२.३६ से 'तदस्य' की अनुवृत्त है। 'निमीयते=क्रियते येन तन्निमानं=मूल्यद्रव्यम्। मेङ् प्रणिदाने धा.पा.९८६ से करण अर्थ में ल्युट्प्रत्ययान्त प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। **गुणः**= भागः=अंशः।

सूत्रार्थ—'भाग का मूल्य अर्थ में शक्त संख्यावाची प्रथमान्त प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में मयट् हो'। निमान निमेय की अपेक्षा करेगा, अतः निमेय प्रत्ययार्थ है। निमान के गुणत्व नहीं होने पर निमेय का गुणत्व सम्भव नहीं है, अतः सामर्थ्यवशात् निमान भी गुण हो जायेगा। जैसे 'यवानां द्वौ भागौ निमानमस्य उदश्विद्भागस्य इति द्विमयमुदश्विद् यवानाम्'। संख्यापद देने से 'यवभागौ निमानमस्य उदश्विद्भागस्य' में असंख्यावाची से मयट् नहीं हुआ। गुणपद देने से 'द्वौ कार्षापणौ निमानमस्य व्रीहेर्द्विमयो व्रीहिः कार्षापणयोः' ऐसा प्रयोग नहीं होता है। निमानपद देने से 'यवानां द्वौ भागौ समीपेऽस्य उदश्विद्भागस्य' में द्विपद से मयट् नहीं होता है।

एकदेशिवार्तिक—**निमाने गुणिनीति**। 'द्विमयमुदश्वित्' इत्यादि में निमेय गुणी होने पर ही प्रत्यय हो, इसके लिए 'निमाने गुणिनि' ऐसा वचन कहना चाहिये। इस वचन का प्रयोजन 'गुणी निमेय वाच्य होने पर ही प्रत्यय होना है'। इससे गुण वाच्य होने पर स्वार्थ में मयट् प्राप्त नहीं हो सकेगा। अन्यथा 'द्वौ यवानां निमानमस्य उदश्विद्भागस्य' ऐसा विग्रह करने पर द्विपद से स्वार्थ में मयट् होकर 'द्विमयौ यवानामुदश्वितः' ऐसा मयड्घटितप्रयोग होने लगेगा। **भूयस इति**। निमेयभाग संख्या की अपेक्षा निमानभाग संख्या के अधिक होने पर ही प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो, इसके लिए 'भूयसः' ऐसा वचन पढना चाहिये। इससे 'एको यवभागो निमानमस्य उदश्विद्भागस्य' में संख्यावाची एकपद से मयट् नहीं हो सकेगा। **एकोऽन्यतर इति**। यहाँ अन्यतरपद से निमेय विवक्षित है। यदि एक ही निमेय गुण है तभी मयट् प्राप्त होगा। परन्तु जब दो अथ वा बहुत निमेय गुण होगा तब 'द्वौ श्वानां त्रय उदश्वितः' में प्रत्यय न हो, इसके लिए 'एकोऽन्यतरः' वचन पढना चाहिये। **समानामिति**। निमेयभाग का जिस किसी भी निमानभाग से समानता होने पर यदि निमानसंख्या की अपेक्षा निमेयसंख्या अधिक है तब प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'एको यवानामध्यर्द्धमुदश्वितः' में निमेयसंख्या की अपेक्षा निमानसंख्या के न्यून होने पर प्रत्यय नहीं होता है।

तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। यत्तावदुच्यते—'गुणिनीति वक्तव्य'मिति, न वक्तव्यम्। गुणेषु कस्मान्न भवति? 'अस्ये'ति वर्त्तते * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्?** * अनभिधानादिति * **यदुक्तं—'भूयस इति च वक्तव्य'मिति, न वक्तव्यम्। अल्पीयसो वाचिकायाः सङ्ख्याया उत्पत्तिः कस्मान्न भवति? अनभिधानात्।**

'निमाने गुणिनि' से आरम्भ कर 'समानाम्' पर्यन्त पढे गये एकदेशी के वार्तिकों पर आक्षेप करते हैं—**तत्तर्हीदमिति**। तो क्या उपर्युक्त चारों वार्तिक पढा जाना आवश्यक है?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उक्त चारों वार्तिकों की आवश्यकता नहीं है। उक्त चारों वार्तिकों के अभाव में भी दोष का वारण करते हैं। पहले प्रथमवार्तिक का—**यत्तावदिति**। संख्यावाची से स्वार्थ में प्रत्ययनिवृत्त के लिए 'निमाने गुणिनि' पढा था, उसकी आवश्यकता नहीं है। पूर्वसूत्र 'तदस्य सञ्जातं तारकरदिभ्य इतच्' ५.२.३६ से 'अस्य' इस षष्ठ्यन्तपद की अनुवृत्ति होती है। इससे गुणी निमेय अर्थ वाच्य होने पर ही स्वार्थ में प्रत्यय होगा, गुण अर्थ वाच्य होने पर स्वार्थ में नहीं। इसी को अन्य पक्ष में भी कहते हैं—**उक्तमिति**। 'द्वौ यवानां गुणौ निमानमस्य उदश्विद्भागस्य द्विमयौ यवानामुदश्वितः' ऐसा अनभिधान होने से स्वार्थ में प्रत्ययविधान कर प्रयोग नहीं होगा। द्वितीयवार्तिक का खण्डन करते हैं—**यदुक्तमिति**। 'भूयसः' यह अतिरिक्त वार्तिक पढने की भी आवश्यकता नहीं है। अनभिधान होने से निमानभाग संख्या की अपेक्षा निमेयभाग संख्या के अधिक होने पर निमेयवाचक संख्यापद से प्रत्यय नहीं हो सकेगा।

यदुक्तमेकश्चेदन्यतरो भवतीति वक्तव्यमिति, न वक्तव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्मान्न भवति—'द्वौ यवानां त्रय उदश्वित' इति? तन्त्रं विभक्तिनिर्द्देशः ।

'एकोऽन्यतरः' वार्तिक का भी खण्डन करते हैं—**यदुक्तमेकश्चेदिति**। 'एकोऽन्यतरः' वार्तिक भी नहीं पढना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**कस्मान्नेति**। उक्त वार्तिक के रहने पर जब एक ही निमेयगुण होने पर प्रत्यय हो रहा था; द्वि और बहुत निमेयगुण के होने पर प्रत्यय की अप्राप्ति हो रही थी, इससे 'द्वौ यवानां त्रय उदश्वितः' में प्रत्यय प्राप्त नहीं हो रहा था। अब जब आप 'एकोऽन्यतरः' वार्तिक नहीं रखते हैं तब 'द्वौ यवानां त्रय उदश्वितः' में प्रत्यय का वारण कैसे करेंगे?

समाधानभाष्य—**तन्त्रमिति**। जैसे 'पशुना यजेत' श्रुति में पशुपदोत्तर 'टा' को एकत्वार्थक मान कर एकपशुकरणकयाग से ही मीमांसकों ने अदृष्टसिद्धि मानी है, अनेकपशुकरणकयाग से नहीं। वैसे—'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' सूत्र में आचार्य ने 'गुणस्य' यह एकवचनान्त षष्ठ्यन्त पढा है। आचार्य 'गुणस्य निमाने' के स्थान पर लाघवात् समस्तपद 'गुणनिमाने' कर सकते थे। परन्तु आचार्य ने पदलाघव नहीं करके जो पदगौरव किया है, उससे बताते हैं कि निमेयगुण के एक होने पर ही प्रत्यय होता है, अनेक होने पर नहीं; अतः 'द्वौ यवानां त्रय उदश्वितः' में मयट् प्रत्यय नहीं होता है।

यदप्युच्यते—'समानामिति वक्तव्य'मिति, न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति—'एको यवानामध्यर्द्धमुदश्वित' इति? अनभिधानात् ।

'समानाम्' इस वार्तिक का भी खण्डन करते हैं—**यदप्युच्यत इति**। 'समानाम्' वार्तिक का व्यावर्त्य 'एको यवानामध्यर्द्धमुदश्वितः' यह प्रयोजन दिया था। यहाँ अनभिधान होने से मयट् प्रत्यय प्राप्त नहीं है; अतः इस वार्तिक की भी आवश्यकता नहीं है।

*** निमेये चाऽपि दृश्यते * निमेये चाऽपि प्रत्ययो दृश्यते। द्विमया यवाः, त्रिमयाः। किं पुनरिह निमानं किं निमेयं, यावतोभयं त्यज्यते?**

एकदेशी—**निमेये चापीति**। आचार्य ने निमान अर्थ में ही प्रत्यय कहा है, जब कि कहीं-कहीं पर निमेय अर्थ में भी संख्यावाची से मयट् प्रत्यय देखे जाते हैं। जैसे 'उदश्वितो द्वौ गुणौ निमायौ येषाम् एकगुणानां यवानां ते द्विमया यवाः'। 'उदश्वितस्त्रयो गुणा निमाया येषाम् एकगुणानां यवानां ते त्रिमया यवाः'। अतः निमेय अर्थ में भी मयट् प्रत्यय कहना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य अतिरिक्तवचन पढे जाने का खण्डन करते हैं—**किं पुनरिति**। निमान और निमेय में क्या भेद है, जिसके लिए आप निमान में प्रत्यय कहे जाने पर निमेय में प्रत्ययविधान के लिए अतिरिक्तवचन पढना चाहते हैं? अर्थात् निमेय भी निमान है; अतः निमान में संख्यावाची से मयड्विधान करने पर समानार्थ होने से निमेय में भी मयट् हो जायेगा, उसके लिए पृथग्वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

सत्यमेवमेतत्—क्वचित्तु का चित् प्रसृततरा गतिर्भवति? तद्यथा—समाने त्यागे 'धान्यं विक्रीणीते' 'यवान् विक्रीणीते' इत्युच्यते, न कश्चिदाह—कार्षापणं विक्रीणीत' इति। अथ वा येनाऽधिगम्यते तन्निमानं, यदधिगम्यते तन्निमेयम्।

इतर आचार्य इसका समर्थन करते हैं—**सत्यमिति**। कहीं पर किसी की शीघ्रगति होती है। जैसे किसी ने कहा 'धान्यं विक्रीणीते' का पर्याय शीघ्र बोलो, तो वह वह 'यवान् विक्रीणीते' बोलता है, कोई भी 'कार्षापणं विक्रीणीते' नहीं बोलता है। वहाँ पर्याय में उसकी शीघ्र गति हो जाती है। इसी तरह किसी से निमान का पर्याय पूछा जाये तो वह उसकी प्रसृततरा गति निमेय में ही होगी; अतः निमान में प्रत्ययविधान करने से निमेय में भी प्रत्यय हो जायेगा। इसके लिए अतिरिक्तवचन की आवश्यकता नहीं है। कहीं-कहीं पर देशकाल की अपेक्षा से निमान और निमेय में भेद भी होता है, इसे स्पष्ट करते हैं—**अथ वेति**। विपणि आदि स्थानों में क्रय का साधन रुपया, पैसा, द्रव्य आदि निमान तथा क्रय्य अथ वा क्रेय वस्तु निमेय कहा जाता है; अतः भेद भी है। {**संख्याया-**}।

तस्य पूरणे डट् ५.२.४८

* तस्य पूरण इत्यतिप्रसङ्गः * **तस्य पूरण इत्यतिप्रसङ्गो भवति। इहापि प्राप्नोति—'पञ्चानामुष्ट्रिकाणां पूरणो घट' इति** * सिद्धन्तु संख्यापूरण इति वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'संख्यापूरण इति वचनात्'। संख्यापूरण इति वक्तव्यम्। एवमपि घटे प्राप्नोति संख्येयं ह्यसावद्भिः पूरयति। सङ्ख्यापूरण इति ब्रूमो न ब्रूमः सङ्ख्येयपूरण इति।**

'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' २.४.४७ से 'संख्यायाः' इस षष्ठ्यन्तपद की अनुवृत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'संख्येयार्थक संख्यावाची षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्रवृत्तिनिमित्तसंख्या का पूरण वाच्य होने पर डट् प्रत्यय हो'। एकादशानां पूरण एकादशः। द्वादशानां पूरणो द्वादशः। 'तस्य पूरणे डट्' सूत्र में 'तस्य' इस षष्ठी-एकवचनान्तपद से सम्बन्धमात्र विवक्षित है; अतः द्विवचनान्त, बहुवचनान्त द्वि, त्रि आदि पदों से ही प्रत्ययविधि होगा, अन्यत्र एक पद से नहीं।

आक्षेपक आचार्य सूत्र में अतिव्याप्ति देते हुए सूत्र पर आक्षेप करते हैं—**तस्येति**। 'संख्यावाचिशब्द से पूरण अर्थ में डट् हो' इतना ही सूत्रार्थ है। इस तरह 'पञ्चानामुष्ट्रिकाणां पूरणो घटः' इस वाक्य में लब्ध पञ्चत्वसंख्या वाली संख्येय उष्ट्रिका का पूरण वाच्य होने पर उष्ट्रिकापद से डट् प्रत्यय की अतिव्याप्ति हो रही है।

उत्तरपक्षी आचार्य यहाँ अतिव्याप्ति का वारण करते हैं—**सिद्धं त्विति**। 'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' २.४.४७ से 'संख्यायाः' इस षष्ठ्यन्तपद की अनुवृत्ति हो रही है; अतः संख्या का पूरण वाच्य होने पर ही प्रत्यय होगा। उक्त में लब्ध पञ्चत्वसंख्या उष्ट्रिका का पूरण वाच्य है; अतः यहाँ प्रत्यय की अतिव्याप्ति नहीं है।

अन्य आचार्य अनुवृत्त संख्यापद को संख्येय परक मान कर आक्षेप करते हैं—**एवमपीति**। संख्यापद की अनुवृत्ति कर आधारधर्म पूरण के साथ आधेय-संख्या का तद्द्वारा संस्पर्श नहीं होने से 'पञ्चानाम् उष्ट्रिकाणां पूरणो घटः' इस विग्रह में घटपद से भी प्रत्यय की अतिव्याप्ति हो रही है। यहाँ पर संख्येय घट को जल से पूरण किया जा रहा है।

पूर्वसूत्र से अनुवृत्त संख्यापद को संख्येयपरक मान कर संख्येय घटपद से प्रत्यय की अतिव्याप्ति दिखायी थी; उत्तरपक्षी आचार्य उसका वारण करते हैं—**संख्यापूरण इति**। अनुवृत्तसंख्यापद संख्येयपरक नहीं है, अपितु संख्यापरक ही है। यहाँ 'संख्याया अवयवे तयप्' ५.२.४२ तथा 'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' ५.२.४७ इन दोनों सूत्रों से दो 'संख्यायाः'पद की अनुवृत्ति होती है। एक प्रकृति का विशेषण है तथा दूसरा पूरण का विशेषण है। इस तरह जिससे पञ्चत्व आदि संख्या सम्पन्न हो रही है, वही प्रत्ययार्थ होगा। अथ वा पूर्वसूत्र 'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' ५.२.४७ से मात्र एक ही संख्यापद की अनुवृत्ति करेंगे। इस पक्ष में'षष्ठ्यन्तसंख्याबोधक शब्द से तदर्थसंख्या का पूरण वाच्य होने पर डट् प्रत्यय हो' यह सूत्रार्थ होगा। इस पक्ष में संख्यापूरण गम्य होने पर ही प्रत्यय होगा, अन्यत्र नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* यस्य वा भावादन्यसङ्ख्यात्वं तत्र * **अथ वा यस्य भावादन्या सङ्ख्या प्रवर्त्तते तत्रेति वक्तव्यम्। एवमपि द्वितीयेऽध्याये'ऽष्टम' इति प्राप्नोति, सर्वेषां हि तेषां भावात् सङ्ख्या प्रवर्त्तते** * चरमोपजाते पूर्वस्मिंश्चानपगते * **चरम उपजाते पूर्वस्मिंश्चानपगते इति वक्तव्यम्। एवमपि 'एकादशीद्वादश्यौ सौविष्टकृती' 'इदं द्वितीयमिदं तृतीयं' 'दश दशमानी'ति न सिध्यति। सूत्रं च भिद्यते।**

संख्येय घटपद से प्रत्यय का अतिव्याप्तिवारण के लिए दूसरा पक्ष भी बताते हैं—**यस्य वेति**। उक्त अतिव्याप्तिवारण के लिए दूसरा न्यास करना चाहिये। इससे 'पञ्चत्वसंख्या भवत्यनेन' इस अर्थ में 'पञ्चमः' प्रयोग होगा।

आक्षेपक—**एवमपीति**। 'यस्य भावादन्या संख्या वर्त्तते तत्र प्रत्ययः' इस अतिरिक्तन्यासपक्ष में भी द्वितीय अध्याय में भी 'अष्टमः' इस तद्धितान्त पद की आपत्ति होगी। प्रसिद्ध सन्निवेशविशेषग्रन्थ का जो द्वितीय अध्याय है, जैसे—'समर्थः पदविधिः' २.१.१, उसका भी अष्टमपद से अभिधान होने लगेगा। यहाँ मूल में द्वितीयपद उपलक्षणविधया प्रथम अध्याय को भी कहेगा; अतः प्रथम अध्याय में भी अष्टम पद की अतिव्याप्ति होगी। यदि विपरीतगणना कर द्वितीयाध्याय को बाद में गिनेंगे तब द्वितीयाध्याय भी अष्टमपदव्यपदेश्य होगा। इसी सूत्र पर भाष्यकार इसे आगे स्पष्ट करेंगे—

अथ वा सर्व एव द्व्यादयोऽन्योऽन्यमपेक्षन्ते।
यद्येवं द्वितीयेऽध्यायेऽष्टम इति प्राप्नोति। भवत्येव।।

{अत्रैव भाष्ये}

परन्तु जब सूत्र में पूरणपद का ग्रहण करते हैं तब अन्त्य में सम्पन्न गणना की अपेक्षा पूरणत्वसन्निवेशमात्र की अपेक्षा होने से द्वितीय अध्याय में अष्टमपद का व्यवहार नहीं होता है। द्वितीयन्यासान्तर कहते हैं—**चरमोपजात इति**। द्वितीयन्यास 'चरमोपजाते पूर्वस्मिँश्चाऽनपगते' कहना चाहिये। इससे गणना करने पर जब पूर्वसंख्येय अपगत नहीं होगा तब बुद्धि से परिगृहीत होने के कारण अपेक्षित ज्ञान में जो बाद में उत्पन्न होगा, उसी में प्रत्यय करेंगे। इससे द्वितीय अथ वा प्रथम अध्याय अष्टम की आपत्ति नहीं होगी।

दोषवादी आचार्य अन्य न्यास में भी दोष देते हैं—**एवमपीति**। 'चरमोपजाते पूर्वस्मिँश्चाऽनपगते' इस द्वितीयन्यासपक्ष में भी 'एकादशीद्वादश्यौ सौविष्टकृती' इत्यादि की सिद्धि नहीं हो सकेगी तथा सूत्रभेद भी होगा। द्वादशी की सन्निधि में एकादशी का चरम उपजातत्व नहीं है, एवं तृतीय की सन्निधि में द्वितीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का चरमत्व नहीं है, एवं शततमसंख्या की ही चरम उपजननता होने से नव अथ वा दश का चरमत्व नहीं होने से यहाँ तत्र-तत्र स्थलों में पूरण अर्थ में प्रत्यय नहीं हो सकेगा, जिससे 'एकादशीद्वादश्यौ सौविष्टकृती' इत्यादि की असिद्धि रहेगी। एवं दूसार दोष सूत्रभेद भी होगा। द्वितीयन्यासान्तरपक्ष में न केवल 'एकादशीद्वादश्यौ सौविष्टकृती' इत्यादि में न्यास की अव्याप्ति हो रही है, अपि तु सूत्रभेद भी हो रहा है, यह 'च' पद का स्वारस्य है। 'सौविष्टकृती' में प्रथमाद्विवचन का लुक् है।

यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—'तस्य पूरण इत्यतिप्रसङ्ग' इति। परिहृतमेतत्—'सिद्धन्तु संख्यापूरण इति वचना'दिति। तत्तर्हि संख्याग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'संख्याया गुणस्य निमाने मय'डिति। एवं तर्हि—नेयं वृत्तिरुपालभ्यते। किं तर्हि? वृत्तिस्थानमुपालभ्यते, वृत्तिरेवाऽत्र न प्राप्नोति। किं कारणम्? प्रत्ययार्थाऽभावात्। नैष दोषः, वचनात् स्वार्थिको भविष्यति।

सूत्र को यथान्यासपक्ष मानते हुए अब तक प्राप्त सम्पूर्णदोष का वारण करते हैं—**यथान्यासमेवेति**। सूत्र को यथान्यास 'तस्य पूरण डट्' ही रखिये। इस पक्ष में आप ने 'तस्य पूरण इत्यतिप्रसङ्गः' कह कर सूत्र की अतिव्याप्ति दी थी। इस अतिव्याप्ति का वारण के लिए मैंने 'सिद्धं तु संख्यापूरण इति वचनात्' कहा था। इस पर आप पूछ सकते थे कि 'क्या सूत्र में संख्यापद का ग्रहण किया जाना चाहिये', तो इसका उत्तर मैं दे चुका हूँ—'पूर्व के दो सूत्रों में दो षष्ठ्यन्त 'संख्यायाः' पदों की अनुवृत्ति होती है; अतः पृथक् संख्यापद पढा जाना आवश्यक नहीं है। 'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' ५२.४७ में 'संख्यायाः' पद पढा है, वहीं से अनुवर्त्तन कर लेंगे।

आक्षेपक आचार्य—**एवन्तर्हीति**। उपसर्जनपदों का प्रधानार्थ संसृष्टस्वार्थोपस्थापकता होने से अनुवर्त्तनपक्ष में 'परार्थाभिधानं वृत्तिः' प्राप्त नहीं है। यहाँ आक्षेपक आचार्य की यह उलहना नहीं है कि—'इष्टविषय की तरह अनिष्टविषय में वृत्ति प्राप्त है, अपि तु इष्टविषय में प्रत्यय प्राप्त नहीं हो पा रहा है' यह उपालभ्य है।

उसे स्पष्ट करते हैं—**वृत्तिस्थानमिति**। यहाँ प्रत्यय किसी अर्थ में न होकर स्वार्थ में हो रहा है। जब प्रत्यय अपने किसी विशेष अर्थ में न होकर स्वार्थ में होगा तब वह प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ में विशेषण होगा तथा उसका अपना कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ नहीं होने से उसमें वृत्ति=वाचकताशक्ति का अभाव रहेगा। जब कि प्रकृत्यर्थ से भिन्न अर्थ में प्रत्यय होना चाहिये। जैसे—'उपगोरपत्यं पुमानौपगवः'। परन्तु प्रकृत में प्रत्यय जब स्वार्थ में होगा तब डट्प्रत्ययान्त पञ्चमशब्द पञ्च अर्थ में ही शक्त होगा। इससे 'पञ्च आनीयन्ताम्' ऐसा कहने से पञ्चम के आनयन की आपत्ति होगी। एवं यहाँ पर प्रकृत्यर्थ से भिन्न प्रत्ययार्थ नहीं होने से 'पञ्चानामुष्ट्रिकाणां पूरणो घटः' यहीं पर अनिष्टविषय में प्रत्यय की प्राप्ति होगी। इस तरह 'पञ्चानामुष्ट्रिकाणं पूरणो घटः' से आक्षेपक आचार्य ने मात्र अतिव्याप्ति ही दी थी, जब कि यहाँ अव्याप्ति भी हो रही है।

समाधानभाष्य—**नैष दोष इति**। स्वार्थ में प्रत्ययप्रसङ्ग होने पर पञ्चशब्दार्थ में प्रत्ययान्त पञ्चम पद के अन्तर्भूत होने की आपत्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। यहाँ पर मात्र '**वचनात् स्वार्थिकः**'=प्रकृत्यर्थ में अन्तर्भावमात्र से स्वार्थिकत्व है, सर्वात्मना नहीं। यहाँ प्रकृतसूत्र में 'संख्याया अवयवे तयप्' ५.२.३६ तथा 'संख्याया गुणस्य निमाने मयट्' ५.२.४७ इन दोनों सूत्रों से दो संख्यापदों की अनुवृत्ति होती है। इससे प्रकृत्यर्थ में प्रत्ययार्थ के अन्तर्भूत होने पर भी संख्याबोध में डट् प्रत्यय कारण हो जायेगा। इस तरह वचन से प्रकृत्यर्थ में अन्तर्भाव होने मात्र से स्वार्थिकत्व है, सर्वथा नहीं।

अथ वा पूर्वस्याः संख्यायाः परापेक्षयोत्पत्तिर्वक्तव्या। उत्तरा च सङ्ख्याऽऽदेशो वक्तव्यः। अथवा न्यूनेऽयं कृत्स्नशब्दो द्रष्टव्यः—चतुर्षु पञ्चशब्दः। अथ वा सर्व एव द्व्यादयोऽन्योऽन्यमपेक्षन्ते। यद्येवं द्वितीयेऽध्यायेऽष्टम इति प्राप्नोति। भवत्येव।

उक्त आक्षेप का ही अन्य पक्ष में समाधान करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा परसंख्या की अपेक्षा पूर्वसंख्या से प्रत्यय की उत्पत्ति करेंगे तथा पूर्वसंख्या के स्थान पर परसंख्या आदेश करेंगे। जैसे 'चतुः' पूर्वसंख्या है, तथा पञ्च परसंख्या है। पूर्वसंख्या 'चतुः' के स्थान में 'पञ्च' आदेश करेंगे। इस पक्ष में 'संख्यावाचकात् स्वार्थवृत्तिसंख्यान्तरपूरणे प्रत्ययः' ऐसा सूत्रार्थ होगा। इसी विषय को स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार ने 'परापेक्षोत्पत्तिर्वक्तव्या' ऐसा कहा है। इसका अर्थ है-'परसंख्यापेक्षपूरणत्वे वाच्ये प्रत्ययोत्पत्तिर्वक्तव्या'। इससे वृद्धि के द्वारा चतुःसंख्या का पूरण पञ्चमसंख्या होगी।

उक्त आक्षेप का ही अन्य पक्ष में भी समाधान करते हैं—**अथ वा न्यून इति**। '**अयं कृत्स्नशब्दः**'=अधिकवाचकशब्द, **न्यूने**=अल्प अर्थ में शक्त है। जैसे पञ्चशब्द चतुः में न्यून है। जैसे 'अर्द्धतृतीया द्रोणाः' ऐसा कहने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्रोणपद से अर्द्धद्रोण भी वाच्य है; अतः एव 'द्रोणाः' यह बहुवचननिर्देश भी है। यहाँ अवयवार्थ के साथ विग्रह तथा समुदायसमासार्थ है, वैसे प्रकृत में भी चतुः अर्थ में पञ्चशब्द है; अतः 'न्यूनानां पञ्चानां पूरणः' ऐसा विग्रह कर पञ्चम प्रयोग होगा। न्यून पञ्च=चतुर् ही होता है। अत एव पाँच प्राप्य होने पर चार पा कर पाने वाला कहता है—न्यूनानि पञ्च लब्धानि।

इसी को प्रकारान्तर से सिद्ध करते हैं—**अथ वा सर्व इति**। 'अयमेकः अयमेक इतीमौ द्वौ, इमौ द्वावयमेक इतीमे त्रयः, इमे त्रयः अयमेक इतीमे चत्वारः, इमे चत्वारः अयमेक इतीमे पञ्च'। इस तरह द्वि आदि सभी संख्या परस्पर अपेक्षा रखेंगी। यहाँ एक-एक के अभाव होने पर पञ्चसंख्या नहीं हो सकेगी; अतः बुद्धि से किसी एक को अलग कर देने पर उसमें प्रत्यय हो जायेगा—'पञ्चानां पूरणः—पञ्चसंख्यानिमित्तत्वात् पञ्चमः'।

आक्षेपक आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि बुद्धि के द्वारा एक को भी पृथक् कर देने पर पञ्चत्व की हानि मानते हुए प्रत्येक एक, द्वि आदि में पञ्चत्व को पर्यवसित मानेंगे तो द्वितीय अध्याय में भी अष्टम पद का प्रयोग होने लगेगा?

उत्तरभाष्य—**भवत्येवेति**। प्रत्येक में अष्टसंख्या के पर्यवसित होने, अथवा विपरीतक्रम से गणना करने पर द्वितीय, प्रथम, तृतीय आदि सभी में अष्टम-पद का प्रयोग होगा।

प्रकृत्यर्थाद् बहिः सर्वा वृत्तिः प्रायेण लक्ष्यते।
पूरणे स्यात् कथं वृत्तिर्वचनादिति लक्ष्यताम्।।१।।

तस्याः पूर्वा तु या सङ्ख्या तस्यां भवतु तद्धितः।
आदेशश्चोत्तरा सङ्ख्या तथा न्याय्या भविष्यति।।२।।

न्यूने वा कृत्स्नशब्दोऽयं पूर्वस्यामुत्तरा यदि।
सामर्थ्यञ्च तया तस्यास्तथा न्याय्या भविष्यति।।३।।

अन्योऽन्यं वा व्यपाश्रित्य सर्वस्मिन् द्व्यादयो यदि।
प्रवर्त्तन्ते तथा न्याय्या वृत्तिर्भवति पूरणे।।४।।

बहूनां वाचिका सङ्ख्या पूरणश्चैक इष्यते।
अन्यत्वादुभयोर्न्याय्या वार्क्षी शाखा निदर्शनम्।।५।।

पूर्वोक्त अर्थों का ही श्लोकमुखेन संग्रह करते हैं—**प्रकृत्यर्थादिति**। प्रकृत्यर्थ से **बहिः**=भिन्न अर्थ में प्रत्यय की प्रायः शक्ति देखी जाती है, स्वार्थ में नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रारम्भसामर्थ्य प्रत्यय से स्वार्थ में होता हुआ भी पूरण अर्थ में भी होगा।।१।।

अथवा जिस संख्यावाची से पूरणार्थक प्रत्यय लाना है, उससे पूर्व की जो संख्या, उसका पूरण वाच्य होने पर प्रत्यय कहेंगे तथा पूर्वसंख्या के स्थान पर उत्तरसंख्या आदेश करेंगे। जैसे 'पञ्चानां पूरणः' अर्थ में चतुर्पद से प्रत्यय तथा चतुर् के स्थान में पञ्च आदेश कहेंगे।।२।।

अधिकवाचकशब्द न्यून अर्थ में है, इससे उत्तरसंख्या के पूर्वसंख्या में न्यून होने से चार संख्या में पाँच संख्या को न्यून कहेंगे।।३।।

अथवा सभी संख्या की परस्पर अपेक्षा मान कर पञ्च, अष्ट आदि को एक, द्वि आदि में भी पर्यवसित मानेंगे, तो द्वि आदि सभी अर्थों में होंगे। इस तरह द्वितीय अध्याय अर्थ में भी अष्टमपद की प्राप्ति होगी, जो उचित भी है।।४।।

यहाँ तक भाष्यकार ने पञ्चशब्द को अतिरोहितभेद वाला माना है; परन्तु इससे आगे 'बहूनां वाचिका' इत्यादि से समुदायशब्दार्थ बता रहे हैं। बहु अर्थ की वाचिका पूरण एकसंख्या इष्ट है।

यहाँ भाष्यकार ने अवयव का ग्रहण नहीं किया है, एवम् अवयव का परित्याग भी नहीं किया है। परन्तु प्रत्यय के द्वारा अवयव अर्थ का कथन किया है। **अन्यत्वादिति**। समुदाय और अवयव में परस्पर भेद है; अतः समुदाय प्रकृत्यर्थ है तथा अवयव प्रत्ययार्थ है। जैसे 'वृक्षस्येयं वार्क्षी शाखा' में तिरोहित भेद वाला मूल आदि अवयवों का समुदाय प्रकृत्यर्थ है तथा अवयव शाखा प्रत्ययार्थ है, वैसे पञ्चसमुदाय प्रकृत्यर्थ तथा अवयव प्रत्ययार्थ है, ऐसा 'पञ्चमः' में समझना चाहिये। 'वृक्षस्येयं वार्क्षी शाखा' में 'अनुदात्तादेश्च' ४.३.१४० से अञ् प्रत्यय है। {**तस्य पूरण**-}।

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ५.२.४९

*** मडादिषु यस्यादिस्तन्निर्देशः * मडादिषु यस्यादिः क्रियते तन्निर्देशः कर्त्तव्यः, 'अस्यादिर्भवती'ति वक्तव्यम्। अक्रियमाणे प्रत्ययाऽधिकारात् प्रत्ययोऽयं विज्ञायेत। तत्र को दोषः? * प्रत्ययान्तरे हि स्वरे दोषः * प्रत्ययान्तरे हि स्वरे दोषः स्यात्। 'वि॑ं श॒ ति॒ त॒ मः' एष स्वरः प्रसज्येत। 'वि॑ं श॒ ति॒ त म' इति चेष्यते। स तर्हि तथा निर्देशः कर्त्तव्यः?**

'नान्तात्, असंख्यादेः' यह दोनों पञ्चम्यन्तपद, 'मट्' प्रथमान्तपद होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह तीन पदों का सूत्र है।

सूत्रार्थ—'नान्त असंख्यादि से पर में डट् को मट् आगम हो'। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः। अष्टानां पूरणः अष्टमः। इसी तरह 'नवमः, दशमः, सप्तमः'।

एकदेशी आचार्य—**मयडादिष्विति**। यहाँ आदि पद से 'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्' ५.२.५१ आदि से विहित आगमों का ग्रहण है। मट् आदि जिसका आदि अवयव होकर आगम हैं, उसका निर्देश करना चाहिये—'अमुक का आद्यवयव मट् हो' अन्यथा मट् आदि डट् का अपवाद होंगे। यदि आगमी का निर्देश नहीं किया जाये तो उससे हानि बताते हैं—**अक्रियमाण इति**। आगमी का निर्देश नहीं करने पर प्रत्ययाधिकार में पठित होने से मट् भी पठित हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**तत्र को दोष इति**। यदि मट् को प्रत्यय मान कर प्रकृति से पर में कर दिया जाये तो क्या दोष होगा?

दोषवादी आचार्य—**प्रत्ययान्तरे हीति**। दूसरा प्रत्यय होने पर स्वर में दोष होगा। आगमपक्ष में 'विं श ति तमः' ऐसा स्वर इष्ट है। परन्तु यदि मट् आदि को प्रत्यय मान लिया जाये तो 'विं श ति तमः' ऐसा अनिष्टस्वर प्राप्त होने लगेगा, प्रत्ययपक्ष में यही दोष है।

प्रश्नभाष्य—**स तर्हीति**। तो क्या सूत्र में आगमी का निर्देश करना चाहिये, जिससे मट् आदि आगम हो सकें तथा उक्त दोष भी न हो?

न कर्त्तव्यः। प्रकृतं डड्ग्रहणमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'तस्य पूरणे ड'डिति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं, षष्ठीनिर्दिष्टेन चेहाऽर्थः। 'नान्ता'- दित्येषा पञ्चमी 'ड'डिति प्रथमायाः षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति—'तस्मादित्युत्तरस्ये'ति। प्रत्ययविधिरयं, न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका भवन्ति। नाऽयं प्रत्ययविधिः, विहितः प्रत्ययः प्रकृतश्चाऽनुवर्त्तते। {नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्}।

खण्डनभाष्य—**न कर्तव्य इति**। आगमिपद का निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। 'तस्य पूरणे डट्' ५.२.४८ सूत्र में डट् का निर्देश है। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर उसकी अनुवृत्ति उत्तरसूत्र में हो जायेगी। 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ सूत्र से पञ्चमी अपने से उत्तर में षष्ठी की प्रकल्पना करा देती है; अतः षष्ठीप्रकल्पकत्वपक्ष में प्रथमान्त डट् को 'डटः' ऐसा षष्ठ्यन्त हो जायेगा, जो आगमिवचन होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक आचार्य—**प्रत्ययविधिरिति**। यह प्रत्ययविधि है। प्रत्ययविधि में पञ्चमी षष्ठी की प्रकल्पिका नहीं होती है। पुनः यह प्रथमान्त डट् के स्थान पर षष्ठ्यन्त 'डटः' ऐसा कैसे हो जायेगा?

उत्तरभाष्य—**नाऽयमिति**। यहाँ डट् का विधान नहीं किया जा रहा है, अपि तु पूर्वसूत्र में डट् पढा है; वहाँ से आगमसम्बन्धज्ञान के लिए डट् की अनुवृत्तिमात्र हो रही है; अतः प्रत्ययविधि नहीं होने से यहाँ पञ्चमी षष्ठी की प्रकल्पिका हो जायेगी। **(नान्ताद-)**।

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५.२.५१

* चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च * **चतुरश्छयतौ वक्तव्यावाद्यक्षरलोपश्च वक्तव्यः। तुरीयम्। तुर्यम्। अथ किमर्थं थट्थुकौ पृथक् क्रियेते न सर्वं थडेव वा स्यात् थुगेव वा?** * थट्थुकोः पृथक्करणं पदान्तविधिप्रतिषेधार्थम् * **थट्थुकोः पृथक्करणं क्रियते। किमर्थम्? 'पदान्तविधिप्रतिषेधार्थम्'। पदान्तविध्यर्थम्, पदान्तप्रतिषेधार्थं च। पदान्तविध्यर्थं तावत्—'पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति' 'रथः सप्तथः'। 'पदान्तस्ये'ति नलोपो यथा स्यात्। पदान्तप्रतिषेधार्थं—षष्ठः। 'पदान्तस्ये'ति जश्त्वं मा भूत्। इह च चतुर्थ इति, 'पदान्तस्ये'ति विसर्जनीयो मा भूदिति।**

सूत्रार्थ—'डट् प्रत्यय पर रहते षट्, कति, कतिपय और चतुर् को थुक् का आगम कहना चाहिये। षण्णां पूरणः षष्ठः। इसी तरह 'कतिथः, कतिपयथः, चतुर्थः।

वार्तिक—**चतुरश्छयताविति**। चतुर्पदसंख्यावाची से पूरण अर्थ वाच्य होने पर छ और यत् प्रत्यय तथा प्रकृति के आद्यक्षर का लोप कहना चाहिये। यहाँ अक्षरपद व्यञ्जनविशिष्टस्वर का वाचक है; अतः 'अ'सहित 'च्' का लोप होता है-'चतुर्णां पूरणः तुरीयः, तूर्यः'।

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। 'थट् च च्छन्दसि' ५.२.५० सूत्र में थट् तथा 'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्' ५.२.५१ सूत्र में थुक् पढा है। थट् और थुक् का पृथग्ग्रहण क्यों करते हैं, सभी को थट् ही पढ दीजिये? पूर्वसूत्र से उत्तरसूत्र में थट् की अनुवृत्ति हो जायेगी। अथ वा पूर्वसूत्र में थुक् का ही पाठ कर दीजिये, वहाँ से उत्तरसूत्र में थुक् का अनुवर्त्तन हो जायेगा। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरह दोनों प्रत्ययों को थकाररूप ही होने से अन्यतरनिर्देश क्यों नहीं किया गया है?

उत्तरभाष्य—**थट्थुकोरिति**। नलोप आदि पदान्तकार्यों का विषयविभाग से विधि और प्रतिषेध के लिए थट् और थुक् का पृथग्ग्रहण किया गया है। जैसे पदान्तविध्यर्थ—'पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति' इस वैदिकप्रयोग में नान्त पञ्चन् पद से मट् को 'थट् च च्छन्दसि' ५.२.५० से थडागम है। यहाँ थट् पर रहते 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' १.४.१७ से पदसंज्ञा होने पर पदसंज्ञानिमित्तक नलोप होता है। एवं 'रथः सप्तथः' में भी नान्त सप्तन् से पूरणार्थक मट्, मट् को थट्, पदसंज्ञा और नलोप है। पदान्तविधिप्रतिषेध भी प्रयोजन है। जैसे 'षण्णां पूरणः षष्ठः' में 'तस्य पूरणे डट्' ५.२.४८ से विहित डट् पर रहते प्रकृति को थुगागम है। यदि यहाँ थुक् के स्थान पर थट् आगम कर दिया जाये तो षकारान्त षष्पद पदान्त होगा। पदान्त होने से 'ष्' को तन्निमित्तक जश्त्व होने लगेगा। एवं 'चतुर्थः' में पदान्त रेफ को विसर्ग की आपत्ति होगी। परन्तु जब प्रकृतिभाग को थुक् का आगम करते हैं तब थुगन्त की भसंज्ञा होगी तथा भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध हो जाने से 'षष्ठः' में जश्त्व तथा 'चतुर्थः' में वसिर्ग की आपत्ति नहीं है। {षट्कति-}।

बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् ५.२.५२

* बहुकतिपयवतूनां लिङ्गविशिष्टादुत्पत्तिः * **बहुकतिपयवतूनां लिङ्गविशिष्टादुत्पत्तिर्वक्तव्या। इहापि यथा स्यात्—बह्वीनां पूरणी बहुतिथी। कतिपयानां पूरणी कतिपयथी। तावतीनां पूरणी तावतिथी।**

अनुवृत्त 'थट्' ५.२.४८ का सप्तम्यन्त विपरिणाम है।

सूत्रार्थ—'डट् पर रहते बहु, पूग, गण और सङ्घ को तिथुक् का आगम हो'। पूग और सङ्घपद के संख्यावाचि नहीं होने पर भी इसी थट्परक थुगागमविधान से डट् प्रत्यय होता है। बहूनां पूरणः बहुतिथः। इसी तरह 'पूगतिथः, गणतिथः, सङ्घतिथः'।

एकदेशिभाष्य—**बहुकतिपयेति**। बहु, कतिपय और वतुप्रत्ययान्त को लिङ्गविशिष्ट से प्रत्यय की उत्पत्ति कहनी चाहिये। यहाँ लिङ्गपद से लिङ्गसहचरित प्रत्यय कहा गया है; अतः लिङ्गाधिकार से विहितप्रत्ययान्त से प्रत्ययोत्पत्ति होगी। जैसे—'स्त्रियाम्' ४.१.४ का अधिकार कर 'अजाद्यतष्टाप्' ४.१.५ आदि पढे गये हैं; अतः स्त्रीलिङ्गविशिष्ट से प्रत्ययोत्पत्ति होगी। जैसे—'बह्वीनां पूरणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुतिथी। कतिपयानां पूरणी कतिपयथी। वतुप्रत्ययान्त जैसे—'तावतीनां पूरणी तावतिथी'।

'बहुकतिपयवतूनां लिङ्गविशिष्टादुत्पत्तिः सिद्धा'। कथम्? 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणं भवती'ति *पुंवद्वचनञ्च* पुंवद्भावश्च वक्तव्यः। बह्वीनां पूरणी बहुतिथी। किमर्थं न 'भस्याऽढे तद्धिते पुंवद्भवती'ति सिद्धम्? भस्येत्युच्यते, यजादौ च भं भवति, न चाऽत्र यजादिं पश्यामः। किं कारणम्? तिथुका व्यवहितत्वात्। इदमपि सम्प्रधार्यं तिथुक् क्रियतां पुंवद्भाव इति, किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वात् पुंवद्भावः।

खण्डनभाष्य—**उत्पत्तिः सिद्धेति**। प्रातिपदिकग्रहण में लिङ्गबोधकप्रत्यय-विशिष्ट का ग्रहण होता है; अतः बहु, कतिपय और वतुप्रत्ययान्त प्रातिपदिक का ग्रहण होने से स्त्र्यर्थबोधकप्रत्ययविशिष्ट का ग्रहण होगा। इस तरह बहु, कतिपय और वतुप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग से भी प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा।

एकदेशी आचार्य—**पुंवद्वचनञ्चेति**। 'बह्वीनां पूरणी बहुतिथी' इत्यादि में पुंवद्भाव के लिए भी अतिरिक्तवचन पढा जाना चाहिये।

अन्य आचार्य—**किमर्थमिति**। 'बहुतिथी' आदि में 'भस्याऽढे तद्धिते' वा. ६.३.३५ से पुंवद्भाव क्यों नहीं होता है?

इतर आचार्य—**भस्येत्युच्यत इति**। भसंज्ञा को पुंवद्भाव कहा जा रहा है। भसंज्ञा में अजादिप्रत्यय निमित्त है। 'बहुतिथी' आदि में अजादि प्रत्यय नहीं है। यद्यपि यहाँ बह्वी से विहित डट् प्रत्यय अजादि है, तथापि प्रकृति को तिथुक् का आगम होने पर मध्य में तिथुक् से व्यवहित होने के कारण अजादि-प्रत्यय से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट बह्वी नहीं है। तिथुक् करने पर तदन्त की भसंज्ञा हो रही है, बह्वी की नहीं। अतः प्रकृतस्थल में बह्वी को अजादिप्रत्यय-निमित्तक भसंज्ञा प्राप्त नहीं होने से उसको भसंज्ञा के अभाव में पुंवद्भाव प्राप्त नहीं है। इस लिए यहाँ पुंवद्वचन कहना चाहिये।

अन्य आचार्य—**इदमिहेति**। 'बह्वी+डट्' इस दशा में तिथुक् और पुंवद्भाव दोनों प्राप्त है; यहाँ निश्चय करना चाहिये कि पहले तिथुक् होगा, अथ वा पुंवद्भाव?

परत्ववादी आचार्य—**परत्वादिति**। 'बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्' ५.२.५२ की अपेक्षा 'भस्याऽढे तद्धिते' वा.५.३.३५ पर है। दोनों अन्यत्र-अन्यत्र स्व-स्व लक्ष्य में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरितार्थ हैं; अतः दोनों का तुल्यबल है। तुल्यबल होने पर विप्रतिषेध के द्वारा पर होने से यहाँ तिथुक् की अपेक्षा पुंवद्भाव ही होगा।

नित्यस्तिथुक्, कृतेऽपि पुंवद्भावे प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति। तिथुगप्यनित्यो ऽन्यस्य कृते पुंवद्भावे प्राप्नोत्यन्यस्याऽकृते, 'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'। अन्तरङ्गस्तर्हि तिथुक्। काऽन्तरङ्गता? उत्पत्तिसन्नियोगेन तिथुगुच्यते, उत्पन्ने प्रत्यये प्रकृतिप्रत्ययावाश्रित्य पुंवद्भावः।

नित्यवादी आचार्य—**नित्य इति**। पुंवद्भाव करने पर भी तिथुक् होता है, तथा नहीं करने पर भी होता है; अतः कृताऽकृतसम्बन्धी होने से पुंवद्भाव की पेक्षा तिथुक् नित्य है। नित्य से पर का बाध होता है; अतः नित्य तिथुक् से पर पुंवद्भाव का बाध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**तिथुगपीति**। पुंवद्भाव करने पर बहु को तिथुक् हो रहा है, तथा नहीं करने पर बह्वी को हो रहा है। इस तरह 'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन् विधिरनित्यः' परि.शे.४३ इस परिभाषा से तिथुक् अनित्य है।

इतर आचार्य—**अन्तरङ्गस्तर्हीति**। तिथुक् अन्तरङ्ग है। उससे पुंवद्भाव का बाध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**काऽन्तरङ्गतेति**। यहाँ अन्तरङ्गता क्या है?

इतर आचार्य—**उत्पत्तिसन्नियोगेनेति**। यहाँ पूरणार्थक डट् प्रत्यय उत्पन्न होने पर डट् के सन्नियोग से तिथुक् कहा जा रहा है। प्रत्यय उत्पन्न होने पर 'बह्वी+डट्' इस दशा में ज्यों ही पूरणविषयप्रकृति प्रत्यय की उत्पत्ति में निमित्त होगी, त्यों ही प्रकृतिप्रत्यय के सम्बन्ध को अन्तरङ्ग मान कर पहले पुंवद्भाव हो जायेगा। 'भस्याऽढे तद्धिते' वा.६.३.३५ वार्तिक में प्रकृति और प्रत्यय दोनों का सम्बन्ध आश्रित है, जो तिथुक् की अपेक्षा अन्तरङ्ग है।

पुंवद्भावोऽप्यन्तरङ्गः। कथम्? उक्तमेतत्—'सिद्धश्च प्रत्यय-विधा'विति। उभयोरन्तरङ्गयोः परत्वात् पुंवद्भावः। पुंवद्भावे कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानात्तिथुक् सिद्धः—बहुतिथी। {बहुपूगगणसङ्घस्य}।

अन्य आचार्य—**पुंवद्भाव इति**। यहाँ पुंवद्भाव भी अन्तरङ्ग है। इस विषय को 'सिद्धश्च प्रत्ययविधौ' ऐसा कह कर मैंने पहले ही समाधान कर दिया है; अतः 'भसंज्ञानिमित्तक तद्धित की विवक्षा होने पर पुंवद्भाव हो' इत्यर्थक वार्तिक से यहाँ पहले पुंवद्भाव ही होगा। इस तरह यहाँ तिथुक् और पुंवद्भाव दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अन्तरङ्ग होने से तिथुक् की अपेक्षा पुंवद्भाव पर है; अतः पर होने से पहले पुंवद्भाव तथा बाद में 'पुनःप्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम्' परि.शे.३९ से पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा तिथुक् होकर 'बहुतिथी' सिद्ध हो जायेगा; अतः यहाँ पुंवद्भावविधानार्थ अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। {बहुपूग-}।

षष्ठ्यादेश्चाऽसङ्ख्यादेः ५.२.५८

असङ्ख्यादेरिति किमर्थम्? इह मा भूद्—एकषष्टः। द्विषष्टः। असङ्ख्यादेरिति शक्तमवक्तुम्। कस्मान्न भवति—एकषष्टो द्विषष्ट इति? षष्टिशब्दात् प्रत्ययो विधीयते, कः प्रसङ्गो यदेकषष्टिशब्दात् स्यात्? नैव प्राप्नोति, नाऽर्थः प्रतिषेधेन। तदन्तविधिना प्राप्नोति। ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते। एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यो—'भवतीह तदन्तविधि'रिति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? एकविंशतितमः, एतत् सिद्धं भवति।

यहाँ 'विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्' ५.२.५६ से विधेयवचन 'तमट्' एवं 'नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च' ५.२.५७ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'असंख्यापूर्वपद रहते षष्टि आदि से पर में डट् को नित्य तमट् का आगम हो'। 'विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्' ५.२.५६ इस विकल्प का यह अपवाद है। जैसे—'षष्टीनां पूरणः षष्टितमः'। इसी तरह 'सप्ततितमः, अशीतितमः, नवतितम, शततमः'। संख्यापूर्व होने पर विकल्प से तमडागम होगा—एकषष्टीनां पूरण एकषष्टः डट्, 'यस्येति च' ६.४.१४८ से इलोप होकर 'षष्टितमः' रूप है।

'पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्' ५.१.५९ में पठित षष्टि आदि को ही प्रत्यासत्त्या प्रकृत में ग्रहण होगा। वहाँ षष्टि आदि स्वतः ही असंख्यापूर्व हैं। फिर संख्यापूर्व से पर में डट् को तमडागम प्राप्त नहीं है, फिर आप 'असंख्यादेः' ऐसा प्रतिषेधवचन क्यों पढते हैं?, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**असंख्यादेरिति**। सूत्र में 'असंख्यादेः' यह प्रतिषेधवचन क्यों पढते हैं?

उत्तरभाष्य—**इहेति**। 'एकषष्टः, द्विषष्टः' इत्यादि संख्यापूर्वस्थलों में तमडागम न हो, इसके लिए 'असंख्यादेः' यह निषेधवचन है।

अन्य आचार्य—**असंख्यादेरितीति**। सूत्र में 'असंख्यादेः' यह निषेधवचन नहीं पढना चाहिये था। षष्टिशब्द से प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकषष्टि आदि पदों से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने से प्रतिषेध अनर्थक है।

इतर आचार्य—**तदन्तविधिनेति**। षष्टिशब्द से विहित प्रत्यय तदन्तविधि के द्वारा एकषष्टि इत्यादि से भी प्राप्त हो जायेगा; वह न हो, इसके लिए 'असंख्यादेः' यह प्रतिषेधवचन पढा है।

अन्य आचार्य—**ग्रहणवतेति**। 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' (अत्रापि भाष्ये) ऐसी प्रतिषेधिका परिभाषा है। 'षष्टि' यह प्रातिपदिक का ग्रहण है। यहाँ तदन्तविधि प्राप्त नहीं है, अतः प्रतिषेध व्यर्थ है।

समाधानभाष्य—**एवन्तर्हीति**। अप्राप्त होने पर आचार्य द्वारा किया गया प्रतिषेधवचन व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'षष्टि आदि से होता हुआ प्रत्यय तदन्त से भी होता है'।

अन्य आचार्य—**किमेतस्येति**। इस ज्ञापन का क्या फल है?

उत्तरभाष्य—**एकविंशतीति**। 'एकविंशतीनां पूरण एकविंशतितमः' इत्यादि में तमप् प्रत्यय ही इसका फल है। 'विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्' ५.२.५६ में विंशति से होने वाला तमट् तदन्त एकविंशति से भी होकर 'एकविंशतितमः' सिद्ध हो जाता है। {षष्ठ्यादे-}।

मतौ छः सूक्तसाम्नोः ५.२.५९

* छप्रकरणेऽनेकपदादपि * **छप्रकरणेऽनेकपदादपीति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्—अस्यवामीयम्। कयाशुभीयम्। किं पुनः कारणं न सिध्यति? अप्रातिपदिकत्वात्** * सिद्धन्तु प्रातिपदिकविज्ञानात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रातिपदिकविज्ञानात्'। कथं प्रातिपदिकविज्ञानम्?** * स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञेति वचनात् * **स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा भवतीति। एवं योऽसावाम्नायेऽस्यवामशब्दः पठ्यते सोऽस्यपदार्थः।**

यहाँ सामर्थ्यात् मतुशब्द से मत्वर्थ कहा जा रहा है। उसका विशेषण सूक्त और साम पद है। गुण प्रधान का अनुयायी होता है। प्रधान प्रत्ययार्थ है तथा समर्थविभक्ति आदि गुण हैं। प्रधान के उपस्थित होने पर प्रधान में गुणभूत स्वतः उपस्थित हो जायेगा। जैसे 'ब्राह्मणा भोज्यन्ताम्' ऐसा कहने पर अनुक्त गुण आचमन आदि स्वतः आक्षिप्त हो जाते हैं, वैसे 'मतौ' इस प्रधान प्रत्ययार्थ के उपस्थित होने पर इसका गुण प्रकृति भी है, इसका आक्षेप हो जायेगा। इस तरह सूत्र का अर्थ होगा—'सूक्त और सामसम्बन्धी वाच्य होने पर प्रथमान्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से छ प्रत्यय हो'। जैसे 'अच्छावाकशब्दः अस्मिन्नस्तीति अच्छावाकीयं सूक्तम्। वारतन्तशब्दः अस्मिन्नस्तीति वारतन्तवीयं साम'।

एकदेशी—**छप्रकरण इति**। सूक्त और सामसम्बन्धी अर्थ वाच्य होने पर अनेकपद से भी छ प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ 'अनेकं च तत्पदमनेकपदम्', अथवा 'अनेकं पदं यस्मिँस्तदनेकपदं, तस्मात्' ऐसा कर्मधारय अथ वा बहुव्रीहि है। 'अस्य वाम अस्मिन्नस्तीति अस्यवामीयम्' में 'अस्य' यह षष्ठ्यन्त है तथा वाम पद प्रथमान्त है। 'अस्य' तथा 'वाम' यह षष्ठ्य तथा प्रथमान्त समुदायरूप है। इस लिए प्रत्ययविधानार्थ वार्तिक पढा गया है। एवं 'कया शुभंशब्दः अस्ति अस्मिन्निति कयाशुभीयम्' भी पदसमुदायरूप होने से अप्रातिपदिक है, इससे भी प्रत्यय अप्राप्त था, उसको प्राप्त कराने के लिए वचन का आरम्भ है।

समाधानभाष्य—**सिद्धं त्विति**। वेद में 'अस्य ' और 'वाम' यह दो पद पढा गया है। यहाँ 'अस्य' इस पद का एकदेश 'वाम' का अनुकरण है। अनुकार्य और अनुकरण की भेदविवक्षा में अनुकार्य के अर्थवान् होने से उसकी पृथक् प्रातिपदिकसंज्ञा होगी। इस तरह प्रातिपदिक से ही प्रत्यय प्राप्त हो जायेगा, इसके लिए पृथग्वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ प्रातिपदिक कैसे है, इसे दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं—**स्वं रूपमिति**। 'स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा' १.१.६८ सूत्र से 'शब्दोऽपि शब्दार्थः'पक्ष सिद्ध है। जैसे—'अग्नेर्ढक्' ४.२.३३, 'राजश्वसुराद्यत्' ८.२.२४ इत्यादि में अग्नि, राजन् आदि शब्द अपने स्वरूप का बोधक होते हैं तथा उसी को लेकर प्रातिपदिक-संज्ञा होती है। वैसे आम्नाय में पठित 'छ'प्रत्यय की प्रकृति 'अस्यवाम'पद भी स्वरूप का बोधक होने से प्रातिपदिक होगा, पदसमुदायरूप नहीं; अतः प्रातिपदिक होने से ही 'अस्यवामीयम्, कयाशुभीयम्' इत्यादि में प्रत्यय सिद्ध हो जायेंगे, इसके लिए पृथग्वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

किं पुनरन्ये आम्नायशब्दा अन्य इमे? 'ओ'मित्याह। कुत एतत्? * आम्नायशब्दानामान्यभाव्यं स्वरवर्णानुपूर्वीदेशकालनियतत्वात् * **आम्नायशब्दानामान्यभाव्यम्—अन्यभावः सिद्धः। कथम्? 'स्वर-वर्णानुपूर्वीदेशकालनियतत्वात्'। स्वर—स्वरो नियत आम्नायेऽस्य-वामशब्दस्य। वर्णानुपूर्वी—वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता अस्य-वामशब्दस्य। देशः—देशः खल्वप्याम्नाये नियतः-'श्मशाने नाऽध्य-येम्। चतुष्पथे नाऽध्येय'मिति। कालः—कालः खल्वप्याम्नाये नियतः—'नाऽमावास्यायामध्येयं न चतुर्दश्या'मिति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या आम्नाय में पठित 'अस्यवाम' पद से यह 'अस्यवाम'पद भिन्न है? यहाँ अनुकार्य और अनुकरण की भेदविवक्षा में पूर्वपक्ष है।

उत्तरभाष्य—**ओमिति**। अनुकार्य और अनुकरण की भेदविवक्षा मानने पर आम्नाय में पठित 'अस्यवाम' पद से यह 'अस्यवाम'पद भिन्न है।

प्रश्नभाष्य—**कुत इति**। यह कैसे जाना जाये कि आम्नाय में पठित 'अस्यवाम' पद से यह 'अस्यवाम'पद भिन्न है?

उत्तरभाष्य—**आम्नायशब्दानामिति**। आम्नाय में पढे गये 'अस्यवाम' आदि पद स्वर, वर्णानुपूर्वी, देश और काल में नियत हैं। जब कि यहाँ पठित 'अस्यवाम' आदि पद स्वर आदि में नियत नहीं हैं; अतः आम्नाय में पठित 'अस्यवाम' आदि से भिन्न यहाँ पर पढा जाने वाला 'अस्यवाम' आदि पद हैं। 'अन्यस्य भावः अन्यभावः, अन्यभाव एव आन्यभाव्यः'। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' ५.१.१२४ सूत्र में ब्राह्मणादिगण में अन्यभावपद का पाठ होने से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय है। अथ वा 'अन्यो भावो यद् वस्तु तस्य भाव आन्यभाव्यम्=अन्यवस्तुत्वम्' यह आन्यभाव्यपद का स्वारस्य है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**स्वर इति**। आम्नाय में 'अस्यवाम' पद का स्वर नियत है। 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७६ से 'अस्य' पद अन्तोदात्त है तथा 'कर्षाऽऽत्वतो घञोऽन्त उदात्तः' ६.१.१५९ से वाम शब्द अन्तोदात्त है। अथवा 'ज्वलतिकषन्तेभ्यो णः' ३.१.१४० से णान्त वाम शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। परन्तु अनुकरण वामशब्द प्रातिपदिकस्वर से अन्तोदात्त है। स्वर में विरोध होने से यहाँ 'प्रकृतिवदनुकरणम्' परि.शे.३६पक्ष आश्रित नहीं है, अतः स्वरभेद होने से दोनों को भिन्न समझना चाहिये।

दोनों शब्दों के पार्थक्य में अन्य हेतु भी स्पष्ट करते हैं—**वर्णानुपूर्वीति**। आम्नाय में 'अस्यवाम' पद की वर्णानुपूर्वी भी नियत है। जब कि अनुकरण 'अस्यवाम' पद को भिन्नक्रम से 'वामास्य' ऐसा उच्चारण करने पर भी सादृश्य होने से अनुकार्य का प्रत्यायक होगा। **देशः**—आम्नाय में देश भी नियत होता है। जैसे—'श्मशाने नाऽध्येयम्, चतुष्पथे नाऽध्येयम्' ऐसा कहने से यहाँ देश नियत हो रहा है, जब कि अनुकरण का देश नियत नहीं होता है। **कालः**—आम्नाय में काल भी नियत होता है। जैसे—'नाऽमावस्यायामध्येतव्यम्, न चतुर्दश्याम्' ऐसा काल नियत है। परन्तु अनुकरण का काल नियत नहीं होता है; अतः इतने भेदों के होने से आम्नाय में पठित 'अस्यवाम' आदि पदों से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुकरण 'अस्यवाम' आदि पदों को भिन्न ही समझना चाहिये।

*** पदैकदेशसुबलोपदर्शनाच्च * पदैकदेशः खल्वप्याम्नाये दृश्यतेऽस्यवामीयम्। ननु चैष सुब्लोपः स्यात्। 'सुबलोपदर्शनाच्च'। सुबलोपः खल्वपि दृश्यतेऽस्यवामीयमिति। तस्मादन्ये आम्नायशब्दा अन्य इमे। यदि तर्ह्यन्य आम्नायशब्दा अन्य इमे, मत्वर्थो नोपपद्यतेऽस्यवामशब्दोऽत्रास्तीति। न संज्ञा संज्ञिनं व्यभिचरति।**

एवं दोनों शब्दों के भिन्न होने में अन्य हेतु भी देते हैं—**पदैकदेशेति**। पदैकदेश में सुप् का अलुक् देखे जाने से भी आम्नायस्थ 'अस्यवाम' आदि पदों से अनुकरण 'अस्यवाम' आदि पद भिन्न हैं। आम्नाय में 'अस्य वामस्य' ऐसा प्रयोग होता है। इसका एकदेशानुकरण अस्यवाम है, वही 'अस्यवामीयम्' की प्रकृति है। यहाँ सुप् का अलुक् होना भी शब्दभेद में हेतु है। यदि षष्ठी का लुक् होने पर 'अस्यवामीयम्' रूप की सिद्धि मानेंगे तो पूर्वपद 'अस्य' में भी इदम्पदोत्तरषष्ठी के लुक् की आपत्ति होगी। परन्तु अनुकार्य और अनुकरण में भेदविवक्षापक्ष में अस्यवाम इस पद से इदम्पदोत्तर ङस् का अभाव रहेगा; अतः यहाँ सुप् का लुक् नहीं हो सकेगा। इस तरह पदैकदेश तथा सुप् का अलुक् देखे जाने से आम्नाय अस्यवाम आदि से भिन्न ही अनुकरण अस्यवाम आदि मानना चाहिये।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि आम्नायस्थपद से भिन्न अनुकरण पद मानेंगे तो 'अस्यवामशब्दोऽयमस्तीति अस्यवामीयम्' इत्यादि में मत्वर्थीय छ प्रत्यय नहीं हो सकेगा। यहाँ अनुकार्य से सूक्त और साम की तद्वत्ता बोध्य है, अनुकरण से नहीं।

सिद्धान्ती—**न संज्ञेति**। बोधक होने से अनुकरण संज्ञा है तथा बोध्य होने से अनुकार्य संज्ञी है। बोध्य होने से संज्ञी अर्थ बोधक का अतिक्रमण नहीं कर सकेगा। जैसे गो आदि शब्द सास्नालाङ्गूलवान् अर्थ का बोध कराने पर उसी अर्थ से मत्वर्थीय हो कर मतुप् प्रत्यय उत्पन्न कराते हैं—गोमानिति। वैसे प्रथमासमर्थ अनुकरणशब्द भी अपने अनुकार्य अर्थ से अर्थवान् होकर तद्वान् में अपने से उत्तर में मत्वर्थीय प्रत्यय उत्पन्न करा देंगे, अतः कोई दोष नहीं है। अनुकरणशब्द स्वजातिसमवेत अनुकार्य के वाचक होते हैं' यह वात लकारवार्तिक में कही गयी है। {मतौ छः-}।

अध्यायानुवाकयोर्लुक् ५.२.६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* अध्यायानुवाकाभ्यां वा लुक् * **अध्यायानुवाकाभ्यां वा लुग्वक्तव्यः।** स्तम्भः—**स्तम्भीयः।** स्तम्भ। गर्दभाण्डः—**गर्दभाण्डीयः।** गर्दभाण्ड। अनुवाकः—**अनुवाकीयः।** {अध्यायानुवाकयोर्लुक्}।

यहाँ 'लुक्' प्रथमान्त विधेयवचन है। सूत्र में उद्देश्यपद निर्दिष्ट नहीं है। लुक् प्रत्यय की संज्ञा है; अतः पूर्वसूत्र 'मतौ छः सूक्तसाम्नोः' ५.२.५९ से प्रथमान्त 'छ' पद की अनुवृत्ति कर उसका षष्ठ्यन्त विपरिणाम करेंगे।

सूत्रार्थ—'अध्याय और अनुवाक वाच्य होने पर छ प्रत्यय का लुक् हो'।

एकदेशी आचार्य—**अध्यायानुवाकाभ्यामिति।** 'अध्यायानुवाकाभ्याम्' यह तादर्थ्य में चतुर्थी है; अतः अध्यायार्थ और अनुवाकार्थ जो छ प्रत्यय, उसका विकल्प से लुक् कहना चाहिये'। इससे पक्ष में छ का श्रवण होगा। 'स्तम्भशब्दसंयुक्तः अध्यायोऽनुवाको वा अस्त्यत्रेति स्तम्भः, स्तम्भीयः। गर्दभाण्डशब्दसंयुक्तः अध्यायोऽनुवाको वा अस्त्यत्रेति गर्दभाण्डः, गर्दभाण्डीयः। अनुवाकशब्दसंयुक्तः अध्यायोऽनुवाको वा अस्त्यत्रेति अनुवाकः, अनुवाकीयः'। यहाँ लुग्विधान ही ज्ञापक है कि अध्याय और अनुवाक वाच्य होने पर भी छ होता है। प्रकृतसूत्र को मतुप्प्रकरण में नहीं करके यहाँ पढ कर आचार्य ने जो लुग्विधान किया है, उसी से पाक्षिक लुक् का अनुमान हो जायेगा; अतः अनुमान से पाक्षिक लुक् सिद्ध होने पर वार्तिक का आरम्भ अनुवादकमात्र है। **{अध्यायानुवाकयोर्लुक्}**।

धनहिरण्यात् कामे ५.२.६५

* धनहिरण्यात् कामाभिधाने * **धनहिरण्यात् कामाभिधान इति वक्तव्यम्** * षष्ठ्यर्थे ह्यनिष्टप्रसङ्गः * **षष्ठ्यर्थे हि सत्यनिष्टं प्राप्नोति—धने कामोऽस्येति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति—धने कामोऽस्येति? अनभिधानात्।** {धनहिरण्यात् कामे}।

'आ कर्षादिभ्यः कन्' ५.२.६४ से 'कन्' की अनुवृत्ति है। 'तत्र कुशलः पथः' ५.२.६३ से 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'काम=इच्छा वाच्य होने पर सप्तम्यन्त धन और हिरण्यपद से कन् प्रत्यय हो'। धने काम इति धनको देवदत्तस्य। हिरण्ये काम इति हिरण्यकश्चैत्रस्य।

एकदेशी—**कामाभिधान इति।** इच्छामात्र कथन होने पर ही प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ कर्त्ता अर्थ वाच्य नही है, अतः कामपद से इच्छामात्र अभिधेय है। **षष्ठ्यर्थ इति।** 'धने कामोऽस्य' ऐसा विग्रह कर यदि षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे तो अनिष्टप्रसङ्ग होगा। अनिष्ट प्रत्यय न हो, इसके लिए 'धनहिरण्यात् कामाऽभिधाने' ऐसा वचन पढा गया है। यद्यपि यहाँ पर कहीं से भी षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति नहीं हो रही है, तथा प्रकृतसूत्र में भी नहीं पढा गया है, तथापि 'कामयते इति कामः' इस विग्रह में कामपद कर्त्तृसाधन होगा। इस तरह कर्त्तृसाधन कामपद का ग्रहण होने से धनकपद से 'धनस्य कामयिता' देवदत्त आदि कहे जायेंगे। इस तरह सामर्थ्यवशात् षष्ठ्यर्थ में ही प्रत्यय प्राप्त हो रहा है; अतः उसका प्रतिषेध के लिए 'धनहिरण्यात् कामाऽभिधाने' वचन पढना चाहिये।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय की अप्राप्ति के लिए 'धनहिरण्यात् कामाऽभिधाने' वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसकी आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**कस्मान्नेति**। यदि नियामकवचन नहीं पढेंगे तो षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

समाधानभाष्य—**अनभिधानादिति**। अनभिधान होने से षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय नहीं होता है। {धनहिरण्यात् कामे}।

शीतोष्णाभ्यां कारिणि ५.२.७२

किं यः शीतं करोति स शीतकः यो वा उष्णं करोति स उष्णकः? किं चाऽऽतः? तुषारे आदित्ये च प्राप्नोति। एवं तर्हि *उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः* **उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। शीतमिव शीतम्। उष्णमिवोष्णम्। य आशु कर्त्तव्यानर्थांश्चिरेण करोति स उच्यते—शीतक इति। यः पुनराशु कर्त्तव्यानर्थानाश्वेव करोति स उच्यते—उष्णक इति।**

'अंशं हारी' ५.२.६९ सूत्र में द्वितीयान्त से प्रत्यय है; अतः यहाँ भी क्रियाविशेषण शीत और उष्ण द्वितीयान्त से ही प्रत्यय होगा। 'आकर्षाऽऽदिभ्यः कन्' ५.२.६४ से कन् की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'कारी अर्थ वाच्य होने पर क्रियाविशेषण द्वितीयान्त शीत और उष्ण पद से कन् प्रत्यय हो'। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा।

शीत और उष्ण पद मुख्यरूप से स्पर्शविशेष में शक्त है, उसी का बोध कराने के लिए प्रत्यय हो, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**किं य इति**। क्या शीत करने वाले को 'शीतकः' और उष्ण करने वाले को 'उष्णकः' कहेंगे; यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हाँ, तो 'शीतं करोति' ऐसा विग्रह कर कन्प्रत्ययान्त शीतकपद तुषार का वाचक होगा तथा 'उष्णं करोति' ऐसा विग्रह कर कन्प्रत्ययान्त उष्ण पद **आदित्य**=सूर्य का वाचक होगा?

समाधानभाष्य—**एवन्तर्हीति**। सूत्र में शीत और उष्ण पद उत्तरपदलोपि 'शीतमिव, उष्णमिव' ऐसा 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वा.१२३६ से समस्तपद है। यहाँ उत्तरपद इव का उभयत्र लोप है। इव पद द्योतक है। मात्र शीत और उष्ण पद से ही इवार्थ गतार्थ है; अतः इव का लोप कर दिया गया है। इस तरह शीत पद आलसी अर्थ का वाचक है तथा उष्ण पद शीघ्र अर्थ का वाचक है; अतः 'शीतं करोति शीतकः=अलसः' उष्णं करोतीति उष्णकः=शीघ्रकारी। {शीतोष्णाभ्यां-}।

अधिकम् ५.२.७३

अधिकमिति किं निपात्यते? *अध्यारूढस्योत्तरपदलोपः कंश्च प्रत्ययः* **अध्यारूढस्योत्तरपदलोपः कंश्च प्रत्ययः। अध्यारूढमधिकम्। भवेत् सिद्धमध्यारूढो द्रोणः खार्याम्, अधिको द्रोणः खार्यामिति। इदन्तु न सिध्यति—अध्यारूढा द्रोणेन खारी, अधिका द्रोणेन खारीति; गत्यर्थानां हि क्तः कर्त्तरि विधीयते। गत्यर्थानां हि क्तः कर्मण्यपि विधीयते। {अधिकम्}।**

यहाँ अध्यारूढ पद से कन् प्रत्यय तथा उत्तरपद आरूढ का लोप निपातित है।

यदि साधनक्रिया का वाचक अधि शब्द से कन् प्रत्यय का निपातन करेंगे तो साधन का वाचक कर्म और कर्त्ता, इन दोनों में कोई भी हो सकता है। यदि क्रियावचनवाचक कर्त्ता अर्थ लेंगे तो वहाँ कर्मरूप अर्थ का अभाव रहेगा। अथ वा कर्म अर्थ लेंगे तो क्रिया का अभाव रहेगा, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**अधिकमिति**। 'अधिकम्' में क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**अध्यारूढस्येति**। यहाँ अधि-आङ्पूर्वक रूह धा.पा.८५९ धातु गत्यर्थक है। उससे निष्ठासंज्ञक क्त प्रत्यय हुआ है। 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरूहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ से रूह से परमें कर्त्ता अर्थ में भी क्त प्रत्यय का विधान है, तथा 'च' पद का ग्रहण करने से कर्म एवं भाव अर्थ में भी है। इस तरह जब कर्त्ता अर्थ में क्त करेंगे, तब 'अध्यारूढो द्रोणः खार्याम्' ऐसा विग्रह कर 'अधिको द्रोणः खार्याम्' ऐसा रूप होगा। एवं जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्म में क्त प्रत्यय करेंगे तब 'अध्यारूढा द्रोणेन खारी' ऐसा भी रूप होगा। इस तरह गत्यर्थकधातु से क्त प्रत्यय का कर्त्ता और कर्म दोनों में प्रत्ययविधान होने से दोनों अर्थों में 'अधिकम्' ऐसा निपातन है। {**अधिकम्**}।

पार्श्वेनान्विच्छति ५.२.७५

किं यः पार्श्वेनाऽन्विच्छति स पार्श्वकः? किं चाऽऽतः? राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्हि—* उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः * उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। यो मृदुनोपायेनाऽन्वेष्टव्यानर्थान् ऋजुनोपायेनान्विच्छति स उच्यते पार्श्वक इति।

'आकर्षादिभ्यः कन्' ५.२.६४ से विधेय कन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'पार्श्वेन' यह तृतीयान्तनिर्देश है।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त प्रातिपदिक पार्श्व पद से 'अन्विच्छति' अर्थ में कन् प्रत्यय हो'।

आक्षेपक का प्रश्नभाष्य—**किं य इति**। 'पार्श्वेनाऽन्विच्छति' ऐसा विग्रह में 'पार्श्वकः' रूप हो रहा है। पार्श्वाश्रय से राजा अर्थ चाहता है। परन्तु उक्तविग्रह में पार्श्वक पद से अभिधा के द्वारा राजपुरुष अर्थ का कथन होने लगेगा, जब कि राजा अर्थ का कथन होना चाहिये। कहीं पर किसी पुस्तक में 'राजपुरुषेऽपि' ऐसा भी पाठ है; वहाँ पर 'अपि' पद को एवार्थक समझना चाहिये—'राजपुरुषे एव प्राप्नोती'ति।

समाधानभाष्य—**एवं तर्हीति**। सूत्र में उत्तरपदलोपी पार्श्वपद का निर्देश है। 'पार्श्वमिव' ऐसा 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वा.१२३६ से समस्तपद है। इसका उत्तरपद इव का लोप है। इस तरह सरल उपाय से प्राप्य अर्थ को जो **अनृजु**=कठोर उपाय से प्राप्त करता है, उसे 'पार्श्वकः' कहते हैं। यहाँ पार्श्वपद अनृजु अर्थ में है। {पार्श्वेनान्विच्छति}।

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ५.२.७६

किं योऽयःशूलेनाऽन्विच्छति स आयःशूलिकः? किं चातः? शिवभागवते प्राप्नोति। एवं तर्हि—* उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः * उत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। अयःशूलमिवायःशूलम्। यो मृदुनोपायेनाऽन्वेष्टव्यानर्थान् रभसेनान्विच्छति स उच्यते आयःशूलिकः। {अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्' यह तृतीयाद्विवचनान्त निर्देश है। 'ठक्ठञौ' यह विधेय है। यथाक्रम अन्वय होगा। यद्यपि यहाँ अन्यतर प्रत्यय का विधान होने से रूपसाम्य है, तथा स्वरभेद के लिए अनुबन्धभेद किया गया है। 'पार्श्वेनाऽन्विच्छति' ५.२.७५ से 'अन्विच्छति' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्त अयःशूल और दण्डाजिन पद से 'अन्विच्छति' अर्थ में क्रमशः ठक् और ठञ् प्रत्यय हो'।

प्रश्नभाष्य—**किं य इति**। 'अयःशूलेनाऽन्विच्छति' आयःशूलिकः' ऐसा कहने पर 'हाथ में त्रिशूल लेकर भिक्षाटन करने वाला शिव का भक्त' अर्थ की उपस्थिति हो रही है। 'भगवान् भक्तिरस्येति भागवतः' में 'भक्तिः' ४.३.९५ से अण् है। 'शिवस्य भागवत इति शिवभागवतः' ऐसा षष्ठीसमास है। यहाँ अवयवसंस्पर्श के द्वारा समुदायार्थ विशेषण है; अतः 'शिवो भगवान् भक्तिर्यस्य सः' ऐसा अर्थ प्रतीत होता है।

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। 'अयःशूलमिव' ऐसा इवार्थ में अयःशूल पद है। यहाँ 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वा.१२३६ से समस्तपद है। इसका उत्तरपद इव का लोप है। ('शीतोष्णाभ्यां कारिणि' ५.२.७२ सूत्र पर आचार्य कैयट ने 'नाऽत्र समासाऽवयव उत्तरपदमभिप्रेतं समासस्याऽसम्भवात्' ऐसा कहा है। वहाँ से उत्तर जिन-जिन सूत्रों में उत्तरपद इव का लोप कहा है वहाँ आचार्य नागेशजी की कही उक्ति सार्थक है। परन्तु यहाँ सर्वत्र 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वा.१२३६ से समास सम्भव है, अतः आचार्यजी का कथन चिन्त्य है)। इस तरह 'अयःशूलमिवाऽयःशूलम्'। जैसे अयःशूल तीक्ष्ण होता है, वैसे अन्य भी उपाय तीक्ष्ण होने से उपचारवशात् यहाँ अयःशूलपद से तीक्ष्ण अर्थ वाच्य है; अतः मृदुता से प्राप्तव्य अर्थ को जो तीक्ष्णता से प्राप्त करता है, उसे **'आयःशूलिकः'**= साहसिक कहते हैं। इसी तरह 'दण्डाजिनं दम्भस्तेनाऽन्विच्छतीति दाण्डाजिनिकः'। {अयःशूलदण्डा-}।

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ५.२.७७

* 'तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा'वचनानर्थक्यं विभाषाप्रकरणात् * **तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वावचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'विभाषाप्रकरणात्'। प्रकृता महाविभाषा तयैतत् सिद्धम्।**

'आंकर्षादिभ्यः कन्' ५.२.६४ से विधेय कन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'तावता ग्रहणं तावतिथम्' यह 'वतो रिथुक्' ५.२.५३ से पूरणार्थक इथुक्प्रत्ययान्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का सामान्यनिर्देश है, एवं तृतीयार्थ में प्रथमा है। 'ग्रहणम्' भाव अर्थ में ल्युट् है।

सूत्रार्थ—'तृतीयान्तपूरणप्रत्ययान्त से 'ग्रहणम्' इस अर्थ में कन् प्रत्यय हो तथा पूरण प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो'। जैसे 'द्वितीयेन गृह्णातीति द्वितीयकं, द्विकं वा ग्रहणं चैत्रस्य। तृतीयेन गृह्णातीति तृतीयकं त्रिकं वा ग्रहणं मैत्रस्य'। यहाँ पूरणप्रत्यय का ही लुक् होगा, कन् का नहीं।

वार्तिककार—**तावतिथमिति**। महाविभाषा का प्रकरण चल रहा है। उससे विकल्प से प्रत्यय की उत्पत्ति होगी। इस तरह प्रत्यय की उत्पत्ति तथा अनुत्पत्ति-पक्ष लेकर दो रूप हो जायेगा। इसी के लिए जो विकल्प से प्रत्यय का लुक् कहा, वह व्यर्थ है। परन्तु जब पूरण प्रत्यय का विकल्प से लुक् कहेंगे तब 'पञ्चकं ग्रहणं, पञ्चमकं ग्रहणम्' इन दो रूपों की सिद्धि के लिए लुग्ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा दो रूप सिद्ध नहीं हो सकेंगे।

* तावतिथेन गृह्णातीति लुक् च * **तावतिथेन गृह्णातीत्युपसंख्यानं कर्त्तव्यं लुक्च वक्तव्यः। षष्ठेन गृह्णातीति षट्कः। {तावतिथं}।**

यदि पूरणप्रत्ययान्त से स्वार्थ में कन् प्रत्यय कर दिया जाये तथा पूरण-प्रत्यय का विकल्प से लोप कह दिया जाये तब भी 'पञ्चकं, पञ्चमकम्' इन दो रूपों की सिद्धि हो जायेगी। परन्तु 'ग्रहणम्' में प्रत्यय नहीं हो सकेगा; अतः 'ग्रहणम्' अर्थ में प्रत्यंय का समर्थन करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं—**तावतिथेनेति**। पूरणप्रत्ययान्तसामान्य का तृतीयान्तनिर्देश 'तावतिथेन' है। पूरणप्रत्ययान्त तृतीयान्त से 'गृह्णाति' अर्थ में कन् प्रत्यय तथा पूरण प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये-'षष्ठेन गृह्णातीति षट्कः'। {**तावतिथेन-**}।

शृङ्खलमस्य बधनं करभे ५.२.७९

* शृङ्खलमस्य बधनं करभ इत्यर्थनिर्देशः * **शृङ्खलमस्य बधनं करभ इत्यर्थनिर्देशः। अगमको निर्देशोऽनिर्देशः। न हि तस्य शृङ्खलं बन्धनं शृङ्खलवत्याऽसौ रज्ज्वा बध्यते** * सिद्धं तु तद्वन्निर्देशाल्लुक् च * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'तद्वन्निर्देशः कर्त्तव्यो लुक् च वक्तव्यः—शृङ्खल-वद् बन्धनमिति।**

'आकर्षादिभ्यः कन्' ५.२.६४ से विधेय कन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'करभे' यह षष्ठ्यर्थ में सप्तमी है। 'बन्धनम्' में 'बध्यते येन तद् बन्धनम्' ऐसा करण में ल्युट् प्रत्यय है।

सूत्रार्थ—'अस्य करभस्य शृङ्खलं बन्धनम्' ऐसा विग्रह होने पर बन्धनविशेषण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथमान्त शृङ्खलपद से 'अस्य करभस्य' इस् अर्थ में कन् प्रत्यय हो'। शृङ्खलमस्य करभस्य बन्धनमिति शृङ्खलकः करभः'=बाल उष्ट्रः।

आक्षेपक आचार्य—**शृङ्खलमस्येति**। आचार्य ने 'शृङ्खलस्य बन्धनं करभे' यह निर्द्देश किया है, परन्तु यह उचित नहीं है। यहाँ बन्धनपद से अस्वतन्त्रीकरण अर्थ विवक्षित है। अस्वतन्त्रीकरण में रज्जु का करणत्व है, शृङ्खल का नहीं। काष्ठ से निर्मित पाश, जो पशु के पाद में जकडने के लिए पहनाया जाता है, उसे शृङ्खल कहते हैं। इस तरह शृङ्खल बन्धन नहीं है, अतः सूत्रनिर्द्देश अर्थ को नही कह पा रहा है।

समाधानभाष्य—**सिद्धं त्विति**। मतुप्प्रत्ययान्त शृङ्खलवान् ऐसा निर्द्देश कर मतुप् का लोप कर 'शृङ्खलम्' ऐसा निर्देश है, अतः कोई दोष नहीं है।

स तर्हि तद्वन्निर्द्देशः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। इह यन्नान्तरेण यस्य प्रवृत्तिर्भवति तत्तस्य निमित्तत्वाय कल्पते। न चाऽन्तरेण शृङ्खलं बन्धनं प्रवर्त्तते।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या सूत्र में शृङ्खल पद को मतुबन्त पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। मतुबन्त पढा जाना आवश्यक नहीं है। जिसके विना जिसकी प्रवृत्ति नहीं होती है, वह उसका निमित्त बन जाता है। यहाँ मतुप् के विना 'शृङ्खलम्' की प्रवृत्ति नहीं हो पा रही है; अतः 'शृङ्खलम्' मतुप् का निमित्त बन जायेगा।

अथ वा साहचर्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति—शृङ्खलसहचरितं बन्धनं शृङ्खलं बन्धनमिति। {शृङ्खलमस्य बधनं करभे}।

इसी को इतरपक्ष में भी समाधान करते हैं—**अथ वेति**। अथ वा बन्धन-साहचर्य से शृङ्खलपद शृङ्खलवान् अर्थ में हो जायेगा। यहाँ बन्धनशब्द के साहचर्य से शृङ्खलपद रज्जु अर्थ का ही वाचक होगा, काष्ठनिर्मित पाश का नहीं। {**शृङ्खल-मस्य-**}।

तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् ५.२.८२

* प्राये संज्ञायां वटकेभ्य इनिः * **प्राये संज्ञायां वटकेभ्य इनिर्वक्तव्यः। वटकिनी पौर्णमासी।** {तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम्}।

'आकर्षादिभ्यः कन्' ५.२.६४ से विधेय कन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'अन्न का बाहुल्य गम्य होने पर प्रथमान्त अन्नवाचक से 'अस्मिन्' इस अर्थ में संज्ञागम्य होने पर कन् प्रत्यय हो'। गुडापूपाः प्रायेण अन्नमस्यामिति गुडापूपिका पौर्णमासी।

वार्तिक—**प्राय इति**। यहाँ शब्दस्वभाववश बहुवचननिर्देश है। संज्ञागम्य होने पर प्रथमान्त वटक पद से अन्नबाहुल्य वाच्य होने पर इनि प्रत्यय कहना चाहिये। 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ सूत्र पर 'सप्तम्यां न च तौ स्मृतौ' कह कर सप्तम्यर्थ में इनि का निषेध किया है; अतः यहाँ मत्वर्थीय इनि नहीं होने से वार्तिक का आरम्भ है। 'वटकाः प्रायेणमन्नमस्यां पौर्णमास्यामिति वटकिनी पौर्णमासी। {**तदस्मिन्नन्नं-**}।

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ५.२.८४

किं निपात्यते? * श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीत इति वाक्यार्थे पदवचनम् * **श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीत इत्यस्य वाक्यस्याऽर्थे 'श्रोत्रिय'न्नित्येतत्पदं निपात्यते** * छन्दो वा श्रोत्रभावः तदधीत इति घंश्च * **छन्दो वा श्रोत्रभावो निपात्यते तदधीत इत्येतस्मिन्नर्थे, घंश्च प्रत्ययः। छन्दोऽधीते श्रोत्रियः।** {श्रोत्रियंश्छन्दो}।

'तदधीते तद्वेद' ४.२.५९ से प्राप्त अध्येत्त्रयर्थक अण् का यह अपवाद है। द्वितीयान्त छन्दःपद से 'अधीते' अर्थ में घन् प्रत्यय तथा प्रकृति को श्रोत्र आदेश निपातित है।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। आचार्य यहाँ प्रकृतसूत्र में क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**श्रोत्रियन्निति**। 'छन्दोऽधीते' इस वाक्य के अर्थ में 'श्रोत्रियन्' यह नान्तपद निपातित है। सम्बन्धभूत अथ वा क्रियारूप वाक्यार्थ असत्त्वभूत है। एवं श्रोत्रियशब्द सत्त्वभूत अर्थ का वाचक है। यहाँ वाक्यार्थ का ग्रहण कर श्रोत्रियपद से तदाश्रय छन्दोऽध्येता कहा जा रहा है। अविद्यमान प्रकृतिप्रत्ययविभाग श्रोत्रियपद से कहा जा रहा है। नित्करणसामर्थ्य से अव्युत्पन्न श्रोत्रियपद में भी आद्युदात्त हो जायेगा। यहाँ निपातन में अन्यपक्ष भी स्पष्ट करते हैं—**छन्दसो वेति**। 'छन्दोऽधीते' ऐसा विग्रह कर 'अधीते' अर्थ में द्वितीयान्त छन्दःपद से घन् प्रत्यय तथा प्रकृति को श्रोत्र आदेश निपातन है—छन्दोऽधीते इति श्रोत्रियः। {श्रोत्रिय-}।

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ५.२.८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनिठनोः समानकालग्रहणम् **इनिठनोः समानकालग्रहणं कर्त्तव्यम्। अद्य भुक्ते श्वः श्राद्धिक इति मा भूत्** *उक्तं वा* **उक्तं वा। किमुक्तम्?** *अनभिधानादिति*

सूत्रार्थ—'प्रथमान्त श्राद्धपद से 'भुक्तमनेन' इस अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हो'। यहाँ श्राद्धपद श्राद्ध का साधन=भोज्य आदि द्रव्य में लाक्षणिक है। श्राद्धमनेन भुक्तमिति श्राद्धी, श्राद्धिकः।

एकदेशी आचार्य—**इनिठनोरिति**। जिस काल में भोजनक्रिया हो रही है, वही काल और भोजनक्रिया दोनों का समानकाल होने पर ही प्रत्यय का प्रयोग करना चाहिये। यदि आज भोजन किया तथा तृप्ति का हेतु श्राद्धसाधनद्रव्य अन्न आदि का कल पाक होने से परिणत हो गया तो उसे कल के दिन में इनि और ठन् प्रत्यय का प्रयोग कर 'श्राद्धी, श्राद्धिकः' यह प्रयोग नहीं होगा। अथ वा 'अद्य भुक्ते श्वः श्राद्धिक इति मा भूद्' इसके लिए समानकाल में प्रत्यय का नियमन करने की आवश्यकता नहीं है। अनभिधान होने से ही असमानकाल में श्राद्धपद से इनि और ठन् प्रत्यय नहीं होगा। {**श्राद्धमनेन-**}।

साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् ५.२.९१

संज्ञायामिति किमर्थम्? त्रिभिः साक्षाद् दृष्टं भवति यश्च ददाति, यस्मै च दीयते, यश्चोपद्रष्टा, तत्र सर्वत्र प्रत्ययः प्राप्नोति। संज्ञाग्रहणसामर्थ्याद् धनिकाऽन्तेवासिनोर्न भवति। {साक्षाद् द्रष्टरि}।

'पूर्वादिनिः' ५.२.८६ से 'इनिः' का अनुवर्त्तन है।

सूत्रार्थ—'द्रष्टा अर्थ गम्य होने पर संज्ञा में साक्षात् पद से इनि प्रत्यय हो'। साक्षाद् द्रष्टा साक्षी=जो स्वयं कर्म नहीं करता है, परन्तु किया गया हर व्यापार देखता है। यहाँ साक्षात् इस अव्यय से इनि प्रत्यय तथा 'अव्यानां भमात्रे टिलोपः' वा.४१८७ से टिलोप है।

प्रश्नभाष्य—**संज्ञायामिति**। सूत्र में 'संज्ञायाम्' ऐसा नियमन क्यों करते हैं? प्रश्न में हेतु यह है कि 'संज्ञायते' इत्यर्थक संज्ञाशब्द 'साक्षाद् द्रष्टा' अर्थ में व्यवहृत है। इस तरह व्यवहृत अर्थ में ही प्रत्यय होगा। 'संज्ञायतेऽनया शब्दशक्त्येति संज्ञा' में करण अर्थ में कृत्प्रत्यय करेंगे तथा निपातन से ल्युट् का अभाव कहेंगे। इस तरह करणव्युत्पत्तिपक्ष में संज्ञाशब्द से वाचक होने के कारण शब्द ही वाच्य होगा। इस तरह संज्ञाविषय में कार्य होगा। उससे संज्ञा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ स्वतः उपस्थित हो जा रहा है। पुनः सूत्र में संज्ञापद का ग्रहण क्यों है? यहाँ यह पूर्वपक्ष लक्ष्यानुसारिबोध करने वाले की अपेक्षा से है। लक्षणानुसारिबोद्धा की अपेक्षा से उत्तर देते हैं—**त्रिभिरिति**। तीन पुरुष साक्षात् देखते हैं। प्रथम वह जो लेने वाले को कर्ज आदि के रूप में धन देता है, वह साहुकार। दूसरा कर्ज लेने वाला, और तीसरा, **उपद्रष्टा**=दाता और ग्रहीता को देने और लेने की क्रिया व द्रव्य आदि को प्रत्यक्ष देखने वाला। इस तरह दाता, ग्रहीता और उपद्रष्टा इन तीनों में प्रत्यय प्राप्त हो रहा है। संज्ञाग्रहण सामर्थ्य से उपद्रष्टा अर्थ में ही प्रत्यय होता है, दाता और ग्रहीता अर्थ में नहीं; अतः यहाँ संज्ञाग्रहण है। {साक्षाद्-}।

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ५.२.९२

किं निपात्यते? * क्षेत्रियः श्रोत्रियवत् * **क्षेत्रियः श्रोत्रियवन्निपात्यते। परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्येतस्य वाक्यस्याऽर्थे 'क्षेत्रिय'जित्येतत् पदं निपात्यते** * परक्षेत्राद्वा तत्र चिकित्स्य इति परलोपो घश्च * **परक्षेत्राद्वा तत्र चिकित्स्य इत्येतस्मिन्नर्थे परलोपो घंश्च प्रत्ययः। परक्षेत्रे चिकित्स्यः क्षेत्रियः।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

'परम्=अन्यत्, क्षेत्रम्=शरीरम् इति' परक्षेत्र=दूसरे जन्म में प्राप्त होने वाला शरीर। कित निवासे रोगापनयने च धा.पा.९९३ धातु से कर्म में कृत्प्रत्यय होकर 'चिकित्स्यः' शब्द है; अतः सप्तम्यन्त परक्षेत्रशब्द से चिकित्स्य=व्याधि अर्थ में क्षेत्रियच् निपातन है—परक्षेत्रे चिकित्स्य इति क्षेत्रियः'। यहाँ परपद का लोप तथा क्षेत्रपद से घच् प्रत्यय का निपातन है। इस तरह दूसरे ही जन्म में जिसकी चिकित्सा सम्भव हो, इस जन्म में असाध्य हो, उस व्याधि को क्षेत्रिय कहा जाता है।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। प्रकृतसूत्र में आप क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**क्षेत्रिय इति**। जैसे 'छन्दोऽधीते' इस वाक्य के अर्थ में श्रोत्रियन् यह पद निपातित था, वैसे 'परक्षेत्रे चिकित्स्यः' इस वाक्य के अर्थ में 'क्षेत्रियच्' यह पद निपातित है। यहाँ द्वितीय निपातन भी बताते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परक्षेत्रादिति। 'परक्षेत्रे चिकित्स्यः' इस विग्रह में सप्तम्यन्त परक्षेत्र पद से घन् प्रत्यय तथा प्रकृति का अवयव परपद का लोप निपातित है—'परक्षेत्रे चिकित्स्यः= क्षेत्रियः'। {**क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय द्वितीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति मतुप् ५.२.९४

किमर्थमिमावर्थावुभौ निर्दिश्येते—अस्याऽस्मिन्निति, न यद्यस्य भवति तस्मिन्नपि तद् भवति, यच्च यस्मिन् भवति तत्तस्याऽपि भवति? नैतयोरावश्यकः समावेशः, भवन्ति हि देवदत्तस्य गावो, न च तास्तस्मिन्नाधृता भवन्ति। भवन्ति च पर्वते वृक्षा, न च ते तस्य भवन्ति, तस्मादस्याऽस्मिन्ग्रहणम्।

सूत्रार्थ—'तदस्याऽस्ति और तदस्मिन्नस्ति इस विग्रह में अस्तिसमानाधिकरण प्रथमान्तप्रातिपदिक से अस्य और अस्मिन् इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो'। सूत्र में इतिपद विषयविशेषलाभार्थ है। गावः सन्ति अस्य अस्मिन् वेति गोमान् देवदत्तः।

'शाखा अस्ति अस्मिन्निति शाखावान् वृक्षः' एवं 'शाखा अस्ति अस्येति शाखा-वान् वृक्षः' ऐसा प्रयोग होने से वृक्ष आधार भी है तथा षष्ठ्यर्थ सम्बन्ध भी है; अतः अन्यतर का ग्रहण होने से ही उभयअर्थों में प्रत्ययसिद्धि हो जाती, फिर दोनों अर्थों का निर्देश क्यों है?, ऐसा मान कर प्रश्न करते हैं—**किमर्थ-मिति**। 'न यद् यस्य भवति' इस वाक्य में 'न' पद काक्वा प्रयुक्त है; अतः उससे निषेध अर्थ का बोध न होकर विधि का दार्ढ्यबोधन ही होगा। आचार्य षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ इन दोनों का निर्देश क्यों कर रहे हैं? जो षष्ठ्यर्थ है वह सप्तम्यर्थ भी होता है तथा जो सप्तम्यर्थ है, वह षष्ठ्यर्थ भी होता है। जैसे 'वृक्षे शाखा, वृक्षस्य शाखा' ऐसा दोनों प्रकार का प्रयोग देखा ज़ाता है; अतः 'अस्य' और 'अस्मिन्' इन दोनों अर्थों के निर्देश की आवश्यकता नहीं है। 'अवश्यं भावः आवश्यकम्' यह 'ओरावश्यके' ३.१.१२५ इस निर्देश से वुञ्प्रत्य-यान्त आवश्यक पद निपातित है। 'आवश्यकमस्मिन्नस्तीति आवश्यकः' में 'अर्शआदिभ्योऽच्' ५.२.१२७ को आकृतिगण मान कर मत्वर्थीय अच् प्रत्यय होकर आवश्यक पद का निर्देश है। 'अवश्यम्' पद से वुञ्प्रत्यय होने पर 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' ४.२.१०४ से टिलोप है।

खण्डनभाष्य—**भवन्ति हीति**। सूत्र में यदि मात्र 'अस्य' पद देंगे तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ षष्ठी से स्वस्वामिभाव आदि सम्बन्ध ही गृहीत होंगे। वहाँ गायों का आधार देवदत्त नहीं हो रहा है; अतः 'अस्मिन्' अर्थ में मतुप् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। 'अस्मिन्' अर्थ में भी मतुप् हो सके, इसके लिए सूत्र में सप्तम्यन्त पद का उच्चारण है। यदि 'अस्य' पद हटा कर मात्र 'अस्मिन्' पद ही रखेंगे तो 'तदस्मिन्नस्ति' इस विग्रह में 'अस्ति'क्रिया का समानाधिकरण प्रथमान्त से 'अस्मिन्' अर्थ में मतुप् होगा। इससे 'वृक्षाः सन्ति अस्मिन्निति वृक्षवान् पर्वतः' ऐसा प्रयोग होगा। सप्तमीमात्र का निर्देश करने पर मुख्य अधिकरण ही मत्वर्थीय होगा। जैसे 'वृक्षवान् पर्वतः'। 'गोमान् देवदत्तः' इस गौण अधिकरण में प्रत्यय नहीं हो सकेगा। कारकप्रकरण में गौणमुख्यन्याय का आश्रयण नहीं है। परन्तु यहाँ प्रत्ययविधि है; अतः गौणमुख्यन्याय का आश्रयण होगा; अतः षष्ठ्यर्थनिर्देश के लिए षष्ठ्यन्त पद 'अस्य' तथा सप्तम्यर्थनिर्देश के लिए सप्तम्यन्त पद 'अस्मिन्' इन दोनों का निर्देश है।

अथाऽस्तिग्रहणं किमर्थम्? सत्तायामर्थे प्रत्ययो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं, न च सत्तां पदार्थो व्यभिचरति। इदं तर्हि प्रयोजनं—सम्प्रतिसत्तायां यथा स्याद्, भूतभविष्यत्सत्तायां मा भूद्—'गावोऽस्याऽऽसन्' 'गावोऽस्य भवितार' इति।

आक्षेपक—**अथाऽस्तीति**। सूत्र में 'अस्ति' पद का ग्रहण क्यों है? प्रश्न में हेतु यह है कि सम्भव और व्यभिचार होने पर ही विशेषण दिया जाता है। जैसे 'नीलोत्पलमानय'। यहाँ नील उत्पल सम्भव है तथा उत्पल का पीत आदि में व्यभिचार हो रहा है, अतः नील विशेषण दिया गया है। जहाँ विशेष्य के व्यभिचार का अभाव होता है, वहाँ विशेषण पद नहीं दिया जाता है। जैसे 'उष्णं वह्निमानय' ऐसा कोई भी नहीं कहता है। पदार्थ की सत्ता के विना पद का उच्चारण सम्भव नहीं है। जिन वन्ध्यासुत आदि बाह्य पदार्थों की सत्ता नहीं है, उनकी बौद्ध सत्ता मान कर ही पद का प्रयोग होने से पदार्थ कभी भी किसी भी अवस्था में सत्ता का व्यभिचार नहीं कर सकता है; अतः सम्पूर्णशब्दों के प्रयोग में पदार्थसत्ता ही कारण है। फिर पदोच्चारणसामर्थ्य से ही सत्ता का ग्रहण कर लिया जाता, इसके लिए सूत्र में 'अस्ति'पद का ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**सत्तायामिति**। सत्ता अर्थ में शक्त सत्तोपाधिक अर्थ का वाचक पद से प्रत्यय हो सके, इसके लिए सूत्र में अस्तिपद का ग्रहण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। जहाँ कोई क्रियापद श्रुत नहीं है, वहाँ अप्रयुक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर भी पर में प्रथमपुरुष 'अस्ति' पद का बोध होता है; अतः पदार्थ कभी भी सत्ता का अतिक्रमण नहीं करता है। जिन बाह्यवस्तुओं वन्ध्यासुत आदि का अभाव है, उसकी भी बौद्धसत्ता मान कर पद का प्रयोग है; अतः किसी भी परिस्थिति में पदार्थ अपनी सत्ता का व्यभिचार नहीं कर रहा है।

उत्तरभाष्य—**इदं तर्हीति**। अस धा.पा. १०६५ धातु से लट्स्थानिक तिबन्त 'अस्ति'पद का सूत्र में निर्देश है। वह वर्त्तमानकालिक सत्ता को कहेगा; अतः वर्त्तमानकालिकसत्तासमानाधिकरण प्रथमान्त से प्रत्यय होगा, भूत और भविष्यत्कालिकसत्ता का वाचक नहीं होने से 'गावोऽस्य आसन्, गावोऽस्य भवितारः' ऐसा विग्रह करने पर प्रत्यय नहीं होगा। यही 'अस्ति'ग्रहण का प्रयोजन है।

न तर्हीदानीमिदं भवति—'गोमानासीद्' 'गोमान्भविते'ति? भवति,-न त्वेतस्मिन् वाक्ये। यदि त्वेतस्मिन् वाक्ये स्याद्यथेहाऽस्तेः प्रयोगो न भवति 'गोमान् यवमा'निति, एवमिहापि न स्याद्-'गोमानासीद्' 'गोमान् भविते'ति। सति चाऽस्तेः प्रयोगे यथेह बहुवचनं श्रूयते—'गावोऽस्यासन्' 'गावोऽस्य भवितार' इति, एवमिहापि श्रूयेत—'गोमानासीद्' 'गोमान् भविते'ति। का तर्हीयं वाचो युक्तिः—नैषा गवां सत्ता कथ्यते। किं तर्हि? गोमत्सत्तैषा कथ्यते। अस्त्यत्र वर्त्तमानकालोऽस्तिः। कथं तर्हि भूतभविष्यत्सत्ता गम्येत?

प्रश्नभाष्य—**न तर्हीदानीमिति**। यदि सूत्र में पठित 'अस्ति'पद से वर्त्तमानकालिकसत्ता लेंगे तो जहाँ 'गोमानासीद्, गोमान् भविता' इन वाक्यों में क्रमशः भूत और भविष्यत्कालिकसत्ता का बोध हो रहा है, वहाँ मतुबन्त 'गोमान्' के अप्रयोग की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**भवतीति**। 'गावोऽस्य आसन्, गावोऽस्य भवितारः' इस अर्थ में यहाँ 'गोमान् आसीत्, गोमान् भविता' ऐसा प्रयोग नहीं किया जा रहा है, अपि तु अवस्थाता के विद्यमान रहने पर उसका अवस्थाविशेष भूत और भविष्यत् को कहा जा रहा है। अतः 'गोमानासीत्, गोमान् भविता' यह प्रयोग होता है।

आक्षेपक—**यदीति**। जैसे दाण्डा क्रीडा में प्रत्ययान्तप्रकृति से ही प्रकृत्यर्थोपाधि की प्रतीति हो रही है; अतः यहाँ प्रकृत्यर्थोपाधिवाचक का प्रयोग नहीं हो रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, वैसे 'गोमान्, यवमान्' में भी प्रत्ययान्तप्रकृति के द्वारा प्रकृत्यर्थोपाधि का बोध हो रहा है; अतः यहाँ 'अस्ति'पद का प्रयोग नहीं होता है। वैसे 'गोमानासीत्, गोमान् भविता में भी सत्तार्थक 'आसीत्' और 'भविता' का प्रयोग नहीं होना चाहिये? एवं दूसरी आपत्ति यह भी है कि जैसे सत्तार्थकक्रिया का प्रयोग होने पर ही 'गावोऽस्याऽऽसन्, गावोऽस्य भवितारः' इत्यादि में बहुवचन श्रुत है। इस तरह 'अस्ति' का प्रयोग होने से 'गोमानासीत्, गोमान् भविता' में भी बहुवचनश्रवण की आपत्ति होगी।

अन्य आचार्य—**का तर्हीति**। 'गावोऽस्य सन्तीति गोमान्' में मतुबन्त गोमत्पद ही वर्त्तमान अर्थ में शक्त है, फिर सत्तार्थक भूत और भविष्यत्कालिक 'आसीत्' और 'भविता'पद के साथ 'गोमान् आसीत्, गोमान् भविता' इस प्रयोग में क्या प्रमाण है?

सिद्धान्ती—**एषैषेति**। 'गोमान् आसीत्, गोमान् भविता' में सत्तार्थक 'आसीत्' और 'भविता' से गोपदार्थ की सत्ता नहीं कही जा रही है, अपि तु गोमान् की सत्ता कही जा रही है। जहाँ 'अस्ति' पद से गोपदार्थ की सत्ता श्रुत है, वहाँ गोपदार्थ के बहुत्व होने पर 'गावोऽस्याऽऽसन्, गावोऽस्य भवितारः' ऐसा बहुवचन हो जायेगा। परन्तु 'गोमान् आसीत्, गोमान् भविता' में गोमत्पदार्थ की सत्ता श्रुत है। यहाँ गोमत्पदार्थ एकत्वविशिष्ट है; अतः एकवचन की क्रिया 'आसीत्' और 'भविता' का ही प्रयोग है, बहुवचन की क्रिया 'आसन्' और 'भवितारः' का नहीं।

आक्षेपक—**अस्त्यत्रेति**। सूत्र में लट्स्थानिक तिबन्त 'अस्ति' का प्रयोग है। लट् से वर्त्तमानकाल का बोध होता है—'वर्त्तमाने लट्' ३.२.१२३; फिर तो वर्त्तमानकालिकसत्ता गम्य होने पर ही मतुप् प्रत्यय होना चाहिये। जहाँ भूत और भविष्यत्कालिकसत्ता का बोध हो तो वहाँ प्रत्यय का प्रयोग कैसे होगा?

धातुसम्बन्धे प्रत्यया इति। इदं तर्हि प्रयोजनम् अस्तियुक्ताद् यथा स्यादनन्तरादियुक्तान्मा भूदिति, गावोऽस्यानन्तराः, गावोऽस्य समीप इति। अथ क्रियमाणेऽपि अस्तिग्रहणे इह कस्मान्न भवति— 'गावोऽस्य सन्त्यनन्तराः, गावोऽस्य सन्ति समीप' इति?

समाधानभाष्य—**धातुसम्बन्ध इति**। 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' ३.४.१ सूत्र के द्वारा धात्वर्थों के सम्बन्ध में जहाँ प्रत्यय कहा गया है उससे अन्यत्र भी विधान किया गया है। प्रत्ययाधिकार का आरम्भपक्ष में प्रत्ययग्रहण का प्रयोजन है कि 'प्रातिपदिकाधिकार में विहित धातुभिन्न तद्धितप्रत्ययों का धातुसम्बन्ध होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर कालान्तर में सम्बन्ध हो सके'। परन्तु यदि प्रत्ययाधिकार का प्रत्याख्यान कर दिया जाये तो जो प्रत्यय जिस काल में पढे गये हैं, उसी कालविशेष में विहित होंगे, अन्यत्र नहीं। इस पक्ष में जैसे 'भूते' ३.२.८४ का अधिकार कर 'करणे यजः' ३.२.८५ से भूतकालिक कर्त्ता वाच्य होने पर णिनि प्रत्यय का विधान है। जैसे 'सोमेनेष्टवानिति सोमयाजी, अग्निष्टोमेनेष्टवानिति अग्निष्टोमयाजी'। परन्तु 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' के द्वारा 'सोमयाजी अस्य पुत्रो भविता, अग्निष्टोमयाजी अस्य पुत्रो भविता' में यज धातु से भविष्यत्काल में प्रत्यय है, भूतकाल में नहीं। इस तरह यहाँ क्रिया के साथ विरुद्धकाल का सम्बन्ध होने से वाक्यार्थवश अग्निष्टोमयाजित्व और सोमयाजित्व का ही बोध होता है, वैसे 'गोमानासीत्, गोमान् भविता' में भी विरुद्धकाल की क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से गो आदि के रहने अथ वा नहीं रहने पर भी गोमत्सत्तालक्षण अवस्थाविशेषविषय भूत और भविष्यत् की प्रतीति हो जायेगी। यहाँ गोकर्तृक वर्त्तमानसत्ता की निवृत्ति हो जाने पर भी प्रकृत्यर्थ के वर्त्तमान होने पर गोपद से मतुप् की निवृत्ति नहीं होगी। जैसे 'ग्रामान्नागच्छति' में आगमनक्रिया का अभाव होने पर भी शब्दशक्ति-स्वभाववश सत्तार्थ का अस्ति पद निमित्त हो जायेगा। इस तरह अस्ति पद ग्रहण का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं है।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। इससे पूर्व में इसी सूत्र पर सिद्धान्ती ने 'न सत्तां पदार्थो व्यभिचरति' कहा था। इससे अस्तिक्रिया का लाभ सम्भव होने पर भी आचार्य ने जो पुनः अस्तिग्रहण किया, वह व्यर्थ पड कर नियम करेगा-'अस्तिनैव युक्ताद् यथा स्यात्'। जैसे 'गावोऽस्य अस्मिन् वा सन्तीति गोमान्, अनन्तरादियुक्तान्मा भूद्'। जैसे 'गावोऽस्यानन्तराः, गावोऽस्य समीपे' इति। **अनन्तर**=व्यवधानशून्य होता है, जब कि समीप व्यवहित होता है।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। अस्तिग्रहण से केवल अनन्तर आदि का निरास हो, यह तो वात ठीक नहीं है, परन्तु जहाँ 'गावोऽस्य सन्त्यनन्तराः, गावोऽस्य सन्ति समीपे' इत्यादि में सत्तासद्भाव है, वहाँ प्रत्यय प्राप्त होना चाहिये; वहाँ प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थवद् भवती'ति। यथैव तर्हि क्रियमाणेऽस्तिग्रहणेऽसामर्थ्यादनन्तरादिषु न भवत्येवम् अक्रियमाणेऽपि न भविष्यति। अस्त्यत्र विशेषः—क्रियमाणेऽस्तिग्रहणे नाऽन्तरेण तृतीयस्य पदस्य प्रयोगमनन्तरादयोऽर्था गम्यन्ते। अक्रियमाणे पुनरस्तिग्रहणे अन्तरेणाऽपि तृतीयस्य पदस्य प्रयोगमनन्त-

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रादयोऽर्था गम्यन्ते।

उत्तरभाष्य—**असामर्थ्यादिति**। 'गावोऽस्य सन्त्यनन्तराः, गावोऽस्य सन्ति समीपे' में असामर्थ्य होने से मतुप् प्रत्यय प्राप्त नहीं है। 'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२ का अधिकार कर समर्थ से ही तद्धितोत्पत्ति कही गयी है।

अन्य आचार्य—**कथमिति**। उक्त वाक्य असमर्थ कैसे है?

उत्तरभाष्य—**सापेक्षमिति**। जहाँ प्रत्ययान्तपद से उपस्थित अर्थ में प्रकृत्यर्थ-विशेषण हो रहा हो, वहीं पर प्रत्यय करना चाहिये। 'गावोऽस्य सन्त्यनन्तराः' इत्यादि वाक्य से लब्ध अर्थ को 'गोमान्' पद नहीं कह पा रहा है; अतः उक्त विग्रह में असामर्थ्यात् प्रत्यय प्राप्त नहीं हो पा रहा है। एवं यहाँ गो पद अनन्तर, समीप आदि की अपेक्षा कर रहा है, अतः सापेक्ष है। सापेक्ष असमर्थ होता है; अतः उक्त विग्रह में प्रकृति से विग्रह का अभाव है। इस लिए यहाँ वाक्य का ही प्रयोग होता है। जब कि स्वस्वामिभाव सत्ता से ही अन्तर्भावित है; अतः गोमान् पद से उसकी प्रतीति होती है।

आक्षेपक आचार्य—**यथैव तर्हीति**। सूत्र में अस्तिपद का ग्रहण करने पर अनन्तर आदि पदों से युक्त अर्थ में असामर्थ्यवश आप तद्धितोत्पत्ति का अभाव बता रहे हैं। परन्तु यदि अस्तिपद का ग्रहण नहीं करने पर भी अनन्तर आदि युक्त वाक्यों के अर्थ में असामर्थ्य होने से प्रत्यय की प्राप्ति ही रहेगी। इस तरह अस्तिपद का ग्रहण नहीं करने पर भी सूत्र अलक्ष्य में अतिव्याप्त नहीं हो रहा है, फिर अस्तिपद का ग्रहण क्यों है?

उत्तरभाष्य—**अस्त्यत्रेति**। अस्तिपद का ग्रहण करने पर तृतीयपद का प्रयोग के विना अनन्तर आदि अर्थों का बोध नहीं होता है। जैसे 'गावः सन्त्यनन्तरा अस्य' यह प्रकृत्यर्थपदापेक्ष तृतीयत्व है। अस्तिग्रहण करने पर यहाँ प्रत्ययान्त में मात्र अस्त्यर्थ ही उपाधिभाव से अन्तर्भूत है, आनन्तर्यादिविशिष्ट नहीं। परन्तु जब अस्तिपद का ग्रहण नहीं करेंगे तब तृतीयपद का प्रयोग नहीं होने पर भी अनन्तर आदि अर्थों का बोध होने लगेगा। इस पक्ष में अन्य धर्म से अवच्छिन्न अर्थ के अन्तर्भाव की आशङ्का होने लगेगी। यदि अस्तिपद का निर्देश करते हैं तो प्रत्ययार्थ में अस्त्यर्थ का ही अन्तर्भाव होता है, अनन्तर आदि का नहीं; अतः अनन्तर आदि तृतीयपदों का अर्थबोध कराने के लिए वाक्य में अनन्तर आदि पदों का निर्देश आवश्यक होगा। अनन्तर आदि का प्रयोग करने पर वाक्य असमर्थ हो जायेगा। परन्तु यदि अस्तिपद का निर्देश नहीं करेंगे तो अनेक उपाधि के अन्तर्भाव की सम्भावना होने से वृत्ति में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनन्तर आदि प्रयोग के अभाव में भी अनन्तर अर्थ का बोध होगा तथा वाक्य असमर्थ नहीं होगा। यही अस्तिपद का ग्रहण करने तथा नहीं करने में वैशिष्ट्य है।

अथेह कस्मान्न भवति-चित्रगुः शबलगुरिति? बहुव्रीहिणोक्तत्वान्मत्वर्थस्य। अथेह कस्मान्न भवति'चित्रा गावो यस्य सन्ती'ति? कुतः कस्मान्न भवति-किमवयवादाहो स्वित् समुदायात्? अवयवात् कस्मान्न भवति? असामर्थ्यात्। कथमसामर्थ्यम्? 'सापेक्षमसमर्थवद् भवती'ति। समुदायात् तर्हि कस्मान्न भवति? अप्रातिपदिकत्वात्।

प्रश्नभाष्य—**अथेहेति**। 'चित्रा गावोऽस्येति चित्रगुः, शबला गावोऽस्येति शबलगुः' में मतुप् प्रत्यय क्यों नहीं होता है? यहाँ सत्ताविशिष्ट चित्रागवार्थ, शबलगवार्थ षष्ठ्यर्थ की उपस्थिति हो रही है?

उत्तरभाष्य—**बहुव्रीहिणेति**। उक्त विग्रह में षष्ठ्यर्थ में ही बहुव्रीहि का विधान है तथा षष्ठ्यर्थ में ही मतुप् होना है। जब षष्ठ्यर्थ को बहुव्रीहि कह रहा है तो उसी अर्थ के लिए 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से मतुप् का प्रयोग नहीं होगा; अतः उक्त स्थल में मतुप् का अभाव है।

अन्य आचार्य—**अथेहेति**। 'चित्रा गावो यस्य सन्ति' ऐसा विग्रह होने पर यहाँ अस्तिसमानाधिकरण प्रथमान्तपद प्रत्ययी है तथा षष्ठ्यन्तपद 'यस्य' भी है; यहाँ मतुप् क्यों नहीं होता है?

इतर आचार्य—**कुतः कस्मादिति**। आप यहाँ किससे प्रत्यय की प्राप्ति पूछ रहे हैं?, अवयव से अथ वा समुदाय से?

अन्य आचार्य—**अवयवादिति**। यदि आप समझते हैं कि दोनों से प्रत्यय का प्राप्तिविषयक प्रश्न उठाया जा सकता है तो पहले अवयव से ही अप्राप्ति का हेतु स्पष्ट कर दीजिये।

उत्तरभाष्य—**असामर्थ्यादिति**। असामर्थ्य होने से अवयव से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी।

अन्य आचार्य—**कथमिति**। यहाँ असामर्थ्य कैसे है?

उत्तरभाष्य—**सापेक्षमिति**। सापेक्ष असमर्थ होता है। 'चित्रा गावो यस्य सन्ति' में 'चित्रा' यह विशेषणपद विशेष्य की अपेक्षा कर रहा है। गुणपद चित्रा द्रव्य के द्वारा ही देवदत्त आदि के साथ सम्बद्ध होगा, अन्यथा नहीं। 'गावः' यह द्रव्यवचन भी यहाँ गुणापेक्षी है; अतः परस्पर अपेक्षा करने से 'चित्रा गावः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद सापेक्ष हो गया। 'सविशेषणानां वृत्तिर्न, वृत्तस्य च विशेषणयोगो न' ऐसा कह कर भाष्यकार ने सविशेषणों की वृत्ति का अभाव कहा है; अतः यहाँ सापेक्ष होने से अवयव से तद्धितवृत्ति प्राप्त नहीं है। अतः प्रत्ययान्त में प्रकृत्यर्थ को विशेषण दिखाने के लिए निरपेक्ष 'गावोऽस्य सन्ति' ऐसा ही वाक्यप्रयोग करना चाहिये।

अन्य आचार्य—**समुदायादिति**। 'चित्रा गावो यस्य सन्ति' ऐसा विग्रह होने पर समुदाय से प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अप्रातिपदिकत्वादिति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार कर प्रातिपदिक से ही तद्धितोत्पत्ति कही गयी है। 'चित्रा गावो यस्य सन्ति' यह वाक्य प्रातिपदिक नहीं है। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ में समासग्रहण को नियामक मान कर वाक्य की प्रातिपदिकसंज्ञा का निषेध किया है; अतः अप्रातिपदिक होने से यहाँ तद्धित नहीं होगा।

ननु च भो! आकृतौ शास्त्राणि प्रवर्त्तन्ते, तद्यथा 'सुप्सुपे'ति वर्त्तमानेऽन्यस्य चाऽन्यस्य च समासो भवति। सत्यमेवमेतत्, आकृतिस्तु प्रत्येकं परिसमाप्यते। यावत्येतत् परिसमाप्यते प्रातिपदिकादिति तावत उत्पत्त्या भवितव्यम्। अवयवे चैतत् परिसमाप्यते, न समुदाये।

आक्षेपक आचार्य—**ननु चेति**। जाति में कार्य कहे जाते हैं। वे अनपेक्षित व्यक्तिगतसंख्या की अपेक्षा नहीं करते हैं। जैसे 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' में ब्राह्मणपदोत्तर 'सु' से एकत्व बोध्य है। यदि व्यक्ति में संख्या का अन्वय किया जाये तो एक ब्राह्मण ही अहन्तव्य होगा, शेष हन्तव्य होंगे। परन्तु यहाँ 'सु' पद से उपस्थित एकत्व का व्यक्ति में अन्वय न होकर **आकृतौ**=जाति में अन्वय होता है; अतः उक्त वाक्य से ब्राह्मणत्वाच्छिन्न यावद् ब्राह्मण का वधनिषेध हो जाता है। वैसे 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ सूत्र में 'प्रातिपदिकात्' यह जाति में एकवचननिर्देश है, व्यक्ति में नहीं; अतः प्रातिपदिकत्वाच्छिन्न यावत् प्रातिपदिक से प्रत्यय की प्राप्ति होनी चाहिये। 'चित्रा गावो यस्य सन्ति' इस विग्रह में प्रातिपदिकसमुदाय से प्रत्यय होना चाहिये। जैसे 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' २.१.२ सूत्र से प्रथमान्त 'सुप्'पद का अनुवर्त्तन 'सह सुपा' २.१.४ सूत्र में होता है। 'सह सुपा' २.१.४ सूत्र का 'सह' यह प्रथमयोग तथा 'सुपा' यह दूसरायोग, ऐसा योगविभाग होता है। इस तरह 'सुप्सुपा'सूत्र में सुबन्त का सुबन्त के साथ समासविधान है। यदि यहाँ एकवचननिर्देश से व्यक्ति वाच्य मानेंगे तो किसी एक सुबन्तव्यक्ति में 'सुप्सुपा' के चरितार्थ हो जाने पर अन्यत्र उसकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्ति नहीं हो सकेगी। परन्तु 'सुप्सुपा' में व्यक्ति वाच्य न होकर जाति वाच्य है; अतः यहाँ सर्वत्र सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है। यही पक्ष मानना भी चाहिये कि शास्त्र **आकृतौ**=जाति में प्रवृत्त होते हैं, व्यक्ति में नहीं। एवं जाति सर्वत्र व्यक्ति में पर्यवसित होती है; अतः 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ यह भी जातिनिर्देश होने से प्रातिपदिकजाति में पर्यवसित होगा। प्रातिपदिक-जाति 'चित्रा गावः' इस समुदाय में है; अतः समुदाय से प्रत्यय उत्पन्न होना चाहिये।

सिद्धान्ती—**अवयव इति**। 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ यह अवयव में पर्यवसित है, समुदाय में नहीं; अतः यहाँ समुदाय के अप्रातिपदिक होने पर उससे प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अथेह कस्मान्न भवति—पञ्च गावोऽस्य सन्ति पञ्चगुः दशगुरिति? प्रत्येकमसामर्थ्यात्, समुदायादप्रातिपदिकत्वात्, समासात् समासेनोक्तत्वात्। नैतत् सारम्, उक्तेऽपि हि प्रत्ययार्थे उत्पद्यते द्विगोस्तद्धितः, तद्यथा—द्वैमातुरः, पाञ्चनापितिरिति। नैष द्विगुः। कस्तर्हि? बहुव्रीहिः। अपवादत्वाद् द्विगुः प्राप्नोति। अन्तरङ्गत्वाद् बहुव्रीहिर्भविष्यति।

प्रश्नभाष्य—**अथेहेति**। 'पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः, दश गावो यस्य स दशगुः' में मतुप् क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**प्रत्येकमिति**। सापेक्ष होने से अवयव असमर्थ है; अतः असामर्थ्यात् अवयव से मतुप् नहीं होगा। समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होती है, अतः समुदाय से मतुप् नहीं होगा। समास से षष्ठ्यर्थ उक्त है, अतः समस्त पञ्चगु आदि से 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय के द्वारा मतुप् नहीं होगा।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'समासात् समासेन उक्तत्वात्'पक्ष उचित नहीं है। उक्त होने पर भी द्विगु से पर में उक्तार्थ में प्रत्यय देखा जाता है। जैसे 'द्वयोः मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः, पञ्चानां नापितानामपत्यं पाञ्चनापितिः' यहाँ उभयत्र 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास है। समासार्थ अपत्य के उक्त होने पर भी 'द्वैमातुरः' में 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' ४.१.११५ से अण् प्रत्यय है। 'पाञ्चनापितिः' में द्विगु से उक्त होने के बाद भी अपत्यार्थक 'अत इञ्' ४.१.९५ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नैष इति**। 'पञ्चगुः, दशगुः' यहाँ द्विगु नहीं है, अपि तु बहुव्रीहि है।

इतर आचार्य—**अपवादत्वादिति**। अन्यपदार्थमात्र में 'अनेकमन्यपदार्थे' २.२.२४ से बहुव्रीहि है, जब कि 'संख्यापूर्वो द्विगुः' २.१.५२ से संख्यापूर्व द्विगु है। यहाँ सुबन्तमात्र अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि का सामान्यविधान है, जब कि संख्यामात्रपूर्व होने से द्विगु विशेषविधान है; अतः विशेषद्विगु से सामान्य बहुव्रीहि का बाध कर 'पञ्चगुः' आदि द्विगु ही होगा, बहुव्रीहि नहीं; अतः इससे मतुप् भी होना चाहिये।

अन्तरङ्गवादी आचार्य—**अन्तरङ्गत्वादिति**। यहाँ द्विगु की अपेक्षा से बहुव्रीहि अन्तरङ्ग है, तथा बहुव्रीहि की अपेक्षा से द्विगु बहिरङ्ग है; अतः अन्तरङ्ग बहुव्रीहि की कर्त्तव्यता में बहिरङ्ग द्विगु असिद्ध हो जायेगा।

काऽन्तरङ्गता? अन्यपदार्थे बहुव्रीहिर्वर्त्तते, विशिष्टेऽन्यपदार्थे तद्धितार्थे द्विगुः, तस्मिंश्चाऽस्य तद्धितेऽस्तिग्रहणं क्रियते।

अन्य आचार्य—**काऽन्तरङ्गतेति**। यहाँ बहुव्रीहि में अन्तरङ्गता क्या है?

अन्तरङ्गवादी आचार्य—**अन्यपदार्थ इति**। यदि अनवकाश बहुव्रीहि से द्विगु का बाध कहा जाये तो यह पक्ष यहाँ उचित नहीं है। जहाँ समान आश्रय में द्विगु और बहुव्रीहि दोनों प्राप्त है, वहीं अनवकाश द्विगु से बहुव्रीहि का बाध होगा। प्रकृत में बहुव्रीहि षष्ठ्यर्थमात्र की अपेक्षा कर रहा है; जब कि बहुव्रीहि की अपेक्षा द्विगु को अस्त्यर्थ अधिक की अपेक्षा है; अतः दोनों का असमानस्थल होने पर द्विगु की अपेक्षा बहुव्रीहि अन्तरङ्ग है—'अल्पापेक्षत्वमन्तरङ्गत्वम्, बह्वपेक्षत्वं बहिरङ्गत्वम्'। इस तरह द्विगु की अपेक्षा बहुव्रीहि अन्तरङ्ग है, तथा उससे द्विगु का बाध हो जायेगा।

यदि तर्ह्यतिप्रसङ्गाः सन्तीति तद्धितविधावस्तिग्रहणं क्रियते, बहुव्रीहावस्तिग्रहणं कर्त्तव्यम्, अस्तियुक्ताद् यथा स्याद् अनन्तरादियुक्तान्मा भूदिति। अथ न सन्ति, तद्धितविधावपि नार्थोऽस्तिग्रहणेन।

इतर आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि सूत्र में अस्तिपद का निर्देश किये विना अनन्तर आदि की निवृत्ति सम्भव नहीं है, इस लिए आप तद्धितविधि में अस्तिपद का निर्देश कर रहे हैं। यदि यहाँ अस्तिपद का निर्देश कर रहे हैं तो बहुव्रीहि में भी अस्तिपद का निर्देश करना चाहिये। इससे अस्तियुक्त से ही मतुप् होगा, अनन्तर आदि युक्त से नहीं। यदि आप बहुव्रीहि में अस्तिग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं करना चाहते हैं तो तुल्यन्याय से तद्धितविधि में भी अस्तिपद का निर्देश नहीं कीजिये।

सत्यमेवमेतत्, क्रियते त्विदानीं तद्धितविधावस्तिग्रहणं, तद्वै क्रियमाणमपि प्रत्ययविध्यर्थं नोपाध्यर्थम्—अस्तिमानिति मतुब्यथा स्यात्। किं च कारणं न स्यात्? अप्रातिपदिकत्वात्। नैष दोषः। अव्ययमेषोऽस्तिशब्दो नैषोऽस्तेर्लट्। कथमव्ययत्वम्? 'विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भवन्ती'ति निपातसंज्ञा, निपातोऽव्ययमित्यव्ययसंज्ञा।

उत्तरभाष्य—**सत्यमेवमिति**। तद्धितविधि में अस्तिपद का ग्रहण उपाध्यर्थ नहीं है, अपि तु अस्तिपद से भी मतुप् हो कर 'अस्मिान्' रूप हो, इसके लिए अस्तिपद का ग्रहण है। इस पक्ष में लुप्तपञ्चमीक अस्तिपद का निर्देश माना जायेगा।

अन्य आचार्य—**किं चेति**। क्या कारण है कि सूत्र में अस्तिपद का निर्देश नहीं करने पर अस्तिपद से मतुप् सिद्ध नहीं हो पा रहा है?

उत्तरभाष्य—**अप्रातिपदिकत्वादिति**। '-प्रातिपदिकात्' ४.१.१ प्रातिपदिक से पर में तद्धितोत्पत्ति कही गयी है। अस्तिपद प्रातिपदिक नहीं है; अतः उससे प्रत्यय प्राप्त नहीं होने पर प्रत्ययविधानार्थनिर्देश किया गया है।

अन्य आचार्य—**नैष इति**। यदि अस धा.पा.१०६५ धातु का लडन्त अस्ति रूप होता तो 'अप्रत्ययः' १.२.४५ निषेध होने से प्रातिपदिक नहीं होता। परन्तु यहाँ लडन्त अस्ति पद का ग्रहण नहीं है, अपि तु कर्त्तृविशिष्ट सत्तावाची अव्यय अस्तिपद का ग्रहण है। अव्यय की भी प्रातिपदिकसंज्ञा होने से प्रातिपदिकत्वात् तद्धित हो जाता, पुनः सूत्र में अस्तिनिर्देश क्यों है?

इतर आचार्य—**कथमिति**। आप अस्ति को अव्यय कैसे कह रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**विभक्तीति**। विभक्तिप्रतिरूपक और स्वरप्रतिरूपक निपात होते हैं। निपातों की अव्ययसंज्ञा होती है; अतः अस्तिपद विभक्तिप्रतिरूपक निपात होने से अव्यय है।

एवमपि न सिध्यति। किं कारणम्? अस्तिना सामानाधिकरण्ये तमुब्विधीयते, न चाऽस्तेरस्तिना सामानाधिकरण्यम्। तदेतत् क्रियमाणमपि प्रत्ययविध्यर्थं, नोपाध्यर्थं, तस्माद् द्विगोस्तद्धितस्य प्रतिषेधो वक्तव्यो, यदि तन्नास्ति—'सर्वत्र मत्वर्थे प्रतिषेध' इति। सति हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मिंस्तेनैवैतत् सिद्धम्।

अन्य आचार्य—**एवमपीति**। अस्ति को अव्यय मान लेने पर भी अस्तिमान् में मतुप् सिद्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि अस्तिपद के साथ सामानाधिकरण्य होने पर प्रथमान्त से षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय का विधान है। अस्ति का अस्ति के साथ सामानाधिकरण्य नहीं हो सकता है; अतः अस्तिपद से मतुप् की प्राप्ति नहीं है। इस तरह फिर भी सूत्र में निर्दिष्ट अस्तिपद को आप जैसे प्रत्ययविधानार्थ मान रहे हैं, उपाध्यर्थ नहीं; वैसे द्विगु से भी प्रत्यय प्राप्त होगा जिसका प्रतिषेध कहना होगा। यदि आप द्विगु से प्रतिषेध नहीं कह सकते हैं तो आप को सर्वत्र मत्वर्थ में द्विगु का प्रतिषेध कहना होगा। द्विगु का प्रतिषेध होने पर बहुव्रीहि होगा; अतः द्विगु का प्रतिषेध ही उचित है। इस तरह द्विगु का प्रतिषेध होने से जब बहुव्रीहि करेंगे तब समास से षष्ठ्यर्थ उक्त होगा; अतः 'पञ्चगुः, दशगुः' इत्यादि में षष्ठ्यर्थ में मतुप् की आपत्ति नहीं होगी। अथ च बहुव्रीहि तथा द्विगु में स्वरभेद भी है। बहुव्रीहि करने पर 'पञ्चखट्वः' इत्यादि में 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूर्वपदप्रकृतिस्वर होगा। परन्तु यदि द्विगु करेंगे तो समासान्तोदात्त प्राप्त होगा।

अथ मत्वर्थीयान्मत्वर्थीयेन भवितव्यम्। न भवितव्यम्। किं कारणम्? अर्थगत्यर्थं शब्दप्रयोगः। 'अर्थं सम्प्रत्याययिष्यामी'ति शब्दः प्रयुज्यते। तत्रैकेनोक्तत्वात्तस्याऽर्थस्य द्वितीयस्य प्रयोगेण न भवितव्यम्। किं कारणम्? 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति। न तर्हीदानीमिदं भवति—दण्डीमती शाला, हस्तिमत्युपत्यकेति। भवति। अर्थान्तरे वृत्तादर्थान्तरे वृत्तिः। षष्ठ्यर्थे वा वृत्तं सप्तम्यर्थे वर्त्तते, सप्तम्यर्थे वा वृत्तं षष्ठ्यर्थे वर्त्तते।

आक्षेपक आचार्य—**अथेति**। मत्वर्थीयप्रत्ययान्त 'यवमान्' से 'यवमानस्ति अस्य' इस विग्रह में पुनः मत्वर्थीय मतुप् होना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। मत्वर्थीय से मत्वर्थीय नहीं होगा। इसका कारण यह है कि अर्थबोध कराने के लिए शब्दप्रयोग होता है। जब एक प्रत्यय से अर्थ उक्त हो रहा है, तब उसी अर्थ को कहने के लिए पुनः दूसरे शब्द का प्रयोग नहीं होता है। इस विषय में मत्वर्थीय से मत्वर्थीय प्रत्यय होने का 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय विरोध करेगा।

आक्षेपक आचार्य—**न तर्हीदानीमिति**। यदि 'उक्तार्थानामप्रयोगः'न्याय का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्रयण कर मत्वर्थीय से मत्वर्थीय का अभाव मानेंगे तो 'दण्डिमती शाला, हस्तिमती उपत्यका' की असिद्धि होगी। यहाँ 'दण्डः अस्ति अस्य' ऐसा विग्रह कर 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय होकर 'दण्डी' पद एवं 'हस्तः=शुण्डः अस्ति अस्य' ऐसा विग्रह कर मत्वर्थीय इनिप्रत्ययान्त हस्ती पद है। पुन' इनिप्रत्ययान्त दण्डी और हस्ती से 'अस्ति अस्याः' इस विग्रह में षष्ठ्यर्थवाचक मत्वर्थीय मतुप् प्रत्यय है—दण्डिमती, हस्तिमती। आप 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय का आश्रयण कर मत्वर्थीय से मत्वर्थीय का अभाव कैसे कह रहे हैं?

सिद्धान्ती—**भवतीति**। 'दण्डिमती शाला, हस्तिमती उपत्यका' में मत्वर्थीय से मत्वर्थीय होगा। समान अर्थ होने पर मैंने मत्वर्थीय से मत्वर्थीय का निषेध कहा है। परन्तु जहाँ भिन्न अर्थ होगा तो वहाँ मत्वर्थीय से भी मत्वर्थीय होगा। प्रकृत में अदन्त दण्ड और हस्त प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ अथ वा सप्तम्यर्थ में इनि प्रत्यय होगा। यदि षष्ठ्यर्थ में इनि है तो वहाँ मत्वर्थीय से सप्तम्यर्थ में मतुप् करेंगे—'दण्डी अस्ति अस्मिन्, हस्ती अस्ति अस्मिन्'। परन्तु यदि सप्तम्यर्थ में इनि करेंगे तो वहाँ मत्वर्थीय से षष्ठ्यर्थ में मतुप् करेंगे—'दण्डी अस्ति अस्य, हस्ती अस्ति अस्य'। इस तरह भिन्न अर्थ होने पर मत्वर्थीय से भी मत्वर्थीय होगा। यहाँ भाष्यकार ने असरूप मत्वर्थीय से असरूप मत्वर्थीय होने का विधान किया है।

अथ वा मत्वन्तान्मतुपा भवितव्यं, गोमन्तोऽस्य सन्ति, यवमन्तोऽस्य सन्तीति? न भवितव्यम्। किं कारणम्? यस्य गोमन्तः सन्ति गावोऽपि तस्य सन्ति, तत्रोक्तो गोभिरभिसम्बन्धे प्रत्यय इति कृत्वा तद्धितो न भविष्यति। न तर्हीदानीमिदं भवति—दण्डीमती शाला, हस्तिमत्युपत्यकेति? भवति। अर्थान्तरे वृत्तादर्थान्तरे वृत्तिर्भविष्यति। षष्ठ्यर्थे वा वृत्तं सप्तम्यर्थे वर्त्तते, सप्तम्यर्थे वा वृत्तं षष्ठ्यर्थे वर्त्तते। इहापि सप्तम्यर्थे वा वृत्तं षष्ठ्यर्थे वर्त्तते, षष्ठ्यर्थे वा वृत्तं सप्तम्यर्थे वर्त्तते। अन्यथाजातीयकः गोभिरभिसम्बन्धे प्रत्ययोऽन्यथाजातीयस्तद्वता। येनैव खल्वपि हेतुनैतद्वाक्यं भवति—'गोमन्तोऽस्य सन्ति, यवमन्तोऽस्य सन्ती'ति, तेनैव हेतुना वृत्तिरपि प्राप्नोति।

अब जिज्ञासु आचार्य स्वरूपप्रत्ययविषयक जिज्ञासा करते हैं—**अथ मत्वन्तादिति**। 'गावो विद्यन्ते येषु ते गोमन्तो ग्रामाः, गोमन्तोऽस्य सन्ति' ऐसा विग्रह करने पर मतुबन्त गोमत् पद से मतुप् होना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नेति**। जिसकी गाय है, गोमान् भी उसी का है। यहाँ गो पद से सम्बन्ध अर्थ में प्रत्यय हो चुका है, अतः पुनः प्रत्यय नहीं होगा। यहाँ गोपदार्थ के साथ दो प्रकार का सम्बन्ध है—१-साक्षात्। एवं २-परम्परया। गोमत् शब्द शब्दप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन दोनों ही प्रकार के सम्बन्ध अपने में अन्तर्भाव करेगा। परम्परा से गोसम्बन्ध वाच्य होने पर गोमत्सम्बन्ध भी आक्षिप्त हो जायेगा; अतः उक्त होने से 'गोमन्तोऽस्य सन्ति' इस अर्थ में मतुबन्त से मतुप् नहीं होगा। जब कि 'दण्डिमती शाला, हस्तिमती उपत्यका' में जिस अर्थ में इनि है, उससे भिन्न अर्थ में मतुप् प्रत्यय है; अतः अर्थभेद होने से 'दण्डिमती, हस्तिमती' में मत्वर्थीय से मत्वर्थीय हो जायेगा। परन्तु 'गोमान्' मत्वर्थीयान्त से समान अर्थ होने के कारण पुनः मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होंगे। 'दण्डिमती, हस्तिमती' में यदि षष्ठ्यर्थ में इनि होगा तो मतुप् सप्तम्यर्थ में होगा। यदि इनि सप्तम्यर्थ में होगा तो मतुप् षष्ठ्यर्थ में होगा। इस तरह यहाँ अर्थभेद होने से मत्वर्थीय से मत्वर्थीय प्रत्यय हो जायेगा।

आक्षेपक आचार्य—**इहापीति**। 'गावः सन्ति यस्मिन् ग्रामेऽसौ गोमान् ग्रामः, गोमान् ग्रामः अस्ति अस्य' ऐसा विग्रह करने पर प्रथम मतुप् सप्तम्यर्थ में है तथा द्वितीय मतुप् षष्ठ्यर्थ में है। इस तरह यहाँ भी अर्थभेद हो जाने पर मतुबन्त गोमत् पद से पुनः मतुप् होना चाहिये। चूँकि वृत्तिभेद होने से 'गोमन्तोऽस्य सन्ति, यवमन्तोऽस्य सन्ति' ऐसा वाक्य होता है; अतः वृत्ति होने से यहाँ मतुप् प्रत्यय भी होना चाहिये।

* तस्मान्मत्वर्थीयान्मतुबादेः * **तस्मान्मत्वर्थीयान् मतुबादेः प्रतिषेधो वक्तव्यः। तं चापि ब्रुवता** * समानवृत्तौ सरूपे * **'समानवृत्तौ सरूप' इति वक्तव्यम्। भवति हि दण्डिमती शाला हस्तिमत्युपत्यकेति।**

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैशिको मतुबर्थिकः।
सरूपप्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सन्निष्यते।।

तस्मादिति—चूँकि मतुबन्त गोमत्पद से भी मतुप् प्राप्त हो रहा है; अतः मत्वर्थीय से मतुप् आदि का प्रतिषेध कहना चाहिये। यहाँ मतुबन्त से मतुप् का निषेध किया है। इसे सामान्य मान कर ठन्नन्त से इनि और ठन् का प्रतिषेध भी कह दिया गया है। सामान्यरूप से प्रतिषेधविधान का विशेषरूप से प्रतिपादन करते हैं—**तं चापीति**। समानवृत्ति होने पर मत्वर्थीय से मत्वर्थीय का प्रतिषेध कहना चाहिये। अब भिन्नवृत्ति होने पर भी समान आकार वाले मत्वर्थीयान्त से समान आकार वाला मत्वर्थीय नहीं होगा। इस तरह मतुबन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोमत् पद से मतुप् नहीं होगा। इससे असमानवृत्ति और असमान आकृति होने पर इनिप्रत्ययान्त दण्डी और हस्ती से मतुप् का प्रतिषेध नहीं होगा; अतः 'दण्डिमती शाला, हस्मिती उपत्यका' में मत्वर्थीय से भी मत्वर्थीय हो जायेगा।

इसे कारिकामुखेन संग्रह करते हैं—**शैषिकादिति**। शैषिक से सरूप प्रत्यय शैषिक नहीं होता है। जैसे—'शालायां भवः शालीयो घटः' में 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ से छ प्रत्यय है। 'शालीये भवः' अथ वा 'शालीयस्येदम्' इस विग्रह में छान्त शालीय से पुनः छ प्रत्यय नहीं होगा। परन्तु यदि विरूप प्रत्यय है तो शैषिकप्रत्ययान्त से भी शैषिक प्रत्यय होगा। जैसे 'अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रः' में 'तत्र भवः' ४.३.५३ से अण् प्रत्यय है। 'अहिच्छत्रे भवः' इस विग्रह में शैषिकप्रत्ययान्त अण्णन्त आहिच्छत्र से असरूप प्रत्यय 'वृद्धाच्छः' ४.२.११४ होकर 'आहिच्छत्रीयः' रूप होगा। एवं मत्वर्थीय से सरूप मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होगा। जैसे 'यवमानस्यास्ति' इस विग्रह में मतुबन्त से मतुप् नहीं होगा। परन्तु वृत्तिभेद और स्वरूपभेद होने पर मत्वर्थीय से भी मत्वर्थीय होगा। जैसे 'दण्डिमती शाला, हस्तिमती उपत्यका'। 'सन्नन्तात्' में 'सरूप' पद की अपेक्षा है। अव्यभिचार होने से यहाँ सारूप्य गृहीत है; अतः समानत्व गृहीत होगा। अत एव इच्छासन्नन्त से इच्छा सन् नहीं होता है। परन्तु यदि सन् प्रत्यय अन्य अर्थ में शक्त हो तो सन्नन्त से भी सन् होगा। जैसे 'जुगुप्सते, मीमांसते' में स्वार्थ में सन्नन्त से इच्छा सन् है।

किं पुनरिमे मतुप्प्रभृतयः सन्मात्रे भवन्ति? एवं भवितुमर्हति * मतुप्प्रभृतयः सन्मात्रे चेदतिप्रसङ्गः * **मतुप्प्रभृतयः सन्मात्रे चेदतिप्रसङ्गो भवति। इहाऽपि प्राप्नोति—व्रीहिरस्य यवोऽस्येति** * तस्माद् भूमादिग्रहणम् * **तस्माद् भूमादिग्रहणं कर्त्तव्यम्। के पुनर्भूमादयः? भूमनिन्दाप्रशंसा नित्ययोगोऽतिशयः संसर्ग इति।**

अन्य आचार्य—**किं पुनरिति**। क्या मतुप्प्रभृतिप्रत्यय, जो मत्वर्थीय में पढे गये हैं, वे सत्तामात्र में होंगे?

इतर आचार्य—**एवमिति**। मतुप् आदि को सत्तामात्र में मान लीजिये। मतुप् आदि को सत्तामात्र में मानने पर अन्य आचार्य अतिव्याप्ति दे रह हैं—**मतुप्प्रभृतय इति**। यदि मतुप्प्रभृतिप्रत्ययों को सत्तामात्र में विधान करेंगे तो 'व्रीहिरस्य, यवोऽस्य' इस विग्रह में भी व्रीहि और यव पद से प्रत्यय की अतिव्याप्ति होगी। यहाँ व्रीहिपदोत्तर एवं यवपदोत्तर 'सु' से एकत्व वाच्य है। जिसको मात्र एक व्रीहि और एक यव हो उसे व्रीहिमान् और यवमान् नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा जाता है; अतः इस अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए अर्थों का परिगणन करना चाहिये।

इतर आचार्य—**के पुनरिति**। भूमा आदि कौन-कौन से हैं?

अन्य आचार्य—**भूमेति**। भूमा, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अतिशय और संसर्ग भूमा आदि हैं।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

भूमा—**गोमान् यवमान्**। भूमा। निन्दा—**ककुदावर्त्ती। सङ्खादकी। सङ्खादवती**। निन्दा। प्रशंसा—**रूपवान् वर्णवान्**। प्रशंसा। नित्ययोग—**क्षीरिणो वृक्षाः। कण्टकिनो वृक्षाः**। नित्ययोग। अतिशय—**उदरिणी कन्या**। अतिशय। संसर्ग—**दण्डी। छत्त्री। तत्तर्हि भूमादिग्रहणं कर्त्तव्यम्? न कर्त्तव्यम्। कस्मान्न भवति—व्रीहिरस्य यवोऽस्येति? * उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्?** * अनभिधानादिति *

इसी को श्लोकमुखेन संग्रह किया है—**भूमनिन्देति**। उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**भूमेति**। भूमा=बहुत्व अर्थ में मतुप् आदि होते हैं। जैसे 'गोमान्, यवमान्'। निन्दा-ककुदावर्त्ती, सङ्खादकी। प्रशंसा-रूपवान्, वर्णवान्। नित्ययोग-क्षीरिणो वृक्षाः=नित्य दुग्ध वाले वृक्ष। कण्टकिनो वृक्षाः=नित्य काँटा वाले वृक्ष। **अतिशय**-उदरिणी कन्या=बडा पेट वाली कन्या। **संसर्ग**=दण्डी, छत्त्री=दण्डसंयोगवान्, छत्त्रसंयोगवान्।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या भूमा आदि का परिगणन कर उन्हीं अर्थों में मतुप् आदि कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। उसकी आवश्यकता नहीं है।

अन्य आचार्य—**कस्मान्नेति**। यदि भूमा आदि का परिगणन नहीं करेंगे तो 'व्रीहिरस्य, यवोऽस्य' में एकवचनान्त से विग्रह होने पर प्रत्यय का प्रतिषेध कैसे कहेंगे?

उत्तरभाष्य—**उक्तमिति**। अनभिधान होने से एकवचन अथवा द्विवचन से विग्रह होने पर मतुप् आदि नहीं होंगे।

इतिकरणः खल्वपि क्रियते, ततश्चेद् विवक्षा। भूमादियुक्तस्यैव च विवक्षा। गोमान्यवमान्,—**भूमादियुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते, न हि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्यचिद् गौर्नास्ति। सह्वादकीककुदावर्त्ती,—**निन्दायुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते, न हि कश्चिन्न सह्वादकी।** रूपवान्वर्णवान्,—**प्रशंसायुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते,। न हि कस्यचिद् रूपं नास्ति।** क्षीरिणो वृक्षाः कण्टकिनो वृक्षा इति। **नित्ययुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते, न हि कस्यचित् क्षीरं नाऽस्ति।** उदरिणी कन्या,—**अतिशायनयुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते, न हि कस्यचिदुदरं नास्ति।** दण्डी छत्री,—**संसर्गयुक्तस्यैव सत्ता कथ्यते, न हि कस्यचिद् दण्डो नास्ति च्छत्रं वा।**

अथ च दूसरी वात यह भी है कि सूत्र में 'इति'पद पढा गया है। उससे सत्ता वाच्य है। वह भूमा आदि युक्त की ही होगी, इतर की नहीं। ऐसा कोई नहीं है, जिसको एक गाय नहीं है। इस तरह सभी को गोमान् पद का प्रयोग होने पर 'इति' पद से **भूमा**=बहुत्व आदि अर्थों में ही प्रत्यय का विधान होगा, अन्यत्र नहीं। इससे 'व्रीहिरस्य, यवोऽस्य' में मतुप् की प्राप्ति निरस्त हो गयी। संसार में कोई ऐसा नहीं है जो विना रूप का हो। परन्तु प्रशंसायुक्त को ही रूपवान्, वर्णवान् कहा जाता है। कोई ऐसा वृक्ष नहीं है, जिसमें **क्षीरम्**=रस का अभाव हो, परन्तु नित्य रसयुक्त को ही 'क्षीरिणो वृक्षाः' कहा जाता है। एवं नित्य युक्त को ही 'कण्टकिनो वृक्षाः' कहा जाता है। कोई ऐसी कन्या नहीं है, जिसको उदर न हो, सभी कन्याओं को उदर होता है। फिर भी बृहद् उदर वाली को ही 'उदरिणी कन्या' कहते हैं। संसार में कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो कभी दण्ड, छत्र धारण न किया हो, परन्तु नित्यसंसर्गयुक्त को ही 'दण्डी, छत्री' कहा जाता है।

गोमान्,—**यावतीभिः खल्वपि गोभिर्वाहदोहप्रसवाः कल्पन्ते, तावतीनां सत्ता कथ्यते। कस्य चिच्च्वतसृभिरपि कल्पन्ते, कस्यचिच्छतेनापि न प्रकल्पन्ते** * सन्मात्रे चर्षिदर्शनात् * **सन्मात्रे च पुनः ऋषिर्दर्शयति मतुपं 'यवमतीभिरद्भिर्यूपं प्रोक्षती'ति।**

भूमादिपरिगणन का खण्डन के लिए पुनः भाष्य का अवतरण करते हैं— **गोमानिति।** एवं दूसरी वात यह भी है कि भूमा आदि का परिगणन करने पर भी अभिधानवशात् विशिष्ट बहुत्व ही लेना चाहिये, असंख्यात नहीं। जितने बैलों से वाहक्रिया अथ वा जितनी गायों से दोहक्रिया सम्भव है, गोमान् पद से उतने का ही बहुत्व वाच्य होगा, असंख्यात का नहीं। कोई-कोई तीन बैलों अथ वा गायों से भी अपना कार्य कर लेता है, तथा कोई-कोई शत अथ वा उससे भी अधिक संख्या से वाह और दोह करता है; अतः भूमा आदि का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिगणन न करना ही उचित है। भूमा आदि का परिगणन न करने में अन्य हेतु भी देते हैं—**सन्मात्र इति**। सत्तामात्र गम्य होने पर मतुप् का प्रयोग होता है। जैसे 'यवमतीभिरद्भिर्यूपं प्रोक्षति' यह **ऋषि**=वेदवाक्य मतुप्प्रत्ययान्त 'यवमतीभिः' घटक है। संस्कार अदृष्टार्थ होता है, अतः यहाँ मतुप् प्रत्यय से जातिमात्र सम्बन्ध विवक्षित होगा, बहुत्व अर्थ नहीं।

* गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् * **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्यः। शुक्लः। कृष्ण इति। 'अव्यतिरेकात् सिद्धं न गुणो गुणिनं व्यभिचरती'ति** * अव्यतिरेकात् सिद्धमिति चेद् दृष्टो व्यतिरेकः * **अव्यतिरेकात् सिद्धमिति चेद्—दृश्यते व्यतिरेकः। तद्यथा—'पटस्य शुक्ल' इति** * तथा च लिङ्गवचनसिद्धिः * **एवं च कृत्वा लिङ्गवचनानि सिद्धानि भवन्ति, शुक्लं वस्त्रम्। शुक्ला शाटी। शुक्लः कम्बलः। शुक्लौ कम्बलौ। शुक्लाः कम्बला इति। यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद् गुणस्याऽपि भवति।**

गुणवचनेभ्य इति। गुणवचन से मतुप् का लुक् कहना चाहिये। जैसे—'शुक्लाः सन्ति यस्य स शुक्लः, कृष्णाः सन्ति यस्य स कृष्णः'। अन्य आचार्य 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक्' का खण्डन करते हैं—**व्यतिरेकादिति**। गुण और गुणी में अभेदसम्बन्ध होने से 'सोऽयम्' यह अध्यवसाय होता है, अतः 'शुक्लः, कृष्णः' में मतुप् की उत्पत्ति का अभाव माना जायेगा। इससे गुणवचन से मतुप् के लुक् कहने की आवश्यकता नहीं है।

इतर आचार्य 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक्' का मण्डन करते हैं—**अन्वयेति**। अन्वय मान कर आप वार्तिक का खण्डन कर रहे हैं। परन्तु गुण और गुणी का **व्यतिरेक**=भेदव्यवहार भी देखा जाता है। जैसे 'पटस्य शुक्लः'। यहाँ अभेदव्यवहार नहीं हो सकता है; अतः भेदव्यवहारपक्ष में प्राप्त मतुप् का लोप कहने के लिए वार्तिक आवश्यक है।

वार्तिक मानने के पक्ष में अन्य हेतु भी देते हैं—**तथा चेति**। गुण और गुणी में भेदव्यवहार मान कर मतुप् का लोप करने के पक्ष में लिङ्ग और वचन की सिद्धि भी होती है। जैसे वस्त्र पद नपुंसक और एकवचन है, अतः गुण पद भी तद्वत् होकर 'शुक्लं वस्त्रम्' प्रयोग होगा। शाटी पद के एकवचन और स्त्रीलिङ्ग होने से 'शुक्ला शाटी', कम्बल पद के पुल्लिङ्ग और एकवचन होने से 'शुक्लः कम्बलः' प्रयोग होता है। द्विवचन में 'शुक्लौ कम्बलौ', बहुवचन में 'शुक्लाः कम्बलाः' प्रयोग होता है। द्रव्याश्रित होने से द्रव्य का लिङ्ग और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचन गुण को भी होता है। {तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति}।

रसादिभ्यश्च ५.२.९५

किमर्थमिदमुच्यते, न तदस्यास्त्यस्मिन्नित्येव मतुप् सिद्धः? * रसादिभ्यः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् * रसादिभ्यः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम्। रसादिभ्यः पुनर्वचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अन्यनिवृत्त्यर्थम्'। अन्येषां मत्वर्थीनां प्रतिषेधार्थम्। मतुबेव यथा स्याद् येऽन्ये मत्वर्थीयाः प्राप्नुवन्ति ते मा भूवन्निति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। दृश्यन्ते ह्यन्ये रसादिभ्यो मत्वर्थीया—रसिको नटः। रसी राजा। उर्वशी वै रूपिण्यप्सरसाम्। स्पर्शिको वायुरिति। {रसादिभ्यश्च}।

'तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ से विधेय मतुप् की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'रसादिगणपठित प्रथमान्तप्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में मतुप् प्रत्यय हो'। जैसे 'रसाः सन्ति अस्येति रसवान्'। रूपाणि सन्ति अस्येति रूपवान्' इत्यादि।

प्रकृतसूत्र का खण्डन करने के लिए पूर्वपक्ष करते हैं—**किमर्थमिति**। आचार्य 'रसादिभ्यश्च' सूत्र का क्यों पाठ करते हैं, यहाँ पूर्वसूत्र से ही मतुप् हो जायेगा?

नियमार्थवादी आचार्य—**रसादिभ्य इति**। पूर्वसूत्र से मतुप् सिद्ध होने पर पुनः सूत्रारम्भ व्यर्थ पड कर अन्य मत्वर्थीयप्रत्ययों का प्रतिषेधनियम करेगा। इस तरह 'मतुप् प्रत्यय ही हो, अन्य मत्वर्थीय प्रत्यय न हो' एतदर्थ सूत्र किया गया है।

इतर आचार्य नियमपक्ष का खण्डन करते हैं—**नैतदस्तीति**। रसादि प्रातिपदिक से अन्य मत्वर्थीय भी देखे जाते हैं। जैसे 'रसिको नटः' में ठन्, 'रसी राजा' में इनि, 'रूपिणी' में इनि, 'स्पर्शिको वायुः' में ठन्। यहाँ सर्वत्र 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से मत्वर्थीय इनि अथ वा ठन् प्रत्यय है। इस तरह सूत्र का नियमपक्ष सम्भव नहीं होने पर इसे अदृष्टप्रयोजनार्थ मानना चाहिये। {रसादिभ्यश्च}।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५.२.९६

इह कस्मान्न भवति—चिकीर्षाऽस्यास्ति, जिहीर्षाऽस्तीति? * प्राण्यङ्गात् * प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्मान्न भवति—चिकीर्षाऽस्यास्ति, जिहीर्षाऽस्तीति? अनभिधानात्।

सूत्रार्थ—'प्राणिस्थवाचि आदन्त प्रातिपदिक से विकल्प से लच् हो'। चूडा अस्ति अस्मिन्निति चूडालः। लच् के अभापपक्ष में मतुप् होकर 'चूडावान्'।। लोकप्रसिद्ध शरीरादिसङ्घात प्राणी कहा जाता है। चेतनतत्त्व से शरीर का वियोग होने पर रूढ होने से मृतावस्था में भी प्राणिपद प्रवृत्त होगा; अतः मृतावस्था में भी 'चूडालः' प्रयोग होगा।

प्रश्नभाष्य—**इह कस्मान्नेति**। चिकीर्षाऽस्याऽस्ति, जिहीर्षाऽस्याऽस्ति' में आदन्तप्रातिपदिक प्राणिस्थ है, इससे लच् प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

यहाँ प्रत्यय का अभाव बताने के लिए एकदेशी आचार्य वार्तिक का अवतरण करते हैं—**प्राण्यङ्गादिति**। प्राण्यङ्ग से लच् कहना चाहिये। इससे 'चिकीर्षा, जिहीर्षा' से लच् की प्राप्ति निरस्त हो जायेगी।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'चिकीर्षा, जिहीर्षा' में लच् की निवृत्ति के लिए 'प्राण्यङ्गात्' इतना वचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। अनभिधान होने से 'चिकीर्षा, जिहीर्षा' से लच् का अभाव हो जायेगा, इसके लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।{**प्राणिस्था-**}।

सिध्मादिभ्यश्च ५.२.९७

सिध्मादिषु यान्यकारान्तानि तेभ्यो लचा मुक्ते इनिठनौ प्राप्नुतः। इनिठनौ च नेष्येते। कथं तौ न भविष्यतः? * लजन्यतरस्यामिति समुच्चयः * **लजन्यतरस्यामिति समुच्चयोऽयं न विभाषा। लच्च मतुप्च। कथं पुनरेतज्ज्ञायते—'लजन्यतरस्यामिति समुच्चयो न विभाषे'ति?** * पिच्छादिभ्यस्तुन्दादीनां नानायोगकरणं ज्ञापकमसमावेशस्य * **पिच्छादिभ्यस्तुन्दादीनां नानायोगकरणं ज्ञापकमसमावेशस्य। यदयं पिच्छादिभ्यस्तुन्दादीनां नानायोगं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'समुच्चयो न विभाषे'ति। यदि विभाषा स्यान्नानायोगकरणम् अनर्थकं स्यात्, तुन्दादीन्यपि पिच्छादिष्वेव पठेत्।**

यहाँ पूर्वसूत्र 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' ५.२.९६ से 'लजन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'सिध्मादिगणपठितप्रातिपदिक से विकल्प से मत्वर्थीय लच् प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो'। सिध्मोऽस्त्यस्येति सिध्मलः, सिध्मवान्। उसी तरह 'गडुलः, गडुलवान्'।

प्रश्नभाष्य—**सिध्मादिष्विति**। सिध्मादिगणपठित अदन्तप्रातिपदिक से लच् के अभावपक्ष में इनि और ठन् प्राप्त हो रहा है, जब कि यहाँ इनि और ठन् इष्ट नहीं है; उसकी निवृत्ति कैसे करेंगे?

उत्तरभाष्य—**लजन्यतरस्यामिति**। 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' ५.२.९६ से 'लजन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति हो रही है। यहाँ 'अन्यतरस्याम्' का पदाधिकार है, अर्थाधिकार नहीं। अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक होकर लच् और मतुप् का विधान करेगा। इससे अदन्त से इनि और ठन् की निवृत्ति हो जायेगी।

अन्य आचार्य—**कथमिति**। यह कैसे माना जाये कि अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद विकल्पार्थ न होकर समुच्चयार्थक है? 'तुन्दादिभ्य इलच्च' ५.२.११७ सूत्र में तुन्दादि से इलच्, इनि, ठन् और मतुप् ये चार प्रत्यय इष्ट हैं। यदि 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति से ही पिच्छादि से चार प्रत्यय हो जाते तो तुन्दादिगण में ही पिच्छादिगण का पाठ कर देना चाहिये था। परन्तु आचार्य ने एक साथ न पढ कर पृथक्-पृथक् पाठ किया है। इससे ज्ञात होता है कि 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण समुच्चयार्थक है, प्राप्त का विकल्प नहीं; अतः सिध्मादि और पिच्छादि से इनि और ठन् नहीं होते हैं।

नैतदस्ति ज्ञापकम्। अस्ति ह्यन्यन्नानायोगकरणे प्रयोजनम्। किम्? तुन्दादिषु यान्यकारान्तानि तेभ्य इनिठनौ यथा स्याताम्। यानि तर्ह्यनकारान्तानि तेषां पाठः किमर्थः? ज्ञापकार्थ एव।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। अदन्तभिन्न तुन्दादि से भी इनि और ठन् इष्ट है। यदि तुन्दादिगण में पिच्छादिगण का पाठ करेंगे तो अदन्तभिन्न पिच्छादि से भी अनिष्ट इनि और ठन् की आपत्ति होगी। अथ च यदि पिच्छादिगण में तुन्दादिगण का पाठ करेंगे तो अदन्तभिन्न तुन्दादि से इष्ट इनि और ठन् की अप्राप्ति होने गलेगी; अतः दोनों गणों को पृथक्-पृथक् पढा गया है, जिससे नानायोगकरण के द्वारा तुन्दादि से इनि और ठन् हो जा रहा है।

अन्य आचार्य—**यानि तर्हीति**। पिच्छादि और तुन्दादि में जो अकारान्त प्रातिपदिक पढे गये हैं, उन का क्या प्रयोजन है?

ज्ञापकवादी—**ज्ञापकार्थ एवेति**। पिच्छादि और तुन्दादि में अकारान्तपाठ व्यर्थ पड कर ज्ञापक होगा—'अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक है, विभाषार्थक नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपर आह—* तुन्दादिभ्यश्च पिच्छादीनां नानायोगकरणं ज्ञापकमसमावेशस्य—* तुन्दादिभ्यश्च पिच्छादीनां नानायोगकरणं ज्ञापकमसमावेशस्य। यदयं तुन्दादिभ्यः पिच्छादीनां नानायोगं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'समुच्चयोऽयं न विभाषे'ति। यदि विभाषा स्यान्नानायोगकरणम् अनर्थकं स्यात्, पिच्छादीनपि तुन्दादिष्वेव पठेत्। नैतदस्ति ज्ञापकम्। अस्ति ह्यन्यन्नानायोग- करणे प्रयोजनम्। किम्? पिच्छादिषु यान्यकारान्तानि तेभ्य इनिठनौ मा भूतामिति। यानि तर्ह्यनकारान्तानि तेषां पाठः किमर्थः? ज्ञापकार्थ एव।

दूसरे आचार्य इसी विषय का प्रतिपादन इस प्रकार से करते हैं—**अपर आहेति**। तुन्दादि से पृथक् पिच्छादि का पाठ कर आचार्य ने ज्ञापन किया है—'यहाँ 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक है, विभाषार्थक नहीं'। यदि यहाँ अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद विभाषा अर्थ में होता तो आचार्य तुन्दादि और पिच्छादिगण का पृथक् पाठ न करके अन्यतरगण का पाठ कर दोनों को एक में संगृहीत कर देते। परन्तु आचार्य ने पृथक् पाठ किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'यहाँ अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक है, विभाषार्थक नहीं'।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ तुन्दादि और पिच्छादि पृथक् पाठ उक्त अर्थ का ज्ञापक नहीं हो सकता है। कोई भी विधि व्यर्थ पड कर ही ज्ञापन करता है। तुन्दादि और पिच्छादि का पृथक् पाठ करने का प्रयोजन यह है कि पिच्छादि में जो अनकारान्तप्रातिपदिक हैं, उनसे इनि और ठन् न हो।

अन्य आचार्य—**यानि तर्हीति**। यदि पृथक्पाठ का प्रयोजन पिच्छादिगणपठित अनकारान्त से इनि और ठन् का प्रतिषेध फल है तो पिच्छादिगण में जो अकारान्तप्रातिपदिक का ग्रहण है, उसका पाठ क्यों है?

ज्ञापकवादी—**ज्ञापकार्थ एवेति**। पिच्छादि में अकारान्तप्रातिपदिक का ग्रहण उक्त अर्थ का ज्ञापक है-'अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक है, विभाषार्थक नहीं'।

*** वस्य च पुनर्वचनं सर्वविभाषार्थम् * वस्य खल्वपि पुनर्वचनं क्रियते, सर्वविभाषार्थ, 'केशाद्वोऽन्यतरस्या'मिति। एतदेव ज्ञापयत्याचार्यः—समुच्चयो न विभाषेति * द्युद्रुभ्यां नित्यार्थमेके * द्युद्रुभ्यां नित्यार्थमेकेऽन्यतरस्यांग्रहणमिच्छन्ति। कथम्? विभाषामध्येऽयं योगः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियते । विभाषामध्ये च ये विधयो, नित्यास्ते भवन्तीति । {सिध्मादिभ्यश्च} ।

एकदेशी आचार्य उक्त अर्थ में अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं—**वस्य चेति** । 'केशाद् वोऽन्यतरस्याम्' ५.२.१०९ सूत्र में आचार्य ने 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण किया है । 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' ५.२.९७ से 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः आचार्य ने प्रकृतसूत्र में जो 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—'अनुवृत्त 'अन्यतरस्याम्' पद समुच्चयार्थक है, विभाषार्थक नहीं'; अतः 'केशाद् वोऽन्यतरस्याम्' ५.२.१०९ में विभाषार्थक 'अन्यतरस्याम्' ग्रहण सार्थक होता है ।

एकदेशी द्वारा पठित 'वस्य च पुनर्वचनं सर्वविभाषार्थम्' वार्तिक का खण्डन करते हैं—**द्युद्रुभ्यामिति** । दो विकल्पों के बीच में पढा गया विधि नित्य होता है । 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' ५.२.९७ तथा 'केशाद् वोऽन्यतरस्याम्' ५.२.१०९ इन दोनों सूत्रों के बीच में 'द्युद्रुभ्यां मः' ५.२.१०८ को नित्य सिद्ध करने के लिए 'केशाद् वोऽन्यतरस्याम्' ५.२.१०९ का 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण सार्थक है, अतः प्रयोजन होने पर यह ज्ञापक नहीं बन सकता है । **{सिध्मादिभ्यश्च}** ।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५.२.१००

* नप्रकरणे दद्रूवा ह्रस्वत्वं च * **नप्रकरणे दद्रूवा उपसंख्यानं कर्त्तव्यं ह्रस्वत्वं च वक्तव्यम् । दद्रुणः । अत्यल्पमिदमुच्यते** * शाकीपलालीदद्रूवा ह्रस्वत्वं चेति वक्तव्यम् * **शाकिनम् । पलालिनम् । दद्रुणम्** * विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाऽकृतसन्धेः * **विष्वगित्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्, उत्तरपदलोपश्चाऽकृतसन्धेर्वक्तव्यः । विष्वग्गतान्यस्य विषुणः ।** {लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः} ।

सूत्रार्थ—'लोमादि से श, पामादि से न, और पिच्छादि से विकल्प से मत्वर्थीय इलच् प्रत्यय हो' । लोमशः, लोमवान् । पामनः, पामवान् । पिच्छिलः पिच्छवान् ।

वार्तिककार—**नप्रकरण इति** । पामादिगण में दद्रूपद का पाठ करना चाहिये तथा 'न' प्रत्यय का सन्नियोगशिष्ट दद्रू को ह्रस्व भी कहना चाहिये—'दद्रूवः सन्ति अस्येति दद्रुणः' ।

भाष्यवार्तिक—**अत्यल्पमिति** । मात्र पामादि से दद्रूपद का पाठ कर 'न'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय तथा उसको ह्रस्वविधान न्यून है। वहाँ शाकी, पलाली और दद्रू पद का पाठ कर मत्वर्थीय 'न'प्रत्यय तथा प्रकृति को ह्रस्व कहना चाहिये। शाक्यः सन्ति अस्य तच्छाकिनम्। शाकी=महत् शाक, अथ वा नानाजाति के शाकों का समारोह। पलाली=पलालक्षोद, अथ वा अनेकजातीय धान्य, कोद्रव आदि का पुआल। 'पलाल्यः सन्ति अस्य कुलस्येति पलालिनम्'। इसी तरह 'दद्रुणः'। **विष्वगिति**। विष्वक् से मत्वर्थीय 'न'प्रत्यय तथा उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। विषु=नाना अञ्चतीति विष्वक्। विषु अञ्चिनानि सन्ति अस्येति विषुणम्'। 'न'प्रत्यय तथा उत्तरपद अक् का लोप है। {**लोमादि-**}।

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ५.२.१०१

***वृत्तेश्च* वृत्तेश्चेति वक्तव्यम्। वार्त्तम्।**

सूत्रार्थ—'प्रज्ञा, श्रद्धा और अर्चा पद से मत्वर्थ में ण प्रत्यय हो'। प्रज्ञा अस्ति अस्येति प्राज्ञः। श्रद्धा अस्ति अस्येति श्राद्धः। अर्चा अस्ति अस्येति आर्चः।

वार्तिककार—**वृत्तेश्चेति**। वृत्ति पद से भी मत्वर्थ में ण प्रत्यय कहना चाहिये। वृत्तिरस्त्यस्येति वार्त्तम्। वृत्ति पद विच्छेद, जीविका आदि अर्थों में शक्त है। यहाँ पर श्रीदीक्षितजी तथा श्रीकैयटजी गुणभूत प्रज्ञानक्रिया के साथ व्याकरण आदि का सम्बन्ध मान कर 'प्राज्ञो व्याकरणम्' ऐसा प्रयोग करते हैं। यहाँ 'व्याकरणम्' यह कर्म्म में द्वितीया है। {**प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो-**}।

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ५.२.१०२

अण्च ५.२.१०३

किमर्थं तपःशब्दाद् विन् विधीयते। साऽसन्तादित्येव सिद्धम्? *तपसो विन्वचनमण्विधानात्* तपसो विन्वचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अण्विधानात्'। तपःशब्दादण् विधीयते, स विशेषविहितः सामान्यविहितं विनं बाधेत *अण्प्रकरणे ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्* अण्प्रकरणे ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। ज्यौत्स्नः। तामिस्रः। कौण्डलः। कौतपः। वैपादिकः।

'विनिश्च इनिश्च विनीनी' प्रथमाद्विवचनान्त, पद है।

सूत्रार्थ—'तपस् और सहस्र पद से मत्वर्थ में क्रमशः विनि और इनि प्रत्यय हो'। तपः अस्ति यस्य स तपस्वी। सहस्रमस्ति अस्य स सहस्री। 'विनि' और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'इनि' में नकारपरित्राणार्थ इकार का उच्चारण है। ५.२.१०२.।

'तपस् और सहस्र पद से मत्वर्थ में अण् प्रत्यय हो'। तपः अस्ति यस्य स तापसः। सहस्रमस्ति अस्य स साहस्रः। ५.२.१०२.।

प्रश्नभाष्य-**किमर्थमिति**। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' ५.२.१२१ से ही असन्त तपस् पद से मत्वर्थ में विनि सिद्ध था, पुनः 'तपःसहस्राभ्यां विनीनी' में तपस् पद से विनि का विधान क्यों किया गया है?

उत्तरभाष्य—**तपसो विन्वचनमिति**। असन्त तपस् पद विनि प्रत्यय का सामान्यविधान है, तथा 'अण्च' ५.२.१०३ विशेषविधान अण है। तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा विशेषविहित अण् के द्वारा सामान्यविहित असन्तलक्षण विनि का बाध हो जायेगा; अतः तपस् पद से विशेष विनि का विधान करते हैं। इससे विनि और अण् दोनों ही मत्वर्थीय प्रत्यय होकर 'तपस्वी' और 'तापसः' दोनों रूप होते हैं। **अण्प्रकरण इति**। ज्योत्स्ना आदि पदों से भी मत्वर्थ में अण् कहना चाहिये। 'ज्योत्स्ना अस्ति अस्मिन्निति ज्यौत्स्नः। तपःसमूहस्तमिस्रम्, तद् यत्रास्ति स तामिस्रः'। अथ वा तमिस्रा=रात्रिर्यस्मिन्नस्ति तत्तामिस्रम्। कुतपो यत्रास्ति स कौतपः। इसी तरह 'कुण्डलार्हः=कौण्डलः। विपादिका=यत्रास्ति स वैपादिकः। {अण्च}।

ऊषशुषिमुष्कमधो रः ५.२.१०७

अयं मधुशब्दोऽस्त्येव द्रव्यपदार्थकः, अस्ति रसवाची। आतश्च रसवाच्यपि मधुन्येव हि 'मध्विदं मधुर'मिति प्रयुज्यते। तद्यो रस-वाची तस्येदं ग्रहणम्। यदि हि द्रव्यपदार्थकस्य ग्रहणं स्यादिहाऽपि प्रज्येत-मध्वस्मिन् घटेऽस्ति।

ऊष, शुषि, मुष्क और मधु पद का समाहारद्वन्द्व है। अर्द्धर्चादिगण २.४.३१ में पाठ होने से मधुशब्द पुल्लिङ्ग भी है। अथ वा स्वरूप का ग्रहण होने से पुल्लिङ्गनिर्देश है।

सूत्रार्थ—'ऊष, शुषि, मुष्क और मधु पद से मत्वर्थ में र प्रत्यय हो'। ऊषोऽस्ति यस्मिन्नसौ ऊषरः। इसी तरह 'शुषिरः, मधुरः'।

सिद्धान्तिभाष्य—**अयमिति**। '**अयं मधुशब्दः**'=माक्षिक अथ वा मार्द्वीक में प्रसिद्ध मधु पद द्रव्यवचन भी है तथा **रसवाची**=गुणवचन भी है। गुण द्रव्य के अधीन होता है। अपने आश्रय द्रव्य का परित्याग कर कहीं भी स्वतन्त्ररूप से गुण नहीं रह सकता है; अतः **रसवाची**=गुणवाची मधु पद भी '**मधुनि**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एव'=द्रव्यवचन ही है.। उसी का प्रयोग 'मध्विदं मधुरम्' किया जाता है। अतः शब्दशक्तिस्वभाववश यहाँ **रसवाची**=गुणवाची मधु शब्द का ही ग्रहण है; उसी गुणवचन रसवाची मधु पद से 'र' प्रत्यय होकर मधुर पद है।

प्रकृत में द्रव्यवचन मधु पद का ग्रहण करने पर अतिव्याप्ति देते हैं— **यदि हीति**। यदि यहाँ द्रव्यवाची मधु पद का ग्रहण करेंगे तो 'मधु अस्ति अस्मिन् घटे' इस विग्रह में सप्तम्यर्थअधिकरण घट में भी प्रत्यय प्राप्त होने लगेगा।

* रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् * **रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। खरः। मुखरः। कुञ्जरः** * नगाच्च * **नगाच्चेति वक्तव्यम्। नगरम्। {ऊषशुषिमुष्कमधो रः}**

रप्रकरण इति। ख, मुख और कुञ्ज प्रातिपदिक से भी मत्वर्थ में 'र' प्रत्यय कहना चाहिये। खम्=शब्दनिष्पत्तिकारणं कण्ठविवरं महदस्यास्तीति खरः। स्वव्यापारशब्दोच्चारणेऽप्रतिबद्धं मुखमस्यास्तीति मुखरः। कुञ्जः=हस्तिहनुः अस्ति अस्येति कुञ्जरः; यह हस्तिशब्द की तरह ही जातिशब्द है। **नगाच्चेति**। नग प्रातिपदिक से भी मत्वर्थ में 'र' प्रत्यय कहना चाहिये। नगाः=पर्वता वृक्षा वा सन्ति अस्मिन्निति नगरम्। नगरशब्द जातिशब्द है। 'वुञ्छण्कठज्–' ४.२.८० में नगर प्रातिपदिक पठित है। वहीं से उसकी सिद्धि हो जायेगी; अतः 'नगाच्च' वार्तिक एकदेशि है। {**ऊषशुषि-**}।

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५.२.१०९

* वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानम् * **वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। मणिवः। हिरण्यवः** * छन्दसीवनिपौ च * **छन्दसि ईवनिपौ च वक्तव्यौ वश्च मतुप् च। रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ। सुमङ्गलीरियं वधूः। ऋतावानम्। मघवानमीमहे। उद्वा च उद्वती च** * मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ * **मेधारथाभ्याम् इरन्निरचौ वक्तव्यौ। मेधिरः। रथिरः। अपर आह**—* वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम् * **बिम्बावम्। कुररावम्। इष्टकावम्। {केशाद्वोऽन्यतरस्याम्}**।

सूत्रार्थ—'केशप्रातिपदिक से मत्वर्थ मे 'व' प्रत्यय हो'। केशाः सन्ति अस्मिन्निति केशवः। 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' ५.२.९६ से 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः सूत्र में 'अन्यतरस्याम्'ग्रहण इनि और ठन् का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समावेशार्थ है; अतः उक्तविग्रह में इनिप्रत्ययान्त 'केशी' तथा ठन्प्रत्ययान्त 'केशिकः' रूप भी होगा। पक्ष में मतुप् होकर 'केशवान्' रूप भी होगा।

भाष्यवार्तिक—**वप्रकरण इति**। मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय कहना चाहिये। मणिरस्ति अस्येति मणिवः। हिरण्यमस्ति अस्येति हिरण्यवः। **छन्दसीवनिपाविति**। वार्तिक में पठित 'च' पद से 'व' और 'मतुप्' की अनुवृत्ति है। वेद में मत्वर्थीय ई, वनिप्, व और मतुप् प्रत्यय कहना चाहिये। रथाः सन्ति अस्या इति रथीः। शोभनानि मङ्गलानि यस्याः सा सुमङ्गला, सुमङ्गला अस्ति अस्या इति सुमङ्गलीः। बहुव्रीहि से समासार्थ प्रशंसां उक्त होने पर भी नित्यार्थक इनि प्रत्यय है; अतः यहाँ कर्मधारय से मत्वर्थीय नहीं करना चाहिये। **प्रत्ययान्त**–'ऋतमस्ति यस्य स ऋतावान्'। यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' ६.३.१३७ से दीर्घ है। मघम्=धनम् अस्यास्तीति मघवान्। वप्रत्ययान्त–उद्वा। मतुप्प्रत्ययान्त–उद्ववती। **मेधारथाभ्यामिति**। मेधा और रथ प्रातिपदिक से वेद में क्रमशः इरन् और इरच् प्रत्यय कहना चाहिये। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' ५.२.१२१ सूत्र में मेधा से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय कहा गया है। परन्तु यहाँ 'छन्दसीवनिपौ च' (वा.अत्रैव) से 'छन्दसि' प्रद की अनुवृत्ति है; अतः इसे छन्दोविषय समझना चाहिये। मेधा अस्ति अस्येति मेधिरः। रथोऽस्त्यस्येति रथिरः। अन्य आचार्य वप्रकरण में अन्य प्रातिपदिक से भी मत्वर्थ में वप्रत्यय चाहते हैं। जैसे 'बिम्बमस्ति अस्येति बिम्बावम्। कुररमस्ति अस्येति कुररावम्। इष्टकमस्ति अस्येति इष्टकावम्'। यहाँ सर्वत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' ६.३.१३७ से दीर्घ है। **{केशाद्वोऽ-}**।

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ५.२.११२

* वलच्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते * **वलच्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्। भ्रातृवलः। पुत्रवलः। उत्सङ्गवलः। {रजःकृष्यासुति}।**

सूत्रार्थ—'रजस्, कृषि, आसुति और परिषद् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय हो'। रजांसि सन्ति यस्यां सा रजस्वला स्त्री। कृषिरस्ति अस्य स कृषीवलः। आङ्पूर्वक षुञ् अभिषवे धा.पा.१२४८ धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' ३.३.९४ से क्तिन्नन्त आसुति पद है। आसुतिरस्ति यस्य स आसुतीवलः। यहाँ उभयत्र 'वले' ६.३.११८ से दीर्घ है। परिषदस्ति यस्य स परिषद्वलः।

वार्तिककार—**वलच्प्रकरण इति**। अन्य प्रातिपदिक से भी वलच् प्रत्यय देखा जाता है। जैसे—'भ्रातरः सन्ति यस्य स भ्रातृवलः। पुत्राः सन्ति यस्य स पुत्रलवः'। उत्सङ्गाः सन्ति यस्य स उत्सङ्गवलः'। 'वनगिर्योः संज्ञायाम्' ६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३.११७ से 'संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति 'वले' ६.३.११८ सूत्र में होती है; अतः संज्ञागम्य होने पर ही दीर्घ होगा। इस तरह जहाँ संज्ञा गम्य होगी, वहाँ 'पुत्रावलः, उत्सङ्गावलः' ऐसा दीर्घघटितरूप भी होगा। परन्तु असंज्ञा में दीर्घ का अभाव रहेगा। {रजःकृष्यासुति-}।

अत इनिठनौ ५.२.११५

* इनिठनोरेकाक्षरात् प्रतिषेधः * **इनिठनोरेकाक्षरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः। स्ववान्। खवान्। अत्यल्पमिदमुच्यते 'एकाक्षरा'दिति** * एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ * एकाक्षरात्—**स्ववान्। खवान्।** एकाक्षरात्। कृतः—**कारकवान्। हारकवान्।** कृतः। जातेः—**वृक्षवान्। प्लक्षवान्। व्याघ्रवान्। सिंहवान्।** जातेः। सप्तम्यां च न तौ,—**दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति।**

'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ से 'प्रातिपदिकात्' का अधिकार है। 'अतः' यह पञ्चम्येकवचनान्त 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा।

सूत्रार्थ—'अदन्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हो'। दण्डः अस्ति अस्येति दण्डी-दण्डिकः। छत्रः अस्ति अस्येति छत्री-छत्रिकः।

'स्वम् (=धनम्) अस्ति अस्य स स्ववान्' में इनि और ठन् की अतिव्याप्ति हो रही है। इसका ारण करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं—**इनिठनोरिति**। एकाक्षर अदन्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि और ठन् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे 'स्वमस्ति अस्य स स्ववान्। खम्=आकाशमस्ति अस्य स खवान्।

अन्य आचार्य एकाक्षर से भी प्रतिषेध बता रहे हैं—**अत्यल्पमिति**। मात्र एकाक्षर अदन्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् का प्रतिषेध नहीं कहना चाहिये, अपि तु एकाक्षर, कृदन्त और जातिवाचि प्रातिपदिक से तथा सप्तम्यर्थ में भी इनि और ठन् का निषेध कहना चाहिये। जैसे—एकाक्षर—स्ववान्, खवान्। स्वरविशिष्टव्यञ्जन को एकाक्षर कहा गया है। कृदन्त से—'कारकवान्, हारकवान्' में इनि और ठन् नहीं होगा। जातिवचन से भी इनि और ठन् का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—'वृक्षवान्, प्लक्षवान्, व्याघ्रवान्, सिंहवान्'। दण्डशब्द दमनकारणत्वेन बोधक है; अतः उससे इनि और ठन् दोनों होगा—'दण्डी, दण्डिकः'। सप्तम्यर्थ में भी अदन्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् नहीं होगा। जैसे 'दण्डा अस्यां शालायां सन्ति' इस विग्रह में इनि और ठन् प्रत्यय का अभाव रहेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि कृतो नेत्युच्यते,-कार्यी कार्यिक इति न सिध्यति। तथा च यदि 'जातेर्ने'त्युच्यते—तण्डुली, तण्डुलिक इति न सिध्यति। एवं तर्हि नाऽयं समुच्चयः-कृतश्च जातेश्चेति। किं तर्हि? जाति-विशेषणं कृद्ग्रहणं, कृद् यो जातिरिति। कथं कारकवान्, हारक-वान्? अनभिधानान्न भविष्यति। यद्येवं नाऽर्थोऽनेन। कथं स्ववान्ख-वान्वृक्षवान्प्लक्षवान्सिंहवान्व्याघ्रवान्दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति? अनभिधानान्न भविष्यति। {अत इनिठनौ}।

इतर आचार्य—**यदि कृतो नेति**। यदि अदन्तकृदन्त से इनि और ठन् का प्रतिषेध कहेंगे तो 'कार्यमस्ति अस्य स कार्यी, कार्यिकः' में प्रत्यय का अनिष्ट अभाव प्राप्त होगा। एवम् अदन्तजातिवचन से प्रत्यय का अभाव कहने पर इष्ट रूप 'तण्डुलोऽस्ति अस्य स तण्डुली, तण्डुलिकः' की असिद्धि हो रही है।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। 'कृतो जातेः' में 'अदन्त कृदन्त तथा अदन्त जातिवचन से प्रत्ययप्रतिषेध हो', ऐसा समुच्चय नहीं है; अपि तु 'जातेः' में 'कृतः' यह विशेषणपद है। इस तरह कृदन्तजाति से प्रत्यय का प्रतिषेध कहेंगे। इससे 'कार्यी, कार्यिकः' में कृदन्तजाति नहीं होने से प्रतिषेध नहीं होगा। एवं 'तण्डुली, तण्डुलिकः' में भी कृदन्तजाति नहीं है; अतः यहाँ भी प्रतिषेध नहीं होगा।

आक्षेपकं आचार्य—**कथमिति**। यदि अदन्तकृदन्तजाति से प्रत्यय का प्रतिषेध कह रहे हैं तो कारक, हारक प्रातिपदिक अदन्तकृदन्तजातिवचन न होकर गुणवचन है; अतः उससे इनि और ठन् का प्रतिषेध नहीं होना चाहिये। फिर 'कारकवान्, हारकवान्' की जगह 'कारकी, कारकिकः, हारकी, हारकिकः' क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अनभिधानादिति**। अनभिधान होने से यहाँ प्रत्ययों की प्राप्ति नहीं है; अतः 'कारकवान्, हारकवान्' ही रूप होगा, 'कारकी, हारकी' नहीं।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'कारकवान्, हारकवान्' में अनभिधान होने से इनि और ठन् का प्रतिषेध हो जायेगा तो 'एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्यां न च तौ स्मृतौ' यह वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

इतर आचार्य—**कथमिति**। यदि उक्त वचन नहीं पढ़ेंगे तो 'स्ववान्, खवान्, वृक्षवान्, प्लक्षवान्, व्याघ्रवान्, दण्डा अस्यां शालायां सन्ति' में इनि और ठन् का प्रतिषेध कैसे होगा?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**अनभिधान्नेति**। अनभिधान होने से ही 'स्ववान्' आदि में प्रत्यय का प्रतिषेध हो जायेगा। {अत इनिठनौ}।

व्रीह्यादिभ्यश्च ५.२.११६

तुन्दादिभ्यश्च ५.२.११७

* शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन् यवखदादिषु * **शिखादिभ्य इनिर्वाच्यो यवखदादिभ्य इकन् वाच्यः। किं प्रयोजनम्? नियमार्थम्? इनिरेव शिखादिभ्य इकन्नेव यवखदादिभ्यः** * शिखायवखदादिभ्यो नियमस्याऽवचनं निवर्त्तकत्वात् * **शिखायवखदादिभ्यो नियमस्याऽवचनम्। किं कारणम्? 'निवर्त्तकत्वात्'। किं निवर्त्तकम्? अनभिधानम्।**

यहाँ 'च'करण से 'इनिठनौ' ५.२.११५ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'व्रीह्यादिगणपठित प्रातिपदिक से मतुबर्थ में इनि और ठन् हो'। व्रीहयः सन्ति अस्य स व्रीही, व्रीहिकः। ५.२.११६.।

'तुन्दादिगणपठित प्रातिपदिक से इलच् प्रत्यय हो', एवं 'च'करण से इनि और ठन् भी हो'। तुन्दोऽस्ति अस्य स तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः। यहाँ मतुप् का भी अनुवर्त्त है; अतः 'तुन्दवान्' रूप भी होगा।

व्रीह्यादिगणपठित प्रातिपदिकों से सर्वत्र इनि और ठन् प्राप्त होने पर भाष्यकार नियमन करते हैं—**शिखादिभ्य इति**। शिखा, माला, संज्ञा, वीणा, वडवा, बलाका, पताका, वर्मन्, शर्मन् इन प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय ही होगा, ठन् नहीं; तथा यव, खद, नौ और कुमारी प्रातिपदिक से ठन् ही कहना चाहिये, इनि नहीं।

अन्य आचार्य—**शिखायवेति**। 'शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवखदादिषु' यह नियमवार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। अनभिधान होने से शिखा आदि से ठन् का अभाव तथा यव, खद आदि से इनि का अभाव रहेगा; अतः वार्तिक को मन्दप्रयोजनार्थ समझना चाहिये। {तुन्दादिभ्य-}।

एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ५.२.११८

नित्यग्रहणं किमर्थम्? विभाषा मा भूत्। नैतदस्ति प्रयोजनम्, पूर्वस्मिन्नेव योगे विभाषाग्रहणं निवृत्तम्। एवं तर्हि सिद्धे सति यन्नित्यग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'प्रागेतस्माद् योगाद् विभाषेत्यनुवर्त्तत' इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'एकपूर्व तथा गोपूर्व प्रातिपदिक से मतुबर्थ में नित्य ठञ् प्रत्यय हो'। एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिकम्। ऐकसहस्रमस्यास्तीति ऐकसहस्रम्। गोशतमस्यास्तीति गौशतिकम्। गोसहस्रमस्यास्तीति गौसहस्रिकम्।

प्रश्नभाष्य—**नित्यग्रहणमिति**। यहाँ सूत्र में नित्यग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तरभाष्य—**विभाषेति**। 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' ५.२.१०९ से 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति हो रही थी, उसकी निवृत्ति के लिए नित्यपद का निर्देश है।

एकदेशी का खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। पूर्वसूत्र 'तुन्दादिभ्य इलच्' ५.२.११७ में ही 'अन्यतरस्याम्' की निवृत्ति हो चुकी थी, फिर प्रकृतसूत्र में उसकी अनुवृत्ति असम्भव है। इस तरह नित्यग्रहण का विभाषा का निवर्त्तन प्रयोजन नहीं हो सकता है।

ज्ञापकभाष्य—**एवं तर्हीति**। 'तुन्दादिभ्य इलच्' ५.२.११७ में ही विभाषा की निवृत्ति हो जाने पर भी उत्तरसूत्र में आचार्य ने जो नित्यग्रहण किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—'इससे पूर्व सूत्र 'तुन्दादिभ्य इलच्' ५.२.११७ में 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति होती है,'। अतः प्रकृतसूत्र में उसका निवर्त्तक नित्यपद कहा गया है।

अथाऽत इत्यनुवर्त्तते, उताहो न? किं चातः? यद्यनुवर्त्तते—ऐकगविको न सिध्यति। समासान्ते कृते भविष्यति। एवमपि गौशकटिको न सिध्यति। अथ निवृत्तम्-इहापि प्राप्नोति—गोविंशतिरस्याऽस्तीति। निवृत्तम्। कस्मान्न भवति—गोविंशतिरस्याऽस्तीति? अनभिधानान्न भविष्यति।।

प्रश्नभाष्य—**अथाऽत इति**। प्रकृतसूत्र में 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से पञ्चम्यन्त 'अतः' पद की अनुवृत्ति होती है, अथवा नहीं? अनुवृत्तिपक्ष में 'एकपूर्वपद अदन्तप्रातिपदिक तथा गोपूर्वपद अदन्तप्रातिपदिक से नित्य ठञ् प्रत्यय हो' यह अर्थ होगा। इसकी अव्याप्ति इष्ट रूप 'ऐकगविकः' में होगी। एकगो यह ओदन्त पद है, अदन्त नहीं।

अन्य आचार्य 'अतः' की अनुवृत्ति होने पर भी 'ऐकगविकः' की सिद्धि बताते हैं—**समासान्त इति**। 'एका चासौ गौश्चैकगवः' में 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से समासान्त टच् होकर एकगव पद अदन्त हो गया। इस लिए 'अतः' की अनुवृत्तिपक्ष में भी दोष नहीं है।

अनुवृत्तिपक्ष में दूसरा दोष देते हैं—**अथेति**। यदि 'अतः' पद की अनुवृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे तो 'गवां शकटिः गोशकटिः, गोशकटिरस्ति अस्येति गौशकटिकः' में ठञ् प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस तरह अनुवृत्तिपक्ष में दोष है। यदि 'अतः' पद की अनुवृत्ति नहीं करते हैं तो जिस किसी भी एकपूर्व तथा गोपूर्वपद से मतुबर्थ में ठञ् प्राप्त होगा। इस तरह 'एकविंशतिरस्ति अस्य सः' इस विग्रह में तथा 'गोविंशतिरस्ति अस्य सः' में विग्रह में एकविंशति तथा गोविंशति से भी ठञ् की आपत्ति हो रही है।

सिद्धान्ती—**निवृत्तमिति**। यहाँ 'अतः' ५.२.११५ पद की अनुवृत्ति नहीं है। अनभिधान होने से 'गोविंशतिरस्ति अस्य सः' इस विग्रह में गोविंशति पद से मतुबर्थ में ठञ् नहीं होगा। {एक-}।

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ५.२.१२०

* यप्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते * **यप्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्। हिम्याः पर्वताः। गुण्या ब्राह्मणाः।** {रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्}।

'आहतम्' में भाव में क्त प्रत्यय है।

सूत्रार्थ—'आहतविशेषणक और प्रशंसाविशेषणक रूप पद से मतुबर्थ में यप् प्रत्यय हो'। आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः। प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः। जहाँ आहतविशेषणक और प्रशस्तविशेषणक रूप पद नहीं होगा, वहाँ यप् नहीं होगा; अपि तु मतुबन्त 'रूपवान्' ऐसा रूप होगा।

वार्तिककार—**यप्प्रकरण इति**। रूपशब्द से भिन्न अन्य पदों से भी मतुबर्थक यप् प्रत्यय कहना चाहिये। बहुलं हिमम् एषु इति हिम्याः पर्वताः। बहुला गुणा एषु इति गुण्या ब्राह्मणाः। यहाँ भूमा अर्थ में यप् प्रत्यय है। {**रूपादाहत-**}।

बहुलं छन्दसि ५.२.१२२

* छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्च * **छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्चेति वक्तव्यम्। अष्ट्रावी। मेखलावी। द्वयावी। उभयावी। रुजावी। हृदयावी** * मर्मणश्च * **मर्मणश्चेति वक्तव्यम्। मर्मावी** * सर्वत्रामयस्योपसंख्यानम् * **सर्वत्रामयस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। आमयावी** * शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् * **शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् वक्तव्यः। शृङ्गारकः। वृन्दारकः** * फलबर्हाभ्यामिनच् * **फलबर्हाभ्यामिनज्वक्तव्यः। फलिनः। बर्हिणः**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् * हृदयाच्चालुरन्यतरस्यां वक्तव्यः। हृदयालुः। हृदयी। हृदयिकः। हृदयवान् * शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहते * शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इत्यस्मिन्नर्थे चालुर्वक्तव्यः। शीतालुः। उष्णालुः। तृप्रालुः * हिमाच्चेलुः * हिमाच्चेलुर्वक्तव्यस्तन्न सहत इत्येतस्मिन्नर्थे। हिमेलुः * बलाच्चोलः * बलाच्च ऊलो वक्तव्यस्तन्न सहत इत्येतस्मिन्नर्थे। बलूलः * वातात् समूहे च * वातात् समूहे च तन्न सहत इत्येतस्मिन्नर्थे च ऊलो वक्तव्यः। वातूलः * पर्वमरुद्भ्यां तप् * पर्वमरुद्भ्यां तप् च वक्तव्यः। पर्वतः। मरुत्तः * ददादिवृत्तं वा * ददादिवृत्तं वा पुनरेतद् भविष्यति, मरुद्भिर्दत्तो मरुत्तः। {बहुलं छन्दसि}।

'अस्मायामेधास्रजो विनिः' ५.२.१२१ से विधेयवचन 'विनिः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'वेद में बाहुलकात् मत्वर्थीय विनि प्रत्यय हो। अग्निस्ते ओजस्वी।

वार्तिककार—**छन्दोविन्प्रकरण इति**। वेद में अष्ट्रा, मेखला, द्वय, उभय, रुजा और हृदय प्रातिपदिक से मतुबर्थ में इनि तथा प्रकृति को दीर्घ कहना चाहिये। अष्ट्रा, मेखला और रुजा दीर्घान्त प्रातिपदिक हैं; अतः इनसे पर्यन्यलक्षण दीर्घ अथ वा मात्र विनि प्रत्यय ही कहना चाहिये। द्वय, उभय और हृदय से विनि और प्रकृति को दीर्घ होगा—अष्ट्रावी, मेखलावी, द्वयावी, उभयावी, रुजावी, हृदयावी। **मर्मणश्चेति**। वेद में मर्मन् प्रातिपदिक से भी मतुबर्थ में विनि तथा प्रकृति को दीर्घ कहना चाहिये—मर्मावी। यहाँ नलोप एवं प्रकृति को दीर्घ है। **सर्वत्रेति**। आमय प्रातिपदिक से सर्वत्र=लोक और वेद में विनि प्रत्यय तथा प्रकृति को दीर्घ कहना चाहिये—आमयावी। **शृङ्गवृन्दाभ्यामिति**। शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिक से सर्वत्र=लोक और वेद में आरकन् प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ पूर्ववार्तिक से सर्वत्रपद की अनुवृत्ति है। शृङ्गाणि सन्ति अस्येति शृङ्गारकः। वृन्दाः सन्ति अस्येति वृन्दारकः। **फलबर्हाभ्यामिति**। यहाँ भी पूर्ववार्तिक से सर्वत्रपद की अनुवृत्ति है। फल और बर्ह प्रातिपदिक से **सर्वत्र**=लोक और वेद में इनच् प्रत्यय कहना चाहिये—फलानि सन्ति अस्येति फलिनः। बर्हाणि सन्ति अस्येति बर्हिणः। **हृदयादिति**। यहाँ भी पूर्ववार्तिक से सर्वत्रपद की अनुवृत्ति है। लोक और वेद में सर्वत्र हृदय प्रातिपदिक से विकल्प से चालुर् प्रत्यय कहना चाहिये। पक्ष में इनि, ठन् और मतुप् भी होगा। 'चुटू' १.३.७ से चकार इत्संज्ञक है। हृदयमस्ति अस्येति हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान्। **शीतोष्णति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से विधेयवचन 'चालुर्' की अनुवृत्ति है। 'तन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहते' इस अर्थ में द्वितीयान्त शीत, उष्ण और तृप्र प्रातिपदिक से चालुर् प्रत्यय कहना चाहिये। शीतं न सहते इति शीतालुः। उष्णं न सहते इति उष्णालुः। तृप्रं न सहते इति तृप्रालुः। **हिमाच्चेलुरिति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'तन्न सहते' की अनुवृत्ति है। द्वितीयान्त हिम प्रातिपदिक से 'तन्न सहते' अर्थ में चेलुर् प्रत्यय कहना चाहिये। हिमं न सहते इति हिमेलुः। **बलाच्चोल इति**। यहाँ भी 'तन्न सहते' की अनुवृत्ति है। 'तन्न सहते' अर्थ में द्वितीयान्त बल प्रातिपदिक से ऊलर् प्रत्यय कहना चाहिये। बलं न सहते इति बलूलः। **वातादिति**। यहाँ भी 'तन्न सहते' और 'ऊलर्' की अनुवृत्ति है। सामर्थ्यवश समूह के योग में वात प्रातिपदिक से षष्ठी होगी। षष्ठ्यन्त वात प्रातिपदिक से समूह अर्थ में तथा द्वितीयान्त वात प्रातिपदिक से 'सहते' अर्थ में ऊलर् प्रत्यय कहना चाहिये। वातानां समूहो वातूलः। वातं न सहते इति वातूलः। **पर्वतमरुद्भ्यामिति**। पर्व और मरुत् प्रातिपदिक से मतुबर्थ में तप् प्रत्यय कहना चाहिये। पर्वाणि सन्ति अस्मिन्निति पर्वतः। मरुतः सन्ति अस्मिन्निति मरुत्तः। **ददातिवृत्तमिति**। अथ वा प्रत्ययार्थ के दाधात्वर्थ में शक्त होने पर भी पर्व और मरुत् प्रातिपदिक से तप् प्रत्यय कहना चाहिये। मरुद्भिर्दत्तो मरुत्तः। 'सर्वत्रामयस्योपसंख्यानम्' से आरम्भ कर 'ददाति वृत्तं वा' पर्यन्त सभी वार्तिक लोकवेद उभयसाधारण हैं; अतः सभी वार्तिकों में सर्वत्रपद की अनुवृत्ति करनी चाहिये। {बहुलं-}।

आलजाटचौ बहुभाषिणि ५.२.१२५

*** कुत्सिते * कुत्सित इति वक्तव्यम्। यो हि सम्यग् बहु भाषते वाग्मीत्येव स भवति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नानायोगकरणसामर्थ्यान्न भविष्यति।{आलजाटचौ}।**

'वाचो ग्मिनिः' ५.२.१२४ से पञ्चम्यन्त 'वाचः' पद की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'बहुभाषी अर्थ गम्य होने पर वाच् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आलच् और आटच् प्रत्यय हो'।

वार्तिककार—**कुत्सित इति**। कुत्सित बहुभाषी होने पर ही वाच् से आलच् और आटच् प्रत्यय कहना चाहिये। कुत्सितं बहु भाषते वाचालः, वाचाटः। परन्तु जो सम्यग् बहु भाषण करेगा वहाँ वाच् से ग्मिनि प्रत्यय ही होगा— वाग्मी। पूर्वसूत्र 'वाचो ग्मिनिः' ५.२.१२४ में भी 'बहुभाषिणि' अन्वित होगा। {आलजाट-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वामिन्नैश्वर्ये ५.२.१२६

इह कस्मान्न भवति—स्वमस्यास्तीति? नैष दोषो, नाऽयं प्रत्ययाऽर्थः। किं तर्हि? प्रकृतिविशेषणमेतत्—'स्वामिन्नैश्वर्ये निपात्यते' इति।

ऐश्वर्य वाच्य होने पर स्व प्रातिपदिक से आमिनँच् प्रत्यय का मत्वर्थ में निपातन है। स्वम्=ऐश्वर्यम्, तद्वान् स्वामी।

प्रश्नभाष्य—**इहेति**। स्वशब्द धनवाची है, उससे षष्ठ्यर्थ में आमिनँच् प्रत्यय है, ऐसा षष्ठ्यर्थ को ऐश्वर्यविषय मान कर प्रश्न है—जिसके पास धन होता है, वही ऐश्वर्यवान् होता है; अतः 'स्वमस्यास्ति' इस विग्रह में स्व पद से षष्ठ्यर्थ में आमिनँच् प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**नायमिति**। यहाँ प्रत्यय का अर्थ ऐश्वर्य नहीं है, अपि तु ऐश्वर्य अर्थ प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। यदि 'ऐश्वर्ये' यह विषयसप्तमी होती तो शासक अर्थ वाच्य होने पर धनवाचि स्व पद से भी प्रत्यय होता; परन्तु यहाँ प्रत्ययार्थ ऐश्वर्य नहीं होकर प्रकृत्यर्थ ऐश्वर्य है। वृत्तिविषय में स्वशब्द ऐश्वर्य अर्थ में शक्त है; अतः धनवान् अथ वा निर्धन शासक स्वामिशब्द का वाच्य है। {**स्वामिन्नैश्वर्ये**}।

वातातीसाराभ्यां कुक् च ५.२.१२९

* पिशाचाच्च * **पिशाचाच्चेति वक्तव्यम्। पिशाचकी वैश्रवणः।**

'द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः' ५.२.१२८ से विधेयवचन 'इनिः' की अनुवृत्ति है। कित्निर्देश से 'कुक्' यह आगम है जो प्रकृति का अन्तावयव होगा।

सूत्रार्थ—'वात और अतीसार प्रातिपदिक से मतुबर्थ में इनि प्रत्यय तथा प्रकृति को कुगागम हो'। शब्दशक्तिस्वभावबलात् रोग अर्थ में ही प्रत्ययविधान है। 'वातः अस्ति अस्य स वातकी=वातरोगवान्। अतीसारोऽस्ति अस्य स अतीसारकी=अतीसाररोगवान्। जहाँ रोग वाच्य नहीं होगा, वहाँ मतुप् ही होगा—वातवती शाला।

वार्तिक—**पिशाचाच्चेति**। रोग अर्थ वाच्य होने पर पिशाच पद से इनि प्रत्यय तथा प्रकृति को कुगागम कहना चाहिये। पिशाचोऽस्ति अस्य स पिशाचकी। {वातातीसा-}।

पुष्करादिभ्यो देशे ५.२.१३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* इनिप्रकरणे बलाद् बाहूरुपूर्वपदादुपसंख्यानम् * **इनिप्रकरणे बलाद् बाहूरुपूर्वपदादुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। बाहुबली। ऊरुबली** * सर्वादेश्च * **सर्वादेश्चेनिर्वक्तव्यः। सर्वधनी। सर्वबीजी। सर्वकेशी** * अर्थाच्चाऽसन्निहिते * **अर्थाच्चाऽसन्निहिते इनिर्वक्तव्यः। अर्थी। असन्निहित इति किमर्थम्? अर्थवान्** * तदन्ताच्च * **तदन्ताच्चेति वक्तव्यम्। धान्यार्थी। हिरण्यार्थी। किमर्थं तदन्तादित्युच्यते, न तदन्तविधिना सिद्धम्? ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते। एवं तर्हीन्नन्तेन सह समासो भविष्यति, धान्येनाऽर्थी धान्यार्थी। स हि समासो न प्राप्नोति।**

'द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः' ५.२.१२८ से विधेयवचन 'इनिः' की अनुवृत्ति है। पुष्करादिगण में पुष्कर से कल्लोल तक अदन्त तथा पयस् हलन्त प्रातिपदिक पढे गये हैं। अदन्त से 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से इनि प्राप्त था। पुनः इनिविधान व्यर्थ पड कर नियामक होगा—देश अर्थ गम्य होने पर पुष्कर आदि से इनि ही हो, अन्य नहीं। इससे मतुप् का निषेध हो जायेगा। पुष्करमस्ति अस्यामिति पुष्करिणी। पद्ममस्ति अस्यामिति पद्मिनी। उत्पलमस्ति अस्यामिति उत्पलिनी। देशवाच्य नहीं होने पर मतुप् होकर 'पुष्करवान्, पद्मवान्, उत्पलवान्' रूप होगा।

वार्तिककार—**इनिप्रकरण इति**। बाहुपूर्वपद तथा उरुपूर्वपद बलशब्दान्त से इनि कहना चाहिये। बाहुबली, उरुबली। **सर्वादेश्चेति**। सर्वः=सर्वशब्दः आदिः= आद्यवयवो यस्य स सर्वादिस्तस्मात्। सर्वादिपूर्वपद समास से मतुबर्थ में इनि कहना चाहिये। सर्वधनानि अस्य सन्तीति सर्वधनी। सर्वबीजी, सर्वकेशी। **अर्थाच्चेति**। असन्निहितविषयक अर्थ प्रातिपदिक से इनि कहना चाहिये। असन्निहितकर्त्तृक वर्त्तमान सत्ता असम्भव है। प्रकृत में कालकृत असन्निधान है; अतः विरोध होने से यहाँ पर अस्ति पद का अन्वय नहीं होगा। असन्निहितोऽर्थोऽस्य सः अर्थी। चूँकि असन्निहित अर्थ वाच्य होने पर अर्थ पद से इनि विहित है; अतः सन्निहित अर्थ वाच्य होने पर 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से विहित इनि प्रत्यय का तक्रकौण्डिन्यन्याय से सर्वथा बाध कहना चाहिये; अतः सन्निहित अर्थ गम्य होने पर 'अर्थवान्' यह मतुब्घटित रूप ही होगा। 'अर्थी समर्थो विद्वान्' में छान्दसत्वात् समाधान करना चाहिये।

प्रातिपदिक का ग्रहण में तदन्त धान्यार्थ आदि से इनि अप्राप्त है; अतः उसे प्राप्त कराने के लिए वार्तिक का अवतरण कराते हैं—**तदन्ताच्चेति**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थान्त प्रातिपदिक से असन्निहित अर्थ में इनि कहना चाहिये। शेष अर्थ पूर्ववत्। है। असन्निहितो धान्यार्थोऽस्य स धान्यार्थी। इसी तरह 'हिरण्यार्थी' भी होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। अनुवृत्त '-प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का 'अर्थात्' विशेषण है; अतः स्वरूप तथा तदन्त से प्रत्यय हो जायेगा, पुन' 'तदन्ताच्च' यह अतिरिक्तवचन क्यों पढते हैं?

उत्तरभाष्य—**ग्रहणवतेति**। ग्रहणवान् प्रातिपदिक से तदन्तविधि का निषेध है; अतः तदन्त में प्रत्यय प्राप्त नहीं होने से अतिरिक्तवचन पढा गया है।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि तदन्त से प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा तो हम अर्थ पद से इनि कर अर्थी शब्द निष्पन्न करेंगे तथा बाद में धान्य पद के साथ 'धान्येनार्थी धान्यार्थी, हिरण्येनार्थी हिरण्यार्थी' ऐसा समास कर लेंगे। इस तरह 'धान्यार्थी, हिरण्यार्थी' पद हो जायेंगे, तथा 'तदन्ताच्च' यह अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं होगी।

उत्तरभाष्य—**स हीति**। 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २.१.३० से अर्थ पद के साथ समास कहा गया है, वह अर्थी पद के साथ प्राप्त नहीं हो रहा है; अतः 'धान्येनार्थी' ऐसा विग्रह कर 'धान्यार्थी' पद नहीं हो सकेगा। इस लिए 'तदन्तच्च' यह अतिरिक्तवचन पढा गया है। 'धान्येन' यह हेतु में तृतीया है।

यदि पुनरयमर्थयतेर्णिनिः स्यात्? एवमपि क्रियामेव कुर्वाणे स्यात्। तूष्णीमप्यासीनो यस्तत्समर्थान्याचरति सोऽभिप्रायेण गम्यते—अर्थ्ययमनेनेति। एवं तर्ह्ययमर्थशब्दोऽस्त्येव द्रव्यपदार्थकः। तद्यथा—अर्थवानयं देश इत्युच्यते यस्मिन् गावः सस्यानि च वर्त्तन्ते। अस्ति क्रियापदार्थको भावसाधनः—अर्थनमर्थ इति। तद्यः क्रियापदार्थकस्तस्येदं ग्रहणम्। एवं च कृत्वाऽर्थिकप्रत्यर्थिकावपि सिद्धौ भवतः।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

अन्य आचार्य—**यदि पुनरिति**। धान्य उपपद रहते अर्थ उपयाच्ञायाम् धा.पा.१९०६ धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छिल्ये' ३.२.७८ से णिनि प्रत्यय कर लेंगे तथा धान्य पद से करण में तृतीया करके 'धान्येनार्थी धान्यार्थी' ऐसा 'कर्त्तृकरणे कृता बहुलम्' २.१.३२ से समास के द्वारा 'धान्यार्थी' पद निष्पन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर लें तो 'तदन्ताच्च' इस अतिरिक्तवचन की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

इतर आचार्य इस पक्ष का भी खण्डन करते हैं—**एवमपीति**। अर्थ उपयाच्ञायाम् धा.पा.१६०६ धातु से ताच्छिल्यार्थक णिनि करने पर व्यापाररूप क्रिया को निष्पन्न करने वाला कर्त्ता अर्थ में ही प्रत्यय होगा, असन्निहित अर्थ में नहीं; अतः णिनिप्रत्ययान्त से भी रूपसिद्धि नहीं हो रही है। कोई दरिद्र मनुष्य चुपचाप बैठ कर भी किसी धनी मनुष्य की आरधना करता है तो वहाँ यह कहा जाता है—'अयमर्थी अनेन'=यह दरिद्र इस धनी से कुछ पाना चाहता है।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि 'अयमर्थी अनेन' से 'प्राप्य वस्तु का इच्छुक' अर्थ आ रहा है तो अर्थी पद को द्रव्यवाचक मानना चाहिये। आपने 'एवमपि क्रियामेव कुर्वाणे स्यात्' कह कर अर्थी पद को व्यापाराश्रय अर्थ का वाचक माना था, उतना ही अर्थ नहीं है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**तद्यथेति**। जिसमें विपुल गोधन तथा सस्यधन होता है, उसे 'अर्थवानयं देशः' कहा जाता है। इस तरह सन्निहित अर्थ गम्य होने पर मतुबन्त=अर्थवान् तथा असन्निहित अर्थ गम्य होने पर इनिप्रत्ययान्त अर्थी द्रव्यवचन है। एवं क्रियापदार्थक भी अर्थपद है—'अर्थनमर्थः'। अर्थ उपयाच्ञायाम् धा.पा.१६०६ धातु से भाव में घञ् प्रत्यय है। सन्निहित—भावघञन्त अर्थ पद का ही प्रकृत में ग्रहण करना चाहिये। यदि 'अर्थाच्चाऽसन्निहिते' वचन पढ रहे हैं तो असन्निहित अर्थ गम्य होने पर अर्थ प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय ही होगा, ठन् नहीं हो सकेगा। अथ च अर्थ उपयाच्ञायाम् धा.पा.१६०६ धातु से णिनिप्रत्ययान्त की सिद्धि कर प्रत्ययविधान करते हैं तो ठन् प्रत्यय नहीं होने से 'अर्थिकः, प्रत्यर्थिकः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। क्रियादपार्थक अर्थ पद से 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ से इनि और ठन् यह दोनों प्रत्यय सिद्ध होता है। अनभिधान होने से क्रियापदार्थक अर्थ पद से मतुप् का अभाव रहेगा। एवं धान्यवाची अर्थ पद से भी अनभिधान होने से इनि और ठन् का अभाव रहेगा। {पुष्करादि-}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय द्वितीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

द्वितीय पाद भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ तृतीये पादे प्रथममाह्निकम् ❁

प्राग्दिशो विभक्तिः ५.३.१

विभक्तित्वे किं प्रयोजनम्? * विभक्तित्वे प्रयोजनमित्प्रतिषेधः * विभक्तित्वे इत्प्रतिषेधः प्रयोजनम्- इदानीम्। 'न विभक्तौ तुस्माः' इतीत्प्रतिषेधः सिद्धो भवति। यद्येवं—'किमोऽत्' 'क्व प्रेप्यसन् दीव्यसे' 'क्वार्द्धमासाः'—अत्रापि प्राप्नोति * तौ चोक्तम् * तौ चोक्तम्। किमुक्तम्? 'विभक्तौ तवर्गप्रतिषेधोऽतद्धित' इति।

'प्राक्' प्रथमैकवचनान्त, 'दिशः' पञ्चम्येकवचनान्त उद्देश्यवचन संज्ञिदल, 'विभक्तिः' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन संज्ञादल होने से यह तीन पदों का संज्ञासूत्र है। यहाँ 'दिक्'पद से तद्घटित 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' ५.३.२७ सूत्र से पूर्व तक, अर्थात् 'था हेतौ च च्छन्दसि' ५.३.२६ सूत्रपर्यन्त विहितप्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा होती है'।

प्रश्नभाष्य—**विभक्तित्व इति**। यहाँ विभक्तिसंज्ञा करने का क्या प्रयोजन है? यहाँ प्रयोजनसामान्य की विवक्षा में 'प्रयोजनम्' यह एकवचननिर्देश है।

उत्तरभाष्य—**इत्प्रतिषेध इति**। यहाँ विभक्तिसंज्ञा करने का प्रयोजन इत्संज्ञा का प्रतिषेध है। जैसे 'इदम्' पद से 'दानीं च' ५.३.१८ के द्वारा 'दानीम्' प्रत्यय का विधान तथा प्रकृत को इश् आदेश कर 'इदानीम्' रूप है। यहाँ 'हलन्त्यम्' १.३.३ से दानीम्घटक मकार की इत्संज्ञा प्राप्त है। विभक्ति होने से 'न विभक्तौ तुस्माः' १.३.४ से इत्संज्ञा का निषेध हो जाता है।

आक्षेपभाष्य—**यद्येवमिति**। प्रकृत में विभक्तिसंज्ञा का प्रयोजन 'न विभक्तौ तुस्माः' १.३.४ से इत्संज्ञा का निषेध मानेंगे तो 'किमोऽत्' ५.३.१५ से किम् शब्द से पर में अत् प्रत्यय विहित है तथा अत् पर रहते किम् को क्व आदेश कर 'क्व' यह रूप है। अत् की विभक्तिसंज्ञा होने से प्रत्ययस्थ तकार की इत्संज्ञा निषिद्ध हो जायेगी। इस तरह 'क्व प्रेप्स्यन् दीव्यसे, क्वाऽर्द्धमासाः' में 'क्व' पद के अनन्तर तकारश्रवण की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**तौ चोक्तमिति**। इस विषय को मैं पहले ही बता आया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हूँ कि यह विभक्तिसंज्ञा अनित्य है' अतः 'किमोऽत्' ५.३.१५ से विहित अत्घटक तकार की इत्संज्ञा हो जायेगी। यहाँ विभक्तिसंज्ञा के अनित्य होने से 'इदमस्थमुः' ५.३.२४ सूत्र द्वारा विहित थमु प्रत्यय में उकारकरण है। यदि विभक्तिसंज्ञा नित्य होती तो 'थम्' इतना ही विधान करते; 'न विभक्तौ तुस्माः' १.३.४ से इत्संज्ञा का निषेध हो जाता, पुनः उकारनिर्देश व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है-'प्राग्दिशो विभक्तिः' ५.३.१ यह संज्ञाकरण अनित्य है; अतः अनित्य होने से 'किमोऽत्' ५.३.१२घटक तकार की इत्संज्ञा हो जायेगी। इस तरह इस विभक्तिसंज्ञा में तवर्ग का प्रतिषेध नहीं होगा, तथा अतद्धितपर्युदास भी नहीं करना पडेगा।

* इदमो विभक्तिस्वरश्च * **इदमो विभक्तिस्वरश्च प्रयोजनम्। इतः। इह। 'इदमस्तृतीयादिविभक्तिरुदात्ता भवती'त्येष स्वरः सिद्धो भवति।**

इस विभक्तिसंज्ञा का अन्य प्रयोजन भी देते हैं—**इदम इति**। 'अस्मादिति इतः' 'इदम इश्' ५.३.३ से इदम् को इश् आदेश तथा 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ से तसिल् होकर 'इतः' रूप है। एवम् 'अस्मिन्निति इह' में इदम् को इश् आदेश तथा पर में 'इदमो हः' ५.३.११ से 'ह' प्रत्यय होकर 'इह' रूप है। यहाँ विभक्तिस्वर से 'इतः' ही मुख्य उदाहरण है। तसिल् के लित् होने से 'लिति' ६.१.१९३ के द्वारा प्रत्यय से पूर्व में उदात्तस्वर प्राप्त था, परन्तु विभक्ति होने से 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७१ के द्वारा इदम् से परमें असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त होती है। परन्तु 'इह' पद में प्रत्ययस्वर के द्वारा अन्तोदात्त होता है। यदि यहाँ 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते' न्याय का आश्रयण कर विभक्तिस्वर 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७१ से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ स्वर का बाध ही माना जाये, लित्स्वर का नहीं। एवं विभक्ति-स्वर 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७१ की अपेक्षा लित्स्वर 'लिति' ६.१.१९३ पर है; अतः परत्वात् लित्स्वर से विभक्तिस्वर का बाध किया जाये तो यहाँ ऐसा कहना इस लिए सम्भव नहीं है कि 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७१ सूत्र की अनुवृत्ति 'लिति' ६.१.१९३ सूत्र में होती है; अतः लित्स्वर का बाध कर विभक्तिस्वर ही होगा। मूल में 'तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता' में तृतीयादि पद से तृतीया से आरम्भ कर दिक्पदघटित ५.३.२७ सूत्र से पूर्व तक विहित प्रत्यय गृहीत हैं।

* त्यदादिविधयश्च * **त्यदादिविधयश्च प्रयोजनम्। इतः। यतः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र। कुतः। कुत्र। विभक्ताविति त्यदादिविधयः सिद्धा भवन्ति। {प्राग्दिशो विभक्तिः}।

यहाँ विभक्तिसंज्ञा का अन्य भी प्रयोजन देते हैं—**त्यदादिविधयश्चेति**। 'इदम इश्' ५.३.३ 'एतेतौ रथोः' ५.३.४ 'एतदोऽन्' ५.३.५ 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्याम्' ५.३.६ 'कु तिहोः' ७.२.१०४ ये सभी विधि विभक्तिपर रहते ही होते हैं, ये विधि हो सकें, इसके लिए विभक्तिसंज्ञा की गयी है। इससे 'इतः, यतः, यत्र, कुतः, कुत्र' सिद्ध हो जाते हैं। **{प्राग्दिशो-}**।

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५.३.२

* बहुग्रहणे संख्याग्रहणम् * **बहुग्रहणे संख्याग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूद्—बहौ, बहोरिति।**

विधेय का निर्देश नहीं होने से यह अधिकारसूत्र है। किम् शब्द, द्व्यादिभिन्न सर्वनामसंज्ञक शब्द और बहु शब्द का अधिकार 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' ५.३.२७ सूत्र से पूर्व तक, अर्थात् 'था हेतौ च च्छन्दसि' ५.३.२६ सूत्रपर्यन्त विहित प्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा होती है'। इससे प्रतिसूत्र में इसकी उपस्थिति होगी।

वार्तिककार—**बहुग्रहणमिति**। 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से जिस की संख्यासंज्ञा हो रही है, उसी का प्रकृत में ग्रहण करना चाहिये। इससे उत्तरसूत्र 'सप्तम्यास्त्रल्' ५.३.१० तथा 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ में संख्यासंज्ञक से भिन्न बहु पद से 'बहौ' इस सप्तम्यन्तविग्रह में त्रल् की अप्राप्ति रहेगी तथा 'बहोः' इस पञ्चम्यन्त विग्रह में तसिल् की अप्राप्ति रहेगी। इस तरह उक्त विग्रह में संख्यासंज्ञक से ही सप्तम्यर्थ में त्रल् होकर 'बहुत्र' तथा पञ्चम्यर्थ में तसिल् होकर 'बहुतः' रूप होगा। संख्यासंज्ञक से भिन्न पद से विग्रहवाक्य ही रहेगा।

अथ किमर्थं किम उपसंख्यानं क्रियते, न 'सर्वनाम्न' इत्येव सिद्धम्? * द्व्यादिप्रतिषेधात् किम उपसंख्यानम् * **द्व्यादिप्रतिषेधात् किम उपसंख्यानं क्रियते। 'अद्व्यादिभ्य' इति प्रतिषेधे प्राप्ते किम उपसंख्यानं क्रियते।**

प्रश्नभाष्य—**अथ किमर्थमिति**। किम्पद की भी सर्वनामसंज्ञा होती है। सर्वनाम का अधिकार करने से उत्तरसूत्रों में किम् की भी उपस्थिति हो जाती, पुनः किम्पद का पृथग् उच्चारण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**द्व्यादिप्रतिषेधादिति**। प्रकृतसूत्र में ही 'अद्व्यादिभ्यः' यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिषेधवचन है। वह सर्वनाम में विशेषण है। द्व्यादिप्रतिषेध होने से उत्तरसूत्रों में किमूपद की उपस्थिति नहीं हो पा रही है; अतः उत्तरसूत्रों में अधिकारार्थ किम् पद का पृथक् पाठ किया गया है। {किंसर्व-}।

एतदोऽन् ५.३.५

क्वाऽयं नकारः श्रूयते? न क्वचिच्छ्रूयते, लोपोऽस्य भवति—'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति। यदि न क्वचिच्छ्रूयते किमर्थमुच्चार्यते? 'अनेकाल्शित्सर्वस्ये'ति सर्वादेशो यथा स्यात्। क्रियमाणेऽपि वै नकारे सर्वादेशो न प्राप्नोति। किं कारणम्? नलोपे कृते एकाल्त्वात्। इदमिह सम्प्रधार्यं, नलोपः क्रियतां सर्वादेश इति, किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वान्नलोपः।

'एतदः' स्थानषष्ठी तथा 'अन्' प्रथमान्त आदेशवचन का निर्देश है। इस सूत्र का योगविभाग है। प्रथमयोग—'एतदः' तथा द्वितीययोग—'अन्' है। प्रथमयोग में 'एतेतौ रथोः' ५.३.४ की अनुवृत्ति है। 'एतेतौ' प्रथमाद्विवचनान्त विधेयवचन तथा 'रथोः' यह सप्तमीद्विवचनान्त निमित्तवचन है। 'रथोः' यह वर्णमात्र का ग्रहण है, अतः विशेषण होने पर भी तदादि अर्थ को कहेगा—'रेफादि तथा थादि प्रत्यय पर रहते एतद् को क्रमशः एत और इत् आदेश हो'। द्वितीयसूत्र 'अन्' में 'एतदः' की अनुवृत्ति होगी तथा 'रथोः' इस निमित्तवचन की निवृत्ति हो जायेगी।

प्रश्नभाष्य—**क्वाऽयमिति**। आचार्य एतद् को अन् आदेश कर रहे हैं। यहाँ नकार की इत्संज्ञा का कोई स्वर आदि प्रयोजन नहीं है, फिर इत्संज्ञा से उसका अपहार नहीं हो सकता है; अतः उसका कहीं पर श्रवण होना चाहिये, वह कौन सा स्थल है?

उत्तरभाष्य—**न क्वचिदिति**। अनूघटक नकार का कहीं पर भी श्रवण नहीं होता है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से 'न्' का लोप हो जाता है; अतः कहीं पर भी उसका श्रवण नहीं हो पा रहा है।

प्राश्निक का आक्षेपभाष्य—**यदि नेति**। यदि कहीं पर भी उसका श्रवण नहीं हो पा रहा है तो सूत्रमें उसका उच्चारण क्यों किया गया है? नित्स्वर आदि भी उसका प्रयोजन नहीं है, फिर उच्चारण क्यों है?

प्रयोजनवादी आचार्य—**अनेकालिति**। जब एतद् के स्थान में अन् का विधान करते हैं तो आदेश के अनेकाल् होने से 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' १.१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५५ से सम्पूर्णस्थानी के स्थान पर आदेश होता है, यही नकारनिर्देश का प्रयोजन है।

अन्य आचार्य—**क्रियमाणेऽपीति**। नकार का निर्देश करने पर भी जब हम 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से 'न्' का लोप कर देंगे तब 'अ' यह वर्णमात्र रहेगा; अतः एकाल् होने से सर्वादेश नहीं हो सकेगा।

इतर आचार्य—**इदमिहेति**। यहाँ नलोप एवं अनेकाल् होने से सर्वादेश, यह दोनों प्राप्त है; आपको निश्चय करना चाहिये कि यहाँ नलोप करें, अथ वा सर्वादेश करें, क्या करना चाहिये?

अन्य आचार्य—**परत्वादिति**। 'अस्तेर्भूः' २.४.५२ में सर्वादेश चरितार्थ है। एवं 'राजभ्याम्' में नलोप चरितार्थ है। अन्यत्र-अन्यत्र स्थलों में लब्धावकाश दोनों शास्त्रों की प्रवृत्ति 'अन्' में एककालावच्छेदेन प्राप्ति हो रही है। तुल्य-बलविरोध होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' १.१.५५ का बाध हो जायेगा; अतः परत्वाद् नलोप होने से प्रकृत में सर्वादेश प्राप्त नहीं है।

असिद्धो नलोपस्तस्याऽसिद्धत्वात् सर्वादेशो भवति। परिगणितेषु कार्येषु नलोपोऽसिद्धो, न चेदं तत्र परिगण्यते। एवं तर्हि- * आनुपूर्व्या सिद्धमेतत् * **नाऽत्राऽकृते सर्वादेशे प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्नोति। न चाऽकृतायां प्रातिपदिकसंज्ञायां नलोपः प्राप्नोति। तदानुपूर्व्या सिद्धमेतत्।**

इतर आचार्य—**असिद्ध इति**। सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी नलोप असिद्ध है; अतः अनेकाल् होने से सर्वादेश हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**परिगणितेष्विति**। 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८.२.२ इन परिगणित कार्यों में ही नलोप असिद्ध होता है। इस परिगणन में सर्वादेश का ग्रहण नहीं है; अतः यहाँ नलोप असिद्ध नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यहाँ आनुपूर्वी अनेकाल् होने से सर्वादेश हो जायेगा। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ से प्रातिपदिक का अन्तावयव 'न्' का लोप कहा गया है। जब तक आदेश नहीं करेंगे, 'अन्' की प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं हो सकेगी; अतः पहले आदेश तथा बाद में नलोप होगा।

नैतदस्ति प्रयोजनम्। अलोऽन्त्यस्य विधयो भवन्तीत्यकारस्याऽ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारवचने प्रयोजनं नास्तीति कृत्वाऽन्तरेण नकारं सर्वादेशो भविष्यति।

इतर आचार्य—**नैतदस्तीति**। यहाँ नकारनिर्देश से ही सर्वादेश हो, यह आवश्यक नहीं है। हम 'एतदोऽः' सूत्र पढेंगे। इससे 'अ'मात्र का आदेश होगा। एतद् में द् वर्ण को 'त्यदादीनामः' ७.२.१०२ से अत्व हो जायेगा। इस तरह एत को अ आदेश होने पर 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ इस परिभाषा से अन्त्य अल् अ के स्थान पर अ आदेश करने का कोई प्रयोजन नहीं होने पर सामर्थ्यात् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश हो जायेगा; अतः नकारनिर्देश का सर्वादेश प्रयोजन नहीं हो सकता है।

अस्त्यन्यदकारस्याऽकारवचने प्रयोजनम्। किम्? येऽन्येऽकारादेशाः प्राप्नुवन्ति तद्बाधनार्थम्। तद्यथा—'मो राजि समः क्वा'विति मकारस्य मकारवचनसामर्थ्याद् अनुस्वारादयो न भवन्ति। तस्मान्नकारः कर्त्तव्यः। न कर्त्तव्यः। क्रियते न्यास एव। प्रश्लिष्टनिर्द्देशोऽयम्-अ-अअ इति। सोऽनेकाल्शित्सर्वस्येति सर्वादेशो भविष्यति।

अन्य आचार्य—**अस्त्यन्यदिति**। इस अकारविधान का अन्य प्रयोजन है, अतः वह सामर्थ्यवश सर्वादेश का ज्ञापक नहीं हो सकता है। यहाँ 'त्यदादीनामः' ७.२.१०२ से कृतात्वनिर्द्देश मान रहे हैं। वस्तुतः 'येन नाऽप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति' परि.शे.५८ इस न्याय से त्यदाद्यत्व की प्राप्ति होने पर एतद् को अ आदेश है; अतः यह अ आदेश त्यदाद्यत्व का बाध कर लेगा। फिर भी इस न्याय की उपेक्षा करके इस भाष्य का अवतरण है। यदि न्याय की अपेक्षा की जाये तो यहाँ त्यदाद्यत्व किया जाये, अथवा प्रकृत सूत्र से अ आदेश किया जाये, दोनों में कोई भेद नहीं है।

यहाँ अकारविधान का प्रयोजन बताते हैं—**येऽन्य इति**। जैसे 'मो राजि समः क्वौ' ८.२.२५ सूत्र में मकार के स्थान में पुनः मकारविधान करने का कोई फल नहीं होने पर वहाँ मकारस्थानिक अन्य आदेश का प्रतिषेध कहा जाता है। इससे अन्य आदेश अनुस्वार आदि की निवृत्ति हो जाती है। वैसे प्रकृत में भी अकार के स्थान में अकार आदेश व्यर्थ पड कर अन्य आदेश त्यदाद्यत्व की निवृत्ति करा कर अपना सामर्थ्य क्षीण कर देगा; अतः अकारविधानसामर्थ्य से आप सर्वादेश का ज्ञापन नहीं कर सकते हैं। इस लिए सर्वादेशविधानार्थ आप को नकार का निर्देश करना ही होगा। इससे अनेकाल् होने से सर्वादेश हो जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतर आचार्य—**न कर्त्तव्य इति**। सर्वादेश के लिए नकार की आवश्यकता नहीं है। 'एतदोऽः' ऐसा ही सूत्र रखेंगे; अतः 'अः' यह प्रश्लेषनिर्देश होगा—'अ+अ=अ'। यहाँ सौत्रत्वात् पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप-एकादेश मानेंगे। इससे 'अ' यह प्रश्लिष्ट अनेकाल् निर्देश है; अतः अनेकाल् आदेश होने से सर्वादेश हो जायेगा। इसके लिए नकारनिर्देश आवश्यक नहीं है।

एतद इति योगविभागः **एतद इति योगविभागः कर्त्तव्यः। एतद 'एत'इत्' इत्येतावादेशौ भवतो रथोः। ततः 'अन्'। अंश्च भवत्येतद इति। केन विहिते थकारे एतद आदेश उच्यते?** *एतदश्च थम उपसंख्यानम्* **एतदश्च थम उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। एतत्प्रकार-मित्थम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। एतदेव ज्ञापयति—भवत्यत्र थमुरिति, यदयं थकारादावादेशं शास्ति। कुतो नु खल्वे-तज्ज्ञापकादत्र थमुर्भविष्यति, न पुनर्य एवाऽसावविशेषविहितस्थ-कारादिस्तस्मिन्नादेशः स्यात्? इदमा थकारादिं विशेषयिष्यामः-'इदमो यस्थकारादि'रिति। {एतदोऽन्}।**

अन्य आचार्य—**एतद इतीति**। 'एतदोऽन्' सूत्र का योगविभाग कर 'एतदः' प्रथमयोग तथा 'अन्' द्वितीययोग करना चाहिये। 'एतेतौ रथोः' ५.३.४ इस सम्पूर्णसूत्र की अनुवृत्ति होगी। 'एतदः' यह स्थानषष्ठी है तथा 'एतेतौ' प्रथमा-द्विवचनान्त विधेयवचन है। 'रथोः' सप्तमीद्विवचनान्त निमित्तवचन है। इस तरह रादि और थादि प्रत्यय पर रहते एतद् को एत और इत् आदेश होगा। द्वितीयसूत्र 'अन्' में प्रथमसूत्र 'एतदः' उद्देश्यवचन की अनुवृत्ति होगी। इस तरह एतद् को अन् आदेश होगा।

इतर आचार्य—**केन विहित इति**। यहाँ किस सूत्र से थकार विहित है, जिसके स्थान पर आप एत, इत आदेश कर रहे हैं?

अन्य आचार्य—**एतदश्चेति**। चूँकि किसी सूत्र से एतद् से परमें थादि प्रत्यय नहीं कहा गया है। आचार्य थादिप्रत्यय पर रहते आदेशविधान कर रहे हैं; अतः एतद् से पर में थमु प्रत्यय का विधान कर देंगे—एतत्प्रकारमित्थम्।

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या यहाँ थमुप्रत्यय का पृथग्विधान करना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। यहाँ थमुप्रत्यय का पृथग्विधान करने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य ने थादिप्रत्यय पर रहते एतद् के स्थान में आदेश कहा है;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः मण्डूकप्लुति के द्वारा 'इदमस्थमुः' ५.३.२४ से 'थमु' का 'एतदः' में अपकर्षण कर लेंगे।

इतर आचार्य—**कुत इति**। क्या कारण है कि आप ज्ञापन के द्वारा यहाँ थमु का ही निर्देश कर रहे हैं; अन्य भी थादि प्रत्यय हैं; जैसे 'प्रकारवचने थाल्' ५.३.२३, उसका अपकर्षण क्यों नहीं करते हैं? यहाँ सामान्यरूप से सभी थादिप्रत्ययों का ग्रहण होने पर थाल् पर रहते भी उक्त आदेश होंगे तथा थमु पर रहते भी?

समाधानभाष्य—**इदमेति**। आचार्य ने 'इदमस्थमुः' ५.३.२४ सूत्र पढा है। हम इदम् से थकारादि को विशेषित करेंगे—'इदम्सम्बन्धी जो थकारादि'। इस तरह थमु से थाल् का बाध हो जायेगा; अतः प्रकृत में थादिप्रत्यय थमु ही निमित्तत्वेन गृहीत होगा, थाल् नहीं। {एतदोऽन्}।

पञ्चम्यास्तसिल् ५.३.७
सप्तम्यास्त्रल् ५.३.१०

इदं विचार्यते-इमे तसिलादयो विभक्त्यादेशा वा स्युः, परे वेति? कथं वाऽऽदेशाः स्युः, कथं वा परे? यदि 'पञ्चम्याः' 'सप्तम्याः' इति षष्ठी, तदादेशाः, अथ पञ्चमी, ततः परे। कुतः सन्देहः? समानो निर्देशः। कश्चाऽविशेषः?

यहाँ उभयत्र 'किंसर्वनाबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः' ५.३.२ की अनुवृत्ति है; अतः 'पञ्चम्यन्त किम्, द्व्यादिभिन्नसर्वनाम और संख्यासंज्ञक बहु पद से तसिल् तथा सप्तम्यन्त से त्रल् होगा। कस्मादिति कुतः। इसी तरह—'यतः, ततः, अतः, सर्वतः, इतः, अमुतः, बहुतः। सप्तम्यन्त से 'कस्मिन्निति कुत्र। इसी तरह 'यत्र, तत्र, अत्र, सर्वत्र, अमुत्र, बहुत्र' इत्यादि।

पूर्वपक्षी—**इदमिति**। दोनों सूत्रों में 'पञ्चम्याः, सप्तम्याः' ऐसा निर्देश है। पञ्चमी इस पद का पञ्चमी एवं षष्ठी, इन दोनों ही एकवचनों में 'पञ्चम्याः' तथा सप्तमी इस पद का पञ्चमी एवं षष्ठी, इन दोनों ही एकवचनों में 'सप्तम्याः' रूप होता है। यदि 'पञ्चम्याः' और 'सप्तम्याः' को षष्ठीनिर्देश माना जाये तो यह स्थानिवचन होगा। इस तरह पञ्चमी और सप्तमीविभक्ति के स्थान में क्रमशः प्रथमान्तनिर्दिष्ट तसिल् और त्रल् आदेश होगा। यदि इसे पञ्चम्यन्त-निर्देश माना जाये तो निमित्तवचन होने से पञ्चम्यन्त से पर में तसिल् और सप्तम्यन्त से पर में त्रल् प्रत्यय होगा; अतः यहाँ सन्देह होता है कि इसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चमीनिर्देश माना जाये, अथ वा षष्ठीनिर्देश मान कर विभक्ति के स्थान पर आदेश किया जाये?

* तसिलादयो विभक्त्यादेशाश्चेत् सुब्लुक्स्वरगुणदीर्घत्वैत्त्वौत्त्वस्मायादिविधिप्रतिषेधः * **तसिलादयो विभक्त्यादेशाश्चेत् सुब्लुक्स्वरगुणदीर्घत्वैत्त्वौत्त्वस्मायादिविधीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः।** सुब्लुक्—**ततस्त्यः। यतस्त्यः। तत्रत्यः। यत्रत्यः। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति सुब्लुक् प्राप्नोति।** सुब्लुक्। स्वर—**यदा तदा। 'अनुदात्तौ सुप्पिता'वित्येष स्वरः प्राप्नोति।** स्वर। गुण—**कस्मात्। कुतः। 'घेर्ङिती'ति गुणः प्राप्नोति।** गुण। दीर्घ—**तस्मिन्। तर्हि। 'अतो दीर्घो यञि' 'सुपि चे'ति दीर्घत्वं प्राप्नोति।** दीर्घ। एत्त्व—**तेषु। तत्र। 'बहुवचने झल्ये'दित्येत्त्वं प्राप्नोति।** एत्त्व। औत्त्व—**कस्मिन्। कुत्र। 'इदुद्भ्यामौदच्च घे'रित्यौत्त्वं प्राप्नोति।** औत्त्व। स्मायादिविधिः—**तस्मात्। ततः। तस्मिन्। तत्र। 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिना'विति स्मायादयः प्राप्नुवन्ति**

* पञ्चमीनिर्देशात् सिद्धम् * **पञ्चमीनिर्देशात् सिद्धमेतत्।**

यदि षष्ठी मान कर विभक्ति के स्थान में आदेश कहेंगे तो उस पक्ष में अन्यत्र दोष होगा, जिसका प्रतिषेध कहना होगा। इसे दिखाते हैं—**तसिलादय इति**। यदि षष्ठ्यन्त मान कर विभक्ति के स्थान में आदेश कहेंगे तो सुब्लुक्, स्वर, गुण, दीर्घ, एत्त्व, औत्त्व और स्मद आदि विधि प्राप्त होंगे जिसका प्रतिषेध कहना होगा। जैसे 'ततस्त्यः, यतस्त्यः, यत्रत्यः, तत्रत्यः' में 'अव्ययात्त्यप्' ४.२.१०४ से त्यप् प्रत्यय है। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ से तद्धितान्त की प्रातिपदिकसंज्ञा होगी। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से प्रातिपदिक का अवयव तसिल् और त्रल् का लुक् प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहना होगा। विभक्त्यादेश मानने पर 'यदा, तदा' में सुप् के स्थान पर 'दा' आदेश माना जायेगा। सुप् पित् है; अतः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से पित्स्वर अनुदात्त प्राप्त होगा जिसका प्रतिषेध कहना होगा। एवं 'कुतः' में 'घेर्ङिति' ७.३.१११ से घिसंज्ञक को गुण आदेश प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहना होगा। एवं 'तस्मिन्' इस विग्रह में सप्तमी के स्थान पर 'र्हिल्' प्रत्यय होने पर 'तर्हि' में 'अतो दीर्घो यञि' ७.३.१०१ से दीर्घ प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहना होगा। एवं 'तेषु इति तत्र' में 'बहुवचने झल्येत्' ७.३.१०३ से एत्त्व प्राप्त होगा, उसका भी प्रतिषेध कहना होगा। एवं 'कस्मिन्निति कुत्र' में 'अच्च घेः' ७.३.११९ के द्वारा उत् से परमें ङि को औत् प्राप्त होगा; अतः उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिषेध कहना होगा। एवम् 'ततः, तत्र' में 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' ७.१.१५ के क्रमशः विभक्ति को 'स्मात्' और 'अस्मिन्' आदेश प्राप्त होगा। उसका प्रतिषेध कहना होगा। इस तरह षष्ठीनिर्देशपक्ष में इतने दोष हैं। यदि यहाँ 'पञ्चम्याः, सप्तम्याः' को पञ्चमीनिर्देश मान लिया जाये तो उक्त दोष नहीं आते हैं। इस पक्ष में तद्धितान्त की प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से लुप् हो जायेगा।

सन्तु परे * यदि परे, समानशब्दानां प्रतिषेधः * **यदि परे, समानशब्दानां प्रतिषेधो वक्तव्यः—तस्मात् तस्यति, यस्मात् तस्यति। पञ्चम्यन्तात् परस्य तसेस्तसिल् भवतीति तसिल् प्राप्नोति** * अनादेशे स्वार्थविज्ञानात् समानशब्दाऽप्रतिषेधः * **अनादेशे स्वार्थविज्ञानात् समानशब्दानामप्रतिषेधः। अनर्थकः प्रतिषेधोऽप्रतिषेधः। तसिल् कस्मान्न भवति? 'स्वार्थविज्ञानात्'। पञ्चम्यन्तात् परस्य तसेः स्वार्थे वर्त्तमानस्य तसिला भवितव्यम्। न चात्र पञ्चम्यन्तात् परस्तासिः स्वार्थे वर्त्तते।**

इस तरह पञ्चमीनिर्देश मान कर षष्ठ्यन्त तथा पञ्चम्यन्त से परमें त्रल् आदि का विधान कहना चाहिये। इस पक्ष में भी प्रतिषेधवचन पढना पडेगा, इसे स्पष्ट करते हैं—**यदि पर इति**। यदि 'पञ्चम्याः, सप्तम्याः' को पञ्चमी एकवचनान्त मानेंगे तो पञ्चम्यन्त और सप्तम्यन्त से परमें विद्यमान स्थानी को तसिल् और त्रल् आदेश होगा। उत्तरसूत्र 'तसेश्च' ५.३.८ में 'किंसर्वनामबहुभ्यः' की अनुवृत्ति है। पञ्चम्यन्त किम्, सर्वनामसंज्ञक और संख्यासंज्ञक से पर में तसि को तसिलादेश है। 'तसिः' में इकार उच्चारणार्थक है। इस तरह जैसे तसि को तसिलादेश प्राप्त है, वैसे तस् का समानशब्द तस् अलङ्करणे धा.पा. १७३० धातु को भी 'तस्मात् तस्यति, यस्मात् तस्यति' में तसिलादेश प्राप्त होगा। तद्विधानसामर्थ्य से प्रत्ययस्वर होने पर भी लित्स्वर की प्राप्ति होगी। परन्तु षष्ठ्यन्तपद मान कर आदेशपक्ष में यह दोष नहीं आ रहा है। इस तरह पञ्चम्यन्त से परमें तसि को तसिलादेशविधान करने पर तसि प्रत्यय का समानशब्द तस् अलङ्करणे धा.पा.१७३० धातु को भी आदेश प्राप्त हो रहा है, जिसका प्रतिषेध कहना होगा।

अन्य आचार्य पञ्चम्यन्तपक्ष में प्राप्तदोष का वारण करते हैं—**अनादेश इति**। अनादेशपक्ष नहीं मान कर मात्र पञ्चम्यन्तनिमित्त वचन मानने पर दोष नहीं है। वह इस तरह कि पञ्चम्यन्त से स्वार्थ=पञ्चम्यन्तप्रकृत्यर्थ में प्राप्त का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही तसिलादेश होगा। तसिप्रत्यय का समान शब्द तसु अलङ्करणे धा.पा.१७३० धातु से स्वार्थ में नहीं; अतः उसके स्थान में प्राप्ति नहीं होने से निषेध व्यर्थ है। यहाँ स्वार्थिकसाहचर्य से तसिल् आदेश भी स्वार्थिक ही लिया जायेगा। यदि स्थानी स्वार्थिक है तो आदेश भी स्वार्थिक ही होगा। अथवा 'तसेश्च' ५.३.८ सूत्र में इकार विवक्षित है, उच्चारणार्थक नहीं। इस तरह तसि का समान शब्द तसु अलङ्करणे धा.पा.१७३० धातु के नही होने से दोष नही है। {सप्तम्या}।

तसेश्च ५.३.८

किमर्थं तसेस्तसिलुच्यते? * तसेस्तसिल्वचनं स्वरार्थम् * तसेस्तसिल्वचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'स्वरार्थम्'। 'लिति प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवती'त्येष स्वरो यथा स्यात्। ननु चाऽयं तसिल् तसिं बाधिष्यते। न सिध्यति। परत्वात् तसिः प्राप्नोति। तसिलोऽवकाशः—ततो हीयते। ततोऽवरोहति। तसेरवकाशो—ग्रामादागच्छति, नगरत आगच्छति। इहोभयं प्राप्नोति—तत आगच्छति, यत आगच्छतीति, परत्वात् तसिः प्राप्नोति। तस्मात् सुष्ठूच्यते—'तसेस्तसिल्वचनं स्वरार्थ'मिति। {तसेश्च}।

'तसेः' यह षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन है। 'किंसर्वनाबहुभ्यो-' ५.३.२ तथा 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ से विधेय प्रथमान्त 'तसिल्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'किं, सर्वनाम, और बहु से पर में तसि को तसिल् आदेश हो'।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। तसि को तसिल् आदेश करने पर भी रूपभेद नहीं है, फिर आप तसि को तसिल् आदेश क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**तसेस्तसिलिति**। तसि के स्थान में लित् तसिल् आदेश किया जा रहा है। तसि करने पर प्रत्ययस्वर प्राप्त था। उसके स्थान पर लित् आदेश होने पर 'लिति' ६.१.१९३ सूत्र से प्रत्यय से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट उदात्त होता है। अन्य आचार्य सूत्र का अनारम्भ सिद्ध करने के लिए भाष्य का अवतरण करते हैं—**ननु चेति**। तसि प्रत्यय का अपवाद प्रत्यय तसिल् को पढ़ेंगे। इस तरह तसिल् से तसि का बाध हो जायेगा तथा आदेश भी नहीं कहना पडेगा।

खण्डनभाष्य—नेति। 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ पूर्वशास्त्र है तथा 'प्रतियोगेपञ्चम्यास्तसिल्' ५.४.४४ परशास्त्र है; अतः पर होने से 'प्रतियोगेपञ्चम्यास्तसिल्' ५.४.४४ के द्वारा का बाध हो जायेगा। यहाँ बाध्यबाधकभाव स्पष्ट करते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तसिलोऽवकाश इति। 'ततो हीयते, ततोऽवरोहति' में 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ चरितार्थ है तथा 'ग्रामत आगच्छति, नगरत आगच्छति' में 'प्रतियोगेपञ्चम्यास्तसिल्' ५.४.४४ चरितार्थ है। 'तत आगच्छति, यत आगच्छति' में तसिल् ५.३.७ एवं तसि ५.४.४४ दोनों प्राप्त हैं। अन्यत्र-अन्यत्र लक्ष्य में चरितार्थ होने से दोनों का समानबल है; अतः परविप्रतिषेध के द्वारा तसि से तसिल् का बाध हो जायेगा। अतः तसि के स्थान में तसिल् आदेश करने का जो स्वरार्थप्रयोजन दिया है, वह उचित है। {तसेश्च}।

पर्यभिभ्यां च ५.३.९

* पर्यभिभ्यां च सर्वोभयार्थे * **पर्यभिभ्याञ्चेति यदुच्यते तत्सर्वोभयार्थे द्रष्टव्यम्। यावत् सर्वतस्तावत् परितः। यावदुभयतस्तावद्—अभितः।**

यहाँ स्थानी 'तसेश्च' ५.३.८ की अनुवृत्ति है। 'प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिल्' ५.४.४४ से तसि प्रत्यय विहित है। परि और अभि से पर में तसि को तसिल् आदेश होता है। 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ से विधेयवचन 'तसिल्' भी अनुवृत्त है।

पर्यभिभ्यामिति। यहाँ परि पद को सर्व अर्थ में तथा अभि पद को उभय अर्थ में समझना चाहिये। तदनुकूल विग्रह दिखाते हैं—**यावदिति**। 'सर्वतः' से जो अर्थ उपस्थित होता है, 'परितः' से वही अर्थ उपस्थित होता है। 'उभयतः' से जो अर्थ उपस्थित होता है, 'अभितः' से वही अर्थ उपस्थित होता है। {पर्यभिभ्यां च}।

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५.३.१४

इह कस्मान्न भवति-सः। तौ। ते? * भवदादिभिर्योगे * **भवदादिभिर्योगे इति वक्तव्यम्। के पुनर्भवदादयः? भवान् दीर्घायुर्देवानांप्रिय आयुष्मानिति। स भवान्। तत्र भवान्। ततो भवान्। तं भवन्तम्। ततो भवन्तम्। तत्र भवन्तम्। तेन भवता। तत्र भवता। ततो भवता। तस्मै भवते। तत्र भवते। ततो भवते। तस्माद् भवतः। तत्र भवतः। ततो भवतः। तस्य भवतः। तत्र भवतः। ततो भवतः। तस्मिन् भवति। तत्र भवति। ततो भवति। स दीर्घायुः। तत्र दीर्घायुः। ततो दीर्घायुः। तं दीर्घायुषम्। तत्र दीर्घायुषम्। ततो दीर्घायुषम्। स देवानांप्रियः। तत्र देवानांप्रियः। ततो देवानांप्रियः। तं देवानांप्रियम्। तत्र देवानांप्रियम्। ततो देवानांप्रियम्। स आयुष्मान्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्रायुष्मान् । तत आयुष्मान् ।। तमायुष्मन्तम् । तत्रायुष्मन्तम् । तत आयुष्मन्तम् ।

यहाँ इतरपद से 'पञ्चम्यास्तसिल्' ५.३.७ में 'पञ्चम्याः' तथा 'सप्तम्यास्त्रल्' ५.३.१० में पठित 'सप्तम्याः' से भिन्नविभक्ति गृहीत है।

सूत्रार्थ—'पञ्चमी और सप्तमी से इतर विभक्ति से परमें भी तसिल् और त्रल् प्रत्यय देखे जाते हैं। 'स भावन्' इसी अर्थ में ततो भवान्' तथा 'तत्र भवान्' का प्रयोग होने से यहाँ प्रथमान्त से तसिल् और त्रल् है।

प्रश्नभाष्य—**इहेति**। यदि पञ्चमीविभक्ति से इतरविभक्ति से तसिल् और सप्तमीविभक्ति से इतरविभक्ति से परमें त्रल् देखे जाते हैं तो 'सः, तौ, ते' यह प्रथमान्तपद है; इससे परमें तसिल् आदि क्यों नहीं होते हैं।

उत्तरभाष्य—**भवदादिभिरिति**। भवत्, दीर्घायुः और देवानांप्रियः के योग होने पर ही इतरविभक्त्यन्त से परमें तसिल् और त्रल् होंगे, अन्यत्र नहीं। जैसे—'स भावन्' में भवत् का योग है; अतः यहाँ प्रथमान्त से भी तसिल् और त्रल् होकर 'ततो भावन्, तत्र भवान्' होगा। इसी तरह द्वितीयान्त और तृतीयान्त से भी होगा। इसे उदाहरणों से स्पष्ट किया है। मूल से ही सभी अर्थ गतार्थ हैं, अतः पुनरुक्ति के भय से यहाँ सभी का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। {**इतराभ्यो-**}।

अधुना ५.३.१७

अधुनेति किं निपात्यते? *इदमोऽश्भावो धुना च प्रत्ययः* इदमो वा लोपोऽधुना च प्रत्ययः* **इदमोऽश्भावो धुना च प्रत्ययः। अस्मिन् कालेऽधुना।** {अधुना}।

प्रश्नभाष्य—**अधनेति**। 'अधुना' में आप क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**इदमोऽशिति**। इदम्प्रकृति के स्थान पर अश् आदेश तथा 'धुना' प्रत्यय कर 'अस्मिन्' काले इस अर्थ में 'अधुना' यह निपातन है। अथ वा 'अस्मिन् काले' इस विग्रह में इदम्पद का लोप तथा 'अधुना'प्रत्यय का निपातन किया जा रहा है। {**अधुना**}।

दानीं च ५.३.१८

इदानीम्, इदमस्तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता भवतीत्येष स्वरः प्राप्नोति *दानीमिति निपातनात् स्वरसिद्धिः* **दानीमिति निपातनात् स्वरसि-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्भिर्भविष्यति। आद्युदात्तनिपातनं करिष्यते, स निपातनस्वरो विभक्ति-स्वरस्य बाधको भविष्यति *उक्तं वा* **उक्तं वा। किमुक्तम्?** *आदौ सिद्धमिति* {दानीं च}।

इदम् पद से दानीम् प्रत्यय तथा 'इदम इश्' ५.३.३ से इदम् के स्थान पर इश् आदेश होकर 'इदानीम्' रूप है।

'इदानीम्' में आद्युदात्तस्वर इष्ट है। जब कि 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' ६.१.१७१ से विभक्ति को उदात्तस्वर तथा 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से शेषनिघात के द्वारा पद अनुदात्तादि हो रहा है। जब कि इसे आद्युदात्त होना चाहिये, विभक्ति-उदात्त नहीं। इस तरह दानीम् प्रत्यय करने में स्वर दोष आ रहा है।

उत्तरपक्षी आचार्य इस दोष का वारण करते हैं—**दानीमिति**। 'इदानीम्' में हम निपातन के द्वारा आद्युदात्त करेंगे। यहाँ निपातनस्वर से विभक्तिस्वर का बाध हो जायेगा। अथ वा यहाँ दूसरा पक्ष भी बताते हैं—**उक्तं वेति**। हम दानीम् के स्थान पर इदानीम् प्रत्यय तथा इदम् को इश् आदेश कर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से उसका लोप करेंगे। इदम् से विभक्ति को उदात्तस्वर कहा है; वह 'आदेः परस्य' १.१.५४ के द्वारा प्रत्यय का आद्यवयव अच् को उदात्त होगा। इस तरह इदानीम् पद आद्युदात्त हो गया, जो इष्ट था। {दानीं च}।

तदो दा च ५.३.१९

तदो दावचनमनर्थकं विहितत्वात् **तदो दावचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'विहितत्वात्'। विहितोऽत्र दाप्रत्ययः-'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दे'ति।** {तदो दा च}।

यहाँ 'च'करण से 'दानीं च' ५.३.१८ से 'दानीम्' की भी अनुवृत्ति है; अतः सप्तम्यन्त कालवाचि तद् पद से दानीम् और दा ये दोनों प्रत्यय होंगे। तस्मिन् काले इति तदानीम्, तदा।

एकदेशी आचार्य इस सूत्र का खण्डन करते हैं—**तदो दावचनमिति**। 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' ५.३.१५ के द्वारा तद् पद से परमें दा प्रत्यय का विधान है; अतः 'तदा' की सिद्धि हो जायेगी। इसके लिए 'तदो दा च' से किया गया दा प्रत्यय व्यर्थ है।

वस्तुतः 'तदोऽदा च' ऐसा पदच्छेद करना चाहिये। सूत्रकार ने यहाँ अदा प्रत्यय कर तदा की सिद्धि की है। एवं 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' ५.३.१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा दा प्रत्यय कर तदा की सिद्धि की है। अदा और तदा में स्वरभेद है। अदा प्रत्यय करने पर तदा शब्द आद्युदात्त होगा। परन्तु दा प्रत्यय करने पर अन्तोदात्त होगा। {तदो दा च}।

तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि ५.३.२०

* तयोरिति प्रातिपदिकनिर्देशः * **तयोरिति प्रातिपदिकनिर्देशोऽत्र द्रष्टव्यः। द्वेष्यं विजानीयाद् योगयोर्वा प्रत्यययोर्वेति। तदाचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे—'तयोरिति प्रातिपदिकनिर्देश' इति।** {तयोर्दार्हिलौ च}।

तयोरिति। यहाँ 'तयोः' के द्वारा पूर्वसूत्र से गृहीत इदम् और तद् प्रातिपदिक का ग्रहण है। उससे वेद में क्रमशः सप्तम्यन्त कालवाचि इदम् और तद् से क्रमशः दा और र्हिल् प्रत्यय होगा। अस्मिन् काले इति इदा। तस्मिन् काले इति तर्हि। यहाँ 'तयोः' से प्रत्यय का ग्रहण हो, अथ वा प्रातिपदिक का, यह सन्देह होने पर आचार्य ने शिष्यों के आशुबोधार्थ 'तयोः' से प्रातिपदिक का निर्देश है' ऐसा स्पष्ट कर दिया है। {तयो-}।

सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरि-तरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ५.३.२२

सद्य इति किं निपात्यते? * समानस्य सभावो द्यश्चाऽहनि * **समानस्य सभावो निपात्यते द्यश्च प्रत्ययोऽहन्यभिधेये। समानेऽहनि सद्यः।**

'सद्यः' आदि पद निपातित हैं। इसके विषय में जिज्ञासा करते हैं—**सद्य इतीति**। 'सद्यः' यह क्या निपातित है।

उत्तरभाष्य—**समानस्येति**। 'समानेऽहनि' इस विग्रह में समान को सादेश तथा अहनि अर्थ में द्यस् प्रत्यय का निपातन है।

परुत्पररारीति किं निपात्यते? * पूर्वपूर्वतरयोः परभाव उदारी च संवत्सरे * **पूर्वपूर्वतरयोः परभावो निपात्यते उदारी च प्रत्ययौ संवत्सरेऽभिधेये। पूर्वस्मिन् संवत्सरे परुत्। पूर्वतरे वत्सरे परारि।**

जिज्ञासु आचार्य—**परुत्परारीति**। परुत् और परारि में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**पूर्वपूर्वेति**। सप्तम्यन्त संवत्सरवाचि पूर्व पद से उत् प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा पूर्व पद को परभाव निपातित है। पूर्वस्मिन् संवत्सरे इति परुत्। सप्तम्यन्त संवत्सरवाचि पूर्वतर पद से आरि प्रत्यय तथा प्रकृति को परभाव निपातित है। जैसे—'पूर्वतरे संवत्सरे परारि'।

ऐषम इति किं निपात्यते? *इदमः समसण्* **इदमः समसण् प्रत्ययो निपात्यते संवत्सरेऽभिधेये। अस्मिन् संवत्सरे ऐषमः। परेद्यवीति किं निपात्यते?** *परस्मादेद्यव्यहनि* **परस्मादेद्यविप्रत्ययो निपात्यतेऽहन्यभिधेये। परस्मिन्नहनि परेद्यवि। अद्येति किं निपात्यते?** *इदमोऽश्भावो द्यश्च* **इदमोऽश्भावो निपात्यते द्यश्च प्रत्ययोऽहन्यभिधेये। अस्मिन्नहनि अद्य। पूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युरिति किं निपात्यते?** *पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युसुच्* **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युसुच् प्रत्ययो निपात्यतेऽहन्यभिधेये। पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः। अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः। अन्यतरस्मिन्नहनि अन्यतरेद्युः। इतरस्मिन्नहनि इतरेद्युः। अपरस्मिन्नहनि अपरेद्युः। अधरस्मिन्नहनि अधरेद्युः। उभयोरह्नोः उभयेद्युः। उत्तरस्मिन्नहनि उत्तरेद्युः** *द्युश्चोभयात्* **उभयशब्दाद् द्युश्च वक्तव्यः। तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युः।**

जिज्ञासु आचार्य—**ऐषम इतीति**। 'ऐषमः में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**इदम इति**। संवत्सर वाच्य होने पर इदम्पद को इश् आदेश तथा समसँण् प्रत्यय निपातित है। अस्मिन् संवत्सरे इति ऐषमः।

जिज्ञासु आचार्य—**परेद्यवीति**। परेद्यवि में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**परस्मादिति**। अहन् अर्थ वाच्य होने पर पर पद से एद्यवि प्रत्यय का निपातन है—परस्मिन्नहनि परेद्यवि।

जिज्ञासु आचार्य—**अद्य इतीति**। अद्य में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**इदम इति**। अहन् अर्थ वाच्य होने पर इदम् को अश्भाव तथा द्य प्रत्यय का निपातन है-अस्मिन्नहनि इति अद्य।

जिज्ञासु आचार्य—**पूर्वेद्युरिति**। पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**पूर्वान्येति**। अहन् अर्थ वाच्य होने पर सप्तम्यन्त पूर्व, अन्य, अन्यतर, इतर, अपर, अधर, उभय और उत्तर पद से एद्युसुँच् प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का निपातन है। पूर्वस्मिन्नहनि इति पूर्वेद्युः। इसी तरह 'अन्येद्युः' इत्यादि भी होंगे।

वार्तिककार—**द्युश्चोभयादिति**। अहन् अर्थ वाच्य होने पर उभय पद से द्यु प्रत्यय भी कहना चाहिये। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युः। उभयस्मिन्नहनि इति उभयेद्युः। {सद्यःपरुत्-}।

दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ५.३.२७

इह कस्मान्न भवति—'पूर्वस्मिन् देशे वसती'ति? नैष देशो, देशविशेषणमेतत्। {दिक्शब्देभ्यः सप्तमी}।

'दिशां शब्दा दिक्शब्दास्तेभ्यः'। यहाँ, रूढिशक्ति के द्वारा दिक् का वाचक पूर्व, पश्चिम आदि शब्द ही गृहीत हैं, ऐन्द्र आदि यौगिक नहीं। यदि उपलक्षण-विधया गृहीत दिग्वाची का ग्रहण किया जाये तो 'पूर्वस्मिन् गुरौ वसति' में पूर्व पद से भी प्रत्यय की अनिष्टापत्ति होगी। 'पूर्वस्मिन् गुरौ वसति' में देश अथ वा काल के सन्दर्भ से पूर्व पद गुरु अर्थ में है; उससे प्रत्यय न हो, इसके लिए 'दिग्देशकालेषु' यह विशेषण दिया गया है; अतः दिग्, देश और काल अर्थ में शक्त दिग्वाची पूर्व आदि ही लिये जायेंगे। यद्यपि यहाँ सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा इन तीन विभक्तियों का दिक्, देश और काल, यह तीन उपाधियों का ग्रहण होने से साम्य है, तथापि स्वरितत्वप्रतिज्ञा नहीं होने से यहाँ यथासंख्य नहीं लिया जायेगा। जैसे पूर्व आदि शब्द स्वभावतः दिक् अर्थ में शक्त हैं, वैसे देश और काल अर्थ में भी शक्त हैं। जैसे काल अर्थ में शक्त पूर्व आदि पद दिक् अर्थ की अपेक्षा नहीं करते हैं, वैसे देश अर्थ में शक्त पूर्व आदि पद दिक् अर्थ की भी अपेक्षा नहीं रखेंगे। यद्यपि 'प्रत्यर्थं शब्दा भिद्यन्ते' इस न्याय से भिन्न-भिन्न दिग्, देश, काल अर्थों में भिन्न-भिन्न पूर्व आदि पद हैं, तथापि आनुपूर्वी सादृश्य होने से 'दिक्शब्देभ्यः' ऐसा प्रयोग किया गया है।

सूत्रार्थ—'दिक् अर्थ में रूढ सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिग्, देश और कालवाची से अस्ताति प्रत्यय हो'। यहाँ प्रत्यय का अर्थनिर्देश नहीं है, अतः यह स्वार्थ में होगा। जैसे 'पूर्वस्याम् पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक् पुरस्तात्'। 'पूर्वाधरावराणामसि पुरवधश्चैषाम्' ५.३.३९ से पूर्व को पुर् आदेश है।

प्रश्नभाष्य—**इहेति**। आप दिक् अर्थ में रूढ पूर्व आदि से दिक्, देश और काल वाच्य होने पर प्रत्यय कह रहे हैं। 'पूर्वस्मिन् देशे वसति' में पूर्वपद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देश अर्थ में रूढ है, उससे प्रत्यय क्यों नहीं होता है?

समाधानभाष्य—**नैष दोष इति**। यहाँ पूर्व पद देश अर्थ में शक्त नहीं है, अपि तु देश में विशेषण है। जहाँ दिक् अर्थ में रूढ पूर्व आदि पद देश आदि अर्थो में विशेष्य होंगे, वहीं पर प्रत्यय होगा। प्रकृत में पूर्व पद देश अर्थ में विशेषण है, विशेष्य नहीं; अतः यहाँ प्रत्यय नहीं होता है। {**दिक्शब्देभ्यः**-}।

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ५.३.२८

किमर्थमतसुच् क्रियते न तसुरेव क्रियेत? तत्रायमप्यर्थः स्वरार्थश्चकारो न कर्त्तव्यो भवति, प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धम्। का रूपसिद्धिः—दक्षिणतो ग्रामस्य, उत्तरतो ग्रामस्य? दक्षिणोत्तरशब्दावकारान्तौ तसुशब्दः प्रत्ययः। भवेत् सिद्धं यदाऽकारान्तौ, यदा तु खल्वाकारान्तौ तदा न सिध्यति। तदापि सिद्धम्। कथम्? पुंवद्भावेन। कथं पुवंद्भावः? 'तसिलादिष्वाकृत्वसुच' इति। न सिध्यति, भाषितपुंस्कस्य भुंवद्भावो, न चैतौ भाषितपुंस्कौ।

'सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' ५.३.२७ की अनुवृत्ति है। 'अस्तातिः' ५.३.२७ का अपवाद अतसुच् विधेय है।

सूत्रार्थ—'सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिग्देशकालवाची दक्षिणा और उत्तरा पद से अतसुँच् प्रत्यय हो'। दक्षिणस्यां-दक्षिणस्या दक्षिणा वा दिग् दक्षिणतः। उत्तरस्यां उत्तरस्या उत्तरा वा दिग् उत्तरतः।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। सूत्रकार ने दक्षिणा और उत्तरा पद से अतसुँच् प्रत्यय किया है। उन्हें अतसुँच् के स्थान पर मात्र तसुँ प्रत्यय ही करना चाहिये था। प्रत्यय को चित् पढा है, उसका प्रयोजन 'चितः' ६.१.१६३ से अन्तोदात्त है। वह प्रत्ययस्वर से भी सिद्ध हो जायेगा। अदन्त दक्षिण और उत्तर पद से तसुँ प्रत्यय करने पर ही 'दक्षिणतः, उत्तरतः' की सिद्धि हो जायेगी। इस तरह जब लघुप्रत्ययविधान से कार्य हो जा रहा था, तब आचार्य ने गुरुमात्रा अतसुँच् का विधान क्यों किया है?

अन्य आचार्य—**भवेत्सिद्धमिति**। अदन्त प्रातिपदिक दक्षिण और उत्तर से 'दक्षिणतः, उत्तरतः' की सिद्धि हो जायेगी। परन्तु आबन्त प्रातिपदिक दक्षिणा और उत्तरा से तसुँ प्रत्यय करने पर दीर्घघटित रूप होने लगेगा, जब कि यहाँ ह्रस्वघटित रूप इष्ट है। जब अतसुँच् करते हैं तब पुंवद्भाव होने से आदन्त से भी ह्रस्वघटित रूप ही होता है, अतः आचार्य ने तसुँ प्रत्यय न पढ कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतसुँच् प्रत्यय पढा है। तसुँप्रत्ययपक्ष में आदन्त से भी रूपसिद्धि बताते हैं— **तदापीति**। 'तसिलादिष्वाकृत्वसुचः' ६.३.३५ से पुंवद्भाव होकर आप् प्रत्यय की निवृत्ति हो जायेगी; अतः आदन्त से तसुँ प्रत्यय करने पर भी 'दक्षिणतः, उत्तरतः' रूप ही होगा।

खण्डनभाष्य—**न सिध्यतीति**। 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु' ६.३.३४ सूत्र से 'भाषितपुंस्कात्' पद की 'तसिलादिष्वाकृत्वसुचः' ६.३.३५ सूत्र में अनुवृत्ति होती है, अतः भाषितपुंस्क का ही पुंवद्भाव होता है। जैसे—'बह्वीषु इति बहुत्र। बह्व्या इति बहुतः'। दक्षिणा और उत्तरा पद भाषितपुंस्क नहीं है, अतः यहाँ पुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। इस तरह तसुँ प्रत्यय करने पर 'दक्षिणातः, उत्तरातः' की आपत्ति होगी।

ननु च भो दक्षिणशब्द उत्तरशब्दश्च पुंसि भाष्येते। 'समानायामाकृतौ तद् भाषितपुंस्क'मित्युच्यते, आकृत्यन्तरे चैतौ भाषितपुंस्कौ, दक्षिणोत्तरेति दिक्छब्दौ, दक्षिण उत्तर इति व्यस्थाशब्दौ। यदि पुनर्दिक्शब्दा अपि व्यवस्थाशब्दाः स्युः।

आक्षेपभाष्य—**ननु चेति**। अदन्त दक्षिण और पद पुल्लिङ्ग में है। इस तरह दक्षिणा और उत्तरा में भाषितपुंस्क है, अतः इसे पुंवद्भाव होगा। इस तरह तसुँप्रत्ययपक्ष में भी पुंवद्भाव से ह्रस्वघटितरूप ही होगा।

खण्डनभाष्य—**समानायामिति**। **आकृतौ**=प्रवृत्तिनिमित्तरूपजाति के एक होने पर ही पुंवद्भाव होता है; जब कि दक्षिण और उत्तर अदन्त पद तथा दक्षिणा और उत्तरा आदन्त पद भिन्न-भिन्न प्रवृत्तिनिमित्त वाले हैं। आदन्त दक्षिणा और उत्तरा पद दिग्वाची है, तथा अदन्त दक्षिण और उत्तर पद **व्यवस्था**=मर्यादावाची है। इस तरह **आकृति**=जाति के भिन्न होने से यहाँ पुंवद्भाव सम्भव नहीं हो सकेगा।

इतर आचार्य—**यदि पुनरिति**। दिग् अर्थ में रूढ पूर्व आदि सभी पदों को **व्यस्थाशब्दाः**=मर्यादार्थक मान लिया जाये तो?

कथं यानि दिगुपदिष्टानि कार्याणि? दिशो यदा व्यवस्थां वक्ष्यन्ति। यदि तर्हि यो यो दिशि वर्त्तते स स दिक्शब्दो, रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवति—रमणीया दिक्, शोभना दिगिति।

आक्षेपक आचार्य—**कथमिति**। यदि सभी दिग्शब्दों को व्यवस्था=आकाश की तरह एक ही दिशा अर्थ को औपाधिकभेद मान लेंगे तो **दिगुपदिष्टानि**=

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिक् अर्थ में शक्त दिग्वाचक पूर्व आदि पदों से जो अस्ताति ५.३.२७ प्रत्यय है, वह कैसे सिद्ध होगा? इस तरह दिक्शब्द को व्यवस्थार्थक मानने में अस्ताति आदि की अप्राप्ति रहेगी। अथ च एक ही दिक्पदार्थ को व्यवस्था=आकाशवद् औपाधिकभेद मानेंगे तो इस पक्ष में अतिव्याप्ति होगी। वह इस तरह कि जो-जो शब्द दिग् अर्थ में होंगे, उन-उन सभी से अस्ताति ५.३.२७ आदि प्रत्ययों की अतिव्याप्ति होने लगेगी। जैसे 'रमणीया दिक्, शोभना दिक्'। गुणक्रियानिमित्त रमणीय आदि शब्द दिग् अर्थ में वर्त्तमान होकर दिक्शब्द से व्यवहृत होंगे। इस तरह यहाँ रमणीय और शोभन पद से अस्ताति प्रत्यय की आपत्ति होगी।

अथ मतमेतद्-'दिशि दृष्टो दिग्दृष्ट, दिग्दृष्टः शब्दो दिक्शब्द इति, दिशं यो न व्यभिचरति, न रमणीयादिष्वतिप्रसङ्गो भवति। पुंवद्भावस्तु न प्राप्नोति। एवं तर्हि * सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो दक्षिणोत्तरपूर्वार्थम् * **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यः। दक्षिणोत्तरपूर्वाणामित्येवमर्थम्। विशेषणार्थस्तर्हि। क्व विशेषणार्थेनार्थः? 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेने'ति। 'षष्ठी तसर्थप्रत्ययेने'त्युच्यमाने इहापि स्यात्—ततो ग्रामात्। यतो ग्रामादिति।** {दक्षिणोत्तराभ्याम्}।

अन्य आचार्य इस अतिव्याप्ति का वारण करते हैं—**अथ मतमेतदिति**। 'दिक्शब्देभ्यः' ५.३.२७ में दिक्शब्द पद से 'दिशि दृष्टो दिग्दृष्टः, दिग्दृष्टश्चासौ शब्दश्च दिक्शब्दः' में सौत्रत्वाद् मध्यमपदलोपी समास है। इससे दिक्शब्द के द्वारा वही शब्द लिया जायेगा जो कभी भी दिग् अर्थ को व्यभिचरित नहीं करता हो, अर्थात् स्वभावतः दिग् अर्थ में हो, उसी से अस्ताति आदि प्रत्यय होंगे। परन्तु रमणीय, शोभन आदि पद दिग् अर्थ से अन्य अर्थों में भी व्यभिचरित हैं। जैसे 'रमणीयं काव्यं, शोभनं कृत्यम्' इत्यादि। अतः रमणीय और शोभन आदि से अस्ताति आदि की आपत्ति निरस्त हो गयी।

अन्य आचार्य—**पुंवद्भावस्त्विति**। अतिव्याप्ति दूर होने पर भी यदि अतसुँच् के स्थान पर तसुँ प्रत्यय करेंगे तो आदन्त दक्षिणा और उत्तरा से प्रत्यय करने पर 'दक्षिणातः, उत्तरातः' रूप की आपत्ति होगी। यहाँ भाषितपुंस्क नहीं होने से पुंवद्भाव नहीं हो सकेगा। यहाँ पुंवद्भाव अप्राप्त है; अतः पुंवद्भावविधानार्थ अतिरिक्त वचन पढते हैं—**एवं तर्हीति**। दक्षिणा, उत्तरा और पूर्वा पद को पुंवद्भाव करने के लिए सर्वनाम को **वृत्तिमात्रे**=तद्धितवृत्ति और समासवृत्ति में पुंवद्भाव कहना चाहिये। समान आकृति की अपेक्षा नहीं करता हुआ यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुंवद्भाव है। चूँकि वृत्तिमात्र में सर्वनाम को पुंवद्भाव कहा है; अतः 'दक्षिणा च उत्तरा च पूर्वा चेति दक्षिणोत्तरपूर्वास्तेषां दक्षिणोत्तरपूर्वाणां पदानाम्' में भी पुंवद्निर्देश है। इस तरह अतसुँच् प्रत्यय के स्थान पर तसुँ प्रत्यय पढ देने पर भी कोई दोष नहीं रह रहा है।

अब प्रयोजनवादी आचार्य अतसुँच् प्रत्यय पढे जाने का प्रयोजन सिद्ध करते हैं—**विशेषणार्थ इति**। विशेषण के लिए अतसुँच् प्रत्यय पढना चाहिये। आचार्य 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० सूत्र पढते हैं। दिग्देशकालरूप अर्थ में अतसुँच्प्रत्यय विहित है। इन्हीं अर्थों में जो प्रत्यय हों, उसे अतसर्थप्रत्यय कहेंगे। उनके योग में षष्ठीविभक्ति होती है। जैसे 'ग्रामस्य दक्षिणतः, ग्रामस्य उत्तरतः, पुरः, पुरस्तात्। उपरि, उपरिष्ठात्'। यदि आचार्य प्रकृतसूत्र में अतसुँच् के स्थान पर तसुँ प्रत्यय का विधान करते तथा 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' २.३.३० सूत्र के स्थान पर 'षष्ठी तसर्थप्रत्ययेन' ऐसा पढते तो 'ग्रामस्य दक्षिणतः' इत्यादि में षष्ठी की सिद्धि हो जाती, परन्तु 'ततो ग्रामाद्, यतो ग्रामाद्' में 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ के द्वारा अन्य आदि के योग में प्राप्त पञ्चमी का बाध कर षष्ठी की आपत्ति होने लगेगी। परन्तु यदि यहाँ पर ग्राम को अपादानत्व के रूप में विवक्षा करेंगे तो 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' इस न्याय से 'षष्ठी तसर्थप्रत्ययेन' ऐसा सूत्र करने पर भी ग्राम पद के अनन्तर पञ्चमी ही होगी, षष्ठी नहीं। {**दक्षिणो-**}।

उपर्युपरिष्टात् ५.३.३१

उपर्युपरिष्टादिति किं निपात्यते? * ऊर्ध्वस्योपभावो रिल्-रिष्टातिलौ च * **ऊर्ध्वस्योपभावो रिल्-रिष्टातिलौ च प्रत्ययौ निपात्येते। उपरि। उपरिष्टात्।**

'सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु' ५.३.२७ की अनुवृत्ति है।

प्रश्नभाष्य—**उपरीति**। 'उपरि, उपरिष्टात्' में आप क्या निपातन कर रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**ऊर्ध्वस्येति**। सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त ऊर्ध्वपद से रिल् और रिष्टातिल् प्रत्यय तथा प्रकृति ऊर्ध्व को उप आदेश का निपातन किया जा रहा है। ऊर्ध्वे-ऊर्ध्वात्-ऊर्ध्वमिति उपरि-उपरिष्टात्। {**उपर्युपरिष्टात्**}।

पश्चात् ५.३.३२

पश्चादिति किं निपात्यते? * अपरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययः * **अपरस्य पश्चभावो निपात्यते, आतिश्च प्रत्ययः। पश्चात् *** दिक्पूर्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदस्य च * दिक्पूर्वपदस्याऽपरस्य पश्चभावो वक्तव्यः आतिश्च प्रत्ययः। दक्षिणपश्चात्। उत्तरपश्चात् * अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे * अर्द्धोत्तरपदस्य च समासेऽपरस्य पश्चभावो वक्तव्यः। दक्षिणपश्चार्द्धः। उत्तरपश्चार्द्धः * अर्द्धे च * अर्द्धे च परतोऽपरस्य पश्चभावो वक्तव्यः। पश्चार्द्धः। {पश्चात्}।

प्रश्नभाष्य—**पश्चादिति**। 'पश्चात्' में क्या निपातन है?

उत्तरभाष्य—**अपरस्येति**। अपर को पश्च आदेश तथा अस्ताति प्रत्यय के विषय में आति प्रत्यय का निपातन है—पश्चात्। यहाँ लिङ्गविशिष्टपरिभाषा से अपरा को भी पश्चभाव तथा उससे आति प्रत्यय समझना चाहिये। **दिक्पूर्वपदस्येति**। दिग् अर्थ में रूढ पूर्व पद है जिससे, ऐसा जो अपर और अपरा पद, उससे भी आति प्रत्यय तथा प्रकृति को पश्चभाव कहना चाहिये। जैसे 'दक्षिणपश्चात्। उत्तरपश्चात्'। **अर्द्धोत्तरपदस्येति**। यहाँ पूर्व वार्तिक से 'दिक्पूर्वपदस्य' की भी अनुवृत्ति है। दिक्पूर्वपद पद तथा अर्द्ध उत्तरपद रहते समासकुक्षि में यदि अपर पद मध्य में हो तो अपर से पर में आति प्रत्यय तथा अपर को पश्च आदेश कहना चाहिये। जैसे—'दक्षिणपश्चार्द्धः। उत्तरपश्चार्द्धः'। **अर्द्धे चेति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'समासे' इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति है। समास में अर्द्ध पद से अव्यवहितपूर्वत्व अपर पद से आति प्रत्यय तथा प्रकृति को पश्च आदेश कहना चाहिये। जैसे 'पश्चार्द्धः'। {**पश्चात्**}।

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ५.३.३५

* अपञ्चम्या इति प्रागसेः * **अपञ्चम्या इति यदुच्यते प्रागसेस्तद् द्रष्टव्यम्। द्वेष्यं विजानीयाद्—अविशेषेणेत उत्तरमपञ्चम्या इति; तदाचार्यः सुहृद्भूत्वाऽन्वाचष्टे—अपञ्चम्या इति प्रागसेरिति। {एनबन्यतरस्यामदूरे}।**

'उत्तराधरदक्षिणादातिः' ५.३.३४ से 'उत्तराधरदक्षिणात्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अवधि और अवधिमान् का सामीप्य गम्य होने पर अपञ्चम्याः= पञ्चम्यन्त से भिन्न उत्तर, अधर औा दक्षिण पद से विकल्प से एनप् हो'। उत्तरः, उत्तरम्, उत्तरेण, उत्तराय, उत्तरस्य, उत्तरस्मिन् वेति उत्तरेण। इसी तरह 'अधेरण, दक्षिणेन'। पक्ष में आति प्रत्यय होकर 'उत्तराद्, अधराद्, दक्षिणात्' रूप भी होगा। यहाँ कोई-कोई आचार्य 'उत्तराधरदक्षिणात्' की अनुवृत्ति नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हैं। उनके मत में दिक्शब्दमात्र से एनप् प्रत्यय होगा—'पूर्वेण ग्रामम्, अपरेण ग्रामम्'।

'अपञ्चम्याः' यह सामान्यनिषेध कहाँ तक है?, यह पता नहीं चल पा रहा है; अतः शिष्यों पर अनुग्रह करने के लिए आचार्य ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि 'पूर्वाधरावराणामसि पुरवधश्चैषाम्' ५.३.३९ सूत्र से पूर्व तक, यानि 'उत्तराच्च' ५.३.३८ पर्यन्त 'अपञ्चम्याः' का अधिकार रहेगा। {एनब-}।

दक्षिणादाच् ५.३.३६

किमर्थश्चकारः? स्वरार्थः। 'चितोऽन्त उदात्तो भवती'त्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। एकाजयं, तत्र नाऽर्थः स्वरार्थेन चकारेणाऽनुबन्धेन, प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धम्। विशेषणार्थस्तर्हि। क्व विशेषणार्थेनाऽर्थः? 'अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते'। {दक्षिणादाच्}।

यहाँ 'अपञ्चम्याः' ५.३.३५ यह निषेधवचन प्रवृत्त होगा।

सूत्रार्थ—'पञ्चम्यन्तभिन्न दक्षिण पद से अस्ताति ५.३.२७ के विषय में आच् प्रत्यय हो'। दक्षिणः, दक्षिणम्, दक्षिणेन, दक्षिणाय, दक्षिणस्य दक्षिणे वा दक्षिणा। 'अपञ्चम्याः' निषेध होने से पञ्चम्यन्तविग्रहस्थल 'दक्षिणादागतः' में वाक्या ही रहेगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आचार्य प्रत्यय को चित् क्यों पढ रहे हैं?

उत्तरभाष्य—**स्वरार्थ इति**। 'चितः' ७.१.१६३ से अन्तोदात्त हो सके, इसके लिए चित्करण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। आच् यह वर्णमात्र है। वह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त हो जायेगा; अतः उसके लिए चित्करण व्यर्थ है।

उत्तरभाष्य—**विशेषणार्थ इति**। विशेषण के लिए यहाँ 'च'करण है। 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' २.३.२९ में आच् का ग्रहण किया है। यदि वहाँ चित् नहीं रखेंगे तो आमात्र के योग में प्रञ्चमी प्राप्त होने लगेगी; अतः व्यावर्त्तन के लिए चकारकरण है। {दक्षि-}।

संख्याया विधार्थे धा ५.३.४२

'विधार्थ' इत्युच्यते; को विधार्थो नाम? विधाया अर्थो विधार्थः। यद्येवम्—एका गोविधा एका हस्तिविधा, अत्रापि प्राप्नोति। एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तर्हि, * धाविधानं धात्वर्थपृथग्भावे * धाविधानं धात्वर्थपृथग्भाव इति वक्तव्यम् ।

सूत्रार्थ—'क्रियाप्रकारक अर्थ में शक्त संख्याशब्द से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो'। चतुष्प्रकारा गमनक्रियेति चतुर्धा। इसी तरह 'पञ्चधा। नवधा।

प्रश्नभाष्य—**विधार्थ इतीति**। विधार्थ में धा प्रत्यय कहा जा रहा है। विधार्थ क्या है? प्रश्न में हेतु यह है कि यदि विधाशब्द को स्त्रीलिङ्ग में ग्रहण करेंगे तो वह अनेकार्थक होगा तथा उससे अनिष्टप्रत्ययों की भी आपत्ति होने लगेगी। परन्तु यदि 'विधानं विधः' ऐसा विग्रह में विपूर्वक धा धा.पा.१०९२ धातु से 'घञर्थे कविधानम्' वा.३.३.५८ से भाव में 'क' प्रत्यय का निर्देश मान कर अदन्त विधशब्द मानेंगे तो वह मात्र एकार्थक होगा; अतः उससे अनिष्ट में प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी। इस तरह आदन्त से 'विधाया अर्थः विधार्थः' तथा अदन्त से 'विधस्याऽर्थो विधार्थः' ऐसा दोनों अर्थ सम्भव है, फिर प्रकृत में क्या लिया जाये?

एकदेशी आचार्य—**विधाया अर्थ इति**। यहाँ आबन्त से षष्ठीसमास कर 'विधाया अर्थो विधार्थस्तस्मिन्' ऐसा अर्थ करेंगे।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि प्रकृत में आदन्त विधापद का ग्रहण करेंगे तो 'एका गोविधा, एका हस्तिविधा' में भी एक पद से धा प्रत्यय की आपत्ति होगी। यहाँ विध पद अन्न अर्थ का वाचक है।

मध्यमसिद्धान्ती—**एवं तर्हीति**। विपूर्वक धा धा.पा.१०९२ धातु 'विधानं विधः' ऐसा घञर्थ में 'क' वा.३.३.५८ प्रत्यय है। इस तरह 'विधानं विधः' में धा धातु धात्वर्थपृथग्भाव अर्थ में शक्त है। 'एका गो विधा' आदि में **धात्वर्थ-पृथग्भाव**=धात्वर्थभेद नहीं कहा जा रहा है; अतः यहाँ संख्यावाचि एक पद से धा प्रत्यय की आपत्ति नहीं होगी।

कः पुनर्धात्वर्थपृथग्भावः? किं यत्तद्देवदत्तः कंसपात्र्यां पाणिनौदनं भुङ्क्ते इति? नेत्याह—कारकपृथक्त्वमेतत्। यत्तर्हि तत्कल्ये भुङ्क्ते सायं भुङ्क्त इति? नेत्याह-कालपृथक्त्वमेतत्। यत्तर्हि शीतं भुङ्क्ते उष्णं भुङ्क्ते इति? नेत्याह—गुणपृथक्त्वमेतत्। कस्तर्हि धात्वर्थ-पृथग्भावः? कारकाणां प्रवृत्तिविशेषः क्रिया। यद्येवं क्रियाप्रकारेऽयं भवति विधयुक्तगताश्च प्रकारे भवन्ति। एवंविधम्। एवंयुक्तम्। एवङ्गतम्। एवंप्रकारमिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य आचार्य—**कः पुनरिति**। आप वार्तिकमुखेन 'धात्वर्थपृथग्भावे' ऐसा कह रहे हैं। यहाँ धात्वर्थ पद से 'धातुकृतोऽर्थः धात्वर्थः'=कारक विवक्षित है, अथ वा 'धातोरर्थः धात्वर्थः'=क्रियारूप अर्थ विवक्षित है? क्या 'देवदत्तः कंसपात्र्यां पाणिनौदनं भुङ्क्ते' यह धात्वर्थपृथग्भाव है?

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। यहाँ प्रथमान्त, सप्तम्यन्त, तृतीयान्त और द्वितीयान्त यह कारक का पार्थक्य कहा जा रहा है। यह धात्वर्थपृथग्भाव नहीं है।

प्राश्निक आचार्य—**यत्तर्हीति**। तो क्या 'कल्ये भुङ्क्ते, सायं भुङ्क्ते' में धात्वर्थ- पृथग्भाव है? यद्यपि यहाँ **कल्य**=दिवामुख (प्रातःकाल) तथा सायम् में वही भोजनक्रिया है; तथापि कालभेद से एक ही क्रिया में भेद मान कर पूर्वपक्ष है।

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। यहाँ धात्वर्थभेद नहीं है, अपि तु कालभेद है, अतः प्रत्यय नहीं होगा।

प्राश्निक आचार्य—**यत्तर्हीति**। 'शीतं भुङ्क्ते, उष्णं भुङ्क्ते' में क्रियाभेद मान कर धा प्रत्यय करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**नेत्याहेति**। यह गुणभेद है, क्रियाभेद नहीं।

प्रश्नभाष्य—**कस्तर्हीति**। फिर धात्वर्थभेद क्या है?

सिद्धान्ती—**कारकाणामिति**। क्रिया का जनक कारकों का प्रवृत्तिविशेष धात्वर्थ है, उसे क्रिया कहते हैं। उसी का पार्थ्यक्य गम्य होने पर संख्याशब्द से धा प्रत्यय होगा। जैसे—'पञ्चधा भुङ्क्ते, नवधा रोदिति, चतुर्धा हसति'। मध्यमसिद्धान्ती ने 'धाविधानं धात्वर्थपृथग्भावे' कहा था, उसका खण्डन करते हैं—**यद्येवमिति**। यदि कारकों का **प्रवृत्तिविशेष**=क्रिया का भेद वाच्य होने पर आप धा प्रत्यय कह रहे हैं तो सूत्र से ही क्रियाभेद अर्थ में प्रत्यय का विधान हो जायेगा। इसके लिए पृथग् वार्तिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इसका भाव इस प्रकार समझना चाहिये—सामान्य का व्यावर्त्तक विशेषण होता है। जैसे 'नीलमुत्पलम्'। गुण, काल और कारकभेद में कोई सामान्य नहीं है, जिसका व्यावर्त्तक विशेषण दिया जा सके; अतः पारिशेष्यात् क्रियासामान्य का ग्रहण होने से क्रियाभेद में ही विशेष प्रकार कहा जा रहा है। इस तरह सूत्र से ही धात्वर्थ-पृथग्भाव अर्थ की उपस्थिति हो रही है। इसी के लिए अतिरिक्त वार्तिक व्यर्थ है। अथ च विधयुक्तगत वाक्य क्रियाभेद में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे 'एवंविधम्। एवंगतम्। इन सभी वाक्यों से 'एवंप्रकारम्' यही अर्थबोध होता है।

यदि सूत्रन्यासपक्ष में 'अस्य पञ्चप्रकारः श्लोकः' इस अर्थ में 'पञ्चधा श्लोकाः' ऐसा धाप्रत्ययान्त तथा वार्तिकन्यासपक्ष में 'एकधा भुङ्क्ते' में क्रियाभेद का अभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान कर प्रत्यय की अनुत्पत्ति कही जाये, इस तरह सूत्रपक्ष और वार्तिकन्यासपक्ष में फलभेद हो गया, फिर वार्तिक को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता है, तो यह पक्ष उचित नहीं है। वह इस तरह कि 'पञ्चधा श्लोकाः' में क्रियापद का प्रयोग नहीं होने पर भी 'अस्ति' क्रियापद का सामानाधिकरण्य होने से क्रियाभेद हो जायेगा। 'एकधा भुङ्क्ते' में अनेकप्रकार भोजनक्रिया की अपेक्षा एकप्रकारक भुजिक्रिया का पार्थक्य है; अतः यहाँ भी वार्तिकमत में प्रत्यय उत्पन्न हो जायेगा। 'एकः पाकः' में प्रकार अविवक्षित है; अतः प्रत्यय नहीं होगा। परन्तु यदि प्रकारविवक्षा कर ली जाये तो यहाँ भी प्रत्यय होकर 'एकधा पाकः' ऐसा प्रयोग होगा। 'पञ्च पाकाः' में भिन्न-भिन्न पाक है। यहाँ एक ही पाकक्रिया का पञ्चप्रकारत्व विवक्षित नहीं है; अतः यहाँ प्रत्यय नहीं होगा। परन्तु जहाँ एक ही पाक का पञ्चप्रकारत्व विवक्षित होगा वहाँ धाप्रत्यय होकर 'पञ्चधा पाकः' ऐसा प्रयोग होगा। {संख्याया-}।

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ५.३.४४

* सहभावे ध्यमुञ् * **सहभावे ध्यमुञ् वक्तव्यः। ऐकध्यं राशिं कुरु। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः। अधिकरणविचाल इत्युच्यते, न चाऽवश्यं स एवाऽधिकरणविचालो यदेकमनेकं क्रियते, यदप्यनेकमेकं क्रियते सोऽप्यधिकरणविचालः। {एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्}।**

'एकात्' पञ्चम्येकवचनान्त निमित्तवचन, 'धः' षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन, 'ध्यमुञ्' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन है।

सूत्रार्थ—'एक पद से पर में धा प्रत्यय को ध्यमुञ् आदेश हो'। ऐकध्यम्, एकधा। स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर 'संख्याया विधार्थे धा' ५.३.४२ से धाग्रहण की अनुवृत्ति हो रही थी। पञ्चमी से उत्तर में षष्ठीप्रकल्पकत्वपक्ष में उसी को षष्ठ्यन्त 'धः' हो जाता, पुनः आचार्य ने धाग्रहण किया, वह व्यर्थ पड कर धामात्र के स्थान में ध्यमुञ् आदेश का ज्ञापन करता है। अन्यथा व्यवधानशून्य होने से 'अधिकरणविचाले च' ५.३.४३ के द्वारा अधिकरणविचाल अर्थ में विहित धाप्रत्यय को ही ध्यमुञ् आदेश होता। विधार्थ में विहित 'ऐकध्यं भुङ्क्ते' में आदेश नहीं हो सकता था; जब कि यहाँ धाग्रहण करते है तो धामात्र को आदेश होने से 'ऐकध्यं भुङ्क्ते' इस विधार्थ में भी आदेश हो जाता है।

एकदेशी आचार्य—**सहभाव इति**। सहभाव गम्य होने पर ही धा को ध्यमुञ् आदेश कहना चाहिये। अनेक अर्थ का एकीकरण को सहभाव कहते हैं। पूर्वसूत्र में 'अधिकरणविचाले' कहा है। एक ही द्रव्य का विभागपूर्वक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवस्थापन विचाल कहलाता है। जैसे 'एकराशिं पञ्चधा कुरु'। पूर्वसूत्र में 'अधिकरणविचाले' की यहाँ अनुवृत्ति है। 'ऐकध्यं राशिं कुरु' में अधिकरणविचाल नहीं है, ऐसा एकदेशी आचार्य का मानना है; अतः यहाँ सहभाव होने पर धा के स्थान में ध्यमुञ् आदेश कह रहे हैं। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि यहाँ एकदेशी के अनुसार 'अधिकरणविचाले' अर्थ सम्भव नहीं है तो आचार्य ने प्रकृतसूत्र का आरम्भ क्यों किया है?, तो इसका उत्तर देंगे—विधार्थ में विहित धा को ध्यमुञ्विधानार्थ वचन का आरम्भ है तथा प्रकृतसूत्र में धाग्रहण उत्तरार्थ—'द्वित्र्योश्च ध्यमुञ्' ५.३.४५ के लिए है। इससे 'एकराशिं द्वैधं कुरु, द्वैधं भुङ्क्ते' इत्यादि में धा के स्थान पर ध्यमुञ् आदेश हो जायेगा।

प्राश्निक आचार्य—**स तर्हीति**। तो क्या प्रकृतसूत्र में 'अधिकरणविचाले' की अनुवृत्ति न मान कर 'सहभावे ध्यमुञ्' यह वार्तिक पढा जाना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। आचार्य ने 'अधिकरणविचाले' ५.३.४३ पढा है। इसमें मात्र एक को अनेक करने को ही अधिकरणविचाल नहीं कहते हैं, अपि तु जहाँ अनेक को एकराशि किया जा रहा हो, उसे भी अधिकरणविचाल कहा जाता है। इस तरह न्यूनसंख्या का अधिकसंख्याकरण अधिकसंख्या का न्यूनसंख्याकरण यह दोनों ही अधिकरणविचाल है; अतः अनेक को एककरण में सूत्र से ही सहभाव अर्थ गतार्थ हो जायेगा; अतः अतिरिक्त वार्तिक नहीं पढना चाहिये। {**एकाद्-**}।

द्वित्र्योश्च धमुञ् ५.३.४५

*** धमुञन्तात् स्वार्थे डदर्शनम् * धमुञन्तात् स्वार्थे डो दृश्यते स च विधेयः। पथि द्वैधानि। संशये द्वैधानि।**

'अधिकरणविचाले' ५.३.३४, 'स्थानिवचन 'धः' एवम् 'अन्यतरस्याम्' ५.३.४४ की अनुवृत्ति है। 'द्वित्र्योः' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है।

सूत्रार्थ—'अधिकरणविचाल वाच्य होने पर द्वि और त्रि से पर में धा के स्थान में विकल्प से धमुञ् आदेश हो'। द्वैधम्, द्विधा। त्रैधं, त्रिधा।

वार्तिककार—**धमुञन्तादिति**। धमुञन्त से स्वार्थ में ड प्रत्यय भी देखा जाता है, उसे कहना चाहिये। जैसे—'पथि द्वैधानि, संशये त्रैधानि'। यद्यपि यहाँ ड प्रत्यय स्वार्थिक है, तथापि शब्दस्वभाववश सत्त्ववाची होने से यहाँ लिङ्ग और संख्या का योग है। एकशेष के द्वारा बहुवचननिर्देश है। {**द्वित्र्योश्च-**}।

याप्ये पाशप् ५.३.४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** पाशपि कुत्सितग्रहणम् * पाशपि कुत्सितग्रहणं कर्त्तव्यम् । वैयाकरणपाशः । याज्ञिकपाशः । यो हि यापयितव्यो याप्यस्तत्र मा भूदिति ।**

वार्तिककार—**पाशपीति** । पाशप् प्रत्यय का विधान करने के लिए कुत्सितपद का ग्रहण करना चाहिये । इस तरह 'कुत्सित अर्थ में शक्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो' यह सूत्रार्थ होगा । जैसे—'कुत्सितो वैयाकरण इति वैयाकरणपाशः । कुत्सितो याज्ञिक इति याज्ञिकपाशः' । कुत्सितग्रहण करने का फल दिखाते हैं—**यो हीति** । यहाँ याप्य पद अपादानसाधन है—यापिता गुणा अस्मादिति याप्यः । एवं याप्य पद कर्मसाधन भी है—'यापयितव्य इति याप्यः=देशान्तरं प्रापयितव्यः' यह अर्थ है । यदि विशेष का ग्रहण नहीं करेंगे तो कर्मसाधन याप्य पद में भी अतिव्याप्ति होने लगेगी । उसमें अतिव्याप्ति न हो, इसके लिए कुत्सितग्रहण किया गया है ।

अथ वैयाकरणः शरीरतः कृशो व्याकरणेन च शोभनस्तत्र कर्त्तव्यं स्यात्—वैयाकरणपाश इति? न कर्त्तव्यः । कथम्? यस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने तद्गुणे वक्तव्ये प्रत्ययेन भवितव्यं, न च कार्श्यस्य भावाद् द्रव्ये वैयाकरणशब्दः । {याप्ये पाशप्} ।

आक्षेपभाष्य—**अथेति** । यदि कोई वैयाकरण व्याकरणसम्पत्ति से पूर्ण हो तथा शरीर से दुर्बल हो तो क्या वहाँ भी कुत्सित अर्थ में पाशप् प्रत्यय करके 'वैयाकरणपाशः' कहना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**न कर्त्तव्यमिति** । यहाँ पाशप् प्रत्यय कहने की आवश्यकता नहीं है । जिस शब्द से प्रत्ययविधान करना है, उसी से कुत्सा अर्थ गम्य होना चाहिये । यदि अन्य से कुत्सा अर्थ गम्य है तो अन्य शब्द से प्रत्यय नहीं होगा । वैयाकरण व्याकरणशास्त्र से निन्द्य नहीं है, अपि तु शरीर से निन्द्य है; अतः शरीर से कुत्सित अर्थ कहने के लिए वैयाकरणपद से पाशप् प्रत्यय नहीं होगा । इस भाष्य से यहाँ प्रवृत्तिनिमित्त कुत्सा गृहीत है; अतः अप्रवृत्तिनिमित्तकुत्सा गम्य होने पर प्रत्यय नहीं होगा । {याप्ये-} ।

पूरणाद् भागे तीयादन् ५.३.४८

पूरणग्रहणं शक्यमकर्त्तुम् । कथम्? न हि अपूरणस्तीयशब्दोऽस्ति यत्र दोषः स्यात् । ननु चाऽयमस्ति—मुखतीयः पार्श्वतीय इति । 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्ये'त्येवमस्य न भविष्यति । उत्तरार्थं तर्हि पूरणग्रहणं कर्त्तव्यम् । 'प्रागेकादशभ्योऽछन्दसी'ति पूरणाद् यथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यात्। {पूरणाद् भागे तीयादन्}।

सूत्रार्थ—'भाग अर्थ में शक्त पूरणार्थक तीयप्रत्ययान्त से स्वार्थ में अन् प्रत्यय हो'। द्वितीयो भागो द्वितीयः। तृतीयो भागस्तृतीयः। रूपभेद नहीं होने पर भी स्वरभेद है। अन्प्रत्ययपक्ष में 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से आद्युदात्त होता है।

आक्षेपभाष्य—**पूरणेति**। व्यभिचार सम्भव होने पर ही उसका व्यावर्त्तन के लिए विशेषण दिया जाता है। जैसे 'नीलमुत्पलम्'। जहाँ व्यभिचार सम्भव नहीं है, वहाँ व्यावर्त्तन के लिए विशेषण नहीं दिया जाता है; अतः कोई प्रयोक्ता 'उष्णं वह्निमानय' ऐसा प्रयोग नहीं करता है। तीयप्रत्ययान्त सर्वथा पूरणप्रत्ययान्त ही मिलेगा। कहीं भी अपूरणप्रत्ययान्त तीयशब्द नहीं है; अतः 'भागे तीयादन्' इतना ही सूत्र रखना चाहिये था। यहाँ पूरणग्रहण व्यर्थ है।

अन्य आचार्य—**ननु चाऽयमिति**। 'मुखतीयः, पार्श्वतीयः' में तीयप्रत्ययान्त है, उसका व्यावर्त्तन के लिए पूरणग्रहण किया गया है।

खण्डनभाष्य—**अर्थवदिति**। 'मुखे भवो मुखतीयः, पार्श्वे भवः पार्श्वतीयः', 'मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च' ग.सू.७८ (सू.४.२.१७८) के द्वारा तसन्त मुखतस् और पार्श्वतस् का अन्त्यलोप तथा छ प्रत्यय है। अर्थवान् पूरणार्थक तीयप्रत्ययान्त के ग्रहण में 'छ'प्रत्ययान्त मुखतीय, पार्श्वतीय का ग्रहण नहीं होगा। इस तरह पूरणग्रहण व्यर्थ है।

उत्तरभाष्य—**उत्तरार्थमिति**। उत्तरसूत्र 'प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि' ५.३.४९ में अनुवर्त्तन के लिए पूरणग्रहण है। {पूरणाद्भागे-}।

एकादाकिनिच्चाऽसहाये ५.३.५२

***एकादाकिनिचि द्विबह्वर्थे प्रत्ययविधानम्* एकादाकिनिचि द्विबह्वर्थे प्रत्ययो विधेयः। एकाकी एकाकिनौ एकाकिन इति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? एकशब्दोऽयं सङ्ख्यापदं, सङ्ख्यायाश्च सङ्ख्येयमर्थः *सिद्धं तु सङ्ख्यादेशवचनात्* सिद्धमेतत्। कथम्? द्विबह्वर्थायाः सङ्ख्याया एकशब्द आदेशो वक्तव्यः *असहायस्य वा* असहायस्य वा एकशब्द आदेशो वक्तव्यः। असहायः, एकाकी। असहायौ, एकाकिनौ। असहाया एकाकिनः। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तम्—'एकादाकिनिचि द्विबह्वर्थे प्रत्ययविधान'मिति। नैष दोषः। अयमेकशब्दोऽस्त्येव सङ्ख्यापदम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा—एको, द्वौ, बहव इति। अस्त्यन्यार्थे वर्त्तते। तद्यथा—सधमादो द्युम्न एकास्ताः। अन्या इत्यर्थः। अस्त्यसहायवाची। तद्यथा—एकाग्नयः। एकहलानि। एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितमिति। तद्यो ऽसहायवाची तस्यैष प्रयोगः।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य तृतीये पादे प्रथममाह्निकम्

●

'एकात्' पञ्चम्यन्त निमित्तवचन, 'आकिनिच्' प्रथमान्त विधेयवचन, 'च' अव्ययपद 'असहाये' सप्तम्यन्तनिमित्तवचन है।

सूत्रार्थ—'असहायवाचक एक पद से स्वार्थ में आकिनिँच् प्रत्यय हो'। 'च'ग्रहण के द्वारा पूर्वसूत्र 'मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ' ५.३.५१ से 'कन्' और 'लुक्' की भी अनुवृत्ति है। यहाँ 'लुक्' के द्वारा 'प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि' ५.३.४९ से विहित अन् का लुक् है—एकाकी, एककः, एकः।

एकदेशी आचार्य—**एकादाकिनिचीति**। एक पद से आकिनिँच् प्रत्यय के प्रकरण में द्व्यर्थ और बह्वर्थ में भी प्रत्ययविधान करना चाहिये। इससे द्विवचन और बहुवचन में भी 'एकाकिनौ, एकाकिनः' की सिद्धि हो जायेगी।

प्राश्निक आचार्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि द्व्यर्थ और बह्वर्थ में एक पद से आकिनिँच् प्रत्यय नहीं हो पा रहा है जिसके लिए आप अतिरिक्त-वचन पढते हैं?

एकदेशी—**एकशब्दोऽयमिति**। एक पद संख्यावाची है तथा उसी एकशब्दार्थ में असहायग्रहण विशेषण है। संख्या का संख्येय अर्थ है। असहाय से एकशब्दार्थ का निर्देश नहीं हो पा रहा है। अविद्यमान तुल्यजातीय एककार्य सहायार्थवाची से प्रत्यय हो, 'एकमाकाशम्' इत्यादि में प्रत्यय न हो, इसके लिए असहायग्रहण एकार्थ का विशेषण है, अभिधेय का निर्देश नहीं।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि असहायग्रहण को एकार्थ का विशेषण माना जाये, अभिधेय का निर्देश नहीं, तो द्व्यर्थ एवं बह्वर्थ में प्रत्यय कैसे हो सकेंगे? एक पद द्व्यर्थ एवं बह्वर्थ में शक्त नहीं है, तो इसका उत्तर देते हैं—**सिद्धं त्विति**। द्व्यर्थ एवं बह्वर्थ संख्या को एकशब्द आदेश कर देंगे। इससे एकशब्द द्व्यर्थक एवं बह्वर्थक होगा। उससे पर में आकिनिँच् प्रत्यय हो जायेगा। 'संख्यैव आदेशः संख्यादेशः' यह आदेश द्वि और बहु शब्द को होगा। अथवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका अन्य पक्ष भी बताते हैं—**असहायस्य वेति**। अथ वा असहाय पद के स्थान पर एकशब्द आदेश करेंगे। जैसे—'असहायः, एकाकी। असहायौ, एकाकिनौ। असहायाः, एकाकिनः।

इतर आचार्य—**सिध्यतीति**। यदि असहाय के स्थान में आदेश करेंगे तो 'एकादाकिनिच्चाऽसहाये' के स्थान पर 'एकादाकिनिच्चाऽसहायस्य' सूत्र पढना पडेगा। इससे सूत्रभेदरूप दोष होगा।

यथान्यासपक्षवादी आचार्य—**यथान्यासमेवेति**। यदि सूत्रभेद नहीं चाहते हैं तो सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। इस पक्ष में द्व्यर्थ, बह्वर्थ में आकिनिँच् प्रत्यय का अभाव कहा था, वह नहीं रहेगा। वह इस तरह कि एक पद के अनेक अर्थ हैं। एक पद संख्यावाची भी है। जैसे—'एको, द्वौ, बहवः' में एक पद का संख्या अर्थ है। एक पद अन्य अर्थ में भी है। जैसे—'सधमादो द्युम्न एकास्ताः' में 'अन्यास्ताः' अर्थबोध होता है। एक पद असहाय अर्थ में भी है। जैसे 'एकाग्नयः=असहायाग्नयः। एकहलानि= असहायहलानि। एकाकिभिः क्षद्रकैर्जितम्' में **'एकाकिभिः**=असहायैः' अर्थ है। इस तरह जो असहायवाचि एक पद है, 'एकादाकिनिच्चाऽसहाये' में उसी का प्रयोग है। यहाँ भगवान् भाष्यकार ने एक पद का अर्थ उपलक्षणविधया कहा है; अतः उक्त अर्थो से भिन्न अर्थो में भी एक पद का प्रयोग है। जैसे प्राथम्य अर्थ में भी 'एकेऽल्पप्राणाः' 'एको गोत्रे' ४.१.६३ समान अर्थ में भी हैं। जैसे—'तेनैकदिक्' ४.३.११२। एक पद साधारण अर्थ में भी है; **जैसे**—'देवदत्तयज्ञदत्तयोरेका माता'। इस तरह एक पद के ये सभी अर्थ हैं **जिसे** श्लोकमुखेन संग्रह किया गया है—

एकोऽन्याऽर्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते।।

श्रीमद्‌भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय तृतीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❀

अतिशायने मतबिष्ठनौ ५.३.५५

अतिशायन इत्युच्यते-किमिदमतिशायन इति? देश्याः सूत्रनिबन्धाः क्रियन्ते। यावद् ब्रूयात् प्रकर्षेऽतिशय इति तावदतिशायन इति।

अतिपूर्वक शीङ् धातु उत्कर्ष अर्थ में है। 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अतिशय अर्थ वाच्य होने पर प्रातिपदिक से तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हों'।

प्रश्नभाष्य—**अतिशायन इति**। आचार्य 'अतिशायने' ऐसा पढ रहे हैं, अतिशायन क्या है? क्या यहाँ अतिपूर्वक शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ धातु का ण्यन्त निर्देश है, अथ वा अण्यन्तनिर्देश है? इस तरह यहाँ शीङ् धातु का क्या अर्थ हो सकता है?

उत्तरभाष्य—**देश्या इति**। प्रसङ्गवश **देश्याः**=साधुत्वेन प्रतिपाद्यविषयों का ही साधुत्वप्रतिपादनार्थ सूत्र में 'अतिशायने' ऐसा निर्देश है। यहाँ अतिशायन को ण्यन्तनिर्देश मानने पर अर्थ की असङ्गति होगी; अतः उसे अण्यन्तनिर्देश ही मानना चाहिये तथा निपातन से दीर्घ करना चाहिये। आचार्य ने प्रकर्ष अथ वा अतिशय के अर्थ में ही 'अतिशायने' ऐसा दीर्घघटित प्रयोग किया है।

कस्य पुनः प्रकर्षे प्रत्यय उत्पद्यते? ङ्याप्प्रातिपदिकादिति वर्त्तते, ङ्याप्प्रातिपदिकस्य प्रकर्षे। ङ्याप्प्रातिपदिकं वै शब्दो, न च शब्दस्य प्रकर्षाऽप्रकर्षौ स्तः। शब्देऽसम्भवादर्थे कार्यं विज्ञास्यते।

प्रश्नभाष्य—**कस्येति**। यहाँ द्रव्यवाचिनी प्रकृति है, उसका प्रकर्ष सम्भव नहीं है, फिर किसका प्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्यय उत्पन्न हो रहा है?

एकदेशी आचार्य—**ङ्याप्प्रातिपदिकादिति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति है, उसी का प्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्यय उत्पन्न होगा। यद्यपि 'घकालतनेषु कालनाम्नः' ६.३.१७ से विहित अलुग्विधान से सुबन्तसमानाधिकरणवृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्धित होना चाहिये, तथापि 'ङ्याप्प्रातिपदिकस्य प्रकर्षे' यह भाष्य उपलक्षणविधया प्रकृति का ही बोधक होगा। वह प्रकृति सुबन्त हो, अथ वा ङ्याप्प्रातिपदिक हो, यह अन्य विषय है।

अन्य आचार्य—**ङ्याप्प्रातिपदिकमिति**। ङ्याप्प्रातिपदिक का प्रकर्ष वाच्य होने पर आप प्रत्यय कह रहे हैं। ङ्याप्प्रातिपदिक शब्द है। शब्द का प्रकर्ष अथ वा अपकर्ष नहीं होता है। शब्द अपने अर्थ के प्रति विशेषण होता है; अतः अर्थ का प्रकर्ष अथ वा अपकर्ष असम्भव है।

इतर आचार्य—**शब्देऽसम्भवादिति**। शब्द का प्रकर्ष अथ वा अप्रकर्ष असम्भव होने पर सामर्थ्यात् अर्थप्रकर्ष में प्रत्यय होगा।

कः पुनर्ङ्याप्प्रातिपदिकार्थः? द्रव्यम्। न वै द्रव्यस्य प्रकर्ष इष्यते। एवं तर्हि गुणः।

प्रश्नभाष्य—**कः पुनरिति**। आप ङ्याप्प्रातिपदिकार्थ में प्रत्यय कह रहे हैं, ङ्याप्प्रातिपदिकार्थ क्या है?

उत्तरभाष्य—**द्रव्यमिति**। ङ्याप्प्रातिपदिक का अर्थ द्रव्य है। यहाँ द्रव्यपद से सर्वनामबोध्य सभी पदार्थ विवक्षित हैं; अतः जाति, गुण और क्रिया का भी ग्रहण करना चाहिये।

खण्डनभाष्य—**न वै द्रव्यस्येति**। स्वतन्त्ररूप से जिस पदार्थ का कथन होता है, उसका प्रकर्ष नहीं होता है। जैसे—'शुक्लतरं रूपम्' में गुण का भी प्राधान्येन आश्रयण हो सकता है। परन्तु द्रव्याश्रितनिमित्तान्तर होने से ही प्रकर्ष है। इस तरह द्रव्य का प्रकर्ष नहीं होता है।

अन्य आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि विशेष्यत्वेन गृहीत द्रव्य का प्रकर्ष नहीं मान रहे हैं तो आप गुण का प्रकर्ष वाच्य होने पर ही प्रत्यय कहिये। गुण द्रव्याश्रित होता है; अतः विशेष्यरूप से उस की कहीं भी उपस्थिति न होकर विशेषणरूप से ही उपस्थिति होगी; अतः गुणप्रकर्षवाच्य होने पर ही प्रत्यय कहना चाहिये। जाति का प्रकर्ष नहीं होता है; अतः जाति से प्रत्यय नही कहा है।

एवमपि गुणग्रहणं कर्त्तव्यम्। द्रव्यमपि ङ्याप्प्रातिपदिकार्थो, गुणोऽपि, तत्र कुत एतद्—'गुणस्य प्रकर्षे भविष्यति, न पुनर्द्रव्यस्य प्रकर्ष' इति?

इतर आचार्य—**एवमपीति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार है। ङ्याप्प्रातिपदिकार्थ गुण भी है तथा द्रव्य भी है; फिर गुणप्रकर्षवाच्य होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय होगा तथा द्रव्यप्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्यय नहीं होगा, इसमें कोई प्रमाण मिल पाना कठिन है; अतः गुणप्रकर्ष वाच्य होने पर ही प्रत्यय हो, इसके लिए सूत्र में गुणपद का ग्रहण करना चाहिये।

क्रियमाणे चाऽपि गुणग्रहणे समानगुणग्रहणं कर्त्तव्यं, 'शुक्लात् कृष्णे मा भू'दिति। न तर्हीदानीमिदं भवति—'अध्वर्युर्वै श्रेयान्' 'पापीयान् प्रतिप्रस्थाता' 'अन्धानां काणतम' इति? समानगुणे एषा स्पर्द्धा भवति,—'अध्वर्युर्वै श्रेयानन्येभ्यः प्रशस्येभ्यः'। 'पापीयान् प्रतिप्रस्थाताऽन्येभ्यः पापेभ्यः'। 'अन्धानां काणतम इति, कणिरयं सौक्ष्म्ये वर्त्तते—सर्व इमे किं चित् पश्यन्त्ययमेषां काणतम इति।

इतर आचार्य—**क्रियमाणे चेति**। गुणग्रहण करने पर भी समानगुणग्रहण करना चाहिये। इससे भिन्नजातीयप्रकर्षतर दो गुणों के बीच किसी एक का उत्कर्ष बताने के लिए 'कृष्णात् शुक्लतरः' ऐसा प्रयोग नहीं हो सकेगा।

अन्य आचार्य—**न तर्हीति**। यदि गुणग्रहण में समानगुणग्रहण करेंगे तो 'अध्वयुर्वै श्रेयान् पापीयान् प्रतिप्रस्थाता' आदि वाक्य नहीं हो सकेंगे। अध्वर्यु का परिपूर्ण प्रकर्ष है तथा प्रतिप्रस्थाता का परिपूर्ण पापत्व है। उन दोनों की तुलना में अध्वर्यु का प्रकर्ष मान कर 'अध्वर्युर्वै श्रेयान्' इस वाक्य में प्रशस्य पद से 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.७५ से ईयसुन् प्रत्यय है। एवम् 'अन्धानां काणतमः' में भी प्रकर्षार्थक तमप् नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि अन्धे को दोनों नेत्रों से नहीं दिखता है। परन्तु काण को एक नेत्र से दिखता है, अतः अन्धे की अपेक्षा काण का प्रकर्ष है। यहाँ असमान गुण है, समान नहीं; अतः यदि गुणग्रहण में समानगुणग्रहण करेंगे तो 'अध्वयुर्वै श्रेयान्, पापीयान् प्रतिप्रस्थाता' में 'श्रेयान्' एवं 'पापीयान्' की असिद्धि होगी तथा 'अन्धानां काणतमः' में 'काणतमः' की असिद्धि होगी। इस तरह समानगुणग्रहणपक्ष में दोष है।

उत्तरभाष्य—**समानगुणे इति**। समानगुणग्रहणपक्ष में यह दोष नहीं रहेगा। भिन्न-भिन्न अधिकरण में समानगुण रहने पर 'अध्वर्युवै श्रेयान्' यह स्पर्द्धा की गयी है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—अध्वर्युर्वै श्रेयानिति। अन्य प्रशस्य की अपेक्षा अध्वर्यु श्रेष्ठ है। अन्य पापी की अपेक्षा प्रतिप्रस्थाता अधिक पापी है। इस तरह यहाँ समानगुण प्रकर्ष में ही प्रत्यय है। जैसे कि लोक में प्रसिद्धि है—'अन्धों में कनवा सरदार'।

* अदूरविप्रकर्षे * **अदूरविप्रकर्ष इति च वक्तव्यम्। इह मा भूद्—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महानूसर्षपः, महान्हिमवानिति * जातेर्न * जातेर्नेति च वक्तव्यम्। इह मा भूद्—वृक्षोऽयं प्लक्षोऽयमिति। न तर्हीदानीमिदं भवति—गोतरः गोतरा अश्वतरः अश्वतरेति?

वार्तिककार—**अदूरविप्रकर्ष इति**। अदूरविप्रकर्ष गम्य होने पर गुणवाचि से तमप् और इष्ठन् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'महान् सर्षपः, महान् हिवान्' में जहाँ दूरविप्रकर्ष गम्य है वहाँ तद्धित होकर 'सर्षपवान्, महीयान् हिमवान्' रूप नहीं होगा। **जातेर्नेति**। जातिवचन से अतिशय अर्थ में प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'वृक्षोऽयम्, प्लक्षोऽयम्' जातिवचन वृक्ष और प्लक्ष पद से अतिशय अर्थ में प्रत्यय नहीं होगा। यहाँ आश्रयप्रकर्ष से जाति का प्रकर्ष मान रहे हैं।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**न तर्हीति**। यदि जातिवचन से प्रकर्ष अर्थ में प्रत्यय का प्रकर्ष कहेंगे तो 'गोतरः गोतरा, अश्वतरः अश्वतरा' में प्रत्यय का प्रतिषेध होने से अनिष्ट की आपत्ति होगी।

नैष जातेः प्रकर्षः। कस्य तर्हि? गुणस्य। गौरयं यः शकटं वहति, गोतरोऽयं यः शकटं वहति सीरञ्च। गौरियं या समां-समां विजायते, गोतरेयं या समांसमां विजायते स्त्रीवत्सा च। अश्वोऽयं यश्चत्वारि योजनानि गच्छति, अश्वतरोऽयं योऽष्टौ योजनानि गच्छति।

खण्डनभाष्य—**नैष जातेरिति**। 'गोतरः' आदि में जाति का प्रकर्ष नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**कस्येति**। यदि 'गोतरः' आदि में जाति का प्रकर्ष नहीं है तो किसका प्रकर्ष है?

उत्तरभाष्य—**गुणस्येति**। 'गोतरः' आदि में गुण का प्रकर्ष है; अतः उससे अतिशय अर्थ में तरप् प्रत्यय है। यहाँ गुणप्रकर्ष स्पष्ट करते हैं—**गौरयमिति**। जो **शकट**=गाडी खींचता है वह **गौः**=बैल कहलाता है। जो गाडी का **सीरम्**=लोहहल खींचता है वह गोतर है। इस तरह यहाँ शकट खींचने वाले की अपेक्षा शकट तथा सीर खींचना प्रकर्ष है, उसी अर्थ में 'गोतरः' प्रयोग है। एवं गाय वह है जो प्रतिवर्ष बछडा पैदा करे। उसकी अपेक्षा प्रकर्ष उस गाय का है, जो प्रतिवर्ष **स्त्रीवत्सा**=बाछी पैदा करे। इस तरह 'गोतरा' में भी गुणप्रकर्ष में ही प्रत्यय है, जातिप्रकर्ष में नहीं। अश्व वह है जो चार योजन=सोलह कोश चले। उसकी अपेक्षा आठ योजन=बत्तीस कोश चलना प्रकर्ष है। उस अर्थ में अश्व से तरप् प्रत्यय होकर 'अश्वतरः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप है। एवम् अश्वा=घोडी वह है जो प्रतिवर्ष प्रसव करे, परन्तु जो प्रतिवर्ष प्रसव न करे उसका प्रसूत घोडी हो तो मात्र प्रतिवर्ष प्रसव करने वाली की अपेक्षा घोडी प्रसव करना प्रकर्ष हो गया; अतः 'अश्वतरा' में भी गुणप्रकर्ष में ही प्रत्यय है, जातिप्रकर्ष में नही।

तथा—'तिङश्चे'त्यत्र क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्। साधनप्रकर्षे मा भूत्। नैष दोषः। यत्तावदुच्यते-'गुणग्रहणं कर्त्तव्य'मिति, न कर्त्तव्यम्। यस्य च प्रकर्षोऽस्ति तस्य च प्रकर्षे भविष्यति। गुणस्य चैव प्रकर्षो न द्रव्यस्य।

एकदेशी आचार्य—**तथेति**। आप 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' में ५.३.५५ में गुणग्रहण कर रहे हैं तो उत्तरसूत्र 'तिङश्च' ५.३.५६ में आप को क्रियाग्रहण करना चाहिये जिससे साधनप्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्यय का प्रतिषेध किया जा सके।

'अतिशायने तमबिष्ठनौ' में ५.३.५५ सूत्र पर एकदेशी आचार्य ने गुणग्रहण तथा 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र पर क्रियाग्रहण किया था, उन दोनों का खण्डन करते हैं—**नैष दोष इति**। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' में ५.३.५५ सूत्र पर गुणग्रहण नहीं करना चाहिये।

उक्त सूत्र पर गुणग्रहण के अभाव में भी दोषवारण करते हैं—**यस्य चेति**। जिसका प्रकर्ष होता है, उसका प्रकर्ष गम्य होने पर प्रत्यय होगा। गुण का ही प्रकर्ष होता है; अतः गुणप्रकर्ष वाच्य होने पर सुबन्तसमानाधिकरण प्रातिपदिक से प्रत्यय होगा। द्रव्य का प्रकर्ष नहीं होता है; अतः उसका प्रकर्ष वाच्य वाच्य नहीं होगा; अतः उससे पर में प्रत्ययप्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता है।

कथं विज्ञायते? एवं हि दृश्यते लोके, इह समाने आयामे विस्तारे च पटस्याऽन्योऽर्घो भवति काशिकस्य, अन्यो माथुरस्य।

अन्य प्राश्निक—**कथमिति**। आप कैसे जानते हैं कि गुण का ही प्रकर्ष होता है, द्रव्य का नहीं?

उत्तरपक्षी आचार्य इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—दो वस्त्रों, एक काशी में निर्मित तथा दूसरा मथुरा में निमिर्त, दोनों की लम्बाई-चौडाई एक जैसी ही है। परन्तु काशी में निर्मित वस्त्र का अन्य मूल्य होता है तथा मथुरा में निर्मित वस्त्र का अन्य मूल्य होता है। इस तर **अर्घ**=मूल्य के भेद होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणप्रकर्ष है, द्रव्यभेद होने से नहीं। यदि द्रव्य में स्वतः प्रकर्ष होता तो देशभेद होने से भिन्न-भिन्न मूल्य नहीं होता, अपि तु द्रव्य में स्वतः प्रकर्ष होता; अतः गुणप्रकर्ष से ही प्रकर्ष है, द्रव्यप्रकर्ष से नहीं।

गुणान्तरं च खल्वपि, शिल्पिन उत्पादयमाना द्रव्यान्तरेण प्रक्षालयन्ति, अन्येन शुद्धं धौतकं कुर्वन्ति, अन्येन शैफालिकमन्येन माध्यमिकम् ।

प्रयत्नभेद से भी गुणप्रकर्ष स्पष्ट करते हैं—**गुणान्तरमिति**। कारिगर लोग वस्त्रनिर्माण करते हुए एक ही वस्त्र=(द्रव्य) को अन्य यत्न आदि से शुद्ध कर **धौतक**=धोया हुआ अथ वा धोती वस्त्र बनाते हैं। एवम् अन्य यत्न से **शैफालिक**=पालिस किया हुआ वस्त्र बनाते हैं। तथा अन्य यत्न से **माध्यमिक**=माडी लगा हुआ वस्त्र बनाते हैं। इस तरह यत्नभेद होने से गुणप्रकर्ष है, द्रव्यप्रकर्ष नहीं।

यदप्युच्यते—'क्रियमाणे चाऽपि गुणग्रहणे समानगुणग्रहणं कर्त्तव्यं, 'शुक्लात् कृष्णे मा भू'दिति। न कर्त्तव्यम्। समानगुण एव स्पर्द्धा भवति। न ह्याढ्याभिरूपौ स्पर्द्धेते। वाचकेन खल्वप्युत्पत्तव्यं, न च शुक्लात् कृष्णे प्रत्यय उत्पद्यमानो वाचकः स्यात् ।

एवं कृष्णप्रतियोगी विवक्षित होने पर शुक्लपद से प्रत्ययवारण करने के लिए आपने समानगुणग्रहण किया था, उसकी भी आवश्यकता नहीं है। समानगुण में ही स्पर्द्धा होती है। स्पर्द्धा का हेतु शब्द का आश्रयण किया जाता है। एक धनी हो तथा दूसरा सुन्दर हो तो धन और सौन्दर्य, दोनों में परस्पर स्पर्द्धा नहीं होती है; अतः द्रव्य और गुण में परस्पर स्पर्द्धा नहीं होती है। परन्तु शब्दाश्रित स्पर्द्धा हेतु प्रकर्ष गम्य होने पर प्रत्यय होगा। जैसे—आढ्याभिरूपयोराढ्यः श्रेयान्। एवं शुक्ल और कृष्ण में अन्यतर का प्रकर्ष गम्य होने से शब्दाश्रित स्पर्द्धा हेतु प्रकर्ष में प्रत्यय होकर 'उज्ज्वलतरोऽयं कृष्णाच्छुक्लः' प्रयोग होगा। इस तरह प्रकर्ष का वाचक शब्द भी होना चाहिये। परन्तु जहाँ शुक्ल की अपेक्षा शुक्ल का प्रकर्ष कहेंगे वहाँ शब्दप्रवृत्तिनिमित्त के अभिन्न होने पर भी अन्य शुक्ल की अपेक्षा इतर शुक्ल का प्रकर्ष होगा—अयं शुक्लतरः। जहाँ कृष्ण का प्रकर्ष बताया जा रहा है वहाँ शुक्ल पद से प्रत्यय नहीं होगा।

यदप्युच्यते—'अदूरविप्रकर्षे इति च वक्तव्य'मिति, न वक्तव्यम्। अदूरविप्रकर्षे एव स्पर्द्धा भवति, न हि निष्कधनो शतनिष्कधनेन स्पर्द्धते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवम् 'अदूरविप्रकर्षे' कह कर वार्तिककार ने अदूरविप्रकर्ष गम्य होने पर प्रत्यय कहा था, उसे भी कहने की आवश्यकता नहीं है। स्पर्द्धा अदूरविप्रकर्ष में ही होती है, दूरविप्रकर्ष में नहीं। लोक में ऐसा देखा जाता है कि लक्षपति लक्षपति से स्पर्द्धा करता है; कोटिपति कोटिपति से स्पर्द्धा करता है। **निष्कधन**=एक अशरफी वाला **शतनिष्कधनेन**=सौ अशरफी वाले के साथ स्पर्द्धा नहीं करता है।

यदप्युच्यते—'जातेर्नेति च वक्तव्य'मिति। न वक्तव्यम्। जननेन या प्राप्यते सा जातिः। न चैतस्याऽर्थस्य प्रकर्षाऽप्रकर्षौ स्तः।

वार्तिककार ने 'जातेर्न' यह प्रतिषेधवचन पढा था, उसका भी खण्डन करते हैं—**यदप्युच्यत इति**। **'जनेन या प्राप्यते'**=जो विना किसी व्यापार के प्राप्त हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे गो में गोत्व आदि। उसमें प्रकर्ष अथ वा अप्रकर्ष नहीं होता है। प्रकर्ष नहीं होने से जाति में प्रत्यय की अप्राप्ति होगी, अतः उसका निषेध व्यर्थ है।

यदप्युच्यते—'तथा तिङश्चे'त्यत्र क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यं साधनप्रकर्षे मा भू'दिति। न वक्तव्यम्। साधनं वै द्रव्यं, न च द्रव्यस्य प्रकर्षाऽप्रकर्षौ स्तः।

एकदेशी ने 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र में क्रियाग्रहण किया था, उसका खण्डन करते हैं—**तथेति**। साधनप्रकर्ष में प्रत्ययव्यावृत्ति के लिए 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र में क्रियाग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। साध्यते= निष्पाद्यते व्यापारो येन तत्साधनम्=द्रव्यम्। **साधन**=द्रव्य को कहते हैं। द्रव्य का प्रकर्ष अथ वा अप्रकर्ष नहीं होता है; अतः तिङन्तस्थल में क्रियाप्रकर्ष ही होगा तथा उसी के गम्य होने पर प्रत्यय होगा। इस तरह द्रव्यप्रकर्ष का नितराम् अभाव होने से उसमें प्रत्यय की अतिव्याप्ति नहीं है, फिर अतिव्याप्तिवारण के लिए क्रियाग्रहण व्यर्थ है। 'पचतितराम्' कहने से क्रियाप्रकर्ष गम्य है, साधनप्रकर्ष नहीं।

किं पुनरेकं शौक्ल्यमाहो स्विन्नाना? किं चाऽऽतः?

यद्येकं, प्रकर्षो नोपपद्यते, न हि तेनैव तस्य प्रकर्षो भवति। अथ नाना? समानगुणग्रहणं कर्त्तव्यं—शुक्लात् कृष्णे मा भूदिति। अस्त्वेकं शौक्ल्यं तत्तु विशेषवत्। किं कृतो विशेषः? अल्पत्व-महत्त्वकृतः।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। शुक्ल एक है, अथ वा नाना है? विशेष शुक्ल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ग्रहण नहीं करके सामान्य शुक्ल का ग्रहण करने पर पूर्वपक्ष है। 'एक और अनेक में विशेष वैधर्म्य का ग्रहण नहीं है', ऐसा माना जाये तो यहाँ इस तरह का दोष नहीं कहा जा सकता है। वह इस तरह कि एक पद का भी कालभेद से भेदव्यवहार देखा जाता है। जैसे—पूर्ववर्ष में देवदत्त पटु था, परन्तु वर्त्तमान संवत्सर में पटुतर है। इससे एक में ही भेदव्यवहार स्पष्ट हो गया, वैसे अनेक में एकव्यवहार भी देखा जाता है। जैसे—डुपचष् पाके धातु से तिङ्ङन्तस्थल में फुत्कार, अधःसन्तापन आदि भिन्न-भिन्न क्रिया वाच्य होती है, फिर एक बुद्धि से सभी का सङ्कलन कर अनेक में एकव्यवहार होता है। एवं 'भवद्भिरास्यते, भवन्त आसते' में कर्त्ता के भिन्न-भिन्न होने पर कर्त्तृसमवेत भिन्न-भिन्न आसन हो रहे हैं। परन्तु यहाँ अनेकत्व में एकत्व मान कर 'न तिङन्तानि एकशेषारम्भं प्रयोजयन्ति, क्रियाया एकत्वात्' (म.भा.१.२.६४ ऐसा कहा है। वैसे ही प्रकृत में पूर्वपक्षी का प्रश्न है कि क्या एक ही शुक्लगुण आश्रयभेद होने से भिन्न-भिन्न है, अथ वा अनेक है? इस संशय में पूर्वपक्ष है।

अन्य आचार्य—**किं चाऽऽत इति**। शुक्ल गुण एक हो अथ वा अनेक हो, इससे प्रकृत में क्या भेद आ रहा है, कृपया दोनों पक्षों को अलग-अलग स्पष्ट करें।

शुक्ल गुण के एक होने पर दोष देते हैं—**यद्येकमिति**। किसी दूसरे की अपेक्षा से प्रकर्ष लिया जाता है। यदि एक ही शुक्ल है तो उसका अपने से ही अपने में प्रकर्ष नहीं हो सकेगा। एक ही मनुष्य स्वयम् अपना अवधि और अवधिमान् दोनों नहीं हो सकता है। जैसे सभी घटों में रहने वाली घटत्वजाति एक है; अतः वह स्वयम् अपना अवधि नहीं बन सकती है; वैसे शुक्ल के एक होने पर वह प्रकर्ष का अवधि नहीं बन सकेगा। अथ च यदि नाना गुण मानेंगे तो सूत्र में समानगुण का ग्रहण करना पडेगा जिससे कृष्णप्रकर्ष वाच्य होने पर शुक्ल पद से प्रत्यय न हो सके। इस तरह आप शुक्ल को चाहे एक मानें, अथवा अनेक मानें, उभयपक्षों में दोष है।

उत्तरपक्षी आचार्य शुक्ल का एकत्वपक्ष में दोष की निवृत्ति करते हैं—**अस्त्वेकमिति**। आप एक ही शुक्लगुण मानिये। उसमें अल्पशुक्ल, महत्शुक्ल ऐसा अल्प और महत् विशेषण होने से अल्प की अपेक्षा महत्शुक्ल **विशेषवत्**=भेदवत् होगा। इस तरह एक में ही अल्पत्व, महत्त्व विशेषण होने से भेद हो जायेगा। इस तरह अल्प की अपेक्षा महत् में भेद होने से प्रकर्ष अर्थ में प्रत्यय उत्पन्न हो जायेगा—शुक्लतरः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ वा पुनरस्त्वेकं निर्विशेषं च। ननु चोक्तं—'प्रकर्षो नोपपद्यते, नहि तेनैव तस्य प्रकर्षो भवती'ति। गुणान्तरेण प्रच्छादनात् प्रकर्षो भविष्यति। अथ वा पुनरस्तु नाना। ननु चोक्तं-'समानगुणग्रहणं कर्त्तव्यं—शुक्लात् कृष्णे मा भूदि'ति। न कर्त्तव्यम्। समानगुण एव स्पर्द्धा भवति। न ह्याढ्याभिरूपौ स्पर्द्धेते। वाचकेन खल्वप्युत्पत्तव्यं, न च शुक्लात् कृष्णे उत्पद्यमानो वाचकः स्यात्।

अथवा शुक्ल के एकत्वपक्ष में प्रकर्ष उपपन्न होने के लिए अन्य भी उपाय हैं। अन्य गुण के **प्रच्छादनात्**=मिश्रित होने पर एक में ही प्रकर्ष हो जायेगा। अथ वा गुण को नाना मानिये। नाना मानने के पक्ष में कृष्णप्रकर्ष वाच्य होने पर शुक्ल पद से प्रत्यय की व्यावृत्ति के लिए आप समानगुण का ग्रहण कर रहे थे, उसकी भी आवश्यकता नहीं है। वह इस तरह कि समानगुण में ही स्पर्द्धा होती है। धनी और सुन्दर मनुष्य के मध्य में कोई स्पर्द्धा नहीं होती है। वह इस लिए कि धन और सौन्दर्य ये दोनों ही असमान गुण हैं; अतः गुण से गुण की स्पर्द्धा तथा धन से धन की स्पर्द्धा हो सकती है। परन्तु गुण का वाचक प्रातिपदिक से ही प्रत्यय उत्पन्न होना चाहिये। यदि कृष्ण-प्रकर्षवाच्य होने पर शुक्लपद से प्रत्यय कह दिया जाये तो वह शुक्ल का प्रकर्ष होगा, कृष्ण का नहीं; अतः प्रातिपदिक का अभाव होने से कृष्णप्रकर्ष में शुक्ल से प्रत्यय नहीं होगा।

किमन्तात् पुनरुत्पत्त्या भवितव्यम्? द्वितीयान्तादतिशय्यमानात्। शुक्लमतिशेते शुक्लतरः। कृष्णमतिशेते कृष्णतरः।

प्रश्नभाष्य—**किमन्तादिति**। 'अतिशायने' ५.३.२५ यह प्रत्ययार्थ का निर्देश है, अथ वा प्रकृत्यर्थ का विशेषण है?

उत्तरभाष्य—**द्वितीयान्तादिति**। यदि विग्रहवाक्य को तिङन्तघटित रखेंगे तो प्रकर्षवाच्य होने पर द्वितीयान्त से प्रत्यय होगा। जैसे—'शुक्लमतिशेते इति शुक्लतरः'। 'कृष्णमतिशेते इति कृष्णतरः'। परन्तु यदि कृदन्त ल्युडन्त अतिशायन के साथ विग्रह करेंगे तो शुक्ल आदि गुणवचन से षष्ठी होगी—'शुक्लस्यातिशायनम्, कृष्णस्यातिशायनम्'। यहाँ सन्देह होता है कि कर्म्म में षष्ठी की जाये, अथवा कर्त्ता में षष्ठी की जाये। ल्युट् प्रत्यय करण में किया जाये, अथवा कर्त्ता में किया जाये? अथवा 'द्वितीयान्तादतिशय्यमानात्' में द्वितीया पद को यदि उपलक्षण मान लिया जाये तो उससे षष्ठी का भी ग्रहण हो जायेगा, एवं प्रत्ययार्थसामर्थ्य से समर्थविभक्ति का लाभ हो जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि द्वितीयान्तादतिशय्यमानात्, कालोऽतिशेते कालीं-'कालितर' इति प्राप्नोति, 'कालतर' इति चेष्यते। तथा काल्यतिशेते कालं 'कालतरे'ति प्राप्नोति, 'कालितरे'ति चेष्यते। तथा गार्ग्योऽतिशेते गर्गान्, 'गर्गतर' इति प्राप्नोति, 'गार्ग्यतर' इति चेष्यते। तथा गर्गा अतिशेरते गार्ग्यं 'गार्ग्यतराः' इति प्राप्नोति, 'गर्गतराः' इति चेष्यते।

आक्षेपक आचार्य—**यदीति**। यदि द्वितीयान्त से प्रत्यय कह रहे हैं तो 'कालः कालीमतिशेते' इस वाक्य में काली की अपेक्षा काल का प्रकर्ष बताया जा रहा है; अतः काल का प्रकर्ष होने पर काल पद से प्रत्यय होकर 'कालतरः' प्रयोग इष्ट है; परन्तु द्वितीयान्त से प्रत्यय कहने पर प्रकृतविग्रहवाक्य में द्वितीयान्त 'कालीम्' पद है; अतः उसी से प्रत्यय होकर 'कालितरः' की आपत्ति होगी। यहाँ 'घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः' ६.३.४३ से ह्रस्व है। एवम् 'काली कालमतिशेते' इस विग्रह में काल पद से प्रत्यय होकर 'कालतरः' की आपत्ति होगी, जब कि यहाँ 'कालितरः' इष्ट है। इसी तरह 'गार्ग्यो गर्गानतिशेते' इस विग्रह में द्वितीयान्त 'गर्गान्' से प्रत्यय होकर 'गर्गतरः' की आपत्ति हो रही है। जब कि यहाँ 'गार्ग्यतरः' रूप इष्ट है। एवं 'गर्गा गार्ग्यमतिशेरते' इस विग्रहवाक्य में द्वितीयान्तपद 'गार्ग्यम्' है। उससे प्रत्यय होकर 'गार्ग्यतरः' की आपत्ति होगी, जब कि यहाँ 'गर्गतराः' यह रूप इष्ट है। इस तरह द्वितीयान्त से प्रत्यय मानने पर अतिव्याप्ति हो रही है।

एवं तर्हि प्रथमान्तात् स्वार्थिको भविष्यति—कालोऽतिशेते कालतरः। काल्यतिशेते कालितरा। गार्ग्योऽतिशेते गार्ग्यतरः। गर्गा अतिशेरते गर्गतराः।

समाधानभाष्य—**एवं तर्हीति**। यदि द्वितीयान्त से प्रत्यय उत्पन्न करने में दोष है तो प्रथमान्तसमानाधिकरण प्रातिपदिक से प्रत्यय ले आइये। इस पक्ष में 'अतिशायने' में कर्त्तृल्युडन्त है तथा वह प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। 'काल्यतिशेते' इत्यादि में प्रथमान्त से प्रत्यय करने पर 'दीव्यति' इत्यादि की तरह विशेषण-विशेष्यभावव्यत्यास के द्वारा अतिशय कर्त्री काली इत्यादि क्रम से बोध होगा। प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में प्रत्यय करने पर उपर्युक्तविग्रहों में 'कालतरः, कालितरः, गार्ग्यतरः, गर्गतरः' ही रूप होगा, 'कालितरः' आदि नहीं।

यदि प्रथमान्तात् स्वार्थिकः—कुमारितरा किशोरितरा, अव्यतिरिक्तं वय इति कृत्वा 'वयसि प्रथम' इति ङीप् प्राप्नोति। तर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पोक्तत्वात् स्त्रीत्वस्य प्रत्ययो न भविष्यति। टाबपि तर्हि न प्राप्नोति। उक्तेऽपि हि भवन्त्येते टाबादयः, उक्तमेतत्—'स्वार्थिकाष्टाबादय' इति। ङीबपि तर्हि प्राप्नोति।

आक्षेपक आचार्य—**यदि प्रथमान्तादिति**। यदि प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में प्रत्यय कहेंगे तो 'कुमारितरा, किशोरितरा' में प्रथमवयः से भिन्न वयः नहीं हुआ। अदन्त प्रातिपदिक है; अतः 'वयसि प्रथमे' ४.१.२० से ङीप् की आपत्ति होगी।

समाधानभाष्य—**तरपोक्तत्वादिति**। प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में प्रत्यय कहने पर 'कुमारितरा, किशोरितरा' में तरप् प्रत्यय से स्त्रीत्व उक्त है; अतः पुनः स्त्रीत्व का वाचक ङीप् नहीं हो सकेगा। इसमें 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय ही प्रमाण है।

अन्य आचार्य—**टाबपीति**। यदि 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय के द्वारा 'कुमारितरा' आदि में ङीप् का वारण करते हैं तो तुल्ययोगक्षेमन्याय से टाप् की भी प्राप्ति नहीं होनी चाहिये?

उत्तरभाष्य—**उक्तेऽपीति**। स्त्रीत्व के उक्त होने पर भी टाप् आदि प्रत्यय होते हैं। इस वात को 'स्त्रियाम्' ४.१.४ सूत्र पर 'स्वार्थिकाष्टाबादयः' कह कर स्पष्ट कर आया हूँ।

आक्षेपक—**ङीबपि तर्हीति**। यदि टाप् आदि स्वार्थ में हैं तो आदिपद से ङीप् का भी ग्रहण होगा; अतः उक्त होने पर भी ङीप् की प्राप्ति होगी?

एवं तर्हि गुणोऽभिधीयते। एवमपि लिङ्गवचनानि न सिध्यन्ति-शुक्लतरं शुक्लतरा शुक्लतरः शुक्लतरौ शुक्लतरा इति। आश्रयतो लिङ्गवचनानि भविष्यन्ति। गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्ग-वचनानि भवन्ति। तद्यथा-शुक्लं वस्त्रं शुक्ला शाटी शुक्लः कम्बलः शुक्लौ कम्बलौ शुक्लाः कम्बला इति। यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति गुणस्तस्य यल्लिङ्गं वचनं च तद्गुणस्याऽपि भविष्यति। अथ वा क्रियाऽभिधीयते।

अन्य आचार्य—**एवन्तर्हीति**। यदि प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में प्रत्यय होने में 'कुमारितरा' इत्यादि में ङीप् की आपत्ति हो रही है तो आप प्रथमान्त से गुणप्रकर्ष में प्रत्यय मानिये। इस पक्ष में गुणप्रकर्ष होने से 'कुमारितरा' में प्रथम वयः नहीं रहा; अतः ङीप् की आपत्ति निरस्त हो गयी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक आचार्य—**एवमपीति**। यदि गुणप्रकर्ष में प्रत्यय कहेंगे तो लिङ्ग और वचन सिद्ध नहीं हो सकेंगे। गुणप्रकर्ष में सर्वत्र मात्र एक ही लिङ्ग=नपुंसक तथा मात्र एक ही वचन=एकवचन होगा-'शुक्लतरम्'। परन्तु प्रकर्षार्थक प्रत्यय के विशेष्यनिघ्न रहेने से विशेष्य का लिङ्ग और वचन के अनुसार यहाँ लिङ्ग और वचन होता है—'शुक्लतरं वस्त्रम्, शुक्लतरः कम्बलः, शुक्लतरौ कम्बलौ, शुक्लतराः कम्बलाः'।

उत्तरभाष्य— **आश्रयत इति**। गुण द्रव्य के आश्रित होता है। द्रव्य से भिन्न कहीं भी गुण की सत्ता नहीं देखी जाती है; अतः द्रव्याश्रित होने से द्रव्य का लिङ्ग और वचन गुण में भी हो जायेगा। प्रत्ययान्त में लिङ्ग और वचन की सिद्धि के लिए दूसरा उपाय बताते हैं—**अथ वेति**। 'अतिशायनम्' यह भाव में ल्युट् मानेंगे।

एवमपि लिङ्गवचनानि न सिध्यन्ति। आश्रयतो लिङ्गवचनानि भविष्यन्ति। एवमपि द्विवचनं प्राप्नोति, यश्च ह्यतिशेते यश्चाऽतिशय्यते उभौ तौ तस्याश्रयौ भवतः। नैष दोषः। कथम्? शेतिरकर्मकः। अकर्मका अपि धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति। कर्मापदिष्टा विधयः कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां वा भवन्ति, कर्तृस्थभावकश्च शेतिः।

आक्षेपक—**एवमपीति**। 'अतिशायने' में भावल्युट् मानने पर भी तरबन्तादि से लिङ्ग और वचन असिद्ध रहेंगे। भावल्युडन्तपक्ष में व्यापारप्रकर्ष वाच्य होगा। व्यापार में लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होता है।

उत्तरभाष्य—**आश्रयत इति**। व्यापार अपने आश्रय द्रव्य में रहेगा। व्यापाराश्रय द्रव्य का लिङ्ग और वचन प्रत्ययान्त में हो जायेगा।

आक्षेपक—**एवमपि द्विवचनमिति**। जो अतिशय कर रहा है तथा जो अतिशयक्रिया का कर्म हो रहा है, वे दोनों ही अतिशय के निर्वर्तक होने से आश्रय हो रहे हैं; अतः प्रत्ययान्त में लिङ्ग और वचन के प्राप्त होने पर भी द्विवचन अप्राप्त ही रहेगा।

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ धातु अकर्मक है; अतः उसका कर्म सम्भव नहीं होने से धात्वर्थ का आश्रय कर्त्ता और कर्म दोनों नहीं हो सकेंगे, अपि तु मात्र कर्त्ता ही धात्वर्थ का आश्रय होगा; अतः द्विवचन की आपत्ति नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक आचार्य—**अकर्मका अपीति**। उपसर्ग से युक्त होकर अकर्मक भी सकर्मक हो जाते हैं। जैसे—'दुःखमनुभवति'। प्रकृत में भी अति उपसर्ग से युक्त शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ धातु सकर्मक हो जायेगा।

उत्तरभाष्य—**कर्मापदिष्टा इति**। कर्म में कहा गया विधि कर्मस्थ भाव तथा कर्मस्थक्रिया को होता है। जब कि शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ धातु कर्तृस्थ-भावक है। अर्थात्—शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ धातु में अतिशयक्रिया कर्त्ता में ही समवेत है, कर्म में नहीं; अतः कर्माश्रित लिङ्ग और संख्या का अभाव रहेगा। यहाँ कर्मापदिष्ट द्विवचनविधि है।

अथ यद्येव द्वितीयान्तादुत्पत्तिः प्रथमान्ताद्वा स्वार्थिकः, अथापि गुणोऽभिधीयतेऽथाऽपि क्रिया; किं गतमेतदियता सूत्रेण, आहो-स्विदन्यतरस्मिन् पक्षे भूयः सूत्रं कर्त्तव्यम्? 'गत'मित्याह। कथम्? यदा तावद् द्वितीयान्तादुत्पत्तिः प्रथमान्ताद्वा स्वार्थिकस्तदा 'कृत्यल्युटो बहुल'मित्येवमत्र ल्युड् भविष्यति। यदा गुणोऽभिधीयते तदा न्याय-सिद्धमेव। यदाऽपि क्रिया, तदापि न्यायसिद्धमेव। अथ वाऽतिशाय-यतीत्यतिशायनः। कः प्रयोज्यार्थः? गुणा गुणिनं प्रयोजयन्ति, गुणी वा गुणान् प्रयोजयति। कः पुनरिह शेत्यर्थः? इह यो यत्र भवति शेतेऽसौ तत्र। गुणा गुणिनि शेरते।

अन्य आक्षेपक—**अथ यद्येवमिति**। यहाँ चार पक्ष उठाये गये हैं—१-द्वितीयान्त से प्रत्यय हो। २-प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में हो। ३-गुणा-भिधान में हो, तथा ४-क्रियाभिधान में हो। यहाँ यह जिज्ञास्य है कि ये सभी पक्ष इसी सूत्र से गतार्थ हैं, अथ वा यदि नहीं तो इनमें से अन्यतम अर्थ को कहने के लिए कोई अतिरिक्त सूत्र करना पडेगा?

उत्तरभाष्य—**गतमिति**। उपर्युक्त चारों अर्थ इसी सूत्र से ही गतार्थ हो जायेंगे। इसके लिए अतिरिक्तसूत्र करने की आवश्यकता नहीं है। ये सभी अर्थ इसी सूत्र से कैसे गतार्थ हैं, इसे स्पष्ट करते हैं—**यदा तावदिति**। यदि द्वितीयान्त से प्रकर्ष अर्थ में प्रत्यय मानेंगे, अथ वा प्रकर्षार्थक प्रथमान्त से स्वार्थ में प्रत्ययं मानेंगे तो इस पक्ष में 'अतिशायने' में 'कृत्यल्युटो बहुलम्' ३.३.११३ से कर्तृसाधन ल्युट् माना जायेगा। यदि गुण अर्थ लेंगे तो 'अतिशायने' में करण में ल्युट् माना जायेगा—अतिशय्यते येन गुणेन सः अतिशायनः। एवं यदि भाव अर्थ लेना होगा तो 'अतिशायने' में भाव में ल्युट् मानेंगे। इस तरह ये चारों अर्थ सूत्र से ही आ जा रहे हैं। इनके लिए पृथक् सूत्र कहने की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवश्यकता नहीं है। 'गुणोऽभिधीयते' पक्ष तथा 'प्रथमान्ताद्वा स्वार्थिकः' पक्ष प्रकारान्तर से साधन करते हैं—**अथ वेति**। 'अतिशाययतीति अतिशायनः' 'अतिशीङ्+णिच्' इस दशा में 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' ३.१.१३४ से कर्त्ता में ल्यु प्रत्यय है। यहाँ धात्वर्थव्यापार का आश्रय प्रयोज्यकर्त्ता है एवं णिजर्थव्यापार का आश्रय प्रयोजक कर्त्ता है। कभी गुण का प्रयोजक गुणी होता है तथा गुण प्रयोज्य होता है। कभी गुणी का प्रयोजक गुण होता है तथा गुणी प्रयोज्य होता है। इस तरह जब गुण प्रयोजक होगा तब णिजन्त शीङ् धातु से ल्यु करने पर गुण अभिधेय होगा। जब गुणी प्रयोजक होगा तब प्रथमान्त से स्वार्थिक प्रत्यय होगा।

प्राश्निक आचार्य—**कः पुनरिति**। 'अतिशाययति इति अतिशायनः' इस स्थल में शीङ् धातु का क्या अर्थ है? शीङ् धातु के अनेकार्थक होने से यहाँ प्रश्न किया जा रहा है।

उत्तरभाष्य—**इह यो यत्रेति**। जिसका जो आश्रय होता है वह वहीं अपने आश्रय में सोता है। जैसे जल का आश्रय जलाशय है; अतः जलाशय में जल सोता है। गन्ध का आश्रय पृथिवी है, अतः गन्ध पृथिवी में सोता है। वैसे ही गुण=द्रव्य में गुण रहता है; अतः गुण=द्रव्य गुण का ही शयनस्थल है। 'गुणाः शेरते शयानाँस्तान् गुणान् गुणी प्रेरयति इति गुणी गुणान् स्वस्मिञ् शाययति=अतिशयेन अवस्थापयति'। इस तरह 'गुणा गुणिनं प्रयोजयन्ति' कह कर भाष्यकार ने गुण को प्रयोजक तथा गुणी को प्रयोज्य कहा है तथा उसी को 'गुणा गुणिनि शेरते' कह कर और अधिक स्पष्ट किया है। एवं 'गुणो वा गुणान् प्रयोजयति' कह कर गुणी को भी प्रयोजक कहा है। इसी को भाष्यकार कारिकामुखेन स्पष्ट करते हैं—

शेत्यर्थः कारितार्थो वा निर्देशोऽयं समीक्षितः।
शेत्यर्थे नास्ति वक्तव्यं कारितार्थं ब्रवीमि ते।।१।।

गुणी वा गुणसंयोगाद् गुणो वा गुणिना यदि।
अभिव्यज्येत संयोगात् कारितार्थो भविष्यति।।२।।

शेत्यर्थः कारितार्थो वेति। 'अतिशायने' में शीङ् स्वप्ने धा.पा.१०५७ प्रकृत्यर्थ का निर्देश है; अथवा **कारितार्थः**=हेतुमण्यन्तार्थ का निर्देश है। प्राचीन आचार्य हेतुमण्यन्त की कारितासंज्ञा करते हैं। उनकी दृष्टि से 'कारितार्थः= हेतुमण्यन्तार्थः' कहा गया है। 'अतिशायने' में मात्र प्रकृत्यर्थ का निर्देश मानने के पक्ष में निपातन से दीर्घ कहना होगा। यदि कारितार्थ=हेतुमण्यन्तार्थ मानेंगे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो वृद्धि, आयादेश से ही दीर्घघटित रूप हो जायेगा। **शेत्यर्थे नास्तीति।** अत्यन्त प्रसिद्ध होने से शीङ्प्रकृत्यर्थ में सन्देह नहीं है; अतः सन्दिग्धविषय को स्पष्ट करने के लिए मैंने ण्यन्तार्थ स्पष्टरूप से कह दिया है।।१।।

यदि ण्यन्तपक्ष में गुणी को प्रयोज्यकर्त्ता मानेंगे तो गुण प्रयोजक कर्त्ता होगा। यदि गुण को प्रयोज्य कर्ता मानेंगे तो गुणी प्रयोजककर्ता होगा। इस तरह कभी गुण की अपेक्षा गुणी का प्रकर्ष तथा कभी गुणी की अपेक्षा गुण का प्रकर्ष होने से ण्यर्थ उपपन्न हो जायेगा।।२।।

इहाऽस्यापि सूक्ष्माणि वस्त्राण्यस्याऽपि सूक्ष्माणि वस्त्राणीति, परत्वादातिशायिकः प्राप्नोति * अतिशायने बहुव्रीहावुक्तम् * **अतिशायने बहुव्रीहावुक्तम्। किमुक्तम्?** * पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थ इति, उत्तरपदातिशये आतिशायिको बहुव्रीहेर्बह्वाढ्यतराद्यर्थः' इति *

आक्षेपक आचार्य—**इहाऽस्याऽपीति।** 'सूक्ष्माणि वस्त्राणि अस्यापि, सूक्ष्माणि वस्त्राणि अस्यापि' इस बहुव्रीहिस्थल में अन्यपदार्थ के प्रधान के प्रति प्रकर्ष तथा विशेषण की युगपद् विवक्षा होने पर विप्रतिषेध के द्वारा पहले पर होने से आतिशायिक प्रत्यय प्राप्त होगा तथा बाद में बहुव्रीहि होकर 'सूक्ष्मतरवस्त्रः' इस प्रयोग की आपत्ति होगी, जब कि यहाँ 'सूक्ष्मवस्त्रतरः' प्रयोग इष्ट है।

समाधानभाष्य—**अतिशायने इति।** बहुव्रीहि में जहाँ अतिशय होने पर प्रत्यय प्राप्त हो रहा हो तथा बहुव्रीहि भी प्राप्त हो रहा हो, वहाँ पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा पहले समास तथा बाद में प्रत्यय होकर 'सूक्ष्मवस्त्रतरः' ही रूप होगा। यदि यहाँ परविप्रतिषेध के द्वारा तरप् करने के बाद तरबन्त से समास करेंगे तो स्वर में वैशिष्ट्य होगा—'बहूनि आढ्यानि यस्मिन्नसौ बह्वाढ्यतरः' में 'बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि' ६.२.१७५ से अन्तोदात्त होगा। जब बहुव्रीहि से तरप् करेंगे तब पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ के द्वारा तरप् अनुदात्त होगा तथा शेषनिघात के द्वारा मध्योदात्त की प्राप्ति होगी। एवं तरबन्त बहुव्रीहि से 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से कप् करने पर भी विशेष होगा। यहाँ 'बह्वाढ्यतरकः' यह तरबन्त के साथ समास होगा। जब कि बहुव्रीहि से तरप् करने पर 'बह्वाढ्यतरः' रूप होगा। यदि यहाँ पूर्वपदार्थ को अतिशयार्थक मानेंगे तो बहुव्रीहि करने पर तरप् होगा।

इह त्रीणि शुक्लानि वस्त्राणि प्रकर्षाप्रकर्षयुक्तानि, तत्र पूर्वमपेक्ष्य उत्तरे द्वे तरबन्ते, तत्र द्वयोस्तरबन्तयोरेकस्मात् प्रकर्षयुक्ताच्छुक्लतर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दादुत्पत्तिः प्राप्नोति, शुक्लशब्दादेव चेष्यते * शुक्लतरस्य शुक्लभावात् प्रकृतेः प्रत्ययविज्ञानम् * **शुक्लतरस्य शुक्लभावात् प्रकृतेः प्रत्ययो विज्ञायते। शुक्लतरशब्दे शुक्लशब्दोऽस्ति तस्मादुत्पत्तिर्भविष्यति। नैतद् विदामहे—शुक्लतरशब्दे शुक्लशब्दोऽस्ति नास्तीति। किं तर्हि? शुक्लतरशब्दोऽप्यस्ति तत उत्पत्तिः प्राप्नोति** * तदन्ताच्च स्वार्थे छन्दसि दर्शनं श्रेष्ठतमायेति * **तदन्तादातिशायिकान्तात् स्वार्थे छन्दस्यातिशायिको दृश्यते—'देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे'।**

आक्षेपक आचार्य—**इहेति**। तीन शुक्ल वस्त्र हैं। पूर्व की अपेक्षा दो शुक्लवस्त्र प्रकर्ष हैं; अतः प्रकर्षार्थक दोनों शुक्ल पद से तरप् प्रत्यय होगा। पुनः उत्तर के दोनों शक्लवस्त्रों में भी प्रथम की अपेक्षा द्वितीय का प्रकर्ष है। इस तरह इन तीनों शुक्लवस्त्रों में प्रधम की अपेक्षा द्वितीय और तृतीय तथा द्वितीय और तृतीय में भी द्वितीय की अपेक्षा तृतीय का प्रकर्ष होने से तरबन्त से तरप् की आपत्ति हो रही है, जब कि वहाँ भी शुक्ल पद से ही तरप् होना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**शुक्लतरस्येति**। न्यून, मध्यम और उत्कृष्ट सभी का शुक्लत्व सम्भव है। शुक्लतर पद में शुक्ल पद भी है। उसी से प्रत्यय उत्पन्न होगा, तरबन्त से नहीं।

खण्डनभाष्य—**नैतदिति**। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तरबन्त शुक्लतर पद नहीं है। वहाँ शुक्ल है, परन्तु शुक्लतर पद भी है जिससे प्रत्यय प्राप्त होने पर आप उसे शुक्ल पद नहीं कह सकेंगे। एवं तदन्त से भी प्रत्यय होता है, इसे स्पष्ट करते हैं—**तदन्ताच्चेति**। 'देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इस श्रुतिवाक्य में 'श्रेष्ठतमाय' यह प्रत्ययान्त से प्रत्यय है। 'प्रकर्षः प्रशस्य इति श्रेष्ठः' यहाँ प्रशस्य पद से इष्ठन् प्रत्यय तथा 'प्रशस्यस्य श्रः' ५.३.६० से प्रकृति को श्र आदेश है। इस तरह श्रेष्ठ पद प्रत्ययान्त हुआ। इससे पुनः तमप् प्रत्यय हुआ है; अतः प्रकृत में तरबन्त से भी तरप् होना चाहिये।

एवं तर्हि—मध्यमाच्छुक्लशब्दात् पूर्वपरापेक्षादुत्पत्तिर्वक्तव्या। मध्यमश्च शुक्लशब्दः पूर्वमपेक्ष्य प्रकृष्टः, परमपेक्ष्य न्यूनः। न च न्यूनः प्रवर्त्तते। अथ वोत्पद्यतां, लुग्भविष्यति। वाचकेन खल्वप्युत्पत्तव्यं, न च शुक्लतरशब्दादुत्पद्यमानो वाचकः स्यात्। न खल्वपि बहूनां प्रकर्षे तरपा भवितव्यम्। केन तर्हि? तमपा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। जहाँ तीन शुक्ल पद हैं वहाँ पूर्व और पर की अपेक्षा मध्यमवाचि शुक्ल पद से तरप् की उत्पत्ति कहनी चाहिये—शुक्लमतिशेते इति शुक्लतरः। इस वक्तव्य से तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा तृतीयशुक्लवाचि शुक्लतर पद से प्रत्ययोत्पत्ति बाधित हो जायेगी। यद्यपि मध्यमशुक्लवाचि पद पूर्व की अपेक्षा से शुक्लतर है, फिर भी तृतीय की अपेक्षा से न्यून होने से शुक्ल ही है, शुक्लतर नहीं; अतः उस मध्यमशुक्लवाचि शुक्लपद से ही प्रत्यय कहना चाहिये। **न च न्यून इति**। जैसे राजा के सामने मन्त्री का न्यूनत्व होता है वैसे यहाँ तृतीय की अपेक्षा मध्यम में न्यूनत्व है। पूर्वाभिभव की कर्त्तृत्वेन विवक्षा होने पर जैसे मध्यम अर्थ में शुक्लवाचि पद से प्रत्यय नहीं होता है, वैसे तृतीय की प्रकर्षविवक्षा में द्वितीय से भी प्रत्यय नहीं हो सकेगा। अतः अतद्धितान्त शुक्ल पद से तृतीय प्रकर्षार्थविवक्षा में प्रत्यय होगा। इस तरह स्वगत प्रकर्ष की अपेक्षा से तद्धितोत्पत्ति होने में न्यून शब्द प्रवृत्त नहीं हो सकेगा।

इसी को अन्य पक्ष में भी समाधान कर रहे हैं—**अथ वेति**। तरबन्त से तरप् प्रत्यय उत्पन्न होने पर भी गतार्थ होने से उसका प्रयोग नहीं होना ही श्रेष्ठ है। यहाँ एक ही तरप् प्रत्यय आद्य और मध्यम शुक्ल की अपेक्षा तृतीय का प्रकर्ष कह रहा है; अतः तरबन्त से उत्पन्न होकर भी तरप् का लुक् हो जायेगा। एवं वाचकशब्द से भी प्रत्यय उत्पन्न होना चाहिये। यदि तरबन्त से तरप् ले आयेंगे तो वह तरबन्त का प्रकर्ष नहीं कह सकेगा; अतः तरबन्त से तमप् होकर 'शुक्लतमः' होगा, 'शुक्लतरः' नहीं। 'शुक्लतरतर' शब्द का प्रयोग नहीं होता है, अतः यह अवाचक शब्द है। बहुतों में एक का प्रकर्ष बताने के लिए तरबन्त का प्रयोग नहीं होता है, अपि तु तमबन्त का प्रयोग होता है।

पूर्वेण स्पर्द्धमानो यो मध्यमो लभते सितः।
परस्मिन् न्यूनतामेति न च न्यूनः प्रवर्त्तते।।१।।

अपेक्ष्य मध्यमः पूर्वमाधिक्यं लभते सितः।
परस्मिन् न्यूनतामेति यथाऽमात्यः स्थिते नृपे।।२।।

अस्तु वापि तरप्तस्मान्नाऽपशब्दो भविष्यति।
वाचकश्चेत् प्रयोक्तव्यो वाचकश्चेत् प्रयुज्यताम्।।३।।

अब तक कहे गये अर्थों को ही श्लोकमुखेन संग्रह करते हैं—**पूर्वेणेति**। जहाँ तीन शुक्ल वस्त्र हैं, वहाँ प्रथम की अपेक्षा मध्यम का प्रकर्ष होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्लवाचि मध्यम पद से तरप् प्रत्यय होगा। परन्तु तृतीयशुक्ल की अपेक्षा मध्यमशुक्ल न्यून है; अतः यहाँ न्यून अर्थ में प्रत्यय विहित नहीं होगा।।१।।

पूर्व=प्रथम की अपेक्षा मध्यम में शुक्लप्रकर्ष है। परन्तु तृतीय की अपेक्षा से मध्यम न्यून है। जैसे राजा के उपस्थित रहने पर अमात्य न्यून होता है, वैसे तृतीय की अपेक्षा मध्यम न्यून है।।२।।

अथवा यदि आप तरबन्त से तरप् करेंगे तो 'शुक्लतरतरः' ऐसा अपशब्द होगा तथा अर्थ का वाच नहीं होने से वह प्रयोगार्ह नहीं हो सकेगा। चूँकि शुक्लतरतर पद अर्थ का वाचक नहीं है, अतः प्रयोगार्ह नहीं होगा।।३।। {**अतिशायने**-}।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५.३.५७

'द्विवचन' इत्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति—'दन्तोष्ठस्य दन्ताः स्निग्धतराः' 'पाणिपादस्य पादौ सुकुमारतरौ' 'अस्माकं च देवदत्तस्य च देवदत्तोऽभिरूपतर' इति।

उच्यतेऽनेनति वचनम्। द्वयोरर्थयोर्वचनं द्विवचनम्=द्व्यर्थप्रतिपादक। यहाँ व्याख्यानवश द्विवचनसंज्ञक का ग्रहण नहीं है। विभक्तव्यम्=विभज्यम्, यहाँ निपातन के द्वारा 'ऋहलोर्ण्यत्' ३.१.१२४ का बाध कर यत् प्रत्यय है। द्विवचनं च विभज्यं चेत्यनयोः समाहारो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तदुपपदं चेति द्विवचनविभज्योपपदम्, कर्मधारयसमास। तस्मिन् द्विवचनविभज्योपपदे। 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ तथा 'तिङश्च' ५.३.५६ से 'तिङः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'दो में से अन्यतर का प्रकर्ष वाच्य होने पर तथा विभज्य उपपद रहते प्रातिपदिक तथा तिङन्त से तरप् तथा ईयसुन् प्रत्यय हो'। यहाँ यद्यपि सुबन्त तथा तिङ्ङन्त यह दो प्रकृति हैं तथा तरप् और ईयसुन् ये दो प्रत्यय हैं, फिर भी व्याख्यानात् यथासंख्य का अभाव रहेगा। द्विवचन उपपद रहते जैसे—अयमनयोरतिशयेन लघुरिति लघीयान्, लघुतरः। विभज्योपपद जैसे—उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः पटीयांसः।

पारिभाषिक द्विवचन का आश्रयण कर प्रश्न करते हैं—**द्विवचन इत्युच्यत इति**। आप द्विवचन में अन्यतर का प्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्ययोत्पत्ति कह रहे हैं। इसकी अव्याप्ति होगी। इसे स्पष्ट करते हैं—**दन्तोष्ठस्येति**। 'दन्ताश्च ओष्ठौ चेत्यनयोः समाहारो दन्तोष्ठम्, तस्य' 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२ से एकवद्भाव है। यहाँ 'दन्तोष्ठस्य' यह एकवचन है, द्विवचन नहीं;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः अन्यतर का प्रकर्ष वाच्य होने पर 'दन्तोष्ठस्य दन्ताः स्निग्धतराः' में प्रत्यय की अनुत्पत्ति होगी। 'पाणी च पादौ चेत्यनयोः समाहारः पाणिपादम्, तस्य पादौ सुकुमारतरौ' में भी 'पाणिपादस्य' यह एकत्वनिर्देश है; अतः इसमें अन्यतर का प्रकर्ष वाच्य होने पर प्रत्यय की अप्राप्ति होगी। 'पाणिपादस्य' में भी 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२ से एकवद्भाव है। 'अस्माकं च देवदत्तस्य च देवदत्तोऽभिरूपतरः' में भी अन्यतर का प्रकर्ष वाच्य होने पर एकवचन से प्रत्यय है, जो द्विवचन से कहने पर प्राप्त नहीं हो पा रहा है। 'अस्मदो द्वयोश्च' १.२.५९ से एक में ही बहुवद्भाव होकर 'अस्माकम्' निर्देश है।

यदि पुनर्द्व्यर्थोपपद इत्युच्येत तत्राऽयमप्यर्थो विभज्योपपदग्रहणं न कर्त्तव्यं भवतीहापि 'साङ्काश्यकेभ्यः पाटलिपुत्रका अभिरूपतरा' इति द्व्यर्थोपपद इत्येव सिद्धम्।

यदि पुनरिति। यदि पूर्वोक्त उदाहरणों में कहीं पर भी राशिद्वय की अपेक्षा तथा कहीं पर अर्थद्वय की अपेक्षा होने पर सर्वत्र द्व्यर्थ हो जाने से प्रत्यय सिद्ध हो जा रहा है। द्व्यर्थोपपद कहने पर 'साङ्काश्येभ्यः पाटलिपुत्रका अभिरूपतराः' में भी प्रत्यय सिद्ध हो जा रहा है।

नैवंजातीयका द्व्यर्थता शक्या विज्ञातुम्, इहापि प्रसज्येत— 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणाञ्च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमा' इति।

अन्य आचार्य—**नैवंजातीयका इति**। यदि द्व्यर्थोपपदरूप द्विवचन लेंगे तो 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणां च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमाः' में भी अन्यतर पाटलिपुत्रक का प्रकर्ष होने पर उससे तरप् की आपत्ति होगी। यहाँ पाटलिपुत्रक और साङ्काश्यक यह दो राशिरूप द्व्यर्थोपपद सम्भव है। द्व्यर्थोपपद ग्रहण करने की अतिव्याप्ति देते हैं—**साङ्काश्यकानामिति**। 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणां च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमाः' में भी राशिद्वय सम्भव है; अतः तरप् की आपत्ति होगी। उद्भूतावयवभेदपक्ष में साङ्काश्यकावयव साङ्काश्यकशब्द से तथा पाटलिपुत्रकावयवक पाटलिपुत्रकशब्द से कहा गया है। इस तरह यहाँ निर्धारण में षष्ठी है—**साङ्काश्यकानामिति**। वस्तुतः यहाँ राशिओं के द्वित्व होने से तरप् की आपत्ति हो रही है; अतः राशिगतद्वित्व को लेकर तरप् न हो, इस के लिए 'विभज्योपपदे' यह अवश्य कहना चाहिये।

अवश्यं खल्पवि विभज्योपपदग्रहणं कर्त्तव्यं, यो हि बहूनां विभा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गस्तदर्थम्। 'साङ्काश्यकेभ्यश्च पाटलिपुत्रकेभ्यश्च माथुरा अभिरूपतरा' इति।

'विभज्योपपदे' ग्रहण का अन्य भी फल है, इसे स्पष्ट करते हैं—**अवश्यमिति**। सूत्र में 'विभज्योपपदे' का अवश्य ग्रहण करना चाहिये। इससे जहाँ बहुत राशियों के मध्य से एक का विभाग हो रहा है, वहाँ तीन राशि के होने से तरप् प्राप्त नहीं हो रहा है। जैसे 'साङ्काश्यकेभ्यः पाटलिपुत्रकेभ्यो माथुरा अभिरूपतराः'। यहाँ बहुतों के मध्य से एक का प्रकर्ष बताया जा रहा है; अतः तमप् की प्राप्ति हो रही है। जब कि यहाँ तरप् इष्ट है। यहाँ तरप् हो सके, इसके लिए 'विभज्योपपदे' ग्रहण करना चाहिये। द्व्यर्थोपपदरूप द्व्यर्थता मान कर आचार्यदेशीय ने विभज्योपपदेग्रहण का प्रत्याख्यान कर दिया था— 'यदि पुनर्द्व्यर्थोपपद इत्युच्यते, तत्रायमप्यर्थोविभज्योपपदग्रहणं न कर्त्तव्यं भवति'। पुनः इस तरह की द्व्यर्थता का खण्डन करते हुए अन्य आचार्य ने—'नैवंजातीयका द्व्यर्थता शक्या विज्ञातुम्' कह कर 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणां च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमाः' में अतिव्याप्ति दी थी। इस तरह जब द्व्यर्थोपपदरूप द्व्यर्थता के ग्रहण करने से विभज्योपपद का प्रत्याख्यान किया जा चुका है, तब पुनः 'अवश्यं खल्वपि विभज्योपपदग्रहणं कर्त्तव्यम्' कह कर उसका पुनः अङ्गीकार क्यों है? तो यहाँ इसे दोषावह नहीं समझा जाना चाहिये। वह इस तरह कि राशिद्वयापेक्षा द्व्यर्थता को लेकर एकदेशी आचार्य ने 'यदि पुनः द्व्यर्थोपपद इत्युच्यते' तथा 'तत्राऽयमप्यर्थः' कहा था। इसके बाद सिद्धान्ती आचार्य ने 'नैवंजातीयिका द्व्यर्थता शक्या विज्ञातुम्' कह कर एकदेशी के पक्ष का खण्डन कर दिया है।

तत्तर्हि द्व्यर्थोपपद इति वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नेदं पारिभाषिकस्य द्विवचनस्य ग्रहणम्। किं तर्हि? अन्वर्थग्रहणम्, उच्यत इति वचनं, द्वयोरर्थयोर्वचनं द्विवचनमिति।

इस तरह एकदेशी की द्व्यर्थता का खण्डन हो जाने पर प्रकृत में भगवान् पाणिनि को किस प्रकार की द्व्यर्थता इष्ट है? इसे जानने के लिए जिज्ञासु आचार्य शिष्यबुद्धि से प्रश्न करते हैं—**तत्तर्हीति**। तो क्या द्व्यर्थता का खण्डन करने के लिए द्व्यर्थोपपदग्रहण करना चाहिये?

सिद्धान्ती का खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। यहाँ द्व्यर्थोपपदरूप द्व्यर्थता का ग्रहण नहीं करना चाहिये। यहाँ पारिभाषिक द्विवचन का ग्रहण नहीं है, अपि तु 'उच्यते इति वचनम्, द्वयोरर्थयोर्वचनं द्विवचनम्' ऐसा अन्वर्थग्रहण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस तरह यहाँ आचार्य को अन्वर्थद्व्यर्थता इष्ट है। 'दन्तोष्ठस्य, पाणिपादस्य' में तिरोहितावयवभेद समूह समासार्थ है। यहाँ व्यक्तिगतभेद का परित्याग तथा धर्मकृत अभेद स्वीकार कर व्यवहार किया गया है। अनेकव्यक्ति का अभेदरूप से बोध होने से 'पाणिपादम्, दन्तोष्ठम्' ऐसा एकत्वेन व्यवहार है, संख्यारूप एकत्व का भान होने से नहीं। परन्तु यदि इतरेतरयोगद्वन्द्व मानेंगे तो अवयवार्थभेद होने से द्व्यर्थता नहीं रहेगी तथा वहाँ तरप् भी नहीं होगा जिससे 'प्लक्षन्यग्रोधानां प्लक्षाः स्निग्धतमाः'। अस्माकं च देवदत्तस्य च' यहाँ पर अर्थद्वय होने से द्व्यर्थता है। 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणां च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमाः' में अवयव अपने भेद का परित्याग नहीं कर रहा है। यहाँ राशिशब्द का प्रयोग नहीं होने पर अपेक्षा से शब्द के द्वारा द्व्यर्थता प्रतिपादित नहीं है; अतः द्व्यर्थता नहीं होने से तरप् प्रत्यय नहीं हुआ। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि 'पञ्चमी विभक्ते' २.३.४२ से पञ्चमी होनी चाहिये, 'यतश्च निर्धारणम्' २.३.४१ से षष्ठी क्यों है?, तो इसका उत्तर यह होगा-निर्धारण में सर्वत्र विभाग है। फिर भी विभक्तग्रहणसामर्थ्य से जहाँ शब्द से विभाग का ही ग्रहण हो रहा है, वही पञ्चमी का विषय होगा और वही विभज्योपपदनिमित्त प्रत्यय का विषय होगा। जैसे—'माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः'। परन्तु जहाँ समुदायबोधकशब्द का प्रयोग होने पर विभाग और अविभाग दोनों सम्भव है; जैसे—'गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा', वहाँ पञ्चमी भी नहीं होगी तथा तरप् प्रत्यय भी नहीं होगा। निर्धारणाश्रय में षष्ठी तथा सप्तमी यह दोनों विभक्तियाँ होती हैं। १-जिससे निर्धारण किया जाता है। २-जो एकदेश निर्धारित होता है, तथा जो-३-निर्धारणहेतु होता है। इन तीनों के सन्निधान में निर्धारण होता है। वहीं पर 'न निर्धारणे' २.२०.१० से षष्ठीसमास का निषेध होता है। परन्तु 'नागानामुत्तमो नागोत्तमः' में त्रितयसन्निधान नहीं होने से निर्धारण नहीं है, अपि तु सम्बन्धसामान्य में षष्ठी है। इस लिए यहाँ समास हो जाता है। 'साङ्काश्यकानां पाटलिपुत्रकाणां च पाटलिपुत्रका अभिरूपतमाः' यहाँ पर भी शब्द से समुदाय का प्रतिपादन हो रहा है, एवं विभज्यमानपदार्थ का दो वार ग्रहण होने से विभाग और विभाग का अभाव यह दोनों होने पर विभागविषयकार्य का अभाव है। प्रकर्ष प्रतियोगी की अपेक्षा करेगा। प्रकर्ष से विकर्ष का आक्षेप होगा। इस तरह विकर्ष के आक्षिप्त होने पर प्रकृत में भी अवधारण का ग्रहण होगा। इस तरह समुदायशब्द का उच्चारण करने पर विभज्योपपदनिमित्तक प्रत्यय की अप्राप्ति ही रहेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवमपि—

*** तरबीयसुनोरेकद्रव्यस्योत्कर्षापकर्षयोरुपसंख्यानम् * तरबीयसुनोरेकद्रव्यस्योत्कर्षापकर्षयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'परुवद् भवान् पटुरासीत् पटुतर ऐषमः' इति * सिद्धं तु गुणप्रधानत्वात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'गुणप्रधानत्वात्'। गुणप्रधानोऽयं निर्देशः क्रियते, गुणान्तरयोगाच्चाऽन्यत्वं भवति, तमेव गुणान्तरयुक्तं वक्तारो भवन्ति— 'अन्योऽद्य भवान् संवृत्त' इति।।**

एकदेशी आचार्य—**तरबीयसुनाविति**। एक ही द्रव्य का उत्कर्ष तथा अपकर्ष कहने पर भी तरप् तथा ईयसुन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—'परुवद् भवान् पटुरासीत्, पटुतर ऐषमः'। यहाँ एक ही व्यक्ति को विगत संवत्सर में पटु तथा वर्त्तमान संवत्सर में पटुतर कहा जा रहा है। यहाँ द्विवचन और विभज्योपपद का विषय नहीं है; अतः एक ही द्रव्य का प्रकर्ष और विप्रकर्ष वाच्य होने पर तरप् और ईयसुन् कहना चाहिये।

सिद्धान्ती—**सिद्धं त्विति**। अन्य गुण होने पर एक ही में भेद हो जाता है। एक ही व्यक्ति गत संवत्सर में पटु तथा वर्त्तमान संवत्सर में पटुतर है; अतः गुणभेद से एक ही में भेद मान कर तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हो जायेगा। इसके लिए पृथग्वचन करने की आवश्यकता नहीं है। वही व्यक्ति मात्र पटु होने से पूर्व वर्ष में वक्ता नहीं था, परन्तु पटुतर होने से वर्त्तमान संवत्सर में वक्ता हो गया, अतः गुणकृतभेद को लेकर 'अन्योऽद्य भवान् संवृत्तः' ऐसा भेदपरक व्यवहार हो जायेगा। {**द्विवचनभिज्योपपदे-**}।

अजादी गुणवचनादेव ५.३.५८

एवकारः किमर्थः? नियमार्थः। नैतदस्ति प्रयोजनम्। सिद्धे विधिरारभ्यमाणोऽन्तरेणैवैकारं नियमार्थो भविष्यति * इष्टतोऽवधारणार्थस्तर्हि * यथैवं विज्ञायेत-अजादी गुणवचनादेवेति, मैवं विज्ञायि- अजादी एव गुणवचनादिति। किं च स्यात्? न व्यञ्जनादी गुणवचनात् स्याताम्।

यहाँ तरप्-तमप् और इष्ठन्-ईयसुन् ये चार प्रत्यय अनुक्रान्त हैं। उनके मध्य में जो अजादि प्रत्यय इष्ठन् और ईयसुन् ये गुणवचन ही होंगे। 'गुणवचनादजादी एव' इस विपरीत नियम की व्यावृत्ति के लिए 'एव'कारग्रहण है; अतः 'पटुतरः, पटुतमः' की सिद्धि हो जायेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**एवकारः किमर्थ इति**। 'अजादी गुणवचनात्' इतना ही सूत्र रखिये, एवकार का ग्रहण क्यों करते हैं।

एकदेशी—**नियमार्थ इति**। एवकार का ग्रहण नियम के लिए है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ से स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर अतिशायनग्रहण की अनुवृत्ति कर उसमें प्रत्ययविधान सिद्ध था। सिद्ध होने में उसी में पुनः प्रत्ययविधान व्यर्थ पड कर प्रकृतसूत्र को नियमार्थक कह देगा, अतः वह एवकार का फल नहीं हो सकता है।

समाधानभाष्य—**इष्टतोऽवेति**। 'गुणवचन से ही अजादि हों' इस निर्धारण के लिए एवकार है। अन्यथा 'गुणवचनाद् अजादी एव' इस विपरीत नियम के होने से 'पटुतरः पटुतमः' की असिद्धि होती। 'अजादी गुणवचनादेव' कहने से गुणवचन से व्यञ्जनादि तरप् और तमप् भी हो जाते हैं। {**अजादी-**}।

प्रशस्यस्य श्रः ५.३.६०

इदमयुक्तं वर्त्तते। किमत्राऽयुक्तम्? अजादी गुणवचनाद् एवेत्युक्त्वाऽगुणवचनानामप्यजाद्योरादेशा उच्यन्ते। नैष दोषः। एतदेव ज्ञापयति—'भवत एतेभ्योऽगुणवचनेभ्योऽप्यजादी' इति, यदयमजाद्योः परत आदेशं शास्ति। एवमपि 'तयोरिति वक्तव्यं' स्यात्, तयोः परत इति। यदि पुनरयं विधिर्विज्ञायेत-प्रशस्यस्य श्र आदेशो भवति अजादी च भवत इति। नैवं शक्यं, व्यञ्जनादी हि न स्यातामुपाधीनां च सङ्करः स्यात् पुनर्विधानादजाद्योः। ननु चैते विशेषा अनुवर्त्तेरन्। यद्यप्येतेऽनुवर्त्तेरन् व्यञ्जनादी तर्हि न स्याताम्।

'प्रशस्यस्य' षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन, 'श्रः' प्रथमान्त विधेयवचन होने से यह दो पदों का सूत्र है। 'अजादी' ५.३.५८ की अनुवृत्ति करके सप्तम्यन्त विपरिणाम करेंगे।

सूत्रार्थ—'अजादि प्रत्यय इष्ठन् और ईयसुन् पर रहते प्रशस्य के स्थान में श्र आदेश हो'। प्रकर्षः प्रशस्यः श्रेष्ठः, श्रेयान्।

आक्षेपक आचार्य—**इदमयुक्तमिति**। 'अजादी गुणवचनादेव' कह कर गुणवचन से ही अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय का विधान किया गया है। जब कि अजादि प्रत्यय पर रहते प्रशस्य को श्र आदेश कह रहे हैं। प्रशस्यपद गुणवाचि नहीं है; अतः उससे अजादि प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है, अतः अजादि को निमित्त मान कर आदेशविधान अयुक्त है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। आचार्य ने अजादिप्रत्ययनिमित्तक श्रादेश कहा है, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'अगुणवचन से भी अजादि प्रत्यय इष्ठन् और ईयसुन् होते हैं'।

इतर आचार्य—**एवमपीति**। तरप् और तमप् पर रहते श्र आदेश न हो, इसके लिए 'अजादी गुणवचनादेव' ५.३.५८ से 'अजादी' की अनुवृत्ति करके अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय पर रहते प्रशस्य को श्र आदेश कहना चाहिये।

अन्य आचार्य—**नैवं शक्यमिति**। यदि अजादि का ग्रहण कर 'अजाद्योः' अर्थ का लाभ करेंगे तो पुनःग्रहणसामर्थ्य से प्रशस्यपद से व्यञ्जनादि तरप् और तमप् की अप्राप्ति होगी। एवम् अजादि इष्ठन् और ईयसुन् के पुनर्विधान होने से वह विशेषविहित होगा। विशेषविहित से तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा सामान्य व्यञ्जनादि तरप्, तमप् का बाध हो जायेगा। इसलिए सूत्र में 'अजाद्योः' का ग्रहण नहीं किया जा सकता है। एवम् 'अजाद्योः' का ग्रहणपक्ष में अन्यदोष उपाधियों का सङ्कर होना भी होगा। इससे जो-जो अजादिप्रत्यय होंगे उन सभी के पर रहते श्र आदेश होने लगेगा। अथ च सूत्र में 'अजाद्योः' का पाठ नहीं करके पूर्वसूत्र 'अजादी गुणवचनादेव' ५.३.५८ से उसकी अनुवृत्ति कर लेंगे। तब भी प्रशस्यपद से व्यञ्जनादि तरप् और तमप् की अप्राप्ति होगी।

नैष दोषः। एवं तर्हि आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'भवत एतेभ्योऽप्यगुणवचनेभ्योऽप्यजादी' इति, यदयमजाद्योरादेशं शास्ति। ननु चोक्तं-'तयोरिति वक्तव्य'मिति। न वक्तव्यम्। प्रकृतमजादिग्रहणमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'अजादी गुणवचनादेवे'ति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं, सप्तमीनिर्दिष्टेन चेहाऽर्थः। अर्थाद्विभक्तिविपरिणामो भविष्यति। तद्यथा—'उच्चानि देवदत्तस्य गृहाणि, आमन्त्रयस्वैनम्। 'देवदत्त'मिति गम्यते। देवदत्तस्य गावोऽश्वा हिरण्यम्, आढ्यो वैधवेयः। 'देवदत्त' इति गम्यते। पुरस्तात् षष्ठीनिर्दिष्टं सदर्थात् प्रथमानिर्दिष्टं द्वितीयानिर्दिष्टं च भवत्येवमिहापि पुरस्तात् प्रथमानिर्दिष्टं सदर्थात् सप्तमीनिर्दिष्टं भविष्यति। {प्रशस्य श्रः}।

उत्तरपक्षी आचार्य—**नैष दोष इति**। आचार्य पाणिनि ने अगुणवचन प्रशस्य को अजादिप्रत्यय इष्ठन् और ईयसुन् पर रहते श्र आदेश किया है, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—'अगुणवाची से भी अजादि प्रत्यय होते हैं'। 'अजादी गुणवचनादेव' ५.३.५८ से 'अजादी' की अनुवृत्ति करेंगे। निमित्तवचन होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसका सप्तम्यन्त विपरिणाम हो जायेगा। अर्थतः विभक्ति का विपरिणाम होता है। जैसे किसी ने कहा—'उच्चानि देवदत्तस्य गृहाणि, आमन्त्रयस्वैनम्'। इस वाक्य में प्रथम वाक्य से 'देवदत्तस्य' इस षष्ठ्यन्त का उत्तरवाक्य में अनुवृत्ति होने पर अर्थतः द्वितीयाविपरिणाम हो जाता है। एवं 'देवदत्तस्य गावोऽश्वा हिरण्यम्, आढ्यो वैधवेयः' में पूर्ववाक्य से षष्ठ्यन्त 'देवदत्तस्य' की अनुवृत्ति उत्तरवाक्य 'आढ्यो वैधवेयः' में करने पर अर्थतः षष्ठ्यन्त का प्रथमाविपरिणाम हो जाता है। वैसे पूर्वसूत्र 'अजादी गुणवचनादेव' ५.३.५८ में प्रथमानिर्दिष्ट 'अजादी' को जब उत्तरसूत्र 'प्रशस्यस्य श्रः' में अनुवर्त्तन करेंगे तब अर्थतः सप्तमीद्विवचनान्त से विपरिणाम हो जायेगा। {प्रशस्यस्य श्रः}।

प्रशंसायां रूपप् ५.३.६६

स्त्रीलिङ्गेनाऽयं निर्देशः क्रियते एकवचनान्तेन च, तेन स्त्रीलिङ्गादेवोत्पत्तिः स्यादेकवचनान्ताच्च, पुंनपुंसकलिङ्गाद् द्विवचनबहुवचनान्ताच्च न स्यात्। नैष दोषो, नायं प्रत्ययार्थः। किं तर्हि? प्रकृत्यर्थविशेषणमेतत्—'प्रशंसायां यत् प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्माद् रूपब्भवति'। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थ इति। स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते * प्रकृतेर्लिङ्गवचनाभावात्तिङ्प्रकृतेरम्भाववचनम् * **प्रकृतेर्लिङ्गवचनाऽभावात्तिङ्प्रकृते रूपपोऽम्भावो वक्तव्यः। पचतिरूपं, पचतोरूपं पचन्तिरूपमिति** * सिद्धं तु क्रियाप्रधानत्वात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'क्रियाप्रधानत्वात्'। क्रियाप्रधानमाख्यातं भवति। एका च क्रिया। द्रव्यप्रधानं नाम।**

'तिङश्च' ५.३.५६ से 'तिङः' तथा '-प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति है। 'सुबन्तात् तद्धितोत्पत्तिः' इस सिद्धान्त के अनुसार सुबन्त प्रातिपदिक का विशेषण है।

सूत्रार्थ—'प्रशंसा अर्थ में शक्त सुबन्त तथा तिङन्त से रूपप् प्रत्यय हो'। प्रशस्तः पटुः पटुरूपः। प्रशस्तः पचति पचतिरूपम्।

यहाँ विधेय प्रत्यय प्रधान है तथा प्रत्यय के प्रति प्रकृति अप्रधान है। प्रधान के साथ प्रशंसा का सम्बन्ध होना चाहिये; अतः प्रत्ययार्थ प्रशंसा मान कर प्रश्न करते हैं—**स्त्रीलिङ्गेनायमिति**। एकवचन और स्त्रीलिङ्ग का 'प्रशंसायाम्' ऐसा निर्देश है; अतः प्रशंसा अर्थ गम्य होने पर एकवचन और स्त्रीलिङ्ग से ही प्रत्यय होगा, पुल्लिङ्ग, नपुंसक, द्विवचन और बहुवचन से नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**नैष दोष इति**। 'प्रशंसायाम्' यह प्रत्ययार्थ में विशेषण नहीं है, अपि तु प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। इस तरह 'प्रशंसा अर्थ में शक्त प्रातिपदिक से रूपप् प्रत्यय हो' यह सूत्रार्थ होगा। 'अनिर्दिष्टाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति' इस न्याय से यहाँ रूपप् प्रत्यय प्रकृत्यर्थ में होगा। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अनुवर्त्तन करते हैं। इस तरह रूपप् प्रत्यय की प्रकृति का जो लिङ्ग, वचन होगा, उन सभी से प्रत्यय होने से भी प्रत्यय हो जायेगा।

एकदेशी आचार्य—**प्रकृतेर्लिङ्गेति**। प्रशंसा अर्थ में शक्त तिङ्न्त से भी स्वार्थ में रूपप् कहा गया है। सूत्र में प्रशंसाग्रहण प्रकृत्यर्थ में विशेषण है। तिङ्न्त पद में लिङ्ग और संख्या का अन्वय नहीं होता है; अतः तिङ्न्त से विहित रूपप् प्रत्ययान्त को लिङ्ग और वचन में कहा गया कार्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके लिए रूपप्प्रत्ययान्त तिङ्न्त से परमें विभक्ति के स्थान पर अमादेश कहना होगा-पचतिरूपम्, पचतोरूपम्, पचन्तिरूपम्।

खण्डनभाष्य—**सिद्धं त्विति**। यहाँ रूपप्प्रत्ययान्त से परमें विभक्ति के स्थान पर अमादेश स्वतः सिद्ध हो जायेगा। तिङ्न्तस्थलों में व्यापार विशेष्य होता है। व्यापारभेद का बोध नहीं होने से तिङ्न्त में क्रिया का एकत्व रहेगा। 'भवद्भिरास्यते' इस वाक्य में तिङ्न्त से व्यापार कहा जा रहा है। व्यापार के एक होने से भावप्रत्ययस्थल में एकवचन का ही प्रयोग होता है, द्विवचन, बहुवचन का नहीं। 'पचतः, पचन्ति' में तिङ्वाच्य कर्तृभिन्न द्वित्वबहुत्वाश्रयवचनभेद है; अतः इससे क्रियाभेद की सिद्धि नहीं होती है। व्यापार के एक होने से रूपप्प्रत्ययान्त से द्विवचन, बहुवचन का अभाव रहेगा; अतः तिङ्न्तस्थल में एकत्व को लेकर विभक्ति के स्थान में अमादेश हो जायेगा। नाम='सुबन्त द्रव्यप्रधान होता है', यह प्रसङ्गवश कहा गया है। वस्तुतः प्रकृत में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

कथं पुनर्ज्ञायते क्रियाप्रधानमाख्यातं भवति द्रव्यप्रधानं नामेति? यत्क्रियां पृष्टस्तिङाऽऽचष्टे—'किं देवदत्तः करोति'-'पचती'ति। द्रव्यं पृष्टः कृताऽऽचष्टे—'कतरो देवदत्तः?, यः कारको यो हारक इति? यदि तर्ह्येका क्रिया द्विवचनबहुवचनानि न सिध्यन्तीति— पचतः पचन्तीति। नैतानि क्रियापेक्षाणि। किं तर्हि? साधनापेक्षाणि। इहापि तर्हि प्राप्नुवन्ति—'पचतिरूपं पचतोरूपं पचन्तिरूपमिति।

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरिति**। आप कैसे जानते हैं कि तिङ्न्त क्रिया-प्रधान होता है तथा सुबन्त द्रव्यप्रधान होता है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**यत्क्रियामिति**। किसी ने किसी से पूछा-'देवदत्तः किं करोति'? इस प्रश्न में 'करोति' यह क्रियासामान्यवचन है। क्रियाज्ञान के लिए यहाँ किम्शब्द को नपुंसक तथा एकवचन में प्रयोग किया गया है—'क्रियाविशेषणानां क्लीबत्वं कर्मत्वमेकत्वञ्च'। यद्यपि 'वायकः किं शुक्लं वस्त्रं करोति, अथ कृष्णम्' तथा च 'शाटकं करोति, अथ प्रावारकम्' इस तरह के तिङन्तघटित वाक्य से द्रव्य और गुणविषय का भी प्रश्न सम्भव है, तथापि 'किं देवदत्तः करोति' इस वाक्य में प्राकारादिवश क्रियाप्रश्न की ही अवगति होती है—'कां क्रियां निर्वर्त्तयति'? इस प्रश्न के उत्तर में 'पचति' कहा जाता है—'पाकक्रियां निर्वर्त्तयति' यदि द्रव्य के विषय में प्रश्न करना होता है तो **कृता**=कृदन्त का प्रयोग किया जाता है—कतरो देवदत्तः, यः कारको यो हारक' इति? यद्यपि यहाँ 'यः पचति' ऐसा तिङन्त से भी उत्तर सम्भव है, तथापि सर्वनाम से परामर्श कर पाकक्रिया का जो कर्त्ता, वही देवदत्त है, ऐसा कथन होने से केवल तिङन्त से उत्तर दिया जाना सम्भव नहीं है, अतः तिङन्त साधनप्रधान नहीं है।

आक्षेपक आचार्य—**यदि तर्हीति**। यदि तिङ्ङन्तस्थल में क्रिया का ही कथन मानेंगे तो वह एकवचन से ही हो जायेगा; पुनः द्विवचन 'पचतः' तथा बहु-वचन 'पचन्ति' की सिद्धि नहीं हो सकेगी। यहाँ क्रियागत वचनभेद मान कर आक्षेप है।

खण्डनभाष्य—**नैतानीति**। 'पचतः, पचन्ति' यह क्रिया की अपेक्षा कर प्रयोग नहीं है, अपि तु **साधन**=कारक की अपेक्षा से प्रयोग है; अतः यहाँ लकारवाच्य कर्त्तृकर्मगतसंख्यापेक्ष भेद को मान कर द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग है।

आक्षेपभाष्य—**इहापि तर्हीति**। यदि 'पचतः, पचन्ति' में लकारवाच्य कर्त्तृभेद लेकर द्विवचन, बहुवचन का प्रयोग मानते हैं तो 'पचतिरूपम्, पचतो-रूपम्, पचन्तिरूपम्' में भी तिङ्वाच्य कर्त्तृनिष्ठभेद है; अतः यहाँ पर भी साधनापेक्ष होने से रूपप् की प्राप्ति नहीं होनी चाहिये। अथ वा यदि तरप् करते हैं तो साधन अर्थ में होगा?

तिङोक्तत्वात्तस्याऽभिसम्बन्धस्य न भविष्यति। एकवचनमपि तर्हि न प्राप्नोति। समयाद् भविष्यति। द्विवचनबहुवचनान्यपि तर्हि समयात् प्राप्नुवन्ति। एवं तर्ह्येकवचनमुत्सर्गतः करिष्यते—तस्य द्विबह्वोरर्थयोर्द्विवचनबहुवचने अपवादौ भविष्यतः। एवमपि नपुंसकत्वं च वक्तव्यम्। न वक्तव्यम् *उक्तं वा* किमुक्तम्?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति *

उत्तरभाष्य—**तिङोक्तत्वादिति**। तिङ् से कर्तृनिष्ठभेद उक्त है, अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से पुनः उसी साधन अर्थ को कहने के लिए तरप् नहीं आयेगा; अतः 'पचतिरूपम्' आदि में प्रशस्तक्रिया वाच्य है, तिङर्थ कर्त्ता नहीं।

आक्षेपभाष्य—**एकवचनपीति**। यदि 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से यहाँ तिङर्थ में तरप् नहीं हो सकता है तो 'पचतिरूपम्, पचतोरूपम्, पचन्तिरूपम्' में एकवचन भी नहीं होना चाहिये।

उत्तरभाष्य—**समयादिति**। आरोपितसंख्या के उक्त होने से तदाश्रय वचन रूपप्प्रत्ययान्त से नहीं हो सकेगा, परन्तु स्वगत एकत्वाश्रय एकवचन ही होगा। 'परश्च' ३.१.२ सूत्र के नियामक होने से जैसे 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या' नियम है, वैसे 'न केवलः प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः' यह भी नियम है; अतः इस नियम से रूपप् की प्रकृति तिङन्त होगी।

अन्य आचार्य—**द्विवचनेति**। यदि नियम से एकवचन की प्राप्ति हो रही है तो द्विवचन और बहुवचन की भी प्राप्ति होनी चाहिये?

समाधानभाष्य—**एवन्तर्हीति**। 'द्विवचन और बहुवचन से प्रतिज्ञा का पालन होता है' यह कह कर पूर्वपक्ष है।

इसका उत्तरपक्ष—'यद्यपि एकवचन से ही नियमपालन हो गया' यह कह कर उत्तर दिया जा सकता था, तथापि भाष्यकार अन्य परिहार देते हैं—**एकवचनमिति**। **उत्सर्गतः**=स्वभावश यहाँ एकवचन ही करना चाहिये, द्विवचन अथवा बहुवचन नहीं। इसका आशय इस प्रकार है—'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' १.४.२२ सूत्र में एकवचनग्रहण नहीं करना चाहिये, अपि तु 'द्वयोर्द्विवचनम्' यही सूत्र पढना चाहिये। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ का अधिकार कर इससे स्वादि विहित है। संख्यानिरपेक्ष एकवचन स्वभावतः हो जायेगा। इस एकवचन का अपवाद द्वित्वविवक्षा में द्विवचन तथा बहुत्वविवक्षा में बहुवचन है। एकत्ववान्, अभेदैकत्ववान् तथा संख्यारहित अव्यय आदि अर्थों में एकवचन अवस्थित है; अतः प्रकृत में एकवचन से ही नियम का पालन किया जा रहा है, तिङ् के द्वारा उक्त द्विवचन और बहुवचन से नहीं।

आक्षेपभाष्य—**एवमपीति**। **उत्सर्गतः**=एकवचन के हो जाने पर भी लिङ्ग शेष है; अतः तरबन्त को नपुंसकलिङ्ग का विधान किया जाना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खण्डनभाष्य—**नेति**। तरबन्त को नपुंसकलिङ्ग कहने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में मैंने पहले ही कह दिया है कि—'लिङ्ग लोकाश्रयी=पाणिनिप्रभृति महर्षियों के आश्रय में होता है, वे जैसा प्रयोग करेंगे, प्रयोग के अनुसार ही शब्द का लिङ्ग निर्णय होगा। उसी से लिङ्ग का ज्ञान हो जायेगा, अतः उसके लिए शास्त्रोपदेश व्यर्थ है।

* वृषलादिभ्य उपसङ्ख्यानम् * **वृषलादिभ्य उपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्। वृषलरूपः दस्युरूपः चौररूप इति** * सिद्धं तु प्रकृत्यर्थवैस्पष्ट्यवचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रकृत्यर्थवैस्पष्ट्यवचनात्'। प्रकृत्यर्थस्य वैस्पष्ट्य इति वक्तव्यम्। वृषलरूपोऽयम्, अप्ययं पलाण्डुना सुरां पिबेत्। चौररूपोऽयम्, अप्ययमक्ष्णोरञ्जनं हरेत्। दस्युरूपोऽयम्, अप्ययं धावतो लोहितं पिबेत्।**

एकदेशी आचार्य—**वृषलादिभ्य इति**। प्रशंसा अर्थ में शक्त सुबन्त वृषल आदि से भी तरप् प्रत्यय कहना चाहिये। प्रशस्तो वृषलो वृषलरूपः। इसी तरह 'दस्युरूपः, चौररूपः' भी समझना चाहिये।

सिद्धान्ती आचार्य एकदेशी के वार्तिक का खण्डन करते हुए रूपसिद्धि बताते हैं—**सिद्धं त्विति**। वृषल आदि प्रकृत्यर्थ का **वैस्पष्ट्ये**=अतिशय निन्दा गम्य होने पर प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ वैस्पष्ट्यपद उपलक्षणविधया प्रशंसा अर्थ में भी शक्त है। इसका आशय इस प्रकार है—सभी वस्तु के स्वव्यापार में अतिशय होने से प्रशंसा होती है। अतिशय वाच्य होने पर वृषल आदि से भी प्रशंसा में रूपप् सिद्ध हो जाता, उसके लिए पृथग्वचन क्यों है?, तो इस का उत्तर इस तरह समझना चाहिये—यदि निन्दाप्रतिपादन के लिए 'चौररूपः, वृषलरूपः' आदि कहा जायेगा तब उस अर्थ में प्रत्यय की अप्राप्ति होगी; अतः निन्दा और प्रशंसा उभय अर्थों में प्रत्ययविधान के लिए वैस्पष्ट्यग्रहण करना चाहिये। चातुर्य आदि होने से जिनकी प्रशंसा देखी जाती है, उन की न्रिन्दा भी देखी जाती है; अतः विवक्षावश जिनकी प्रशंसा होती है, उन्हीं की निन्दा भी होती है। जैसे—'राक्षसः'। यहाँ पौरुषत्व का अतिशयप्रतिपादन होने से प्रशंसा तथा निन्द्यकर्मों का आचरण करने से घृणा का भी प्रतिपादन हो रहा है। वैसे 'वृषलरूपोऽयम्, अप्ययं पलाण्डुना सुरां पिबेत्' में पलाण्डुभोजन में वृषलत्व है। परन्तु तत्सहितसुरापान मे अधिक है। 'चौररूपोऽयम्, अप्ययमक्ष्णोरञ्जनं हरेत्' यहाँ सामान्यवस्तु की चोरी करने से चौरत्व है; परन्तु आँख का काजल चुरा लेने से चौर का प्राशस्त्य भी द्योतित है। 'दस्युरूपोऽयम्, अप्ययं धावतो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोहितं पिबेत्' में दस्यु निन्द्य है; परन्तु दौडते प्राणी का रक्तहरण करने से दस्यु की प्रशंसा भी गम्य है।

'पटुतमः' में अतिशायन पूजा, एवम् 'पापीयान्' में अतिशायन निन्दा विषय है। एवं 'पटुरूपः' में रूपप् प्रत्यय पूजाविषय तथा 'चौररूपः' में रूपप्प्रत्यय निन्दाविषय है। इस तरह तमप् आदि और रूपप् का विषयविभाग क्या है?, तो इसके उत्तर में कहा जायेगा-अतिशायन समानप्रतियोगी की अपेक्षा करता है, परन्तु वैस्पष्ट्य समानप्रतियोगिनिरपेक्ष होता है, यही दोनों का विषयविभाग है। 'अप्ययं पलाण्डुना' यहाँ पर गर्हा अर्थ वाच्य होने पर भी 'अपि' शब्द कर्मप्रवचनीयसंज्ञक है। {**प्रशंसा-**}।

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५.३.६७

* ईषदसमाप्तौ क्रियाप्रधानत्वाल्लिङ्गवचनानुपपत्तिः * **ईषदसमाप्तौ क्रियाप्रधानत्वाल्लिङ्गवचनयोरनुपपत्तिः। पटुकल्पं पटुकल्पा पटुकल्पः पटुकल्पौ पटुकल्पा इति। एकोऽयमर्थ ईषदसमाप्तिर्नाम, तस्यैकत्वादेकवचनं प्राप्नोति** * प्रकृत्यर्थविशेषणत्वात् सिद्धम् * **सिद्धमेतत्। कथम्? नायं प्रत्ययार्थः। किं तर्हि? प्रकृत्यर्थविशेषणमेतत्, ईषदसमाप्तौ यत्प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्मात् कल्पबादयो भवन्ति। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थ इति। स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते।**

सूत्रार्थ—'ईषदसमाप्तिविशिष्ट अर्थ में शक्त सुबन्तसमानाधिकरण प्रातिपदिक से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य और देशीयर् प्रत्यय हो'। ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः।

प्रत्यय का अर्थ ईषदसमाप्ति मान कर प्रश्न करते हैं—**ईषदसमाप्ताविति**। ईषदसमाप्ति यह स्त्रीत्वविशिष्ट क्रियाप्रधानत्व है। क्रिया में लिङ्ग और वचन का अन्वय नहीं होता है। इस लिए कल्पबन्त आदि में लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति होगी। जैसे 'पटुकल्पम्, पटुकल्पा, पटुकल्पौ, पटुकल्पाः' में क्रमशः नपुंसक, स्त्रीलिङ्ग, द्विवचन और बहुवचन का अन्वय नहीं होना चाहिये।

एकदेशी आचार्य—**एकोऽयमिति**। 'ईषदसमाप्तौ' यह एकवचननिर्द्देश है; अतः कल्पबन्त आदि से एकवचन हो जायेगा।

समाधानभाष्य—**प्रकृत्यर्थविशेषणत्वादिति**। ईषदसमाप्ति यह प्रत्ययार्थ नहीं है, अपि तु प्रकृत्यर्थ है। इस तरह 'ईषदसमाप्ति अर्थ में शक्त जो प्रातिपदिक, उससे पर में कल्पप् आदि प्रत्यय हों', यह सूत्रार्थ होगा। किस अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में प्रत्यय हों?, यह अर्थनिर्देश नहीं है; अतः अनिर्दिष्टार्थ कल्पप् आदि को **स्वार्थे**=प्रकृत्यर्थ में ही कहा जायेगा। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृत के लिङ्ग और वचन का अनुसरण करते हैं; अतः प्रकृति का जो लिङ्ग और वचन, वही कल्पबन्त आदि का भी होगा। इस तरह 'पटुकल्पम्, पटुकल्पा, पटुकल्पौ, पटुकल्पाः' आदि में लिङ्ग और वचन सिद्ध हो जायेंगे।

* प्रकृत्यर्थे चेल्लिङ्गवचनानुपपत्तिः * **प्रकृत्यर्थे चेल्लिङ्गवचनयोरनुपपत्तिः—गुडकल्पा द्राक्षा तैलकल्पा प्रसन्ना पयस्कल्पा यवागूरिति।**

आक्षेपक आचार्य—**प्रकृत्यर्थे चेदिति**। यदि कल्पप् आदि को प्रकृत्यर्थ में कहेंगे तो 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि में जहाँ गुड पद इवार्थ में है, वहाँ लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति होगी। यदि 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि में 'गुड इयं द्राक्षा' ऐसी अभेदविवक्षा कर गुड आदि को द्राक्षा अर्थ में शक्त माना जायेगा, तथा उससे प्रत्यय उत्पन्न करेंगे, तो गुड पद से द्राक्षा-आदिगत लिङ्ग और संख्या की उपपत्ति भी हो जायेगी; अतः 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि में लिङ्ग और वचन की अव्याप्ति का अभाव कहेंगे तो यहाँ प्रकृत में यह उचित नहीं है। वह इस तरह कि इवार्थ-अभ्यन्तरीकरण के द्वारा गुड आदि पद 'सोऽयम्' इस अभेदसम्बन्ध से द्राक्षा आदि में शक्त हो कर भी अपना लिङ्ग और वचन का परित्याग नहीं कर रहे हैं; अतः 'बहुगुडो द्राक्षा' इत्यादि की सिद्धि होती है। जिनका तीनों लिङ्गों में रूप चलता है उनका अनियतलिङ्गशब्द पटु आदि गुणवाची से कल्पप् प्रत्यय करने पर यह दोष नहीं रहेगा। परन्तु जातिवाची शब्द प्रायः नियतलिङ्ग ही होते हैं; अतः उनसे परमें कल्पप् आदि प्रत्यय करने पर भिन्न लिङ्ग और भिन्न संख्या वाली जाति को कल्पबन्त आदि कहेंगे। इस तरह वहाँ प्रकृतिगतलिङ्ग का अतिक्रमणरूपदोष नहीं होगा।

* सिद्धं तु तत्सम्बन्ध उत्तरपदार्थे प्रत्ययवचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'तत्सम्बन्ध उत्तरपदार्थे प्रत्ययवचनात्'। तत्सम्बन्धे—ईषदसमाप्तिसम्बन्धे उत्तरपदार्थे प्रत्ययो भवतीति वक्तव्यम्।**

सिद्धान्ती—**सिद्धं त्विति**। यद्यपि उत्तरपद समास के चरमावयव में रूढ है, तथापि प्रकृत में प्रकृत्यर्थ तथा उससे उत्तर में विहित प्रत्ययार्थ में शक्त है; अतः इसे यहाँ प्रत्ययार्थविशेषणवाचि द्राक्षा आदि पदों में यहाँ उत्तरपद को यौगिक समझना चाहिये। यहाँ उत्तरपद के यौगिक होने से उपमानवाचि गुड आदि पदों से उपमेय द्राक्षा आदि में प्रत्यय होता है। जैसे 'गुड इव इयं द्राक्षा ईषदसमाप्ता इति गुडकल्पा'। यद्यपि वार्तिक में उपमानग्रहण नहीं किया है, तथापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामर्थ्यवश यहाँ उपमानोपमेयभाव आश्रित है। उपमानवाची पटु आदि से भी उपमेय देवदत्त आदि में ही प्रत्यय कहना चाहिये। जिसका पाटव परिपूर्ण है, वही लोक में पटु कहा जाता है। इस तरह 'पटुरिव ईषदसमाप्त इति पटुकल्पो देवदत्तः' यह प्रयोग है। मूल में 'तत्सम्बन्धात्' कहा है। इससे ईषत्सादृश्य अर्थ में प्रत्यय नहीं होगा।

सिध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तम्- 'ईषदसमाप्तौ क्रियाप्रधानत्वाल्लिङ्गवचनानुपपत्ति'रिति। परिहृतमेतत्— 'प्रकृत्यर्थविशेषणत्वात्सिद्ध'मिति। ननु चोक्तं—'प्रकृत्यर्थे चेल्लिङ्ग-वचनानुपपत्ति'रिति। नैष दोषः। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति यदयं 'णचः स्त्रियाम'ञिति स्त्री-ग्रहणं करोति। यद्येतज्ज्ञाप्यते—बहुगुडो द्राक्षा बहुतैलं प्रसन्ना बहुपयो यवागूरित्यत्रापि प्राप्नोति। नाप्यतिवर्त्तन्ते।

आक्षेपक—**सिध्यतीति**। 'सिद्धं तु तत्सम्बन्ध उत्तरपदार्थे प्रत्ययवचनम्' कह कर 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि में लिङ्ग और वचन की सिद्धि कर दी गयी। परन्तु इससे सूत्रभेदरूप दोष भी स्पष्ट है। यद्यपि इस पक्ष में 'बहुगुडो द्राक्षा' इत्यादि की सिद्धि नहीं हो पा रही है, तथापि 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि में दोषपरिहार को ध्यान में रख कर 'सिध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते' ऐसा कहा गया है। अथ च आक्षेपक ने प्रत्यय का ईषदसमाप्ति अर्थ माना था। ईषदसमाप्ति के क्रियाप्रधान होने से लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति दी थी, उसका परिहार 'प्रकृति का अर्थ ईषदसमाप्ति है' ऐसा कह कर किया जा चुका है। उत्तरपक्षी के 'प्रकृत्यर्थविशेषणत्वात् सिद्धम्' इस उत्तर पर आक्षेपक ने 'प्रकृत्यर्थे चेल्लिङ्ग-वचनानुपपत्तिः' कहा था; उसका भी समाधान हो जायेगा। वह इस तरह कि 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ सूत्र में आचार्य ने 'स्त्रियाम्'ग्रहण किया है। 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४३ से स्त्रीलिङ्गभाव में णच् प्रत्यय का विधान है। णजन्त से अञ् प्रत्यय हो, यह 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४३ का अर्थ है। णजन्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय विहित है। जब णच् स्त्रीलिङ्ग में है तब णजन्त से स्वार्थ में विहित भी स्त्रीलिङ्ग ही होता, उसके लिए 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४३ सूत्र में किया गया 'स्त्रियाम्'ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—'कहीं पर स्वार्थिक प्रत्यय लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण भी करते हैं।

अन्य आचार्य—**यद्येतदिति**। यदि 'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्ते लिङ्गवचनानि' का ज्ञापन करेंगे तो 'बहुगुडो द्राक्षा, बहुतैलं प्रसन्ना, बहुपयो यवागूः' में भी स्वार्थिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय हैं; यहाँ पर भी प्रकृति का लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण करने से 'ईषदूनो गुड इति बहुगुडः' 'ईषदूनं तैलमिति बहुतैलम्' 'ईषदूनं पय इति बहुपयो यवागूः' में 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु' ५.३.६८ के द्वारा सर्वत्र प्रातिपदिक से पूर्व में बहुच् प्रत्यय स्वार्थिक है। यहाँ लिङ्ग का अतिक्रण प्राप्त हो रहा है।

इतर आचार्य इसका निरास करते हैं—**नापीति**। उत्तरसूत्र 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु' ५.३.६८ में 'तु'ग्रहण किया है। उसका प्रयोजनविचार करते हुए प्रयोजनवादी आचार्य ने 'एवं तर्हि सिद्धे सति यत्तुग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति। ऐसा कहा है। इस नियम से प्रकृति का जो लिङ्ग और वचन हैं, बहुच् के उत्पन्न होने पर भी वे ही होंगे। इस तरह स्वार्थिकप्रत्ययों के उत्पन्न होने पर भी कहीं-कहीं पर स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का करते भी हैं तथा कहीं पर नहीं भी करते हैं। यदि स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण नहीं भी करेंगे तब 'बहुगुडो द्राक्षा, बहुतैलं प्रसन्ना, बहुपयो यवागूः' ऐसा रूप होगा। परन्तु यदि प्रकृति का लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण करेंगे तो 'गुडकल्पा द्राक्षा, तैलकल्पा प्रसन्ना, पयस्कल्पा यवागूः' में स्त्रीलिङ्गघटित रूप हो जायेगा।

किं पुनरिहोदाहरणम्? पटुकल्पो मृदुकल्प इति। नैतदस्ति—निर्ज्ञातस्याऽर्थस्य समाप्तिर्वा भवति विसमाप्तिर्वा। गुणश्चाऽनिर्ज्ञातः। इदं तर्हि—गुडकल्पा द्राक्षा तैलकल्पा प्रसन्ना पयस्कल्पा यवागूरिति। द्रव्यमप्यनिर्ज्ञातम्।

पूर्वपक्षी—**किं पुनरिहेति**। गुणवाचि मृदु, पटु आदि पदों की परिमाण=इयत्ता नहीं है। गुणवाची शब्द गुणसम्बन्धमात्र से मन्द, मध्य और उत्कृष्टगुण में सर्वत्र शक्त हैं; अतः ईषदसमाप्ति का अभाव मान कर प्रश्न करते हैं—प्रकृतसूत्र का क्या उदाहरण होगा?

उत्तरपक्षी—**पटुकल्प इति**। 'ईषदूनः पटु पटुकल्पः। ईषदूनः मृदुः मृदुकल्पः' यह प्रकृतसूत्र का उदाहरण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'अयमेव' इस तरह का निश्चित अर्थ की समाप्ति अथ वा असमाप्ति होती है। यहाँ मृदु, पटु आदि गुण निर्ज्ञात नहीं हैं; अतः प्रकृतसूत्र का उदाहरण 'पटुकल्पः, मृदुकल्पः' नहीं हो सकता है। 'विसमाप्तिः' में 'वि'पद नञर्थ में है।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'गुडकल्पा द्राक्षा, तैलकल्पा प्रसन्ना, पयस्कल्पा यवागूः' यह प्रकृतसूत्र का उदाहरण होगा। यहाँ द्रव्यवाची गुड, तैल और पयः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से ईषदसमाप्ति अर्थ में प्रत्यय है। वस्तुतः यहाँ ईषदसमाप्ति नहीं है, अपि तु द्राक्षा आदि ईषदसमाप्त हैं; अतः द्राक्षा आदि से परमें कल्पप् आदि की प्राप्ति होनी चाहिये। परन्तु वह इस लिए नहीं हुआ कि जिसकी अपेक्षा से दूसरे की ईषदसमाप्ति हो रही है, तद्वाची-से प्रत्यय होना चाहिये। इवार्थ को माध्यम बना कर अभेदोपचारवश 'गुड इव गुडो द्राक्षा' ऐसा माधुर्य होने से द्राक्षा में गुडत्व का आरोप है; अतः आरोप में निमित्त माधुर्य के ईषदसमाप्त होने से गुड आदि से प्रत्ययोत्पत्ति में कोई बाधा नहीं है।

अन्य आचार्य—**द्रव्यमपीति**। द्रव्य भी अनिर्ज्ञात है। 'इयत्परिमितमाधुर्य से द्राक्षा गुड कही जा रही है' इसका ज्ञान सम्भव नहीं है। अथ च देशभेद से भी गुड में भेद है। इस तरह किस देश में उत्पन्न गुड को लेकर 'द्राक्षा गुड ईषदसमाप्तः' कहा जा रहा है, इस तरह का भी ज्ञान सम्भव नहीं है; अतः द्रव्यवाची से भी प्रत्यय की अप्राप्ति ही है।

इदं तर्हि कृतकल्पं भुक्तकल्पं पीतकल्पम् * क्तान्तात् प्रत्ययविधानानुपपत्तिः क्तस्य भूतकाललक्षणत्वात् कल्पादीनां चाऽसमाप्तिवचनात् * **क्तान्तात् प्रत्ययविधेरनुपपत्तिः। किं कारणम्? 'क्तस्य भूतकाललक्षणत्वात्'। भूतकाललक्षणः क्तः। 'कल्पादीनां चाऽसमाप्तिवचनात्'। विसमाप्तिवचनाच्च कल्पादयः। न चाऽस्ति सम्भवो यद् भूतकालश्च स्यादसमाप्तिश्चेति** * सिद्धं त्वाशंसायां भूतवद्वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? आशंसायां भूतवद्च्चेत्येवमत्र क्तो भविष्यति। इदं चाऽप्युदाहरणं—पटुकल्पो मृदुकल्प इति।**

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'ईषदसमाप्तं कृतमिति कृतकल्पम्, ईषदसमाप्तं भुक्तमिति भुक्तकल्पम्, ईषदसमाप्तं पीतमिति पीतकल्पम्' यह उदाहरण है। यहाँ 'कृतम्, भुक्तम्, पीतम्' में यद्यपि क्त प्रत्यय भूत अर्थ में है, तथापि आशंसा में भूतकाल की तरह भविष्यत्काल में भी प्रत्यय का विधान है; अतः अस्तिक्रिया का ईषदसमाप्ति उपाधि है।

आक्षेपक आचार्य—**क्तान्तादिति**। क्तप्रत्यय भूतकाल में विहित है तथा कल्पप् आदि प्रत्यय ईषदसमाप्ति अर्थ में विहित हैं। ईषदसमाप्ति अर्थ भविष्यत्काल में ही सम्भव है, अतः कल्पप् आदि **विसमाप्तिवचनाः**=असमाप्तिवचन (भविष्यत्कालिक) हैं। एकत्र भूतकाल और भविष्यत्काल, यह दोनों सम्भव नहीं हैं; अतः क्तान्त से भविष्यत्कालिक कल्पप् आदि का अभाव ही रहेगा।

उत्तरभाष्य—**सिद्धं त्वाशंसायामिति**। भविष्यत्काला विसमाप्तिक्रिया आश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यमान है; अतः आशंसा में 'भूतवच्च' यह अतिदेश करेंगे। इससे क्तान्त सभी कल्पप् आदि प्रत्यय हो जायेंगे। 'ञीतः क्तः' ३.२.१८७, 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' ३.२.१८८ से विहित वर्त्तमानकालिक क्तान्त से भी प्रत्यय होना चाहिये। जैसे 'ज्ञातकल्पम्, पूजितकल्पम्'। तिङन्त से भी प्रत्यय होता है। जैसे 'पचतिकल्पम्'। यदि क्रिया का एकदेशाश्रय से भूतकाल में क्त प्रत्यय होगा, तो उससे भी कल्पप् आदि होंगे। जैसे 'कृतकल्पं वस्त्रम्'। कालत्रयतिङन्त से कल्पप् आदि प्रत्यय होते हैं। जैसे 'पचतिकल्पम्, पक्ष्यतिकल्पम्, अपाक्षीत्कल्पम्'। एवं 'पटुकल्पः, मृदुकल्प' यह भी प्रकृतसूत्र के उदाहरण हैं।

ननु चोक्तं—'निर्ज्ञातस्याऽर्थस्य समाप्तिर्वा भवति विसमाप्तिर्वा गुणश्चाऽनिर्ज्ञात' इति। लोकतो व्यवहारं दृष्ट्वा गुणस्य निर्ज्ञानम्; तद्यथा—पटुरयं ब्राह्मण इत्युच्यते यो लघुनोपायेनार्थान् साधयति। पटुकल्पोऽयमित्युच्यते यो न तथा साधयति। इदं चाप्युदाहरणं—गुडकल्पा द्राक्षा तैलकल्पा प्रसन्ना पयस्कल्पा यवागूरिति। ननु चोक्तं—'द्रव्यमप्यनिर्ज्ञात'मिति। लोकतो द्रव्यमपि निर्ज्ञातम्।।

प्रकृतसूत्र का 'पटुकल्पः, मृदुकल्प' के उदाहरण होने पर आक्षेपक ने 'निर्ज्ञात अर्थ की समाप्ति अथ वा असमाप्ति होती है, गुण अनिर्ज्ञात होता है' ऐसा कह कर पट और मृदु से प्रत्यय का अभाव कहा था, वह सही नहीं है। लौकिकव्यवहार से गुण की इयत्ता का ज्ञान हो जायेगा। जैसे—'पटुरयं ब्राह्मणः' ऐसा उसे कहा जाता है जो थोडे साधन से बडे साध्य की सिद्धि कर ले। जो थोडे साधन से बडे साध्य की सिद्धि न कर सके उसे पटुकल्प कहते हैं—'ईषदूनः पटुः पटुकल्पोऽयं ब्राह्मणः। एवं 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि भी इसी सूत्र के उदाहरण हैं। लोक में जितना माधुर्य से द्राक्षा में गुडव्यवहार होता है, तावदाश्रय ईषदसमाप्ति सम्भव होने से 'गुडकल्पा द्राक्षा' इत्यादि प्रयोग हो जायेंगे। इस पक्ष में आक्षेपक ने 'द्रव्यमनिर्ज्ञातम्' कहा था, उसका यह भी कहना उचित नहीं है। लोक में द्रव्य निर्ज्ञात होता है। {ईषदसमाप्तौ-}।

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५.३.६८

विभाषाग्रहणं किमर्थम्? विभाषा बहुज्यथा स्याद् बहुचा मुक्ते वाक्यमपि यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृता महाविभाषा तया वाक्यमपि भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनं- कल्पादयोऽपि यथा स्युरिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। बहुजप्युच्यते कल्पादयोऽपि,

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदुभयं वचनाद् भविष्यति। नैवं शक्यम्—अक्रियमाणे हि विभाषाग्रहणेऽनवकाशो बहुच् कल्पादीन् बाधेत। कल्पादयोप्यनवकाशास्ते वचनाद् भविष्यन्ति। सावकाशाः कल्पादयः। कोऽवकाशः? तिङ्न्तान्यवकाशः।

सूत्रार्थ—'ईषदसमाप्ति अर्थ में शक्त सुबन्त से विकल्प से बहुच् प्रत्यय हो तथा वह प्रकृति से पूर्व हो, पर नहीं'। ईषदूनः पटुः बहुपटुः, बहुकल्पः। सुबन्त से पूर्व में प्रत्यय कहने पर 'ईषदूनं पचति इति पचतिकल्पम्' में बहुच् नहीं हुआ।

प्रश्नभाष्य—**विभाषाग्रहणमिति**। 'सुपो बहुच्पुरस्तात्तु' इतना ही मात्र सूत्र रखिये,। तद्धितवृत्ति का विकल्प सिद्ध होने से विकल्पार्थ का लाभ हो जायेगा; विभाषापद का ग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**विभाषा बहुजिति**। विकल्प से बहुच् हो, बहुच् के अभावपक्ष में वाक्य भी हो सके, इसके लिए विभाषापद का ग्रहण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। महाविभाषा का अधिकार है, उसी से वाक्य भी हो जायेगा, तथा बहुच्प्रत्ययघटित पद भी हो जायेगा; अतः इसके लिए विभाषापद का निर्देश व्यर्थ है।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। बहुच् से मुक्तपक्ष में कल्पप् आदि प्रत्यय भी हो सकें, एतदर्थ विभाषाग्रहण है।

खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ तथा बहुच् ५.३.६७ ये दोनों ही प्रत्यय कहे जा रहे हैं; अतः वचनसामर्थ्य से दोनों ही हो जायेंगे।

प्रयोजनवादी का खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। यदि विभाषाग्रहण नहीं करेंगे तो 'सुपो बहुच्पुरस्तात्तु' इतना ही सूत्र होगा। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ की अपेक्षा पर होगा। तक्रकौण्डिन्यन्याय के द्वारा परशास्त्र से पूर्वशास्त्र का बाध हो जाने से परत्वात् बहुच् से कल्पप् आदि का बाध होने लगेगा। जब विभाषाग्रहण करते हैं तब बहुच् से कल्पप् आदि का बाध नहीं होता है।

अन्य आचार्य—**कल्पादय इति**। यदि पर होने से बहुच् प्रत्यय से कल्पप् आदि का बाध होगा तो कल्पप् आदि सर्वत्र **अनवकाश**=अचरितार्थ ही होंगे। इस तरह अनवकाश होने से कल्पप् आदि हो जायेंगे तथा पर होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुच् भी हो जायेगा। इस तरह जब विभाषाग्रहण के अभावपक्ष में भी दोनों प्रत्ययों की सिद्धि हो जा रही है, तब विभाषापद का निर्देश क्यों है?

प्रयोजनवादी आचार्य—**सावकाशा इति**। बहुच् प्रत्यय सुबन्त से पूर्व में ही होता है; अतः बहुच् की प्रकृतिमात्र सुबन्त है। तिङन्त से बहुच् की प्राप्ति नहीं होती है। जब कि कल्पप् आदि सुबन्त और तिङन्त दोनों से प्राप्त हैं। इस तरह तिङन्त से 'पचतिकल्पम्, यजतिदेश्यम्, गच्छतिदेशीयम्' इत्यादि में कल्पप् आदि चरितार्थ हैं; अतः अनवकाशत्वेन उसकी प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती है। इस लिए कल्पप् आदि के विधानार्थ विभाषाग्रहण किया जा रहा है।

अथ सुब्ग्रहणं किमर्थम्? सुबन्तादुत्पत्तिर्यथा स्यात्, प्रातिपदिकान्मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। नास्त्यत्र विशेषः, सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां प्रातिपदिकाद्वा। यद्येवमिहापि नाऽर्थः सुब्ग्रहणेन—'सुप आत्मनः क्य'जिति। इहापि नास्ति विशेषः—सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां प्रातिपदिकाद्वा। अयमस्ति विशेषः—सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां पदसंज्ञा सिद्धा भवति, प्रातिपदिकादुत्पत्तौ सत्यां पदसंज्ञा न प्राप्नोति। ननु च प्रातिपदिकादप्युत्पत्तौ सत्यां पदसंज्ञा सिद्धा। कथम्? आरभ्यते 'नः क्ये' इति। तच्चाऽश्यं वक्तव्यं-सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां नियमार्थं, तदेव प्रातिपदिकादुत्पत्तौ सत्यां विध्यर्थं भविष्यति। यद्येवमिहाऽपि नाऽर्थः सुब्ग्रहणेन। इहापि नास्ति विशेषः सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां प्रातिपदिकाद्वा। इदं तर्हि प्रयोजनं—'सुबन्तादुत्पत्तिर्यथा स्यात्तिङन्तान्मा भू'दिति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। 'ङ्याप्प्रातिपदिका'दिति वर्त्तते।

प्रश्नभाष्य—**अथ सुब्ग्रहणमिति**। क्रियकुत्स्न आदि अर्थों में सुबन्त शक्त है; अतः अर्थलभ्य सुबन्तत्व का लाभ हो जायेगा, पुनः सूत्र में 'सुपः'पद का ग्रहण क्यों है?

प्रयोजनवादी—**सुबन्तादिति**। यदि 'सुपः' पद का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ से 'प्रातिपदिकात्' का अधिकार होने से प्रातिपदिक से ही बहुच् होता, सुबन्त से नहीं; जब कि यहाँ सुबन्त से प्रत्यय इष्ट है। विना 'सुपः'पद का पाठ किये वह अर्थ लभ्य नहीं था; अतः सुबन्त से बहुज्विधानार्थ सुब्ग्रहण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। सुब्ग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुबन्त से अथ वा प्रातिपदिक से पूर्व में बहुच् करें, इसमें कोई रूपवैशिष्ट्य नहीं है।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि प्रकृत में सुब्ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है तो 'सुप आत्मनः क्यच्' ३.१.८ में भी चाहे हम सुबन्त से क्यच् करें, अथ वा प्रातिपदिक से क्यच् करें—'पुत्रमात्मन इच्छति इति पुत्रीयति' में कोई रूपभेद नहीं होना चाहिये?

प्रयोजनवादी आचार्य—**अयमस्तीति**। यदि सुबन्त से बहुच् करते हैं तो सुबन्त को 'सुप्तिङ्डन्तं पदम्' १.४.१२ से पदसंज्ञा होती है, तथा 'बहुसेचः' इत्यादि में 'सात्पदाद्योः' ८.३.१११ से मूर्धन्यादेश का प्रतिषेध होता है। परन्तु यदि प्रातिपदिक से बहुच् करेंगे तो प्रकृतिभाग के पद नहीं होने से 'बहुसेचः' में षत्वप्रतिषेध नहीं हो सकेगा। इस तरह सुबन्त तथा प्रातिपदिक से बहुच् करने पर यह फलभेद है।

अन्य आचार्य—**ननु चेति**। प्रातिपदिक से क्यच् करने पर 'नः क्ये' १.४.१५ से पूर्वभाग की पदसंज्ञा सिद्ध हो जा रही है। इस तरह सुबन्त तथा प्रातिपदिक से प्रत्यय करने पर पदसंज्ञा उभयत्र समान है।

इतर आचार्य—**तच्चाऽवश्यमिति**। चाहे सुबन्त से क्यजुत्पत्ति माना जाये, अथ वा प्रातिपदिक से माना जाये, दोनों ही पक्षों में 'नः क्ये' १.४.१५ सूत्र पढना चाहिये। यदि सुबन्त से क्यच् मानेंगे तो 'नः क्ये' १.४.१५ नियमार्थक होगा-'क्यचि क्यङि च पदं चेन्नान्तमेव, नाऽन्यत्'। परन्तु यदि प्रातिपदिक से क्यजुत्पत्ति मानेंगे तो 'नः क्ये' १.४.१५ विध्यर्थक होगा—'क्यचि क्यङि च नान्तं पदं स्यात्'।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। यदि 'सुप आत्मनः क्यच्' ३.१.८ सूत्र में सुब्ग्रहण का कोई फल नहीं है तो 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु' ५.३.६८ सूत्र में भी सुब्ग्रहण का कोई फल नहीं है। यहाँ सुबन्त से बहुच् हो, अथवा प्रातिपदिक से बहुच् हो, कोई फलभेद नहीं है। सुबन्त से बहुच् उत्पन्न होने पर 'बहुसेचः' में लुमताशब्द से सुब्लुक् है, अतः 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ यह प्रतिषेध होने से प्रत्ययलक्षणनिमित्तक पदसंज्ञा नहीं हो सकेगी; अतः षत्ववारण के लिए जैसे प्रातिपदिक से उत्पत्तिपक्ष में अतिरिक्त प्रतिषेधवचन पढना पडेगा, वैसे सुबन्त से भी उत्पत्तिपक्ष में भी प्रतिषेधवचन पढना पडेगा। इस तरह सुबन्त अथ वा प्रातिपदिक से प्रत्ययोत्पत्ति में कोई फलभेद नहीं है।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'तिङः' ५.३.५६ की अनुवृत्ति आ रही है। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'सुपः' का ग्रहण नहीं करेंगे तो सामान्यविहित होने से बहुच् जैसे प्रातिपदिक अथ वा सुबन्त से होगा, वैसे तिङन्त से भी होने लगेगा। तिङन्त से न हो, इसके लिए सुब्ग्रहण है।

एकदेशी का खण्डनभाष्य—**एतदपि नास्तीति**। 'प्रातिपदिकात्' ४.१.१ की अनुवृत्ति हो रही है; अतः प्रातिपदिक से बहुच् होगा, सुबन्त से नहीं। यहाँ एकदेशी का तात्पर्य यह है कि लक्ष्यानुरोध से प्रकृतसूत्र में 'तिङः' ५.३.५६ की अनुवृत्ति रोक दी जायेगी।

अत उत्तरं पठति—* बहुचि सुब्ग्रहणात् पूर्वत्र तिङो विधानम् * **बहुचि सुब्ग्रहणं क्रियते। किमर्थम्? 'पूर्वत्र तिङो विधानम्'। पूर्वत्र तिङो विधिर्यथा विज्ञायेत। नैतदस्ति प्रयोजनम्। प्रकृतं तिङ्ग्रहणमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'अतिशायने तमबिष्ठनौ तिङश्चे'ति। एवं तर्हि** * बहुचि सुब्ग्रहणं पूर्वत्र तिङो विधानात् * **बहुचि सुब्ग्रहणं क्रियते। किं कारणम्? 'पूर्वत्र तिङो विधानात्'। पूर्वत्र तिङश्चेत्यनुवर्त्तते, तदिहापि प्राप्नोति। ननु च तिङ्ग्रहणं निवर्त्तेत। अवश्यमुत्तरार्थमनुवर्त्त्यम्—'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टे'रिति—पचतकि जल्पतकीत्येवमर्थम्। यदि सुब्ग्रहणं क्रियते स्वरो न सिध्यति—'ब॒ हु प ट॒ व' एवं स्वरः प्रसज्येत। 'ब॒ हु प॒ ट वं' इति चेष्यते। पठिष्यति ह्याचार्य्यः—'चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थ'मिति स्वरः कथम्?** * स्वरः प्रातिपदिकत्वात् * **सुब्लुकि कृते प्रातिपदिकत्वात् स्वरो भविष्यति।**

प्रयोजनवादी आचार्य—**बहुचि सुब्ग्रहणमिति**। प्रकृत में सुब्ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'बहुच् से पूर्व के प्रत्यय तिङन्त से भी होते हैं'।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'तिङश्च' ५.३.५६ से स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर पर 'तिङः' की अनुवृत्ति हो रही है; अतः इससे पूर्व में 'तिङः' का निर्देश करके तिङन्त से प्रत्ययविधान किया जा चुका है। इसके लिए ज्ञापन आवश्यक नहीं है।

प्रयोजनवादी—**एवं तर्हीति**। पूर्व में 'तिङश्च' ५.३.५६ सूत्र पढा गया है। प्रकृतसूत्र में भी उसकी अनुवृत्ति हो रही है, उसकी निवृत्ति के लिए यहाँ 'सुपः' पद का पाठ किया गया है।

अन्य आचार्य—**ननु चेति**। तो क्या यहाँ सुब्ग्रहण से तिङ् की अनुवृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वथा रुक जायेगी?

उत्तरभाष्य—**अवश्यमिति**। सुब्ग्रहण करने से मात्र प्रकृत सूत्र में ही अनुवृत्ति की निवृत्ति होगी, अन्यत्र उत्तरसूत्रों में नहीं। उत्तरसूत्र 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' ५.३.७१ में 'तिङः' की अनुवृत्ति इष्ट है; अतः तिङन्त पद के टि से पूर्व में अकच् होकर 'पचतकि, जल्पतकि' रूप होता है।

आक्षेपक आचार्य—**यदि सुब्ग्रहणमिति**। सूत्र में 'सुपः' पद का पाठ करने से सुबन्त से पूर्व में बहुच् प्रत्यय होगा। इस पक्ष में 'बहुपटव'' में इष्टस्वर की प्राप्ति नहीं हो पा रही है। 'चितः' ६.१.१६० सूत्र पर आचार्य वार्तिककार 'चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम्' ऐसा वार्तिकपाठ करेंगे। यहाँ 'चितः' अवयव से षष्ठी है, कार्यी से नहीं। इस तरह चित् जो अवयव, उसका सम्बन्धी जो समुदाय, वह कार्यी होगा। अथ वा 'चिदस्ति अस्य स चितः' आकृतिगण मान कर 'अर्शआदिभ्योऽच्' से अच्प्रत्ययान्त चितशब्द से छान्दसत्वात् षष्ठ्यर्थ में प्रथमा है; अतः 'चितः' से चिद्वान् समुदाय को कार्यी समझना चाहिये। चित् प्रत्यय बहुच् और अकच् होने पर प्रकृतवार्तिक से प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय को अन्त-उदात्त किया गया है। बहुच् प्रत्यय हो जाने पर प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय अर्थवान् है। उसी की प्रातिपदिकसंज्ञा होगी तथा उसी से जस् की उत्पत्ति होगी। अब यहाँ जस् की प्रकृति में अप्रत्ययप्रतिषेध नहीं लगेगा; अतः 'बहुपटवः जस्' इस स्थिति में जस् की प्रकृति जसन्त 'बहुपटवः' है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुब्लुक् कर लेने पर पटुशब्द के उकार को उदात्त होता है। परन्तु जो दूसरी जस् विभक्ति उत्पन्न हो रही है, वह प्रकृति का अवयव नहीं है, अतः उसके अन्त अच् को उदात्त की प्राप्ति नहीं है।

उत्तरपक्षी—**स्वरः प्रातिपदिकत्वादिति**। सुब्लुक् कर लेने पर 'बहुपटु' इतनामात्र में ही प्रातिपदिकत्व रहेगा। चिद्वान् प्रातिपदिक के अन्तावयव को उदात्त कहा जा रहा है, वह सुब्लुक् होने पर भी प्रातिपदिक के अन्तावयव को हो जायेगा। यदि 'कृत्तद्धितसमासाश्च' १.२.४६ सूत्र में समासग्रहण के नियमार्थक होने से प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा का अभाव कहा जाये तो यह पक्ष उचित नहीं है। नियम के द्वारा ही प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा का अभाव कहा जाये तो, यह पक्ष भी उचित नहीं है। नियम के द्वारा ही यदि प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा का अभाव मानेंगे तो इस पक्ष में भी 'अप्रत्यय'ग्रहण १.२.४५ व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'समासग्रहण के द्वारा प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा की निवृत्ति नहीं होती है'। यदि समास-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहण से ही प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा की निवृत्ति होती तो आचार्य 'अप्रत्ययः' १.२.४५ यह प्रतिषेधवचन नहीं पढते।

अथ तुग्रहणं किमर्थम्? * तुग्रहणं नित्यपूर्वार्थम् * तुग्रहण क्रियते। किमर्थम्? 'नित्यपूर्वार्थम्'। नित्यं पूर्वो यथा स्याद् विभाषा मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। न विभाषाग्रहणेन पूर्वमभि-सम्बध्यते। किं तर्हि? बहुजभिसम्बध्यते—विभाषा बहुज्भवतीति। यदा च 'बहु'ज्भवति तदा नित्यं पूर्वो भवतीति। इदं तर्हि प्रयोजनम्—प्रागुत्पत्तेर्यल्लिङ्गं वचनं च तदुत्पन्नेऽपि यथा स्याद्—बहुगुणो द्राक्षा बहुतैलं प्रसन्ना बहुपयो यवागूरिति।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्' इतना ही सूत्र रखिये, इससे 'सुबन्त से पूर्व में ईषदूनार्थक बहुच् विकल से हो' यह अर्थ होगा। इससे सम्पूर्ण लक्ष्यों की सिद्धि भी हो जायेगी; फिर 'तु' पद का ग्रहण क्यों करते हैं?

प्रयोजनवादी आचार्य—**तुग्रहणमिति**। बहुच् प्रत्यय सुबन्त से नित्य ही पूर्व हो, बहुच् पूर्व विकल्प से न हो, इसके लिए 'तु'पद का निर्देश है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'तु'निर्देश का यह प्रयोजन नहीं है। सूत्र में विभाषापद का 'पुरस्तात्' के साथ अन्वय नहीं है, अपि तु 'बहुच्' के साथ अन्वय है। इससे 'बहुच् प्रत्यय विकल्प से हो' यह अर्थ आयेगा, 'पूर्व विकल्प हो' यह नहीं। इस तरह जब भी बहुच् होगा, वह नित्य ही प्रकृति से पूर्व होगा। यह अर्थ 'तु'ग्रहण के अभाव में लब्ध है।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। बहुच् प्रत्यय उत्पन्न होने के पूर्व सुबन्तप्रकृति का जो लिङ्ग और वचन है, प्रत्यय उत्पन्न होने पर भी वही लिङ्ग और वचन रहे, इसके लिए 'तु'पद का निर्देश है। इसे उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं—**बहुगुडो द्राक्षेति**। बहुच् उत्पन्न होने से पूर्व गुड पद पुल्लिङ्ग तथा एकवचन में है; अतः बहुच् उत्पन्न होने पर भी वही लिङ्ग और वचन रहा। विशेष्य द्राक्षा के लिङ्ग और वचन का अनुगमन नहीं करता है। इसी तरह 'बहुतैलं प्रसन्ना' इत्यादि में भी समझना चाहिये।

एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। स्वार्थिकोऽयम्। स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते। एवं तर्हि सिद्धे सति यत्तुग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्य—'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति। किमेतस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञापने प्रयोजनम्? गुणकल्पा द्राक्षा तैलकल्पा प्रसन्ना पयस्कल्पा यवागूरित्येतत् सिद्धं भवति।

खण्डनभाष्य—**एतदपीति**। बहुच् प्रत्यय प्रकृत्यर्थ में विहित है। प्रकृत्यर्थ में विहित प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अनुगमन करते हैं; अतः प्रत्ययोत्पत्ति से पूर्व का लिङ्ग और वचन प्रत्यय उत्पन्न होने पर भी रहेगा, फिर 'तु'पद का निर्देश क्यों है?

प्रयोजनवादी आचार्य—**एवं तर्हीति**। यदि 'तु'ग्रहण के अभाव में भी 'प्रागुत्पत्तेर्यल्लिङ्गं वचनं च तदुत्पन्नेऽपि यथा स्यात्' सिद्ध है, इसके सिद्ध होने पर भी आचार्य ने जो 'तु'निर्देश किया, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'कहीं पर स्वार्थिक प्रत्यय लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण भी करते हैं'। इस ज्ञापन का प्रयोजन 'गुडकल्पा द्राक्षा, तैलकल्पा प्रसन्ना, पयस्कल्पा यवागूः' में स्वार्थिक प्रत्यय कल्पप् को अपनी प्रकृति का लिङ्ग का अतिक्रमण का साधुत्वज्ञापन करना है।

* तमादिभ्यः कल्पादयो विप्रतिषेधेन * **तमादिभ्यः कल्पादयो भवन्ति विप्रतिषेधेन। तमादीनामवकाशः—प्रकर्षस्य वचनमीषदसमाप्तेरवचनं पटुतरः। पटुतमः। कल्पादीनामवकाश ईषदसमाप्तेर्वचनं प्रकर्षस्याऽवचनं—पटुकल्पो मृदुकल्पः। उभयत्र वचने उभयं प्राप्नोति—पटुकल्पतरो मृदुकल्पतरः, कल्पादयो भवन्ति विप्रतिषेधेन। यद्येवमीषदसमाप्तेः प्रकर्षे तमादिः प्रत्ययः प्राप्नोति प्रकृतेरेव च प्रकर्ष इष्यते** * तमादिरीषत्प्रधानात् * **तमादिरीषत्प्रधानादपि भवन् यस्य प्रकर्षोऽस्ति तस्य प्रकर्षे भविष्यति। कस्य च प्रकर्षोऽस्ति? प्रकृतेरेव।** {विभाषा सुपो}।

वार्तिककार आचार्य—**तमादिभ्य इति**। परविप्रतिषेध के द्वारा 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ से 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ का बाध कहना चाहिये। प्रकृत्यर्थ का प्रकर्ष वाच्य होने तथा ईषदसमाप्ति अर्थ का प्रकर्ष वाच्य नहीं होने पर 'पटुतरः' में 'प्रशंसायां रूपप्' चरितार्थ है तथा 'पटुतमः' में 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ चरितार्थ है। ईषदसमाप्ति का प्रकर्ष तथा प्रकृत्यर्थ का अप्रकर्ष वाच्य होने पर 'पटुकल्पः, मृदुकल्पः' में 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ चरितार्थ है। परन्तु यदि एक साथ प्रकृत्यर्थ एवम् ईषदसमाप्ति इन दोनों का प्रकर्ष वाच्य होगा तो तमबादि तथा कल्पबादि, इन दोनों की प्राप्ति होगी। अन्यत्र-अन्यत्र लक्ष्य में चरितार्थ होने से दोनों का समान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बल है; अतः परविप्रतिषेध के द्वारा कल्पप् आदि से तमप् आदि का बाध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**यद्येवमिति**। जहाँ ईषदसमाप्ति का प्रकर्ष वाच्य है वहाँ भी प्रकृत्यर्थ का ही प्रकर्ष वाच्य है; अतः प्रकृत्यर्थप्रकर्ष होने पर तमप् आदि प्रत्यय ही होंगे। जहाँ कल्पप् आदि से परविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि का बाध हो रहा है, वहाँ पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा कल्पप् आदि की प्रवृत्ति के अनन्तर तमप् आदि भी हो जायेंगे।

वार्तिककार—**तमबादिरीषदिति**। यदि तमप् आदि प्रत्यय ईषदसमाप्ति का प्रकर्ष वाच्य होने पर प्राप्त हो रहे है तो जिसका प्रकर्ष सम्भव है उसी के प्रकर्ष में होंगे। प्रकृति का प्रकर्ष सम्भव है; अतः प्रकृति के प्रकर्ष में तमप् आदि होंगे। {**विभाषा सुपो-**}।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ५.३.७१

कस्य च दः ५.३.७२

किमयं सुबन्तस्य प्राक् टेर्भवत्याहो स्विन्ड्याप्प्रातिपदिकस्य? कुतः सन्देहः? उभयं प्रकृतम्, अन्यतरच्छक्यं विशेषयितुम्। किं चाऽऽतः? यदि सुबन्तस्य, युष्मकाभिः अस्मकाभिः, युष्मकासु अस्मकासु, युवकयोः आवकयोरिति न सिद्ध्यति। अथ प्रातिपदिकस्य, त्वयका मयका, त्वयकि मयकीत्यत्रापि प्राप्नोति।

'तिङश्च' ५.३.५६ से 'तिङः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अव्यय, सर्वनाम और तिङन्त को टि से पूर्व में अकच् का आगम हो'। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके। विश्वके। भवतकि। पचतकि। ५.३.७१.।।

'कान्त अव्यय को दकार अन्तादेश हो तथा टि से पूर्व अकच् हो'। धिक्–धकित्, हिरुक्–हिरुकित्। ५.३.७२.।।

प्रश्नभाष्य—**किमयमिति**। क्या यहाँ सुबन्त को टि से पूर्व अकच् का आगम किया जा रहा है, अथवा ड्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक के टि से पूर्व अकजागम किया जा रहा है?

अन्य आचार्य—**कुत इति**। आप को यहाँ यह सन्देह कैसे उत्पन्न हुआ? प्राश्निक आचार्य सन्देह में हेतु स्पष्ट करते हैं—**उभयमिति**। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४.१.१ तथा 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु' ५.३.६८ से 'सुपः' इन दोनों की अनुवृत्ति हो रही है, अतः किसी से भी सम्भव होने से सन्देह हो रहा है।

अन्य आचार्य—**किं चात इति**। यहाँ सुबन्त को टि से पूर्व अकच् का आगम किया जाये, अथ वा ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक के टि से पूर्व अकजागम किया जाये, इन दोनों में क्या भेद है?

प्राश्निक आचार्य दोनों में भेद स्पष्ट करते हैं—**यदि सुबन्तस्येति**। 'युष्मकाभिः, अस्मकाभिः, युष्मकासु, अस्मकासु, युवकयोः, आवकयोः' यह इष्ट रूप है। यदि सुबन्त का टि से पूर्व अकच् करेंगे तो 'युष्माभकिः, अस्माभकिः, युष्मासकु, अस्मासकु, युवयकोः, आवयकोः' इस अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी। इस तरह सुबन्त के टि से पूर्व में अकच् करने में दोष है। यदि प्रातिपदिक के टि से पूर्व में अकच् करेंगे तो युष्मद्, अस्मद् को ही अकच् होगा। इस तरह तृतीया-एकवचन में 'त्वयका, मयका' के स्थान पर 'त्वकया, मकया' तथा सप्तमी-एकवचन 'त्वयकि, मयकि' के स्थान पर 'त्वकयि, मकयि' की आपत्ति होगी। इस तरह प्रातिपदिक का टि से पूर्व में अकच् करने पर 'त्वयका, मयका, त्वयकि, मयकि' में दोष नहीं है तथा प्रातिपदिक के टि से पूर्व में अकच् करने पर 'युष्मकाभिः, अस्मकाभिः' आदि में दोष नहीं हो रहा है। परन्तु दोनों का अन्यत्र अतिव्याप्ति भी हो रहा है।

अस्तु सुबन्तस्य। कथं युष्मकाभिः अस्मकाभिः, युष्मकासु अस्मकासु, युवकयोः आवकयोरिति? * अनोकारसकारादाविति वक्तव्यम् * **अनोकारसकारादाविति वक्तव्यम्** * अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम् * **अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम् वक्तव्यः। आसितव्यं किल तूष्णीकामेतत् पश्यत चिन्तितम्** * शीले को मलोपश्च * **शीले को मलोपश्च वक्तव्यः। तूष्णीं शीलः तूष्णीकः।**

उत्तरभाष्य—**अस्त्विति**। सुबन्त के टि से पूर्व में ही अकच् कीजिये। इस पक्ष में आपने 'युष्मकाभिः' आदि के स्थान पर 'युष्माभकिः' आदि की आपत्ति दी थी। उसका वारण करने के लिए 'अनोकारसकारादौ' कहना चाहिये। 'आश्च ओकारश्च सकारश्चेत्येतेषां समाहार ओकारसकारम्' 'शकन्ध्यादिषु पररूपं वाच्यम्' वा.६.१.९२ से 'आ+ओ' के स्थान पर पररूप-एकादेश होकर 'ओ' है। 'ओकारसकारम् आदिर्यस्य स ओकारसकारादिस्तस्मिन्'। आकार है पूर्व में जिससे, उस टि से पूर्व में अकच् का निषेध कहना चाहिये। इससे 'युष्माभिः, अस्माभिः' में भिस्घटक 'इस्' से पूर्व में अकच् निषिद्ध हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगा। सकारादि टि से पूर्व में अकच् का निषेध करने से 'युष्मासु, अस्मासु' में 'सु'घटक 'उ' से पूर्व में अकच् प्रतिषिद्ध होगा। एवम् ओकार से पूर्व अकच्प्रतिषेध कहने से 'युवयोः' में 'ओ' से पूर्व में प्राप्ति नहीं होगी। इस तरह 'युष्माभिः, अस्माभिः, युष्मासु, अस्मासु' में आवर्ण से पूर्व तथा 'युवयोः, आवयोः' में ओवर्ण से पूर्व में अकच् होने से 'युष्मकाभिः, अस्मकाभिः, युष्मकासु, अस्मकासु, युवकयोः, आवकयोः' की सिद्धि हो जायेगी तथा किसी भी प्रकार का दोष नहीं रहेगा। **अकच्प्रकरण इति**। अकच्प्रकरण में 'तूष्णीम्' को विकल्प से 'काम्' आगम कहना चाहिये—'तूणीम्, तूष्णीकाम्'। मित् होने से 'मिदचोऽन्त्यात् पर' १.१.४७ से अन्त्य अच् से पर में होगा। यहाँ यह आगम स्वार्थ में है। अज्ञात आदि अर्थों में 'तूष्णीम्' यही रूप रहेगा। **शीले क इति**। पूर्व वार्तिक से 'तूष्णीमः' इस षष्ठ्यन्त पद की अनुवृत्ति है। शील अर्थ वाच्य होने पर तूष्णीम् पद से क प्रत्यय तथा तूष्णीम् के मकार का लोप कहना चाहिये। यह अज्ञात आदि का अपवाद है। शीलपद से स्वभाव वाच्य है। शब्दशक्तिस्वभाववश शीलवान् अर्थ में 'तूष्णीं शीलः तूष्णीकः' प्रयोग होता है।

इह भिनत्ति च्छिनत्तीति श्नमि कृते शप्प्राप्नोति। बहुकृतम् बहुभुक्तम् बहुपीतम्-बहुचि कृते कल्पादयः प्राप्नुवन्ति। उच्चकैः नीचकै, अकचि कृते कादयः प्राप्नुवन्ति। ननु च श्नम्बहुजकचोऽपवादास्ते बाधका भविष्यन्ति * श्नम्बहुजकक्षु नानादेशत्वादुत्सर्गप्रतिषेधः * **श्नम्बहुजकक्षु नानादेशत्वादुत्सर्गस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। समानदेशैरपवादैरुत्सर्गाणां बाधनं भवति नानादेशत्वान्न प्राप्नोति** * न वोक्तवादुक्तार्थानामप्रयोग इति * **श्नम्बहुजकक्षूक्तवात् तस्याऽर्थस्य पुनरुत्पत्तिर्न भविष्यति** * कविधेस्तमादयः पूर्वविप्रतिषिद्धम् * **कविधेस्तमादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। कविधेरवकाशः—कुत्सादीनां वचनं प्रकर्षस्याऽवचनं—पटुकः मृदुकः। तमादीनामवकाशः—प्रकर्षस्य वचनं कुत्सादीनामवचनं पटुतरः पटुतमः। उभयवचने उभयं प्राप्नोति—पटुतरकः पटुतमकः। तमादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन।**

प्रश्नभाष्य—**इह भिनत्तीति**। भिदिर् विदारणे धा.पा.१४६४ छिदिर् छेदने धा.पा.१४६५ धातु को विकरण श्नम् करने के बाद शप् विकरण भी प्राप्त होना चाहिये। 'बहुकृतम्, बहुभुक्तम्, बहुपीतम्' में प्रकृति से पूर्व बहुच् ५.३.६८ कर लेने पर प्रकृति से परमें कल्पप्, देश्य और देशीयर् होना चाहिये। 'उच्चकैः, नीचकैः' में टि से पूर्व में स्वार्थिक अकच् ५.३.७१ कर लेने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वार्थिक क प्रत्यय भी होना चाहिये।

अन्य आचार्य—**ननु चेति**। शप् का अपवाद श्नम् ३.१.७८, कल्पप् आदि का अपवाद बहुच् ५.३.६८ तथा स्वार्थिक क प्रत्यय का अपवाद अकच् है; अतः तक्रकौण्डिन्यन्याय से श्नम्, बहुच् और अकच् क्रमशः शप्, कल्पप् और क का बाध कर लेंगे।

श्नम् आदि के बाधक होने का खण्डन करते हैं—**श्नम्बहुजिति**। समानदेश होने पर अपवाद से उत्सर्ग का बाध होता है। श्नम् और अकच् प्रकृति के मध्य में हो रहे हैं तथा बहुच् प्रकृति से पूर्व में हो रहा है। जब कि शप् विकरण प्रकृति और प्रत्यय के मध्य में प्राप्त है तथा स्वार्थिक क प्रत्यय प्रकृति से परमें प्राप्त है। बहुच् प्रत्यय प्रकृति से पूर्व में प्राप्त है तथा कल्पप् प्रत्यय प्रकृति से पर में प्राप्त है। इस तरह श्नम्-शप्, बहुच्-कल्पप् तथा अकच्-क, ये सभी के सभी भिन्न-भिन्न देश वाले हैं; अतः इनमें परस्पर बाध्यबाधकभाव सम्भव नहीं है।

उत्तरभाष्य—**न वेति**। श्नम्-शप् आदि समानार्थक प्रत्यय हैं। 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से श्नम् आदि हो जाने पर शप् आदि की प्रवृत्ति नहीं होगी।

वार्तिककार—**कविधेरिति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि से कविधि का बाध कहना चाहिये। 'कुत्सितः अज्ञातो वा पटुरिति पटुकः' 'कुत्सितः अज्ञातो वा मृदुरिति मृदुकः' में 'अज्ञाते' ५.३.७३ तथा 'कुत्सिते' ५.३.७४ चरितार्थ है। जहाँ कुत्सा आदि अर्थ बोध्य नही हैं, एवं प्रकर्षमात्र अर्थ बोध्य है, वहाँ 'अनयोरयं प्रकर्षः पटुः पटुतरः' में तरप् ५.३.५७ तथा 'एषामयं प्रकर्षः पटुः पटुतमः' में तमप् ५.३.५५ चरितार्थ है। 'अयमनयोः कुत्सितः प्रकर्षः पटुरिति पटुतमकः, अयमेषां कुत्सितः प्रकर्षः पटुरिति पटुतमकः' में कुत्सित और प्रकर्ष उभय अर्थो की एक साथ विवक्षा हो रही है; अतः प्रकृति से परमें समानकाल में अज्ञात आदि अर्थो में क प्रत्यय तथा प्रकर्षार्थक तमप् आदि की एक साथ प्राप्ति होने पर पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि ५.३.५५ से क ५.३.७३ प्रत्यय का बाध हो जाता है—पटुतरकः, पटुतमकः।

* कदाचिच्छिन्नकतरादयः * **कदाचिच्छिन्नकतरादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। छिन्नकतरं छिन्नकतमम्** * एकदेशिप्रधानश्च समासः * **एकदेशिप्रधानश्च समासः कविधेर्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। अर्द्धपिप्पलिका अर्द्धकोशातकिका** * उत्तरपदार्थप्रधानश्च संज्ञायां कन्विध्यर्थम् * **उत्तरपदार्थप्रधानश्च समासः कविधेर्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। किं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोजनम्? 'संज्ञायां कन्विध्यर्थम्'। संज्ञायां कन् यथा स्यात्। नवग्रामकम्। नवराष्ट्रकम्। नवनगरकम् *कदा चिद् द्वन्द्वः* कदाचिद् द्वन्द्वः कविधेर्भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। प्लक्षकन्यग्रोधकौ। प्लक्षन्यग्रोधकाविति वा।

कदाचिदिति। 'छिन्नकतरः' आदि की सिद्धि के लिए परविप्रतिषेध भी मानना चाहिये। 'किञ्चिदवयवावच्छेदेन च्छिन्नम्' इस अर्थ में 'अनत्यन्तगतौ क्तात्' ५.४.४ से क प्रत्यय होकर 'छिन्नकम्' में क चरितार्थ है तथा अनत्यन्तगति का अभावस्थल प्रकर्षवचन 'पटुतरः, पटुतमः' में तरप् चरितार्थ है। 'छिन्नकतरम्, छिन्नकतमम्' में एक साथ अनत्यन्तगति तथा प्रकर्ष, इत्येतदुभय की विवक्षा है। समानकाल और समानस्थल में दोनों के प्राप्त होने पर परविप्रतिषेध के द्वारा पहले क तथा पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा तरप् आदि होंगे। मूल में 'पूर्वविप्रतिषेधेन' सम्पादकप्रमाद से है।

एकदेशी आचार्य—**प्रधानश्चेति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा कविधि का बाध कर एकदेशिसमास होगा तथा समास होने के बाद पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा कविधि भी होगा। 'कुत्सितमर्द्धपिप्पल्याः' ऐसी अर्थविवक्षा में पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा 'अर्द्धं नपुंसकम्' २.२.२ से समास होने के बाद 'कुत्सिते' ५.३.७४ की प्रवृत्ति होगी। यदि यहाँ पहले क प्रत्यय तथा बाद में समास किया जाता तो 'अर्द्धकपिप्पली' ऐसा तथा 'अर्द्धकोशातकिका' ऐसा अनिष्ट रूप होता।

संज्ञायां कन्निति। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा कविधि का बाध कर उत्तरपदार्थप्रधानसमास कहना चाहिये। इसका प्रयोजन 'संज्ञा गम्य होने पर क विधि होना' है। जैसे 'नवग्राकम्, नवनगरकम्, नवराष्ट्रकम्'। यहाँ 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' २.१.५० से समास होने के बाद 'संज्ञायां कन्' ५.३.८७ की प्राप्ति हो रही है। यहाँ समास होने के बाद 'संज्ञायां कन्' ५.३.८७, 'कुत्सिते' ५.३.७४ अथवा 'ह्रस्वे' ५.३.८६ इनमें से कोई भी कन् प्रत्यय करने में 'नवग्रामकम्' आदि आद्युदात्त होते हैं। परन्तु पहले कन् प्रत्यय तथा बाद में समास करने पर अन्तोदात्त होता है। यहाँ विषयभाव के द्वारा कुत्सनादिहेतुका संज्ञा है, एवं दो पदों का सामानाधिकरण्य है। इस तरह युगपत् कर्मद्वयप्रसङ्ग होने से प्रकृत में विप्रतिषेध है। **कदाचिद् द्वन्द्व इति**। कभी-कभी पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा कविधि का बाध कर द्वन्द्वसमास होता है—प्लक्षन्यग्रोधकौ'। यदि पहले अज्ञातादि क ५.३.७३ प्रत्यय होंगे तथा बाद में द्वन्द्व होगा तो 'प्लक्षकन्यग्रोधकौ' रूप होगा। {अव्यय-}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुत्सिते ५.३.७४

इह कुत्सितकः अनुकम्पितक इति स्वशब्देनोक्तत्वात् तस्याऽर्थस्य प्रत्ययो न प्राप्नोति। नैष दोषः। कुत्सितस्याऽनुकम्पायाम् भविष्यत्यनुकम्पितस्य कुत्सायाम्।

'प्रागिवात्कः' ५.३.७० से 'कः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'जिस धर्म से वस्तु कुत्स्य=निन्द्य होता है, तर्द्धयुक्त अर्थ का वाचक प्रातिपदिक से स्वार्थ में क प्रत्यय हो'। कुत्सितोऽश्वः अश्वकः।

पूर्वपक्षी आचार्य—**इहेति**। 'अनुकम्पायाम्' ५.३.७६ सूत्र का आरम्भ कर अनुकम्पार्थक प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् विहित है—अनुकम्पितः पुत्रः पुत्रकः। कुत्सित पद से कुत्सित अर्थ बोध्य है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से कुत्सित पद से प्रकृत्यर्थ में पुनः कन् नहीं होना चाहिये। इस तरह 'कुत्सितकः' का असाधुत्व हो रहा है। एवम् अनुकम्पा अर्थ में अनुकम्पा पद शक्त है, अतः पुनः उससे स्वार्थ में कन् नहीं होना चाहिये। इससे 'अनुकम्पितकः' की असिद्धि होगी।

समाधानभाष्य—**नैष दोष इति**। जब कुत्सित और अनुकम्पित पद निर्ज्ञातअर्थविशेष में होंगे तब विशिष्ट अर्थ का बोध नहीं होने तथा अन्यत्र 'अश्वकः, पुत्रकः' में चरितार्थ होने से कुत्सित और अनुकम्पित पद से स्वार्थ में प्रत्यय नहीं होगा। परन्तु प्रकृति जब अनिर्धारित अर्थविशेष में होगी, तब प्रकृति का विशेषद्योतन के लिए स्वार्थिक प्रत्यय होगा। जैसे 'अनुकम्पितः कुत्सितः कुत्सितकः' में अनुकम्पितविशेष द्योतन के लिए कुत्सित से कन् होगा। एवं 'कुत्सितः अनुकम्पितः अनुकम्पितकः' में कुत्सितविशेषद्योतन के लिए अनुकम्पितपद से कन् होगा।

अथ वा—

स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्।
समवेतस्य च वचने लिङ्गं वचनं विभक्तिं च।।१।।

अभिधाय तान् विशेषानपेक्षमाणश्च कृत्स्नमात्मानम्।
प्रियकुत्सनादिषु पुनः प्रवर्त्ततेऽसौ विभक्त्यन्तः।।२।।

इसी को अपर पक्ष में भी कहते हैं—**अथ वेति**। शब्द जब अपने **स्वम्**=स्वरूप तथा **अर्थम्**=अभिधेय अर्थ को बता कर **'निरपेक्षं द्रव्यम्'**=स्वार्थसमवेतद्रव्य को कहेगा तब वह सम्बद्ध अर्थ को कहने में सम्बद्ध का लिङ्ग, वचन और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभक्ति को कहेगा। जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध और स्वरूपलक्षण अनेक प्रकार के स्वार्थ हैं। जैसे—'गौः, शुक्लः, पाचकः, राजपुरुषः और डित्थ'। शब्द स्वार्थ को कह कर स्वार्थसमवेत द्रव्य को कहता है। यहाँ निरपेक्षपद से भाष्यकार यह दिखा रहे हैं कि जैसे—द्रव्यवाच्य होने पर स्वार्थ अपेक्षित है, वैसे स्वार्थवाच्य होने पर अर्थगत अन्यनिमित्त की अपेक्षा नहीं होती है। कारिका में द्रव्यपद से 'इदं तद्' इस प्रकार का परामर्शयोग्य वस्तु वाच्य है। जब जातिशब्द जाति अर्थ में शक्त होगा तब स्वरूप से एकीकृत आरोपित-स्वरूपा जाति को कहेगा। उस समय उसका स्वरूप स्वार्थ होगा तथा जाति द्रव्य होगी। परन्तु जब जातिविशिष्टद्रव्य को कहेगा तब जाति स्वार्थ होगी। शुक्ल आदि पद जब गुणजाति में होंगे, तब शुक्ल आदि का स्वरूप स्वार्थ होगा, एवं जाति द्रव्य होगी। परन्तु शुक्ल आदि पद जब गुण अर्थ में होंगे, तब गुणसामान्य स्वार्थ होगा तथा गुण द्रव्य होगा। परन्तु जब द्रव्य में शक्त होंगे तब गुण स्वार्थ होगा। समवेतद्रव्य का कथन होने पर शब्दसमवेत की विभक्ति, लिङ्ग और वचन को कहेगा।।१।।

तान् विशेषान्=लिङ्ग, संख्या और विभक्ति का कथन कर लेने पर विभक्त्यन्तशब्द **कृत्स्नम्**=जाति, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या और कारकरूप अर्थ की अपेक्षा से **आत्मानम्**=अपनी अपेक्षा प्रिय, कुत्सा आदि अर्थों में करता है। **लिङ्ग**=स्त्रीत्व आदि, **वचन**=संख्या और **विभक्ति**=कारक कर्म आदि हैं। कहीं पर लिङ्ग, संख्या और कारक स्वार्थ होते हैं। जैसे 'स्त्री, पुमान्, नपुंसकम्, एको, द्वौ, बहवः, कर्म, करणम्, सम्प्रदानम्' इत्यादि। जहाँ पर जाति, लिङ्ग और संख्या से भिन्न लिङ्ग और संख्या का कथन हो रहा है, जैसे—'स नपुंसकोऽभवत्, गावो विंशतिः' वहाँ पर यही क्रम रहेगा। यहाँ पर नपुंसकपद का प्रवृत्तिनिमित्त नपुंसकत्व है, परन्तु उससे भिन्न पुंस्त्वनिर्देश है—नपुंसकः। एवं विशतिपद का प्रवृत्तिनिमित्त विंशतित्व है, परन्तु तद्भिन्न एकत्व का निर्देश है—विंशतिः। परन्तु जहाँ पर प्रवृत्तिनिमित्त की अपेक्षा भिन्न लिङ्ग और संख्या सम्भव है, जैसे—'स्त्री, पुमान्, एकः, द्वौ, बहवः', वहाँ पर पुनः लिङ्ग और संख्या का कथन नहीं होगा। यद्यपि शब्दोच्चारण के साथ ही व्यवधानरहित जाति, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या और कारकरूप पाँचो अर्थो की उपस्थिति होती है, तथापि शास्त्रप्रक्रियानिर्वाह के लिए कल्पित अन्वव्यतिरेक के द्वारा अप्रयोगार्हप्रातिपदिक की कल्पितन्यायवश कल्पित अर्थवत्ता मान कर 'अभिधाय तान् विशेषान्' कहा गया है। इसे इस तरह समझना चाहिये—'नाऽगृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशेष्ये उपजायते' इस न्याय से शब्द के द्वारा सर्वप्रथम स्वार्थ का कथन होगा। तत्पश्चात् स्वार्थविशिष्ट लिङ्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि का आश्रय द्रव्य का कथन होगा, उसके बाद भेदापेक्ष बहिरङ्ग संख्या की अपेक्षा से अन्तरङ्ग लिङ्ग का कथन होगा। इसके बाद संख्या का कथन होगा। विजातीयक्रिया की अपेक्षा रखने वाला कारक की अपेक्षा तुल्यजातीयक्रिया की अपेक्षा रखने वाली क्रिया कारक की अपेक्षा अन्तरङ्ग है। संख्या वाच्य होने के बाद शब्द से कारक की उपस्थिति होगी। इन पाँच विशेष अर्थों को कह लेने के बाद स्वार्थ आदि पञ्चक में शक्त शब्द अपनी सम्पूर्ण अपेक्षा करता हुआ प्रियकुत्स्न आदि में विभक्त्यन्त शब्द शक्त होगा। कारिका में 'पुनः' पद 'तु' अर्थ में है; अतः 'विभक्त्यन्तस्तु' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। जब कुत्सित शब्द को कुत्सितशब्दप्रवृत्तिनिमित्त से भिन्न कुत्सा अर्थ में मानेंगे तब कुत्सित पद से भी प्रकर्ष अर्थ में तमप् होकर प्रकृष्टतमरूप होता है, वैसे कुत्सितत्व की कुत्सा गम्य होने पर अर्थात्-'इसकी सम्यक् कुत्सा नहीं है' ऐसा अर्थ वाच्य होने पर कुत्सितपद से भी क प्रत्यय होकर 'कुत्सितकः' रूप होगा।।२।।

कथं पुनरिदं विज्ञायते—कुत्सितादीनामर्थ इति, आहोस्वित् कुत्सितादिसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादिति? कश्चात्र विशेषः? * कुत्सितादीनामर्थे चेल्लिङ्गवचनानुपपत्तिः * **कुत्सितादीनामर्थे चेल्लिङ्गवचनयोरनुपपत्तिः, पटुकं पटुका पटुकः पटुकौ पटुका इति। एकोऽयमर्थः कुत्सितं नाम, तस्यैकत्वादेकवचनं प्राप्नोति। अस्तु तर्हि—'कुत्सितादिसमानाधिकरणात् प्रातिपदिका'दिति** * कुत्सितादिसमानाधिकरणादिति चेदतिप्रसङ्गो यथा टाबादिषु * **कुत्सितादिसमानाधिकरणादिति चेदतिप्रसङ्गो भवति यथा टाबादिषु। कथं च टाबादिषु? उक्तं तत्र—'स्त्रीसमानाधिकरणादिति चेद् भूतादिष्वतिप्रसङ्ग' इति। एवमिहापि कुत्सितादिसमानाधिकरणादिति चेदतिप्रसङ्गो भवति—इदं घृतमिदं तैलम्, इदंशब्दादपि प्राप्नोति।**

प्रश्नभाष्य—**कथं पुनरिति**। 'कुत्सिते' ५.३.७४ सूत्र में कुत्सितपद भावसाधन है, अथ वा कर्मसाधन है। यदि 'कुत्सा=कुत्सितम्' ऐसा भावसाधन मानेंगे तो प्रत्ययार्थपक्ष होगा—'कुत्सितादीनामर्थः, तत्र कप्रत्ययः स्यात्'। यदि 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' ३.२.१८८ में 'च'करण को अनुक्तसमुच्चयार्थ मानेंगे तब 'कुत्स्यते इति कुत्सितम्' में कुत्सित पद कर्मसाधन होगा। इस पक्ष में 'कुत्सितार्थवाचि प्रातिपदिक से कप्रत्यय हो' यह अर्थ होगा। यह दोनों का सन्देह हो रहा है, कैसे निर्णय किया जाये कि यहाँ कुत्सितपद भावसाधन है, अथ वा कर्मसाधन है? भावसाधन में प्रकृत्यर्थविशेषणपक्ष है तथा कर्मसाधन में समानाधिकरणपक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। भाव में क्तसाधन कर प्रकृत्यर्थविशेषणपक्ष में दोष देते हैं—**कुत्सितादीनामर्थ इति**। यदि कुत्सित आदि अर्थों में 'क' प्रत्यय करेंगे तो 'कुत्सितं पटुः पटुकम्, कुत्सिताः पटवः पटुकाः' आदि में लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति होगी। भावप्रत्ययपक्ष में कुत्सा एक ही होगी, अतः सर्वथा सर्वत्र एकवचन ही प्राप्त होगा, द्विवचन और बहुवचन की अनुपपत्ति रहेगी।

अन्य आचार्य—**अस्तु तर्हीति**। यदि भावसाधन कुत्सितपद स्वीकार करने में दोष है तो कर्मसाधन कुत्सितपद मान कर समानाधिकरणपक्ष मानिये।

पूर्वपक्षी आचार्य इस पक्ष में भी दोष देते हैं—**कुत्सितादीति**। यदि कर्मसाधन कुत्सितपद मानेंगे तो स्त्रीसमानाधिकरण प्रातिपदिक से टाप् आदि की तरह कुत्सितसमानाधिकरण प्रातिपदिक से भी क प्रत्यय की आपत्ति होगी। जैसे 'स्त्रियाम्' ४.१.४ सूत्र पर स्त्रीसमानाधिकरण से टाप् आदि कह कर अजा, एडका, गौरी आदि में सर्वत्र टाप्, ङीष् आदि की प्राप्ति होती है, वैसे 'घृतमिदं तैलम्' में घृतसमानाधिकरणप्रातिपदिक इदम् पद से भी क प्रत्यय की आपत्ति हो रही है। इस तरह चाहे भावसाधन मानें, अथ वा कर्मसाधन मानें, दोनों ही पक्षों में स्पष्ट दोष आ रहा है।

*** सिद्धं तु येन कुत्सितादिवचनं तद्युक्तात् स्वार्थे प्रत्ययविधानात् ***

सिद्धमेतत्। कथम्? 'येन कुत्सितादिवचनं तद्युक्तात् स्वार्थे प्रत्ययविधानात्'। येन कुत्सितादयोऽर्था गम्यन्ते तद्युक्तात् स्वार्थे प्रत्ययो भवतीति वक्तव्यम्। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं—'कुत्सितादीनामर्थे चेल्लिङ्गवचनयोरनुपपत्ति'रिति, नैष दोषः। नाऽयं प्रत्ययार्थः। किं तर्हि? प्रकृत्यर्थविशेषणमेतत्—कुत्सितादिषु यत्प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्मात् कादयो भवन्ति। कस्मिन्नर्थे? स्वार्थे इति। स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते।

सिद्धान्ती—**सिद्धं त्विति**। जिस धर्म से कुत्सा आदि अर्थ गम्य हैं, तद्युक्त अर्थ का वाचक से स्वार्थ में प्रत्ययविधान करेंगे। जैसे 'अश्वकः' में अश्वसाध्य धावन आदि का पूर्णरूप से न हो पाना वाच्य है, वैसे 'घृतमिदं तैलम्' में इदम्पद कटुघृतत्व आदि के द्वारा घृत का वाचक नहीं है, अपि तु प्रत्यय विशेष्यत्वेन वाचक है; अतः इदम्पद से 'क' प्रत्यय की आपत्ति निरस्त हो गयी।

अन्य आचार्य—**सिध्यतीति**। यद्यपि 'सिद्धं तु येन कुत्सितादीनाम्-' इस अतिरिक्तवचन के पढने पर दोष निरस्त हो जा रहा है, तथा साध्य की सिद्धि भी हो जा रही है, तथापि इस पक्ष में सूत्रभेदरूपदोष स्पष्ट है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धान्ती आचार्य यथान्यासपक्ष में भी दोष का वारण करते हैं—**यथान्यासमिति**। सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। सूत्र के यथान्यासपक्ष में कुत्सितपद को भावसाधन ही मानेंगे। भावसाधनपक्ष में आप ने लिङ्ग और वचन=संख्या का अनुपपत्तिरूपदोष दिया था, वह नहीं रहेगा। वह इस तरह कि कुत्सित यह प्रत्ययार्थ नहीं है, अपि तु प्रकृत्यर्थ है। इस तरह कुत्सित आदि अर्थों में शक्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होगा। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति का लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण नहीं करते हैं। इस तरह स्वार्थिकप्रत्ययपक्ष में लिङ्ग और वचन की अनुपपत्ति नहीं रहेगी। {**कुत्सिते**}।

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ५.३.८३

* चतुर्थात् * **चतुर्थाल्लोपो वक्तव्यः-बृहस्पति-दत्तकः बृहस्पतिकः। प्रजापतिदत्तकः प्रजापतिकः** * अनजादौ च * **अनजादौ च लोपो वक्तव्यः। देवदत्तको देवकः। यज्ञदत्तको यज्ञकः** * लोपः पूर्वपदस्य च * **पूर्वपदस्य च लोपो वक्तव्यः। देवदत्तको दत्तकः। यज्ञदत्तको दत्तकः** * अप्रत्यये तथैवेष्टः * **देवदत्तो दत्तः। यज्ञदत्तो दत्तः** * उवर्णाल्ल इलस्य च * **उवर्णादिलस्य च लोपो वक्तव्यः। भानुदत्तको भानुलः। वसुदत्तको वसुलः।**

'अच् आदिर्यस्य सः अजादिः' तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि, 'ठश्च अजादिश्च ठाजादिस्तस्मिन्'। समाहार एकत्व विवक्षि होने पर सौत्रत्वात् पुंस्त्व है। 'द्वितीयात्' पञ्चम्यन्त, 'अचः' पञ्चम्यन्त निमित्तवचन, 'ऊर्ध्वम्' यह षष्ठ्यर्थ में प्रथमा-एकवचनान्त उद्देश्यवचन है। 'अनुकम्पायाम्' ५.३.७६, 'नीतौ च तद्युक्तात्' ५.३.७७ तथा 'अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च' ५.३.८२ से लोप की अनुवृत्ति है। 'ऊर्ध्वम्' पद से अर्थ का ग्रहण है, स्वरूप का नहीं।

सूत्रार्थ—'अनुकम्पायाम्' तथा 'नीतौ च तद्युक्तात्' इस प्रकरण में ठ और अजादि प्रत्यय पर रहते प्रकृति का द्वितीय अच् से ऊर्ध्व में प्रकृतिभाग का 'सर्वलोप हो'। अनुकम्पितो देवदत्तो देविकः। 'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा' ५.३.७८ से ठच् प्रत्यय, एवं 'घनिलचौ च' ५.३.७९ से घन्प्रत्ययपक्ष में 'देवियः', इलच्प्रत्ययपक्ष में 'देविलः' रूप है। 'अनुकम्पायाम्' ५.३.७६ से 'क' प्रत्यय करने पर 'देवदत्तकः' रूप होगा। यहाँ 'वा' ५.३.७८ इस पद की अनुवृत्ति नहीं है।

वार्तिककार—**चतुर्थादिति**। चतुर्थ अच् से ऊर्ध्वभाग का भी लोप कहना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये—'बृहस्पतिदत्तकः, बृहस्पतिकः। प्रजापतिदत्तकः, प्रजापतिकः'। यहाँ 'क' प्रत्यय पर रहते भी लोप कर भाष्यकार ने उदाहरण दिया है, 'ठ' और अजादिप्रत्यय पर रहते नहीं। **अनजादौ चेति**। **अनजादि**=अजादिभिन्न प्रत्यय पर रहते भी द्वितीय अच् से उत्तरभाग का लोप कहना चाहिये—देवदत्तको, देवकः। यज्ञदत्तको, यज्ञकः। **लोपः पूर्वपदस्य चेति**। प्रकृतप्रकरण में पूर्वपद का भी लोप कहना चाहिये—देवदत्तको दत्तकः। यज्ञदत्तको दत्तकः। **अप्रत्यये तथैवेष्ट इति**। कोई प्रत्यय नहीं होने पर भी प्रकृतप्रकरण में पूर्वपद का लोप कहना चाहिये—देवदत्तो दत्तः। यज्ञदत्तो दत्तः। **उवर्णाल्ल इलस्येति**। 'उवर्णात्' पञ्चम्यन्त, 'लः' प्रथमान्त और 'इलस्य' षष्ठ्यन्त है। यहाँ 'ल' पद से लोप अर्थ समझना चाहिये। प्राचीन आचार्य लोप की 'ल' संज्ञा करते हैं, तदनुरोध से लोपार्थक 'ल' पद का प्रकृत में प्रयोग है। 'आदेः परस्य' १.१.५४ से इल का आद्यवयव 'इ' का लोप होगा। एवं 'च'ग्रहण से उत्तरपद का लोप भी होगा-भानुदत्तको भानुलः। वसुदत्तको वसुलः।

अथ ठग्रहणं किमर्थं, न-इके कृतेऽजादावित्येव सिद्धम्? * ठग्रहणमुको द्वितीयत्वे कविधानार्थम् * **ठग्रहणं क्रियते। किमर्थम्? 'उको द्वितीयत्वे कविधानार्थम्'। उको द्वितीयत्वे कविधिर्यथा स्यात्। वायुदत्तको वायुकः। पितृदत्तकः पितृकः** * अजादिलक्षणे हि माथितिकादिवत् प्रसङ्गः * **अजादिलक्षणे हि माथितिकादिवत् प्रसज्येत। तद्यथा, मथितं पण्यमस्य माथितिक इत्यकारलोपे कृते तान्तादिति कादेशो न भवति। एवमिहापि न स्यात्** * द्वितीयादचो लोपे सन्ध्यक्षरद्वितीयत्वे तदादेर्लोपवचनम् * **द्वितीयादचो लोपे कर्त्तव्ये सन्ध्यक्षरद्वितीयत्वे तदादेर्लोपो वक्तव्यः। लहोडः लहिकः। कहोडः कहिकः।** {ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः}।

प्रश्नभाष्य—**अथ ठग्रहणमिति**। 'ठस्येकः' ७.३.५० आदेश होने पर अजादिनिमित्तक लोप के द्वारा ही 'ठ' पर रहते भी लोप हो जाता, पुनः सूत्र में ठ ग्रहण क्यों किया है?

उत्तरभाष्य—**ठग्रहणमुक इति**। 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादच्' सूत्र में ठ ग्रहण इस लिए किया गया है कि द्वितीय वर्ण अच् यदि उक् हो तो उससे परमें क विधि हो सके-वायुदत्तको वायुकः। पितृदत्तकः पितृकः। यहाँ 'वायुकः पितृकः' में द्वितीय वर्ण उक् उ और ऋ है; उससे पर में क प्रत्यय हुआ है।

यदि ठग्रहण नहीं करके मात्र 'अजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' सूत्र पढेंगे, तो उसकी अव्याप्ति दे रहे हैं—**अजादिलक्षणे हीति**। 'मथितं पण्यमस्य माथितिकः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में मथित पद से 'तदस्य पण्यम्' ४.४.५१ से ठक्, ठ को इक आदेश होने पर मथितघटक तकारोत्तर अवर्ण का 'यस्येति च' ६.४.१४८ से लोप होकर 'मथित्+इक' इस दशा में 'इसुसुक्तान्तात् कः' ७.३.५१ से इकस्थानिक ठ को सन्निपातलक्षणपरिभाषा के द्वारा क आदेश रुक जाता है; वैसे प्रकृत में भी ठ के स्थान पर अजादि इक आदेश होने पर सन्निपातलक्षणपरिभाषा के द्वारा द्वितीय अच् से ऊर्ध्वभाग का लोप नहीं हो सकेगा; अतः ठग्रहण का परित्याग कर अजादिप्रत्ययमात्र को लोप का निमित्त मानने में दोष है; अतः ठग्रहण किया गया है। **द्वितीयादचो लोप इति।** द्वितीय अच् से ऊर्ध्व का यदि सम्पूर्णलोप हो तथा द्वितीय अच् सन्ध्यक्षर हो, जैसे—द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक स्वर हो तो उसका लोप कहना चाहिये—लहोडः, लहिकः। कहोडः, कहिकः। यहाँ द्वितीय अच् 'ओ' सन्ध्यक्षर है—'अ+उ=ओ'। {ठाजादा-}।

शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ५.३.८४

* वरुणादीनां च तृतीयात्स चाऽकृतसन्धीनाम् * **वरुणादीनां च तृतीयाल्लोप उच्यते स चाऽकृतसन्धीनां वक्तव्यः। सुपर्याशीर्दत्तः—सुपरिकः। सुपरियः। सुपरिलः। इह षडङ्गुलिः षडिकः इत्यजादिलोपे कृते पदसंज्ञा न प्राप्नोति। तत्र को दोषः? जश्त्वं न स्यात्** * षडिके जश्त्व उक्तम् * **षडिके जश्त्व उक्तम्। किमुक्तम्? 'सिद्धमचः स्थानिवत्त्वा'दिति। यद्येवम्,** * वाचिकादिषु पदवृत्तप्रतिषेधः * **वाचिकादिषु पदवृत्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। वागाशीः—वाचिक इति** * सिद्धमेकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपवचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपवचनात्'। काक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदस्य लोपो वक्तव्यः। वाचिकः।**

'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' ५.३.८३ से 'ठाजादावूर्ध्वम् अचः' 'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा' ५.३.७८ से 'मनुष्यनाम्नः' तथा 'अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च' ५.३.८२ से 'लोपः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अनुकम्पायाम्' ५.३.७६ तथा 'नीतौ च तद्युक्तात्' ५.३.७७ प्रकरण में मनुष्यवाचक शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण, अर्यमन् पूर्वपद के तृतीय अच् से ऊर्ध्व में ठ और अजादि प्रत्यय पर रहते लोप हो'। यह पूर्व का अपवाद है। शेवलदत्तः, शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः में 'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५.३.७८, एवं 'घनिलचौ च' ५.३.७९ से ठच्, घन् और इलच् प्रत्यय है। इसी तरह—'सुपरिकः, सुपरियः, युपरिलः। विशालिकः, विशालियः, विशलिलः। वरुणिकः, वरुणियः, वरुणिलः। अर्यमिकः, अर्यमियः, अर्यमिलः' रूप भी होंगे।

वार्तिककार—**वरुणादीनामिति**। सन्धिकार्य नहीं होने पर ही वरुणादि के तृतीय अच् से ऊर्ध्वभाग के सम्पूर्ण का लोप कहना चाहिये। इससे संहिताकार्य सन्धि होने से पूर्व में ही लोप हो जायेगा। यदि संहिताकार्य सन्धि हो गया हो तो लोप नहीं होगा; अतः 'सुपरि+आशीः' इस दशा में ही 'आशीः' का लोप होकर 'सुपरिकः' आदि रूप होगा। यदि संहिताकार्य सन्धि होने पर तृतीय अच् से ऊर्ध्वभाग का लोप करेंगे तो 'सुपर्यिकः' इस अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी। 'वरुणादीनाम्' में आदि पद प्रकार अर्थ में है; अतः उससे सादृश्यनितित्त एकसूत्र में पठित शेवल आदि का ग्रहण होगा।

पूर्वपक्षी—**इहेति षडङ्गुलिरिति**। 'षड् अङ्गुलयः अस्य स षडङ्गुलिः, अनुकम्पितः षडङ्गुलिः षडिकः' में अजादिप्रत्ययनिमित्तक लोप कर लेने पर अन्तवर्त्ती विभक्ति को मान कर षष् पद की भसंज्ञा प्राप्त है। भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होने से 'षडिकः' में पदान्त 'ष' नहीं मिलेगा जिससे जश्त्व नहीं हो सकेगा।

उत्तरभाष्य—**षडिके जश्त्वमिति**। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ के द्वारा परनिमित्तक अजादेश को स्थानिवत् करेंगे। 'षडङ्गुलिः' में अगुलिशब्द का 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' ५.३.८३ से लोप करने पर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से अकार का लोप करते हैं। उसको स्थानिवद्भाव कर देंगे। इस तरह यहाँ भसंज्ञा के प्रति अकारान्त षडशब्द हो रहा है; जब कि अन्तवर्त्तिविभक्ति को निमित्त मान कर होने वाली पदसंज्ञा षकारान्त पर है। इस तरह भिन्न अवधि होने से भसंज्ञा के द्वारा पदसंज्ञा का बाध नहीं होगा; अतः पदत्व- निमित्तक जश्त्व होकर 'षडिकः' की सिद्धि हो जायेगी।

एकदेशी—**वाचिकादिष्विति**। वाचिक आदि में **पदवृत्तस्य**=पदकार्य का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—अनुकम्पितः वागाशीः वाचिकः। यहाँ वाच् के चकार को पदसंज्ञानिमित्त कुत्व प्राप्त है, 'वाचिकः' में उसका प्रतिषेध हो गया।

खण्डनभाष्य—**सिद्धमेकाक्षरेति**। 'वागाशीः' में पूर्वपद एकाक्षर वाच् है तथा उत्तरपद द्व्यक्षर आशीः है। उत्तरपद का लोप होने पर यहाँ भसंज्ञा से द्विविधपदत्व; का बाध हो जायेगा; अतः पदसंज्ञा नहीं होने से 'वाचिकः' में पदकार्य कुत्व की प्राप्ति नहीं है।

इहाऽपि तर्हि प्राप्नोति, षडङ्गुलिः षडिक इति * षषष्ठाजादि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनात् सिद्धम् * **षषष्ठाजादिवचनात् सिद्धमेतत्। कथम्? 'ठाजादिपूर्वपदाद् द्वितीयादच' इति।** {ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः}।

आक्षेपक—**इहापीति**। यदि 'वाचिकः' में भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध हो रहा है तो 'षडिकः' में भी भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होना चाहिये?

समाधानभाष्य—**षषष्ठाजादिवचनादिति**। द्वितीय अच् से पर में ऊर्ध्व- भाग का लोप कहा जा रहा है। 'षडङ्गुलिः' में द्वितीय अच् डघटक अ है। अन्तवर्त्तिविभक्तिनिमित्ता पदसंज्ञा अदन्त षड पर रहेगी; अतः यहाँ अदन्त से पदत्व का बाध होने पर भी षान्त में पदत्व बना रहेगा। तन्निमित्तक जश्त्व होकर 'षडिकः' की सिद्धि हो जायेगी। {**शेवल-**}।

अल्पे ५.३.८५
ह्रस्वे ५.३.८६

किमर्थमिमावुभावर्थौ प्रतिनिर्दिष्येते, न यदल्पं ह्रस्वमपि तद् भवति, यच्च ह्रस्वम् अल्पमपि तद् भवति? नैतयोरावश्यकः समावेशः। अल्पं घृतमल्पं तैलमित्युच्यते, न कश्चिदाह—ह्रस्वं घृतं ह्रस्वं तैलमिति। तथा ह्रस्वः पटः ह्रस्वः शाटक इत्युच्यते, न हि कश्चिदाह—अल्पः पटः अल्पः शाटक इति।।

सूत्रार्थ—'अल्पत्वविशिष्ट में शक्त प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हो'। अल्पं तैलं तैलकम्। ५.३.८५.।

सूत्रार्थ—'ह्रस्वत्वविशिष्ट में शक्त प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हो'। ह्रस्वो वृक्षः वृक्षकः। ५.३.८६.।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। आचार्य अल्प और ह्रस्व दोनों अर्थों का निर्देश क्यों कर रहे हैं। जो अल्प है, वह ह्रस्व भी है, तथा जो ह्रस्व है, वह अल्प भी है। इस तरह अल्प और ह्रस्व पद पर्याय हैं, अतः अन्यतर का निर्देश करना चाहिये था, उभयनिर्देश क्यों है?

उत्तरभाष्य—**नैतयोरावश्यक इति**। कहीं-कहीं पर अल्प और ह्रस्व का परस्पर समावेश हो जाने पर भी सर्वत्र दोनों का समावेश आवश्यक नहीं होता है। लोक में 'अल्पं तैलम्, अल्पं घृतम्' ऐसा ही प्रयोग होता है। कोई भी 'ह्रस्वं तैलं, ह्रस्वं घृतम्' ऐसा प्रयोग नहीं करता है। एवं 'ह्रस्वः पटः, ह्रस्वः शाटकः' ऐसा सभी प्रयोग करते हैं। कोई भी 'अल्पः पटः, अल्पः शाटकः' ऐसा प्रयोग नहीं करता है। इससे अल्प और ह्रस्व का असमानार्थकत्व सिद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यदि अल्पार्थक से स्वार्थ में प्रत्यय कहा जाता तो वह ह्रस्वार्थक से अप्राप्त होता तथा ह्रस्वार्थक से कहने पर अल्पार्थक से अप्राप्त होता; अतः उभयत्र प्रत्ययविधानार्थ दोनों का ग्रहण किया गया है। {**ह्रस्वे**}।

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५.३.८८

* कुटीशमीशुण्डाभ्यः प्रत्ययसन्नियोगेन पुंवद्वचनम् * **कुटीशमीशुण्डाभ्यः प्रत्ययसन्नियोगेन पुंवद्भावो वक्तव्यः। कुटी—कुटीरः। शमी—शमीरः। शुण्डा—शुण्डार इति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? स्वार्थिकोऽयं, स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते** * उक्तं वा * **किमुक्तम्? 'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति**। {कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः}।

सूत्रार्थ—'ह्रस्वार्थक कुटी, शमी और शुण्डा पद से र प्रत्यय हो'। ह्रस्वा कुटी कुटीरः। इसी तरह 'शमीरः, शुण्डारः'।

एकदेशी आचार्य—**कुटीशमीशुण्डाभ्य इति**। कुटी, शमी और शुण्डा पद से स्वार्थिक र प्रत्यय होने पर प्रत्ययान्त को पुंवद्भाव भी कहना चाहिये। अर्थात् 'कुटीरः, शमीरः, शुण्डारः' ये पद पुल्लिङ्ग में होंगे।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि रप्रत्ययान्त कुटीर आदि पुल्लिङ्ग में नहीं हो पा रहे हैं?

एकदेशी आचार्य—**स्वार्थिकोऽयमिति**। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अनुसरण करते हैं। प्रकृत में र प्रत्यय स्वार्थिक है तथा उसकी प्रकृति स्त्रीलिङ्ग में है; अतः स्त्रीलिङ्ग प्राप्त हो रहा है; जब कि यहाँ पुल्लिङ्ग होना चाहिये; अतः इसके लिए पुंवत् कहना चाहिये।

सिद्धान्ती—**उक्तं वेति**। कहीं'कहीं पर स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण भी करते हैं; यह 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ में 'स्त्रियाम्' निर्देश से सिद्ध है। मैं इसे 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६८ सूत्र पर कह आया हूँ। {**कुटीशमी-**}।

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ५.३.९१

* वत्सादिभ्यस्तनुत्वे कार्श्ये प्रतिषेधः * **वत्सादिभ्यस्तनुत्वे कार्श्ये प्रतिषेधो वक्तव्यः। कृशो वत्सो वत्सतर इति मा भूदिति**।

यहाँ 'ह्रस्वे' ५.३.८६ निवृत्त है; एवं 'कासूगोणीभ्यः ष्टरच्' ५.३.९० की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुवृत्ति है। यहाँ वत्स, उक्षन्, अश्व, ऋषभ इन तनुत्वविशिष्टवाची से स्वार्थ में ष्टरच् प्रत्यय विहित है। वत्सतरः=द्वितीय वयःप्राप्त। उक्षतरः, अश्वतरः, ऋषभतरः।

एकदेशी आचार्य—**वत्सादिभ्यस्तनुत्व इति**। तनुत्वार्थविशिष्ट वत्स आदि से प्रत्ययविधान करने पर कार्यार्थविशिष्ट वत्स आदि से प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'कृशो वत्सः' ऐसा विग्रह कर कृशार्थविशिष्ट वत्सपद से ष्टरच् प्रत्यय होकर 'वत्सतरः' रूप नहीं होगा। 'षः प्रत्ययस्य' १.३.६ से ष् की इत्संज्ञा तथा लोप १.३.९ होने पर 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याऽप्यपायः'न्याय से ष्टुत्व का स्वतः अभाव हो जायेगा।

स तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। यस्य गुणस्य हि भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने-तस्मिन् गुणे वक्तव्ये—प्रत्ययेन भवितव्यं, न च कार्श्यस्य भावाद् द्रव्ये वत्सशब्दः। {वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे}।

अन्य आचार्य—**स तर्हीति**। क्या कृशार्थक वत्सादि से ष्टरच् का प्रतिषेध के लिए उक्त वार्तिक पढना पडेगा?

खण्डनभाष्य—**न वक्तव्यमिति**। इसकी आवश्यकता नहीं है। जिस गुण को मान कर द्रव्य में शब्द की प्रवृत्ति हो रही है, उसी के वाच्य होने पर प्रत्यय होगा। प्रकृत में तनुत्वार्थविशिष्टवाची से ष्टरच् कहा जा रहा है; अतः वह कृशविशिष्टवाची से प्राप्त नहीं होगा। इस तरह प्राप्ति नहीं होने से प्रतिषेध व्यर्थ है। **{वत्सोक्षो-}**।

किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५.३.९२

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५.३.९३

*** किमादीनां द्विबह्वर्थे प्रत्ययविधानादुपाध्यानर्थक्यम् * किमादीनां द्विबह्वर्थे प्रत्ययविधानादुपाधिग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? बहिर्धारणं निर्धारणमिति; यावता द्वयोरेकस्यैव बहिर्धारणं भवति।**

किम्, यद् और तद् का समाहारद्वन्द्व होकर पञ्चमी है।

सूत्रार्थ—'दो से एक का निर्धारण गम्य होने पर निर्धार्यमाणवाची किम् आदि से डतरच् प्रत्यय हो'। अनयोः कतरः, यतरः, ततरः शैवः। यहाँ डित्वसामर्थ्य से टिलोप है। महाविभाषाधिकार होने से 'कः, यः, सः' भी होगा। ५.३.९२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वसूत्र से उत्तरसूत्र में 'किंयत्तदः' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'बहुतों के मध्य से किसी एक का पृथक् निर्धारण करने पर किम्, यद् और तद् से डतमच् प्रत्यय हो'। कतमः, यतमः,ततमः एषां शाक्तः? यहाँ अकजर्थक 'वा'पद का ग्रहण है, अतः 'ककः, यकः, सकः' भी होगा, एवं महाविभाषा का अधिकार होने से उक्त अर्थ में 'कः, यः, सः' भी होगा। ५.३. ६३.।

वार्तिककार—**किमादीनामिति**। किम्, यद् और तद् से द्व्यर्थ में प्रत्ययविधान के लिए 'निर्धारणे द्वयोरेकस्य' दिया है तथा बह्वर्थ में 'जातिपरिप्रश्न' उपाधि दिया गया है, वह व्यर्थ है। वह इस तरह कि **बहिर्धारणम्**=समुदाय से पृथक् एकदेशकरण को निर्धारण कहते हैं। चूँकि कि दो में से एक का ही निर्धारण होता है; अतः इसका अर्थतः लाभ हो जायेगा, उपाधिदान व्यर्थ है।

अपर आह—'बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतम'जित्यत्र बहुग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? किमित्येतत् परिप्रश्ने वर्त्तते, परिप्रश्नश्चाऽनिर्ज्ञातेऽनिर्ज्ञातं च बहुषु। द्व्येकयोः पुनर्निर्ज्ञातं, निर्ज्ञातत्वाद् द्व्येकयोः परिप्रश्नो न, परिप्रश्नाभावात् किमेव नास्ति कुतः प्रत्ययः? {किंयत्तदोः}।

दूसरे आचार्य द्वितीय उपाधि का वैयर्थ्य सिद्ध करते हैं—**अपर आहेति**। बहुतों के मध्य में जातिपरिप्रश्न होने पर डतमच् का विधान है। किम् प्रातिपदिक परिप्रश्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनिर्ज्ञात में ही परिप्रश्न होता है। बहुतों में अनिर्ज्ञात होता ही है। परन्तु यदि दो अथ वा एक है तब निर्ज्ञात होगा। निर्ज्ञात होने से द्वि अथ वा एक के मध्य में परिप्रश्न नहीं होगा। परिप्रश्न नहीं होने से वहाँ किम्शब्द नही है, फिर उससे प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी। डतरच् का अपवाद डतमच् है; अतः बहुतों के निर्धारण में ही डतमच् होगा। {वा बहूनां-}।

एकाच्च प्राचाम् ५.३.६४

प्राग्वचनं किमर्थम्? विभाषा यथा स्यात् * प्राग्वचनानर्थक्यं च विभाषाप्रकरणात् * **प्राग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'विभाषाप्रकरणात्'। प्रकृता महाविभाषा, तयैव सिद्धम्।** {एकाच्च प्राचाम्}।

सूत्रार्थ—'एक पद से डतरच् और डतमच् प्रत्यय हो'। अनयोरेकतरो मित्रदत्तः। एषामेकतमो देवदत्तः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्नभाष्य—**प्राग्वचनमिति**। सूत्र में 'प्राचाम्' पद का पाठ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**विभाषा यथेति**। प्राचीनों के मत में डतरच् और डतमच् नित्य हो तथा नवीनों के मतमें एक पद से उक्त प्रत्यय का नित्य अभाव हो, यह बताने के लिए 'प्राचाम्'पद दिया है। इससे विकल्प अर्थ लब्ध होता है।

प्रत्याख्यानभाष्य—**प्राग्वचनानर्थक्यमिति**। महाविभाषा का अधिकार आ रहा है; इससे सभी तद्धित विकल्प से होंगे। इस तरह प्रत्ययघटित भी वाक्य होगा, तथा प्रत्ययरहित भी वाक्य होगा। महाविभाषा का अधिकार होने से ही विकल्प अर्थ की उपलब्धि हो जायेगी; अतः 'प्राचाम्' पद का निर्देश आदरार्थ है, अथ वा अदृष्टप्रयोजन के लिए है। {**एकाच्च प्रवाम्**}।

अवक्षेपणे कन् ५.३.९५

अवक्षेपणे कन् विधीयते, कुत्सिते कः, क एतयोरर्थयोर्विशेषः? अवक्षेपणं करणं, कुत्सितं कर्म। अवक्षेपणं वै कुत्सितं करणं, तेन यत्कुत्स्यते तदपि कुत्सितं भवति, तत्र कुत्सित इत्येव सिद्धं भवति। एवं तर्हि यत्परस्य कुत्सार्थमुपादीयते तदिहोदाहरणं व्याकरणकेन नामायं गर्वितः, याज्ञिक्यकेन नामाऽयं गर्वितः। यत्स्वकुत्सार्थमुपादीयते तत्तत्रोदाहरणं-देवदत्तको यज्ञदत्तकः। {अवक्षेपणे कन्}।

'अवक्षिप्यते येन तदवक्षेपणम्' करण में ल्युट् है।

सूत्रार्थ—'अववक्षेपणार्थक प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् हो'। व्याकरणकम्। व्याकरण स्वतः कुत्सित नहीं है, परन्तु अधीत होकर अध्येता की कुत्सा का कारणभूत गर्व पैदा करता हुआ अवक्षेपण है।

जिज्ञासु आचार्य—**अवक्षेपणे कन्निति**। अवक्षेपणार्थक प्रातिपदिक से कन् तथा कुत्सार्थक प्रातिपदिक से क ५.३.७४ प्रत्यय का विधान किया गया है। कुत्सा और अवक्षेपण इन दोनों अर्थों में क्या भेद है? यद्यपि कन् होने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९४ से आद्युदात्त होगा तथा क प्रत्यय होने पर अन्तोदात्त होगा। इस तरह क और कन् में स्वरभेद स्पष्ट है, तथापि यहाँ रूपभेद की जिज्ञासा नहीं करके अर्थभेद की जिज्ञासा की गयी है।

उत्तरभाष्य—**अवक्षेपणमिति**। 'अवक्षिप्यते येन तदवक्षेपणम्' यह करणसाधन है तथा 'कुत्स्यते यत्तत् कुत्सितम्' यह कर्मसाधन है। इस तरह 'अवक्षेपणे कन्' का 'येनाऽवक्षिप्यते=निन्द्यते तद्वाचिनः कन् प्रत्ययः स्यात्' अर्थ होगा, तथा 'यः स्वयं कुत्स्यते तद्वाचिनः कः स्यात्' यह 'कुत्सिते' का अर्थ होगा, यही दोनों का विषयविभाग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेपक आचार्य—**अवक्षेपणं वै इति**। स्वयं कुत्सित अवक्षेपण नहीं होता है, अपि तु अवक्षेपण का भी कुत्सितत्व होता है, अतः 'कुत्सिते' ५.३.७४ से ही अवक्षेपण में भी प्रत्यय हो जायेगा।

सिद्धान्ती—**एवं तर्हीति**। इस तरह अन्य के कुत्सार्थ जिसका ग्रहण किया जाता है, वही इसका उदाहरण होगा। व्याकरण आदि शास्त्र स्वयम् अकुत्सित होते हुए भी आश्रयविशेष अध्येता में मद उत्पन्न करता हुआ दूसरे के लिए अवक्षेपण हो जाता है, अतः तद्वाची व्याकरण आदि से कन् प्रत्यय होगा। {**अवक्षेपणे कन्**}।

लुम्मनुष्ये ५.३.९८

किमर्थं मनुष्ये लुबुच्यते, न लुगेवोच्येत? * लिङ्गसिद्ध्यर्थं लुम्मनुष्ये * लिङ्गसिद्ध्यर्थं मनुष्ये लुबुच्यते। चञ्चेव चञ्चा। बध्रिकेव बध्रिका। खरकुटीव खरकुटी।

'संज्ञायां च' ५.३.९७ से विहित कन् का मनुष्य वाच्य होने पर लुप् हो'। चञ्चा तृणमयः पुमान्। चञ्चा इव मनुष्यश्चञ्चा। चर्ममयी प्रतिकृतिर्बध्रिका। बध्रिका इव मनुष्यो बध्रिका।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। लुक्, श्लु और लुप् यह प्रत्यय के अदर्शन की संज्ञा है। आचार्य लुप्पद का निर्देश कर 'लुम्मनुष्ये' सूत्र पढ रहे हैं। यहाँ लुक्पद से भी प्रत्यय का अदर्शन हो सकता था, उसका निर्देश कर 'लुङ्मनुष्ये' ऐसा सूत्र क्यों नहीं पढा गया है?

उत्तरभाष्य—**लिङ्गसिध्यर्थमिति**। लुप्शब्द से प्रत्यय का अदर्शन होने पर 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' १.२.५१ के द्वारा लिङ्ग प्रकृतिवत् होता है; अतः मनुष्य अर्थ का वाचक होने पर भी 'चञ्चा, बध्रिका, खरकुटी' यह स्त्रीलिङ्ग ही रहेगा। परन्तु यदि लुक् के द्वारा प्रत्यय का अदर्शन करते तो पुल्लिङ्ग की प्राप्ति होती। खरकुटी=नापितगृहम्। {**लुम्मनुष्ये**}।

जीविकार्थे चाऽपण्ये ५.३.९९

'अपण्ये' इत्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति-शिवः स्कन्दः विशाख इति? किं कारणम्? मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्च्चाः प्रकल्पिताः। भवेत् तासु न स्याद्, यास्त्वेताः संप्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति। {जीविकार्थे}।

पण्य=विक्रीयमाण। 'लुम्मनुष्ये' ५.३.९८ से लुप् की अनुवृत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'जीविकार्थ अविक्रीयमाण वाच्य होने पर कन् प्रत्यय का लुप् हो'-'वासुदेव इव वासुदेवः'। वासुदेव की प्रतिमा लेकर भिक्षार्थ प्रतिगृह घूमने वाला।

आक्षेपभाष्य—**अपण्य इतीति**। अपण्य अर्थ में प्रत्यय का लुप् कहा जा रहा है। जो कारिगर लोग मूर्तिनिर्माण कर धन के लिए एकत्र स्थापित कर विक्रय करते हैं, वहाँ प्रत्यय का लुप् प्राप्त नहीं होने से उन अर्थों में 'शिवः, स्कन्दः, विशाखः' की सिद्धि नहीं हो पा रही है।

उत्तरभाष्य–**भवेत्तास्त्विति**। जो लोग एकत्र स्थापित कर विक्रय करते हैं, वहाँ पण्यार्थक होने से प्रत्यय का श्रवण होगा, लुप् नहीं। वहाँ पर प्रत्यय का श्रवण इष्ट है। परन्तु प्रतिमानिर्माणकाल में ही जीविकाप्रदायिनी फलजनिका जो पूजा, उसके वाच्य होने पर प्रत्यय का लुप् होगा। वहाँ प्रत्ययश्रवण इष्ट नहीं है। सात्विकजन घर में ही जिसकी पूजा करते हैं, वहाँ उपास्य से अभिन्नबुद्धि होती है; अतः सादृश्यबुद्धि नहीं होने से वहाँ प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी। {**जीविकार्थे चाऽपण्ये**}।

समासाच्च तद्विषयात् ५.३.१०६

'त'दित्यनेन किं प्रतिनिर्दिश्यते? छः। कथं पुनः समासो नाम च्छविषयः स्यात्? एवं तर्हीवार्थः। यदि तर्हि समासोऽपीवाऽर्थे प्रत्ययोऽपि, समासेनोक्तत्वात् प्रत्ययो न प्राप्नोति। एवं तर्हि द्वाविवार्थौ। कथम्? काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालं, काकतालमिव काकतालीयम्।।

सूत्रार्थ—'इवार्थविषयसमास से छ प्रत्यय हो'। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा।

प्रश्नभाष्य—**तदित्यनेनेति**। 'कुशाग्राच्छः' ५.३.१०५ से इवार्थक छ प्रत्यय का अनुवर्त्तन हो रहा है। 'तद्विषयात्' में सर्वनाम 'तद्'पद का निर्देश है। उससे किस अर्थ का परामर्श किया जा रहा है?

एकदेशी आचार्य—**छ इति**। तद् पद से छ का परामर्श किया जा रहा है।

आक्षेपक आचार्य—**कथं पुनरिति**। 'तद्विषयात्' कहा गया है, यह पञ्चम्यन्तपद है तथा 'समासात्' भी पञ्चम्यन्त है। दोनों का अभेदान्वय होगा। यदि तद्पद से छ का परामर्श कर रहे हैं तो समास के साथ उसका अभेदान्वय कैसे होगा? समास के छविषय नहीं होने से यहाँ अन्वय असम्भव होगा।

उत्तरपक्षी—**एवं तर्हीति**। यहाँ तद्पद से इवार्थ परामृष्ट है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आक्षेप आचार्य—**यदि तर्हीति**। समास भी इव अर्थ में है तथा छ प्रत्यय भी इव अर्थ में है। यदि समास से इव अर्थ उक्त हो गया तो 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से पुनः इव अर्थ में छ प्रत्यय नहीं होना चाहिये?

सिद्धान्ती—**एवं तर्हि द्वाविति**। यहाँ दो इवार्थ हैं, वह कैसे? इसे स्पष्ट करते हैं—**काकागमनमिवेति**। शक्तिविषय में काक और ताल पद समवेतक्रिया के वाचक हैं। यहाँ देवदत्तकर्त्तृक आगमनक्रिया का उपमान काककर्त्तृक आगमनक्रिया है। एवं दस्युनिपात का उपमान तालपतन है। ताल के द्वारा काक का जो वध, वह पौरकर्त्तृक देवदत्तकर्मक वध के सदृश है; अतः काकतालीयआदि शब्द के वध आदि वाच्य हैं; अतः 'काकतालमिव काकतालीयम्' इसका उदाहरण है।{समासाच्च तद्विषयात्}।

अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिशावच्छमी-वदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ् ५.३.११८

* अणो गोत्राद् गोत्रवचनम् * **अणो गोत्राद् गोत्रग्रहणं कर्त्तव्यम्। गोत्रादिति वक्तव्यम्। इह मा भूद्-आभिजितो मुहूर्त्तः। आभिजितः स्थालीपाक इति। गोत्र इति च वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? आभिजितकः। गोत्राश्रयो वुञ् यथा स्यात्।**

अभिजित्, विद्भृत्, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत्, श्रुमत्' इन पदों का समाहारद्वन्द्व करके पञ्चमी का लुक् है। 'अण्' यह प्रत्यय का ग्रहण है; अतः तदन्त का ग्रहण होगा।

सूत्रार्थ—'अण्णन्त अभिजित् आदि से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय हो'। अभिजितोऽपत्यमाभिजित्यः। इसी तरह 'वैदभृत्यः, शालावत्यः, शैखावत्यः, शामीवत्यः, और्णावत्यः, श्रौमत्यः' में भी अण्णन्त से स्वार्थ में प्रत्यय कहना चाहिये।

वार्तिककार—**अणो गोत्रादिति**। अण्णन्त अभिजित् आदि से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय कहा जा रहा है। 'तस्याऽपत्यम्' ४.१.९२, 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ४.२.३ तथा 'साऽस्य देवता' ४.२.२४ इन तीनों सूत्रों से अण् विहित है। 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' ४.२.३ तथा 'साऽस्य देवता' ४.२.२४ से विहित अण्णन्त से स्वार्थिक यञ् न हो, इसके लिए सूत्र में गोत्रग्रहण करना चाहिये। इससे 'अभिजिता युक्तः काल इति आभिजितो मुहूर्तः। अभिजिद् देवताऽस्येति आभिजितः स्थालीपाकः' में जहाँ नक्षत्र तथा देवतालक्षण अण् विहित है, वहाँ अण्णन्त आभिजित पद से स्वार्थिक यञ् नहीं होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशी आचार्य—**गोत्रमिति चेति**। सूत्र में 'गोत्रम्' ऐसा पाठ करना चाहिये। यहाँ 'गोत्रम्' यह अतिदेश होगा; अतः इससे 'गोत्रवद्' ऐसा अर्थ आयेगा-'गोत्र में जो प्रत्यय विहित है, तद्वत् कहना चाहिये'। यहाँ एकदेशी आचार्य—'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ सूत्र में 'गोत्र'पद को स्वरितत्वविशिष्ट मान रहे हैं; अतः 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' ४.१.९८ सूत्र में गोत्राधिकारप्रत्यय का ग्रहण होगा। इस तरह इस यञ् ५.३.११८ का ग्रहण नहीं हो सकेगा। परन्तु जब गोत्रत्व का अतिदेश करते हैं, तब इसका भी ग्रहण हो जा रहा है। इससे 'आभिजित्यस्याऽयम् आभिजितकः' में 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् प्रत्यय तथा 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' ६.४.१५१ से यलोप होकर 'आभिजितकः' रूप हो जाता है। इस तरह यहाँ गोत्रवद् अतिदेश करने से 'आभिजितकः' में वुञ् सिद्ध हो जाता है।

गोत्र इति शक्यमकर्त्तुम्। कथमाभिजितकः? गोत्रादयं स्वार्थिको गोत्रमेव भवति।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम्

●

सिद्धान्ती आचार्य यहाँ गोत्रवद् अतिदेश का खण्डन करते हैं—**गोत्रमिति शक्यमिति**। यहाँ गोत्रवद् अतिदेश नहीं करना चाहिये। अभिजित् आदि से गोत्र अर्थ में अण् प्रत्यय विहित है तथा गोत्रप्रत्ययान्त अण्णन्त से स्वार्थ में यञ् ५.३.११८ विहित है। स्वार्थ में विहित होने से यह यञ् भी गोत्रप्रत्यय होगा। इस तरह गोत्रवाची यञन्त से प्रत्ययविधान होने पर 'आभिजित्यस्याऽयम् आभिजितकः' में भी 'गोत्रचरणाद् वुञ्' ४.३.१२६ से वुञ् हो जायेगा। परन्तु यदि गोत्राधिकारविहित प्रत्यय का ग्रहण कर उससे वुञ् करेंगे तो 'औपगवकः' में अण्णन्त से वुञ् नहीं हो पायेगा; अतः गोत्रवाची से ही वुञ् कहना चाहिये, गोत्राधिकारविहित से नहीं। इस तरह गोत्रवद् अतिदेश के विना भी वुञ् सिद्ध हो जा रहा है; अतः अतिदेश एकदेशी है। {**अभिजि-**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय तृतीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

तृतीयपाद भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम् ❁

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ५.४.१

* पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनात् * पादशतग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'अन्यत्रापि दर्शनात्'। अन्यत्रापि हि वुन् दृश्यते, द्विमोदकिकां ददाति। त्रिमोदकिकां ददातीति। {पादशतस्य सङ्ख्यादेः}।

'संख्या=संख्यावाचकं पदम् आदिर्यस्य स संख्यादिस्तस्य, संख्यादेः' षष्ठ्येकवचनान्त, 'पादशतस्य' में विशेषण है। 'पादश्च शतञ्चेत्यनयोः समाहारः पादशतं, तस्य'। सौत्रत्वात् पुल्लिङ्गनिर्देश है। अन्यथा 'संख्यादेः' के स्थान पर 'संख्यादिनः' ऐसा पढते। विधेय 'लोप' की अपेक्षा 'संख्यादेः पादशतस्य' षष्ठ्यन्त स्थानिवचन है। परन्तु 'वुन्'प्रत्यय की अपेक्षा से पञ्चम्यर्थ में षष्ठी होगी।

सूत्रार्थ—'संख्यावाचकशब्दपूर्वक पादशब्द तथा शतशब्द से स्वार्थ में वुन् प्रत्यय हो तथा प्रकृति के अन्त का लोप हो। द्वौ-द्वौ पादौ ददातीति द्विपदिकां ददाति। द्वे-द्वे शते ददातीति द्विशतिकां ददाति। यहाँ 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से समास होने पर प्रत्यय होगा। शब्दस्वभाववश वुन्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है। यद्यपि वुन् के स्थान पर अक आदेश करने के अनन्तर 'यस्येति च' ६.४.१४८ से अकार का लोप हो सकता था, तथापि यहाँ सूत्रकार ने अल्लोपविधान किया है। इसका कारण यह है कि 'यस्येति च' ६.४.१८४ से अल्लोप परनिमित्तक है। 'पादः पद्' ६.४.१३० की कर्त्तव्यता में 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ से स्थानिवद्भाव हो जायेगा। जब कि प्रकृत लोप परनिमित्तक नहीं है, अतः उसको स्थानिवद्भाव नहीं होने से पाद् के स्थान में पद् आदेश हो जाता है।

वार्तिककार—**पादशतग्रहणमिति**। 'द्वौ-द्वौ मोदकौ ददातीति द्विमोदकिकां ददाति, त्रींस्त्रीन् मोदकान् ददातीति त्रिमोदकिकां ददाति' में भी संख्यापूर्व मोदकपद का अन्त्यलोप तथा प्रकृति से परमें स्वार्थिक वुन् प्रत्यय देखा जाता है। यदि 'पादशतस्य'पद का ग्रहण किया जायेगा तो 'द्विमोदकिकाम्' इत्यादि की असिद्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहेगी; अतः इनकी सिद्धि के लिए 'संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च' इतना ही सूत्र रखना चाहिये। 'पादशतस्य'ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। इससे 'द्विपदिकां ददाति, त्रिशतिकां ददाति' की भी सिद्धि हो जायेगी। {**पादशतस्य-**}।

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ५.४.३

* कन्प्रकरणे चञ्चद्बृहतोरुपसंङ्ख्यानम् * **कन्प्रकरणे चञ्चद्बृहतोरुपसंङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्। चञ्चत्कः। बृहत्कः।** {स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्}।

यहाँ 'प्रकार'पद से व्याख्यानवश भेद और प्रकार अर्थ गृहीत है।

सूत्रार्थ—'प्रकारवान् अर्थ में शक्त स्थल आदि प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् हो'। स्थूलप्रकारः स्थूलकः। अणुप्रकारोऽणुकः।

वार्तिककार—**कन्प्रकरण इति**। चञ्चत् और बृहत् पद से भी स्वार्थिक कन् कहना चाहिये। गत्यर्थक चञ्चु चलने धा.पा.१६६ से चञ्चत् पद है। अचञ्चन्नपि यश्चञ्चन्निव लक्ष्यते स चञ्चको मणिः। अबृहन्नापि प्रसृतप्रभावत्त्वाद् यो बृहन्निव दृश्यते स बृहत्कः। {**स्थूलादिभ्यः-**}।

अनत्यन्तगतौ क्तात् ५.४.४

* अनत्यन्तगतौ क्तात् तमादयः पूर्वविप्रतिषिद्धम् * **अनत्यन्तगतौ क्तात् तमादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन। अनत्यन्तगतौ क्तात् कन् भवतीत्यस्यावकाशः—अनत्यन्तगतेर्वचनं प्रकर्षस्याऽवचनं छिन्नकं भिन्नकम्। तमादीनामवकाशः-प्रकर्षस्य वचनमनत्यन्तगतेरवचनं पटुतरः पटुतमः। उभयवचने उभयं प्राप्नोति—भिन्नतरकं छिन्नतरकम्। तमादयो भवन्ति पूर्वविप्रतिषेधेन** * तदन्ताच्च स्वार्थे कन्वचनम् * **तदन्ताच्च स्वार्थे कन्वक्तव्यः। भिन्नतरकं छिन्नतरम्।** {अनत्यन्तगतौ क्तात्}।

'स्थूदिभ्यः प्रकारवचने कन्' ५.४.३ से 'कन्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अत्यन्तगति=अशेषावयवसम्बन्ध, तद्भिन्न अनत्यन्तगति वाच्य होने पर क्तान्त से कन् प्रत्यय हो'। छिन्नकम्=किञ्चिदवयवत्वेन च्छिन्नम्, भिन्नकम्=किञ्चिदवयवत्वेन भिन्नम्। इसी तरह 'अभिन्नकम्' में भी विग्रह करना चाहिये।

व्यवस्थापकभाष्य—**अनत्यन्तगताविति**। अनत्यन्तगति अर्थ में शक्त क्तान्त प्रातिपदिक से जहाँ स्वार्थ में कन् और तमप् आदि दोनों प्राप्त हैं, वहाँ पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि से कन् का बाध हो जायेगा। जैसे 'च्छिन्नकम्,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भिन्नकम्' में प्रकर्षार्थ भिन्न अनत्यन्तगत्यर्थक से कन् ५.४.४ चरितार्थ है। एवम् अनत्यन्तगत्यर्थक से भिन्न प्रकर्षार्थक से 'पटुतरः' में 'प्रशंसायां रूपप्' ५.३.६६ तथा 'पटुतमः' में 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ चरितार्थ है। 'भिन्नतरकम्, छिन्नतरकम्' में जहाँ जहाँ एकसाथ अनत्यन्तगतिप्रकर्ष विवक्षित है, वहाँ तमप् आदि तथा कन् दोनों की सहप्रवृत्ति हो रही है। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि से कन् का बाध हो जाता है। तमप् आदि के हो जाने पर पुनःप्रसङ्ग-विज्ञान के द्वारा कन् भी होता है। इसी को वार्तिकमुखेन स्पष्ट करते हैं—**तदन्ताच्चेति**। पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा तमप् आदि से कन् का बाध हो रहा है, वहाँ पुनःप्रसङ्गविज्ञान के द्वारा तरबन्त और तमबन्त से स्वार्थ में कन् भी होगा-'भिन्नतरकम्, छिन्नतरकम्'। {अनत्यन्तगतौ-}।

न सामिवचने ५.४.५

* सामिवचने प्रतिषेधानर्थक्यं प्रकृत्यभिहितत्वात् * **सामिवचने प्रतिषेधोऽनर्थकः। किं कारणम्? 'प्रकृत्यभिहितत्वात्'। प्रकृत्याऽभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वा कन्न भविष्यति।** {न सामिवचने}।

'उच्यते येन तद्वचनं, सामिवचनं सामिवचनम्'। 'अर्द्ध'अर्थ में 'सामि' यह अव्यय है। यहाँ 'अनत्यन्तगतौ क्तात्' ५.४.४ से प्राप्त कन् का 'न'पद के द्वारा निषेध है।

एकदेशी आचार्य—**सामिवचने प्रतीति**। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है। सामिवचन में कन् प्राप्त नहीं है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से पुनः उसी अर्थ में कन् नहीं हो सकेगा।

वस्तुतः यहाँ कन् प्रत्यय स्वार्थिक कहा जा रहा है जिसका प्रतिषेध कहा जा रहा है; अतः प्रकृति के तदर्थ में शक्त होने पर भी स्वार्थ में कन् की प्राप्ति हो जायेगी। यहाँ श्रीदीक्षितजी के अनुसार यह निषेधसूत्र व्यर्थ पड का ज्ञापन करता है—'अत्यन्तस्वार्थिक भी कन् प्रत्यय होता है'। {न सामि-}।

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषा-ध्युत्तरपदात् खः ५.४.७

* अध्युत्तरपदात् प्रत्ययविधानानुपपत्तिर्विग्रहाभावात् * **अध्युत्तरपदात् प्रत्ययविधेरनुपपत्तिः। किं कारणम्? 'विग्रहाभावात्'। विग्रहपूर्विका तद्धितोत्पत्तिः। न चाऽध्युत्तरपदेन विग्रहो दृश्यते** * तस्मात् तत्रेदमिति सधीनर् * **तस्मात् तत्रेदमित्यर्थे सधीनर्प्रत्ययो भवतीति वक्तव्यम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजनीदं राजाधीनम्। यदि सधीनक्रियते सकारस्येत्संज्ञा न प्राप्नोति। इह च श्र्यधीनो भ्रुवधीन इत्यङ्गस्येतीयङुवङौ स्यातां, सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तम्—'अध्युत्तरपदात् प्रत्ययविधानानुपपत्ति-र्विग्रहाभावा'**दिति, नैष दोषः। अस्ति कारणं येनाऽत्र विग्रहो न भवति। किं कारणम्? नित्यप्रत्ययोऽयम्। के पुनर्नित्यप्रत्ययाः? 'तमादयः प्राक्कनः। ञ्यादयः प्राग्वुनः। आमादयः प्राङ्मयटः। बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्चे'ति।**

सूत्रार्थ—'अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्मन्, अलम्पुरुष और अधि उत्तरपद प्रातिपदिक से स्वार्थ में ख प्रत्यय हो'। जैसे 'अषडक्षीणो मन्त्रः=द्वाभ्यां कृतः। आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम्, यहाँ निपातन से पूर्वपद को मुमागम है। अलं कर्मणे इति अलङ्कर्मीणः। अलं पुरुषायेति अलम्पुरुषीणः। अध्युत्तर-पद से-ईश्वराधीनः, रामाधीनः। उत्तरसूत्र 'विभाषाऽञ्चेरदिक् स्त्रियाम्' ५.४.८ में 'विभाषा'ग्रहणसामर्थ्य से यह 'ख'प्रत्यय नित्य है।

एकदेशी आचार्य—**अध्युत्तरपदादिति**। अन्यत्र विग्रहपूर्विका तद्धितोत्पत्ति देखी जाती है। जैसे—कुत्सितो यावो यावकः। जहाँ विग्रह इष्ट नहीं है वहाँ आचार्य नित्यग्रहण करते हैं। जैसे 'त्रेर्मम्नित्यम्' ४.४.२०। महाविभाषाऽधिकार का यहाँ कोई निवर्त्तक नहीं है; अतः यहाँ विग्रह प्राप्त नहीं है; अतः यहाँ अध्युत्तरपद से प्रत्यय प्राप्त नहीं है। इस लिए अध्युत्तरपद से ख प्रत्यय के स्थान पर स्वार्थिक सधीनर् प्रत्यय कहना चाहिये। इसे स्पष्ट करते हैं—**तस्मादिति**। सधीनर् प्रत्यय पढने पर 'राजनि इदमायत्तमिति राजाधीनम्' होगा। इस तरह महाविभाषाधिकार होने से प्रत्ययपक्ष में 'राजाधीनम्' तथा विग्रहावस्था में 'राजनीदम्' भी होगा। भाष्यकार न्यासान्तरपक्ष को दूषित करते हैं—**यदि सधीनरिति**। सधीनर् न्यासपक्ष में प्रत्यय का आद्यवयव सकार की इत्संज्ञा प्राप्त नहीं है, यह प्रथमदोष होगा। 'श्री+अधीनः=श्र्यधीनः, भ्रू+अधीनः=भ्रुवधीनः' में अजादिप्रत्यय पर रहते 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' ६.३.७७ से क्रमशः क्रमशः इयङ् और उवङ् की प्राप्ति होगी। परन्तु अध्युत्तरपद से खप्रत्ययपक्ष में उक्त दोष नहीं आता है। एवं तीसरा दोष न्यासभेद भी होगा। ये सभी दोष न हों, इसके लिए सूत्र को यथान्यास ही रहने दीजिये। आपने यथान्यासपक्ष में 'अध्युत्तर-पदात् प्रत्ययविधानानुपपत्तिर्विग्रहाभावात्' दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। वह इस तरह कि प्रकृत ख प्रत्यय नित्य है; अतः यहाँ विग्रह नहीं होगा।

प्रश्नभाष्य—**के पुनरिति**। कौन-कौन से नित्यप्रत्यय हैं?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरभाष्य—**तमादय इति**। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' ५.३.५५ से आरम्भ कर 'अवक्षेपणे कन्' ५.३.९५ से पूर्व तक नित्यप्रत्यय हैं। 'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' ५.३.११२ से आरम्भ कर वुन् ५.४.१ से पूर्वतक ञ्यादिप्रत्यय नित्य हैं। 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' ५.४.११ से आरम्भ कर 'तत्प्रकृतवचने मयट्' ५.४.२१ से पूर्व तक नित्यप्रत्यय हैं। एवं बृहतीजात्यन्त समासान्त तथा बहुवचननिर्देश होने से प्रकृतसूत्र से विहित 'ख' ये सभी नित्यप्रत्यय हैं।

एवं तर्हि नायं प्रत्ययविधिरुपालभ्यते। किं तर्हि? प्रकृतिरुपालभ्यतेऽध्युत्तरपदा प्रकृतिर्नास्ति। किं कारणम्? 'विग्रहाभावात्'। विग्रहपूर्विका समासप्रवृत्तिर्न चाऽधिना विग्रहो दृश्यते।

आक्षेपक आचार्य—**एवं तर्हीति**। अच्छा तो हम प्रत्यय के विषय में उलहना नहीं दे रहे हैं; अपि तु प्रकृति पर आक्षेप कर रहे हैं। अध्युत्तरपद से प्रत्ययोत्पत्ति कही जा रही है। उत्तरपद और पूर्वपद क्रमशः समास का चरमावयव और पूर्वावयव में रूढ हैं। विग्रहपूर्वक ही समास होता है, जब कि अधि शब्द के साथ कहीं पर भी विग्रह नहीं देखा जाता है। इस तरह ख प्रत्यय की प्रकृति अध्युत्तरपद सम्भव नहीं है। यद्यपि 'सप्तमी शौण्डैः' २.१.४० के शौण्डादिगण में अधि शब्द का पाठ है, तथा उसके साथ विग्रहपूर्वक अध्युत्तरपदसमास भी है, तथापि उसकी उपेक्षा करके आक्षेप किया गया है।

एवं तर्हि बहुव्रीहिर्भविष्यति। किं कृतं भवति? भवति वै कश्चिदस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः। तद्यथा—शोभनं मुखमस्याः सुमुखीति। नैवं शक्यम्—इह हि 'महदधीन'मित्यात्त्वं कप् च प्रसज्येयाताम्। एवं तर्ह्यव्ययीभावो भविष्यति। एवमप्यधेः पूर्वनिपातः प्राप्नोति। राजदन्तादिषु पाठः करिष्यते। अथ वा सप्तमीसमासोऽयम्। अधिः शौण्डादिषु पठ्यते। {अषडाशितङ्ग्वलम्}।

एकदेशी आचार्य—**एवं तर्हि बहुव्रीहिरिति**। वृत्तिविषय में ससाधनक्रियावाचि अधि पद है। उसके साथ बहुव्रीहिसमास होगा—'राजाधिकृतो यस्मिंस्तद् राजाधीनम्'। यहाँ राजपद को विशेषणत्वेन विवक्षा करेंगे, इससे उसका पूर्वनिपात हो जायेगा। कोई-कोई अस्वपदविग्रह भी होता है। जैसे—'शोभनं मुखमस्याः सा सुमुखी' यहाँ शोभनपद के साथ विग्रह तथा सुपद के साथ समास है। वैसे प्रकृत में अधिकृत पद के साथ विग्रह तथा अधि पद के साथ समास होगा।

खण्डनभाष्य—**नैवं शक्यमिति**। यदि अधि पद के साथ अस्वपदविग्रह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर बहुव्रीहि करेंगे तो 'महदधीनम्' में 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' ६.३.४६ से महत् पद को आत्त्व तथा 'शेषाद्विभाषा' ५.४.१५४ से समासान्त कप् प्रत्यय की आपत्ति होगी। इस तरह बहुव्रीहि करने में दोष है।

मध्यम एकदेशी—**एवं तर्हीति**। यदि बहुव्रीहि करने में दोष है तो अव्ययीभाव करेंगे।

आक्षेपक—**एवमप्यधेरिति**। यदि अधि पद के साथ अव्ययीभाव करेंगे। जैसे 'हरौ इत्यधिहरि' में, 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-'२.१.६ से समास होने पर अधि को पूर्वनिपात प्राप्त होगा। जब कि तद्धितोत्पत्ति में अध्युत्तरपदप्रकृति चाहिये।

मध्यम एकदेशी—**राजदन्तादिष्विति**। 'राजदन्तादिषु परम्' २.२.३१ गणसूत्र में अधि शब्द का पाठ कर देंगे। इससे पूर्वनिपात की आपत्ति निरस्त हो जायेगी, तथा तद्धितोत्पत्ति में अध्युत्तपदप्रकृति निमित्त हो जायेगी। परन्तु इस पक्ष में 'हरौ' ऐसा विग्रह करने पर 'हर्यधि' की आपत्ति होगी, जिसका वारण करने के लिए अतिरिक्तपरिगणनजन्य गौरव होगा; अतः इस पक्ष में भी दोष होने से सिद्धान्ती आचार्य समाधान करते हैं—**अथ वेति**। 'सप्तमी शौण्डैः' २.१.४० सूत्र में शौण्डादिगण में अधि शब्द पठित है। अधि शब्द के साथ सप्तम्यन्त का समास होकर अध्युत्तरपदप्रकृति उपलब्ध हो जायेगी—'राजनीदं राजाधीनम्'। {**अषडक्ष-**}।

विभाषाऽञ्चेरदिक् स्त्रियाम् ५.४.८

दिग्ग्रहणं किमर्थम्? अस्त्रियामितीयत्युच्यमाने 'प्राचीना ब्राह्मणी' 'प्राचीना शिखे'त्यत्रापि प्रसज्येत, दिग्ग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति।

यहाँ पूर्वसूत्र '–अध्युत्तरपदात् खः' ५.४.७ से विधेयवचन 'खः' की अनुवृत्ति है। दिक्चासौ स्त्री दिक्स्त्री, न दिक्स्त्री अदिक्स्त्री, तस्याम्' ऐसा कर्मधारयगर्भ नञ्तत्पुरुष है।

सूत्रार्थ—'अदिक्स्त्री अर्थ में शक्त अञ्चत्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प से ख हो'। जैसे—प्राक्–प्राचीनम्। प्रत्यक्-प्रतीचीनम्। अवाक्-अवाचीनम्। यहाँ विभाषापद का ग्रहण 'द्वयोर्विभाषयोर्मध्ये नित्या विधयः' न्याय से पूर्वविधि का नित्यत्व ज्ञापन करता है।

प्रश्नभाष्य—**दिग्ग्रहणमिति**। अञ्चु धा.पा.१८८ धात्वन्त स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिक् अर्थ में ही होता है, अर्थान्तर में नहीं। इस तरह 'विभाषाऽञ्चेरस्त्रियाम्' इतना ही मात्र सूत्र रखते, दिक् पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

दोषवादी आचार्य—'अस्त्रियाम्' मात्र इतना ही पद देने से 'प्राचीना ब्राह्मणी, प्राचीना शिखा' में 'प्रकर्षेण अञ्चतीति प्राचीना' ऐसा अथ वा दिग्देशकाल-निमित्तक अञ्चत्यन्तप्रातिपदिक ब्राह्मणी आदि स्त्रीलिङ्ग में ही हैं; अतः ख प्रत्यय का प्रतिषेध नही हो सकेगा; जब कि दिग्ग्रहण करते हैं तो यह दोष नहीं रहता है।

अथ स्त्रीग्रहणं किमर्थं, न यावता दिक्शब्दः स्त्रीविषय एव? भवति वै कश्चिद् दिक्शब्दोऽस्त्रीविषयोऽपि। तद्यथा—प्राक्प्राचीनम्। प्रत्यक्-प्रतीचीनम्। उदक्-उदीचीनम्।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। 'विभाषाऽञ्चेरदिशि' इतना ही सूत्र रखिये। दिक्शब्द स्त्रीविषय होता ही है, इस तरह उसकी अव्याप्ति की सम्भावना भी नहीं होगी, फिर आप स्त्रीग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**भवति वै इति**। कुछ दिक्पद स्त्रीविषय से भिन्नविषय अव्यय में भी होते हैं। यदि 'अदिक्स्त्रियाम्' के स्थान पर मात्र 'अदिशि' ऐसा पदपाठ करेंगे तो प्राक्, प्रत्यक्, उदक् इस अव्यय में अव्याप्ति होगी। दिग्वाची प्राची, प्रतीची, उदीची से 'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' ५.३.२७ से अस्ताति प्रत्यय, 'अञ्चेर्लुक्' ५.३.३० से अस्तातिप्रत्यय का लुक् तथा 'लुक्तद्धितलुकि' १.२.४९ से स्त्रीप्रत्यय का लुक् होकर अव्यय प्राक्, प्रत्यक् और उदक् पद अस्त्रीविषय हैं। यदि 'अदिशि' मात्र इतना ही सूत्र रखते तो अव्यय प्राक् आदि से भी निषेध प्राप्त होने लगता। अदिक्स्त्री से ख प्रत्यय करने पर 'प्राचीनम्' आदि में शब्दान्तर होने से लिङ्ग का अन्वय होता है। परन्तु प्राक् आदि अव्यय में लिङ्ग का अन्वय नहीं है। {विभाषऽञ्चे-}।

णचः स्त्रियामञ् ५.४.१४

स्त्रीग्रहणं किमर्थं, न स्वार्थिकोऽयं स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्ग-वचनान्यनुवर्त्तन्ते? एवं तर्हि सिद्धे सति यत्स्त्रीग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? गुडकल्पा द्राक्षा तैलकल्पा प्रसन्ना पयस्कल्पा यवागूरित्येतत् सिद्धं भवति।

यहाँ 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' ३.३.४३ से स्त्रीलिङ्गभाव में विहित णच् प्रत्यय गृहीत है। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा प.शे.२४ से तदन्त का ग्रहण होगा; अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'स्त्रीलिङ्ग में शक्त णजन्त से स्वार्थ में अञ् हो'। जैसे—'व्यावक्रोशी, व्यावहासी'।

प्रश्नभाष्य—**स्त्रीग्रहणमिति**। प्रकृत अञ् प्रत्यय स्वार्थिक है। स्वार्थिक प्रत्यय अपनी प्रकृति का लिङ्ग और वचन का अनुवर्त्तन करते हैं। इस तरह 'णचोऽञ्' मात्र इतना ही सूत्र रखने पर स्त्र्यर्थ में विहित णजन्त से स्वार्थ में विहित अञ् भी स्त्र्यर्थविषय ही होता, पुनः सूत्र में स्त्रीग्रहण क्यों है?

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। सिद्ध होने पर भी विधि का आरम्भ व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—कहीं-कहीं पर स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण भी करते हैं। इस ज्ञापन का फल है—'गुडकल्पा द्राक्षा, तैलकल्पा प्रसन्ना, पयःकल्पा यवागूः' में स्वार्थ में विहित कल्पप् प्रत्यय का अपनी प्रकृति गुड, तैल और पयः का लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण है। मैं इसे 'ईषद-समाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६८ तथा 'प्रशंसायां रूपप्' ५.३.६७ सूत्र पर स्पष्ट कर चुका हूँ। {**णचः स्त्रियामञ्**}।

एकस्य सकृच्च ५.४.१९

सकृदादेशेऽभ्यावृत्तिग्रहणं निवृत्त्यर्थम्। किं प्रयोजनम्? पुनः-पुनरावृत्तिरभ्यावृत्तिर्न चैकस्य पुनःपुनरावृत्तिर्भवति।

'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने' ५.४.१७ तथा 'सुच्' ५.४.१८ की अनुवृत्ति है। 'एकस्य' षष्ठ्यन्त उद्देश्यवचन तथा 'सकृत्' प्रथमान्त विधेयवचन है। 'सुच्' प्रत्यय की अपेक्षा 'एकस्य' यह पञ्चम्यर्थ में षष्ठी होगी।

सूत्रार्थ—'क्रिया की उत्पत्तिपरिगणन में शक्त संख्यावाचि पद से सुच् प्रत्यय तथा प्रकृति को सकृत् आदेश हो'। जैसे 'सकृद्धसति'। यहाँ एकशब्द क्रियाविशेषण है, अतः उक्त वाक्य से 'एकत्वविशिष्टा हासक्रिया' अर्थबोध होगा। 'स्वादु पचति' की तरह 'एकं पचति' यह प्रयोग प्राप्त होने पर सूत्र का उदाहरण है।

मध्यम एकदेशी—**सकृदादेश इति**। क्रिया की पौनःपुन्य अभ्यावृत्ति को क्रिया-भ्यावृत्ति कहते हैं, वह एक में सम्भव नहीं है; अतः एकपद के स्थान में सकृद् आदेश की कर्त्तव्यता में अभ्यावृत्तिग्रहण की अनुवृत्ति नहीं करनी चाहिये। वस्तुतः 'पुनःपुनरभ्यावृत्तिः क्रियायाः क्रियाभ्यावृत्तिस्तद्गणने वर्त्तमानात् संख्याशब्दात् कृत्वसुच्' ऐसा पूर्वसूत्र 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' ५.४.१७ का अर्थ मान कर अभ्यावृत्तिगणन में सकृत्शब्द के असमर्थ होने से अभ्यावृत्तिग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की निवृत्ति की गयी है। परन्तु यदि 'व्यवहाराभिमुखी वृत्तिरभ्यावृत्तिः'=जन्म, ऐसा अर्थ मानेंगे तो अभ्यावृत्तिग्रहण की अनुवृत्ति में भी कोई दोष नहीं है। इस पक्ष में 'अधिपरी अनर्थकौ' १.४.९३ की तरह आङ् पद धात्वर्थ का अनुवादकमात्र होगा।

अथ क्रियाग्रहणमनुवर्त्तते उताहो न? किं चाऽर्थोऽनुवृत्त्या? बाढमर्थः, इह मा भूद्-'एको भुङ्क्ते' इति। अथाऽनुवर्त्तमानेऽपि क्रियाग्रहणे इह कस्मान्न भवति—'एकः पाकः' इति? पूर्वयोश्चापि योगयोः कस्मान्न भवति-द्वौ पाकौ, त्रयः पाकाः, चत्वारः पाकाः, पञ्च पाकाः, दश पाका इति?

अन्य आचार्य—**अथेति**। यदि प्रधान-अभ्यावृत्ति की निवृत्ति मान रहे हैं तो प्रधान का अनुयायि क्रियापद की भी निवृत्ति हो जानी चाहिये, उसकी निवृत्ति होती है, अथ वा अनुवृत्ति होती है? यदि अनुवृत्ति होती है तो उसका प्रयोजन क्या है?

उत्तरपक्षी—**बाढमिति**। क्रियाग्रहण की अनुवृत्ति अवश्य करनी चाहिये। उसकी अनुवृत्ति करने से क्रियागणन में 'सकृद् भुङ्क्ते' यही प्रयोग होगा। 'एको भुङ्क्ते' यह प्रयोग न हो, इसके लिए क्रियाग्रहण की अनुवृत्ति आवश्यक है।

अन्य आचार्य—**अथाऽनुवर्त्तमानेऽपीति**। जैसे 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' ३.३.१० इत्यादि क्रियाप्रदेशसूत्रों में पाक आदि का भी ग्रहण होकर 'भोक्तुं पाकः' प्रयोग होता है, वैसे प्रकृतप्रदेशस्थल में 'एकः पाकः' के स्थान पर 'सकृत् पाकः' क्यों नहीं होता है? एवं 'द्वौ पाकौ, त्रयः पाकाः, चत्वारः पाकाः' में 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' ५.४.१८ से सुच् प्रत्यय क्यों नहीं होता है? इसी तरह 'दश पाकाः' में 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने' ५.४.१७ से कृत्वसुच् प्रत्यय होना चाहिये, यहाँ भी क्रियापरिगणन है?

नैतत् क्रियागणनम्? किं तर्हि? द्रव्यगणनमेतत्। कथम्? 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवती'ति। इहापि तर्हि द्रव्यगणनान्न प्राप्नोति—'सकृद् भुक्त्वा, सकृद् भोक्तु'मिति। पूर्वयोचापि योगयोः—द्विर्भुक्त्वा, द्विर्भोक्तुम्, पञ्चकृत्वो भुक्त्वा, पञ्चकृत्वो भोक्तुम्, दशकृत्वो भुक्त्वा, दशकृत्वो भोक्तुमिति द्रव्यगणनान्न प्राप्नोति। यदि खल्वपि पुनःपुनरावृत्तिरभ्यावृत्तिर्द्विरावृत्तेः सकृदिति स्यात् त्रिरावृत्तेर्द्विरिति।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। 'एकः पाकः' में क्रियागणन नहीं है, अपि तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्रव्यगणन है। द्रव्य और गुण की वार-वार उत्पत्ति सम्भव नहीं है, अपितु एक वार ही उनकी उत्पत्ति सम्भव है; अतः प्रकृत में तिङन्तपदवाच्या साध्यस्वभावा क्रिया ली जायेगी। 'एकः पाकः' इस कृदन्तस्थल में घञ्प्रत्यय के द्वारा सिद्धस्वभावा क्रिया ली जाती है। यद्यपि कृदन्तस्थल में धातुवाच्य क्रिया साध्यरूपा है, तथापि 'प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतस्तयोः प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यम्' न्याय से कृदर्थविशेष्यकबोध में धात्वर्थ प्रकार है। जब कि यहाँ तथा पूर्वसूत्र में भी क्रियापद से साध्यरूपा क्रिया ही गृहीत है, सिद्धरूपा क्रिया नहीं; अतः 'एकः पाकः' यही प्रयोग होता है, यहाँ 'सकृत् पाकः' की आपत्ति नहीं होगी। इस पक्ष में उत्तरपक्षी आचार्य ने 'कृत्प्रत्यय से वाच्या क्रिया द्रव्यवत् होती है' ऐसा वचन कहा है।

आक्षेपक आचार्य—**इहापि तर्हीति**। यदि 'कृदभिहितो भवो द्रव्यवद् भवति' ऐसा कह रहे हैं तो 'भुक्त्वा, भोक्तुम्' में भी क्त्वा और तुमुन् कृत् प्रत्यय है; तद्वाच्या क्रिया भी सिद्धरूपा होगी; फिर तो 'सकृद् भुक्त्वा, सकृद् भोक्तुम्' यह इष्टरूप सिद्ध नहीं हो सकेगा। एवं न केवल इसी सूत्र में उक्त हेतु से इष्ट रूप की असिद्धि हो रही है, अपि तु पूर्वसूत्र 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' ५.४. १८ में भी 'द्विर्भुक्त्वा, द्विर्भोक्तुम्' इस इष्ट रूप की भी असिद्धि होगी। एवम् 'पञ्चकृत्वो भक्त्वा, पञ्चकृत्वो भोक्तुं, दशकृत्वो भुक्त्वा, दशकृत्वो भोक्तुम्' में भी कृदभिहितभाव है, इसे भी द्रव्यवत् होना चाहिये। फिर तो यहाँ भी पञ्च और दश पद के उत्तर में 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' ५.४.१७ से कृत्वसुच् प्रत्यय भी नहीं हो सकेगा; जब कि 'पञ्चकृत्वो भुक्त्वा' इत्यादि रूप इष्ट हैं। अथ च पूर्वसूत्र से अनुवृत्त अभ्यावृत्तिपद से 'पुनःपुनरावृत्तिरभ्यावृत्तिः'= दुबारा परिगणन को अभ्यावृत्ति मानेंगे तो 'एकः पाकः' प्रयोग उपपन्न हो जायेगा। चूँकि यहाँ एक वार ही परिगणन है, दुबारा नहीं; अतः एक पद के अनन्तर सुच् की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। परन्तु इस दोष से अन्यत्र जो एक ही क्रिया की दो वार आवृत्ति की जा रही है, वहाँ प्रथमावृत्ति के बाद जो द्वितीयावृत्ति की जा रही है, उसी अर्थ में प्रत्यय होगा। वह एकावृत्ति ही है; अतः दो आवृत्ति में भी अतिरिक्त आवृत्ति एक ही हो रही है। इस तरह 'द्विः भुङ्क्ते' के स्थान पर 'सकृद् भुङ्क्ते' तथा 'त्रिः भुङ्क्ते' के स्थान पर 'द्विः भुङ्क्ते' की आपत्ति होगी। इस तरह 'पुनःपुनरावृत्तिरभ्यावृत्तिः' मानने में भी दोष है।

एवं तर्ह्यनुवर्त्ततेऽभ्यावृत्तिग्रहणं, न तु पुनःपुनरावृत्तिरभ्यावृत्तिः। किं तर्हि? अभिमुखी प्रवृत्तिरभ्यावृत्तिः। पूर्वा च परे प्रत्यभिमुखी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परे च पूर्वां प्रम्यभिमुख्यौ। यदप्युच्यते- 'ऽनुवर्त्तमानेऽपि क्रियाग्रहणे इह कस्मान्न भवति—एकः पाक' इति। पूर्वयोश्चापि योगयोः— द्वौ पाकौ, त्रयः पाकाः, चत्वारः पाकाः, पञ्च पाका दश पाका इति? परिहृतमेतत्—नैतत् क्रियागणनम्। किं तर्हि? द्रव्यगणनमेतत्। कथम्? कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवतीति।

उत्तरभाष्य—**एवन्तर्हीति**। 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' ५.४.१७ सूत्र से अभ्यावृत्तिग्रहण की अनुवृत्ति करेंगे। परन्तु यहाँ अभ्यावृत्तिपद से क्रिया की पुनःपुनः आवृत्ति को अभ्यावृत्ति नहीं कहेंगे, अपि तु 'अभिमुखी प्रवृत्तिः अभ्यावृत्तिः' ऐसा जन्मलक्षणा अभ्यावृत्ति लेंगे। इस तरह जहाँ क्रिया की तीन अभ्यावृत्ति हो रही है, वहाँ **पूर्वा**=प्रथमा क्रिया, **'परे प्रति'**=उत्तर की दो क्रियाओं के प्रति अभिमुखी है, एवम् उत्तर की दोनों क्रियायें प्रथमा क्रिया के प्रति अभिमुखी है। यदि प्रथमा क्रिया अनुत्पन्न है तो द्वितीया, तृतीया उत्पन्न नहीं हो सकेगी; अतः प्रथमा क्रिया उत्तर की क्रियाओं के प्रति अभिमुखी है। एवं यदि उत्तर की क्रियायें नहीं होगीं तो नित्यसापेक्ष प्रथमात्व नहीं होगा; अतः एक साधन वाली प्रवृत्ति की परस्पर अपेक्षा है। यही इनकी प्रवृत्ति है। 'सकृद् भुङ्क्ते' में स्वरूपलाभ के प्रति एक ही क्रिया का आभिमुख्य है। क्रियाग्रहण की अनुवृत्ति होने पर भी प्रकृतसूत्र तथा पूर्व के दोनों सूत्रों से घञन्त पाक पद के योग में सुच् और कृत्वसुच् आदि की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?, ऐसा पूर्वपक्ष किया था, उसका परिहार करते हैं—**यदपीति**। आप ने कहा था कि क्रियाग्रहण की अनुवृत्ति करने पर प्रकृतसूत्र में 'एकः पाकः' तथा पूर्व के दोनों सूत्रों में 'द्वौ पाकौ, त्रयः पाकाः, चत्वारः पाकाः' में 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' ५.४.१८ से सुच् क्यों नहीं होता है? एवं 'पञ्च पाकाः, दश पाकाः' में 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' ५.४.१७ से कृत्वसुच् की प्राप्ति होनी चाहिये?, तो इसका परिहार किया जा चुका है। 'एकः पाकः' आदि में क्रिया का गणन नहीं है, अपि तु द्रव्य का गणन है। इस विषय में 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवति' ऐसा कह आया हूँ।

ननु चोक्तम्—'इहापि तर्हि द्रव्यगणान्न प्राप्नोति सकृद् भुक्त्वा, सकृद् भोक्तु'मिति, पूर्वयोचापि योगयोः—द्विर्भुक्त्वा, द्विर्भोक्तुम्, त्रिर्भुक्त्वा, त्रिर्भोक्तुम्, पञ्चकृत्वो भुक्त्वा, पञ्चकृत्वो भोक्तुम्, दशकृत्वो भुक्त्वा, दशकृत्वो भोक्तुमिति द्रव्यगणनान्न प्राप्नोति। नैष दोषः। क्रियागणनाद् भविष्यति। कथम्? कृदभिहितो भावो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्रव्यवद् भवति। {एकस्य सकृच्च}।

एवं च 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवति' इस पर आपने आक्षेप किया था—'भुक्त्वा, भोक्तुम्' यहाँ भी कृत्प्रत्ययवाच्या क्रिया है; अतः द्रव्यपरिगणन होने से एक, द्वि, त्रि, चतुर् पद से सुच् तथा पञ्च आदि से कृत्वसुच् प्रत्यय होकर 'सकृद् भुक्त्वा, द्विःभुक्त्वा, पञ्चकृत्वो भुक्त्वा' इत्यादि प्रयोग नहीं होना चाहिये? आप का यह आक्षेप उचित नहीं है। वह इस तरह कि कृत् प्रत्यय से वाच्या क्रिया कहीं पर **द्रव्यवत्**=सिद्धरूपा भी होती है, जैसे घञ्वाच्या क्रिया 'पाकः' इत्यादि में द्रव्यवत् है। एवं च कृत्प्रत्यय से वाच्या क्रिया कहीं पर **क्रियावदपि**=साध्यक्रिया की तुल्यक्रिया भी होती है। जैसे—क्त्वान्त और तुमुन्नन्त-स्थल में; अतः जहाँ क्त्वान्त और तुमुन्नन्तस्थल में साध्यक्रिया की तुल्यक्रिया हो रही है, वहाँ एक आदि से सुच् प्रत्यय होकर 'सकृद् भुक्त्वा, द्विः भोक्तुम्' इत्यादि तथा पञ्च आदि से 'पञ्चकृत्वो भुक्त्वा, पञ्चकृत्वो भोक्तुम्' इत्यादि प्रयोग हो जायेंगे। {**एकस्य सकृच्च**}।

देवतान्तात् तादर्थ्ये यत् ५.४.२४

देवतान्तादित्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति-पितृदेवत्यमिति, नहि पितरो देवता। नैष दोषो दिवेरैश्वर्यकर्मणो देवस्तस्मात् स्वार्थे तल्। एवञ्च कृत्वा देवदेवत्यमपि सिद्धं भवति। {देवतान्तात् तादर्थ्ये यत्}।

सूत्र में तद् पद से देवतान्त का अर्थ कहा जा रहा है। 'तस्मायं तदर्थः, तदर्थ एव तादर्थ्यम्' 'चतुवर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्' वा.७.३.३१ के द्वारा तदर्थ पद से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय है।

सूत्रार्थ—'प्रकृत्यर्थार्थ वस्तु वाच्य होने पर देवतान्त प्रातिपदिक से यत् हो'। अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम्।

आक्षेपभाष्य—**देवतान्तादिति**। देवतान्त प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय कहा जा रहा है। देवताशब्द जातिविशेषवाची है। तद्भिन्नजातीय का वाचक पितृपद के साथ देवतापद का सामानाधिकरण्य नहीं होने से पितृ और देवतापद का समास नहीं हो सकेगा। इस तरह 'पितृदेवता' यह प्रकृति ही नहीं है; फिर इससे यत् प्रत्यय की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, जिससे 'पितृदेवत्यम्' इस इष्ट रूप की सिद्धि नहीं हो पा रही है।

समाधान भाष्य—**नैष दोष इति**। दिवु धा.पा.११०७ धातु ऐश्वर्यकर्मा है। उससे 'देवनं, द्योतनं वा देवः' ऐसा भाव में घञ्प्रत्यय करके घञ्प्रत्ययान्त देव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द है। उससे 'देवात्तल्' ५.४.२७ से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होकर देवताशब्द क्रियाशब्द है, जातिशब्द नहीं। उस क्रियावाची देवतापद के साथ पितृपद का एकाधिकरण हो जायेगा। इस तरह समास होकर देवतान्त पितृदेवतापद से यत् प्रत्यय होकर 'पितृदेवत्यम्' सिद्ध हो जायेगा।

क्रियाशब्द देवताशब्द का ग्रहण करने का अन्य फल भी देते हैं—**एवं चेति**। 'देवदेवत्यम्' में भी देवतान्त से यत् प्रत्यय उपपन्न हो जा रहा है। अन्यथा देवताशब्द के जातिशब्द होने पर देव और देवता के पर्याय होने से एक साथ प्रयोग असम्भव होता। {देवतान्तात्-}।

देवात्तल् ५.४.२७

* तलि स्त्रीलिङ्गवचनम् * **तलि स्त्रीलिङ्गं वक्तव्यम्। देवता। किं पुनः कारणं न सिध्यति? देवशब्दोऽयं पुल्लिङ्गः, स्वार्थिकश्चायं, स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्त्तन्ते** * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्? 'स्वार्थिका अतिवर्त्तन्तेऽपि लिङ्गवचनानी'ति।** {देवात्तल्}।

सूत्रार्थ—'देव पद से स्वार्थ में तल् प्रत्यय हो'। जैसे 'देव एव देवता'।

एकदेशी आचार्य—**तलीति**। तल् प्रत्यय करने पर तलन्त को स्त्रीलिङ्गवचन कहना चाहिये। अन्यथा देवपद से स्वार्थ में तल् है। स्वार्थ में विहित प्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अनुवर्त्तन करते हैं। देव पद पुल्लिङ्ग में है; अतः देवतापद की पुल्लिङ्गतापत्ति होगी।

सिद्धान्ती—**उक्तं वेति**। 'णचः स्त्रियामञ्' ५.४.१४ सूत्र में 'स्त्रियाम्' पद का ग्रहण कर आचार्य ने ज्ञापन किया है कि स्वार्थिक प्रत्यय कहीं पर प्रकृति के लिङ्ग और वचन का अतिक्रमण भी करते हैं। मैं इसे 'प्रशंसायां रूपप्' ५.३.६६ तथा 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ सूत्र की ज्योत्स्ना में स्पष्ट कर आया हूँ। {देवात्तल्}।

लोहितान्मणौ ५.४.३०

* लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा * **लोहिताल्लिङ्गबाधनं वेति वक्तव्यम्। लोहितिका लोहिनिका** * अक्षरसमूहे च्छन्दस उपसंख्यानम् * **अक्षरसमूहे च्छन्दस उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। 'ओ श्रावये'ति चतुरक्षरमस्तुश्रौषडिति चतुरक्षरं येयजामह इति पञ्चाक्षरं यजेति द्व्यक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कारः, एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिर्यज्ञमनुविहितः** * छन्दसि बहुभिर्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सव्यैरुपसंख्यानम् * छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः * अग्निरीशे वसव्यस्येति * **अग्निरीशे वसव्यस्येत्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। अग्निरीशे वसव्यस्य।**

'यवादिभ्यः कन्' ५.४.२९ से 'कन्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'मणि अर्थ में शक्त लोहित पद से स्वार्थ में कन् हो'। लोहित एव लोहितको मणिः।

प्रतिपदविधि के बलवान् होने से सुबुत्पत्ति से पूर्व में कन् की प्राप्ति हो रही है। कन् उत्पन्न होने के बाद स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय उत्पन्न होने पर मात्र लोहितिका की ही सिद्धि हो रही है। जब कि यहाँ लोहितिका और लोहिनिका यह दो रूप इष्ट है।

एतदर्थ सिद्धान्ती आचार्य वार्तिक का अवतरण करते हैं—**लोहितादिति**। लोहित पद से विकल्प से लिङ्गबाधन करना चाहिये। इससे पहले ङीप् प्रत्यय तथा 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' ४.१.३९ से 'त्' के स्थान पर नकार आदेश, कन्, ह्रस्व, टाप्, होकर लोहिनिका तथा लिङ्गबाधन नहीं होने पर प्रातिपदिकविधि के बलवान् होने से कन् होकर लोहितिका रूप है। **अक्षरसमूह इति**। अक्षरसमूह का वाचक छन्दस् पद से स्वार्थ में यत् कहना चाहिये। जैसे 'ओ श्रावय' से आरम्भ कर 'द्व्यक्षरो वषट्कारः'पर्यन्त अक्षरसमूह को 'छन्दस्यः' पद से कहा है-४+४+५+२+२=१७। **छन्दसि बहुभिरिति**। वेद में 'बहुभिर्वसव्यैः' ऐसा यत्प्रत्ययघटित 'वसव्यैः' प्रयोग देखा जाता है, उसको मयडर्थ में यत्प्रत्ययान्त कहना चाहिये—वसुभिरेव वसव्यैः। वसु पद को यत्प्रत्ययान्त अन्य भी उदाहरण देते हैं—**अग्निरीश इति**। 'अग्निरीशे वसव्यस्य' यहाँ भी 'वसव्यस्य' यह यत्प्रत्यययान्त है।

* उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्?** * स्वार्थविज्ञानात् सिद्धमिति * **अपस्यो वसानाः अपो वसानाः। स्व ओक्यः स्व ओकः। कव्योऽसि हव्यसूदन, कविरसि। रौद्रेणानीकेन कव्यतायै, कवितायै। आमुष्यायणस्याऽमुष्य पुत्त्रस्य क्षेम्यस्येशे, क्षेमस्येशे। क्षेम्यमध्यवस्यति, क्षेममध्यवस्यति। वायुर्वर्चस्यम् वर्च एव वर्चस्यम्। निष्केवल्यं निष्केवलम्। उक्थ्यम्, उक्थम्। जन्यन्ताभिः सजन्यं ताभिः। जनं ताभिः सजन्यं ताभिः। स्तोमैर्जनयामि नव्यं, नवम्। प्रणो नव्येभिः, नवैः। ब्रह्मपूर्व्यं, पाथः पूर्व्यं, तनुषु पूर्व्यं, पूर्वं, पूर्व्याहः, पूर्वाहः। पूर्व्या विशः, पूर्वा**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशः। पूर्व्यासः, पूर्वासः। स प्र पूर्व्यः, स प्र पूर्वः। अग्निं वः पूर्व्यं, पूर्वम्। तं जुषस्व यविष्ठ्य, यविष्ठ। होत्रवाहं यविष्ठ्यं, यविष्ठम्। त्वं ह यद्यविष्ठ्य, यविष्ठ। समावद् वसति समावद् गृह्णाति, समं वसति, समं गृह्णाति। समावद्देवयज्ञे हस्तौ, समम्। समावद्वीर्यावहानि समानि। समावद्वीर्याणि करोति, समानि। य ई वते लोके, य इवते ब्रह्मणे, य इवते।

उक्तं वेति। 'वसोः समूहे च' ४.४.१४० सूत्र पर 'अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम्' तथा 'अग्निरीशे वसव्यस्येति' यह दोनों वार्तिक कहा जा चुका है; अतः यहाँ नहीं कहने पर भी लक्ष्यसिद्धि हो जायेगी। वेदों में अन्य भी यत्प्रत्यय-घटित प्रयोग मिलते हैं, उनका साधुत्व बताते हैं—**स्वार्थविज्ञानादिति**। जैसे 'अपो वसानाः' के अर्थ में 'अपस्यो वसानाः'। यहाँ द्वितीयाबहुवचनान्त 'अपः' पद से स्वार्थिक यत्प्रत्यय तथा विभक्ति का अलुक् है। एवं 'स्व ओकः' के अर्थ में 'स्व ओक्यः' प्रयोग है। यहाँ ओकस् पद से स्वार्थिक प्रत्यय तथा टिलोप है। 'कविरसि' अर्थ में 'कव्योऽसि' प्रयोग है। यहाँ कवि पद से स्वार्थ में यत्प्रत्यय तथा इलोप है। इसका अन्य उदाहरण भी देते हैं—'कवितायै' अर्थ में स्वार्थिक यत्प्रत्ययान्त 'कव्यतायै' प्रयोग है। 'क्षेमस्य' के अर्थ में 'क्षेम्यस्य' ऐसा यत्प्रत्यय हैं। एवम् 'क्षेमम्' अर्थ में स्वार्थिक यत्प्रत्यय कर 'क्षेम्यम्' प्रयोग है। 'वर्चः' के अर्थ में स्वार्थिक यत्प्रत्ययान्त 'वर्चस्यम्' प्रयुक्त है। 'निष्केवलम्' के अर्थ में 'निष्केवल्यम्', 'उक्थम्' के अर्थ में 'उक्थ्यम्', 'जनम्' में अर्थ में 'जन्यम्', 'सजनम्' के अर्थ में 'सजन्यम्' 'नवम्' के अर्थ में 'नव्यम्' 'नवैः' के अर्थ में 'नव्यैः', 'पूर्वः' के अर्थ में 'पूर्व्यः', 'पूर्वाहः' के अर्थ में 'पूर्व्याहः', 'पूर्वाः' के अर्थ में 'पूर्व्याः', 'पूर्वासः' के अर्थ में 'पूर्व्यासः', 'स प्र पूर्वः' के अर्थ में 'स प्र पूर्व्यः', 'अग्निं वः पूर्वम्' के अर्थ में 'अग्निं वः पूर्व्यम्', 'तं जुषस्व यविष्ठ' के अर्थ में 'तं जुषस्व यविष्ठ्य', 'होत्रवाहं यविष्ठम्' के अर्थ में 'होत्रवाहं यविष्ठ्यम्', 'त्वं ह यद् यविष्ठ' के अर्थ में 'त्वं ह यद् यविष्ठ्यम्', 'समम्' के अर्थ में स्वार्थिक वतिप्रत्यय तथा प्रकृति को दीर्घ होकर 'समावत्' प्रयोग है। 'समानि' के अर्थ में 'समावत्' प्रयोग है। अव्यय होने से यहाँ विभक्ति का लुक् है। 'इवते' इस ह्रस्वघटितप्रयोग के स्थान पर 'ईवते' यह दीर्घघटितप्रयोग भी स्वार्थ में प्राप्त होता है। इस तरह वेद में स्वार्थ में कहीं यत्, कहीं वति तथा छान्दसत्वात् प्रकृति को दीर्घ, कहीं मतुप् पर रहते प्रकृति को दीर्घ देखा जाता है। उन सभी का छान्दसत्वात् समाधान करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* नवस्य नू त्नप्तनप्खाश्च * **नवस्य 'नू' इत्ययमादेशो वक्तव्यस्त्नप्त-नप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः। नत्नं नूतनं नवीनम्** * नश्च पुराणे प्रात् * **नश्च पुराणे प्राद् वक्तव्यस्तप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः। प्रणं प्रत्नं प्रतनं प्रीणम्।**

नवस्य नू इति। 'नवस्य' यह स्थानषष्ठी है। 'नू' यह प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन तथा 'त्नप्तनप्खाः' यह भी प्रथमाबहुवचनान्त विधेयवचन और 'च' अव्यय पद है। 'नव' के स्थान पर 'नू' आदेश तथा त्नप्, तनप् और ख प्रत्यय कहना चाहिये। 'नवमेव नूत्नम्, नूतनम्, नवीनम्'। ख को ईन आदेश, 'ओर्गुणः' ६.४.१४६ से प्रकृति को गुण, अवादेश है। **नश्च पुराण इति**। यहाँ 'च'करणसामर्थ्य से पूर्ववार्तिक से 'नवस्य' स्थानिवचन तथा 'त्नप्तनप्खाः' की अनुवृत्ति एवं समुच्चय भी है। पुराण अर्थ में शक्त नव पद के स्थान में प्र आदेश तथा प्र से उत्तर में न, त्नप्, तनप् और ख प्रत्यय कहना चाहिये। 'न' और 'ख' प्रत्ययपक्ष में णत्वघटित 'प्रणम्, प्रीणम्', एवं त्नप् और तनप्प्रत्ययपक्ष में 'प्रत्नम्, प्रतनम्' रूप है। यह विधि भी स्वार्थ में है। {**लोहिता-**}।

तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ५.४.३६

'त'दित्येत्यनेन किं प्रतिनिर्दिश्यते? वागेव। यदेव वाचा व्याह्रियते—तत्कर्मणा क्रियते * अण्प्रकरणे कुलालवरुणनिषादचण्डालाऽमित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम् * **अण्प्रकरणे कुलालवरुणनिषादचण्डालाऽमित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। कौलालः। वारुणः। नैषादः। चाण्डालः। आमित्रः।**

इस सूत्र का अर्थ आगे ज्योत्स्ना में स्पष्ट होगा।

प्रश्नभाष्य—**तद्युक्तादिति**। तद्युक्त कर्मन् पद से स्वार्थ में अण् कहा जा रहा है। यहाँ तत्पदबोध्य क्या है?

उत्तरपक्षी—**वागेवेति**। यहाँ तत्पद का वाच्य अर्थ वाक् है। 'सन्देशार्थ दूतवाक् द्वारा प्रयुक्त जो कर्म, तद्वाचक कर्मन् पद से स्वार्थ में अण् हो' यह सूत्रार्थ होगा। इस तरह वाचिक सुन कर क्रियमाण कर्म को ही 'कार्मण' कहा जाता है—कर्मैव कार्मणम्।

वार्तिककार—**अण्प्रकरण इति**। वेद में कुलाल, वरुण, निषाद, चण्डाल, अमित्र पद से भी स्वार्थ में अण् कहना चाहिये। कुलाल एव कौलालः। वरुण एव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वारुणः। निषाद एव नैषादः। चण्डाल एव चाण्डालः। अमित्र एव आमित्रः। यहाँ अमित्रपद छान्दसत्वात् पुल्लिङ्गनिर्देश है।

* भागरूपनामभ्यो धेयः * **भागरूपनामभ्यो धेयो वक्तव्यः। भागधेयम्। रूपधेयम्। नामधेयम्** * मित्राच्छन्दसि * **मित्राच्छन्दसि धयो वक्तव्यः। मित्रधेये यतस्व** * अण्णमित्राच्च * **अण्णमित्राच्चेति वक्तव्यम्। मैत्रम्। आमित्रः** * सान्नाय्यानुजावरानुषूकचातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयातवैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनानि * **सान्नाय्यानुजावरानुषूकचातुष्प्राश्य राक्षोघ्न-वैयातवैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनानि निपात्यन्ते। सान्नाय्यः। आनुजावरः। आनुषूकः। चातुष्प्राश्यः। राक्षोघ्नः। वैयातः। वैकृतः। वारिवस्कृतः। आग्रायणः। आग्रहायणः। सान्तपनः** * आग्नीध्रसाधारणादञ् * **आग्नीध्रसाधारणादञ् वक्तव्यः। आग्नीध्रम्। साधारणम्** * स्त्रियां ङीप् * **स्त्रियां ङीब्वक्तव्यः। आग्नीध्री साधारणी** * अयवसमरुद्भ्यां छन्दसि * **अयवसमरुद्भ्यां छन्दस्यञ् वक्तव्यः। आयवसे वर्द्धन्ते। मारुतं शर्धः।**

भागरूपनामभ्य इति। भाग, रूप और नाम प्रातिपदिक से स्वार्थ में धेय प्रत्यय कहना चाहिये—भागधेयम्, रूपधेयम्, नामधेयम्। **मित्राच्छन्दसीति**। वेद में मित्र प्रातिपदिक से स्वार्थिक धेय प्रत्यय कहना चाहिये। इसे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं—'मित्रधेये यतस्वे'ति। 'मित्रे यतस्व' ऐसा अर्थ है। **अण्णमित्राच्चेति**। यहाँ पूर्ववार्तिक से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति है। भाष्यकार ने 'मैत्रः' उदाहरण दिया है; अतः मित्र और अमित्र प्रातिपदिक से स्वार्थ में छन्दोविषय अण् कहना चाहिये। जैसे 'मित्र एव मैत्रः, अमित्र एवामैत्रः' छान्दसत्वात् पुंस्त्व है। **सान्नाय्यानुजावरेति**। सान्नाय्य, आनुजावर, आनुषूक, चातुष्प्राश्य, राक्षोघ्न, वैयात, वैकृत, वारिवस्कृत, आग्रायण, आग्रहायण और सान्तपन ये निपातित हैं। **आग्नीध्रसाधारणादिति**। आग्नीध्र और साधारण प्रातिपदिक से स्वार्थ में अञ् कहना चाहिये। यहाँ रूपभेद नहीं होने पर भी स्वरभेद प्रयोजन है। अञ् होने पर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' ६.१.१९७ से आद्युदात्त होता है। अञ् नहीं होने पर 'फिषोऽन्त उदात्तः' फि.सू.१ से अन्तोदात्त होगा। **स्त्रियां ङीबिति**। स्त्रीत्व द्योत्य होने पर आग्नीध्र और साधारण प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये—'आग्नीध्री, साधारणी'। अञ्प्रत्यय होने पर 'टिड्ढाणञ्–'४.१.१५ से अञ्लक्षण ङीप् सिद्ध है; अतः अञ् के अभावपक्ष में भी ङीप् हो सके, एतदर्थ वार्तिक का अवतरण है। **अयवसमरुद्भ्यामिति**। वेद में अयवस और मरुत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिपदिक से स्वार्थिक अञ् कहना चाहिये—'आयवसे वर्द्धन्ते। मारुतं शर्धः' में अञन्त प्रयोग आयवस और मारुत है।

* नवसूरमर्त्तयविष्टेभ्यो यत् * **नवसूरमर्त्तयविष्ठेभ्यो यद् वक्तव्यः। नव्यः। सूर्यः। मत्स्यः। यविष्ठ्यः** * क्षेमाद्यः * **क्षेमाद्यो वक्तव्यः। क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः।** {तद्युक्तात् कर्मणोऽण्}।

नवसूरमर्त्तेति। नव, सूर, मर्त्त और यविष्ठ प्रातिपदिक से स्वार्थ में यत् कहना चाहिये। जैसे—'नव+यत्=नव्यः'। इसी तरह 'सूर्यः, मर्त्यः, यविष्ठ्यः'। 'तित्स्वरितम्' ६.१.१८५ से स्वरितस्वर प्रयोजन है। **क्षेमादिति**। क्षम प्रातिपदिक से स्वार्थिक य प्रत्यय कहना चाहिये-'क्षेम एव क्षेम्यः'। ये सभी छान्दस हैं। {तद्युक्तात्-}।

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५.४.४२

* बह्वल्पार्थान्मङ्गलाऽमङ्गलवचनम् * **बह्वल्पार्थान् मङ्गलाऽमङ्गलवचनं कर्त्तव्यम्। बहुशो देहि। अनिष्टेषु श्राद्धादिषु मा भूदिष्टेषु प्राशित्रादिषु यथा स्यात्। अल्पशो देहि। इष्टेषु प्राशित्रादिषु मा भूदनिष्टेषु श्राद्धादिषु यथा स्यात्।** {बह्वल्पार्थात्}।

सूत्रार्थ—'बह्वर्थ और अल्पार्थ कारकाभिधायि प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प से शस् हो'। जैसे 'बहूनि ददातीति बहुशः। अल्पानि ददातीति अल्पशः'।

नियामक वार्तिक—**बह्वल्पार्थादिति**। बह्वर्थ और अल्पार्थग्रहण में क्रमशः मङ्गल और अमङ्गलवचन कहना चाहिये। अर्थात् मङ्गल गम्य होने पर ही बह्वर्थ से शस् होगा। इससे जो मङ्गलकार्य **प्राशित्र**=पुरोडाश आदि हैं, तद्विषय दान में ही 'बहुशो ददाति' प्रयोग होगा। जो श्राद्ध-आदि-विषयक अनिष्ट दान है, उस विषय में बह्वर्थ से शस् नहीं होगा। एवम् अमङ्गल गम्य होने पर अल्पार्थ से शस् कहना चाहिये। इससे श्राद्ध आदि अमङ्गलविषय में ही 'अल्पशो देहि' प्रयोग होगा, प्राशित्र=पुरोडाश आदि अमङ्गलकृत्यों में नहीं। {**बह्वल्पार्था-**}।

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ५.४.४४

* तसिप्रकरणे आदिभ्य उपसंख्यानम् * **तसिप्रकरणे आदिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। आदितः मध्यतः अन्ततः।**

सूत्रार्थ—'कर्मप्रवनीयसंज्ञक प्रति के योग में 'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्तात्' २.३.११ के द्वारा विहित जो पञ्चमी, तदन्त से तसि प्रत्यय हो'। चैत्रः मैत्रतः प्रति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिककार—**तसिप्रकरण इति**। आद्यादिभ्यगणपठित पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से भी तसि कहना चाहिये। आदेः-आदितः, मध्याद्र्-मध्यतः। अन्ताद्-अन्ततः। {प्रतियोगे-}।

कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः ५.४.५०

* च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् * **च्विविधावभूततद्भावग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्—संपद्यन्ते यवाः संपद्यन्ते शालय इति। अथ क्रियमाणेऽपि वै अभूततद्भावग्रहणे इह कस्मान्न भवति—सम्पद्यन्तेऽस्मिन् क्षेत्रे शालय इति?** * प्रकृतिविवक्षाग्रहणं च * **प्रकृतिविवक्षाग्रहणञ्च कर्त्तव्यम्।**

'सम्पद्यकर्त्तरि' यह एक पद है। सम्पदनं सम्पद्यः। सम्पूर्वक पद् धा.पा. ११६९ धातु से निपातन के द्वारा कृत्संज्ञक श तथा 'दिवादिभ्यः श्यन्' है। सम्पद्यस्य कर्त्ता सम्पद्यकर्त्ता, षष्ठीसमास है। 'किस रूप से किसकी सम्पत्ति'? इस आकाङ्क्षा में वार्तिककार कहते हैं—**च्विविधाविति**। च्विविधि में अभूततद्भाव का ग्रहण करना चाहिये। 'जो वस्तु पूर्व में जिस रूप में नहीं है, उसको उस रूप में प्राप्त होने पर कृ, भू और अस्ति का योग होने पर च्वि प्रत्यय कहना चाहिये'। इस तरह जहाँ प्रकृतिस्वरूप ही विकाररूपता को प्राप्त होता हुआ विकार से अभेदेन विवक्षित है, वहीं पर प्रत्यय होगा। जैसे—'अलवणं लवणं करोतीति लवणीकरोति। अब्रह्म ब्रह्म भवतीति ब्रह्मभवति। अयमुना यमुना स्यादिति यमुनीस्यात्'।

नियम का व्यावर्त्य फल देते हैं—**इह मा भूदिति**। 'सम्पद्यन्ते यवाः, सम्पद्यन्ते शालयः' में अभूततद्भाव नहीं होने से च्वि नहीं हुआ।

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। क्षेत्राधिकरण में शालि का पूर्वरूप नही था, अब हो रहा है, फिर यहाँ च्वि क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**प्रकृतिविवक्षेति**। विकाररूपता को प्राप्त प्रकृति ही जब विकार से अभिन्न गृहीत होगी, तभी च्वि होगा। जैसे—'अङ्कुरीभवन्ति यवाः'। जब कि 'सम्पद्यन्तेऽस्मिन् क्षेत्रे शालयः' में प्रकृति का विकार से अभेदेन ग्रहण नहीं है; अतः यहाँ च्वि नहीं होगा।

* समीपादिभ्य उपसंख्यानम् * **समीपादिभ्य उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। समीपीभवति। अभ्याशीभवति। अन्तिकीभवति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? न ह्यसमीपं समीपं भवति। किं तर्हि? असमीपस्थं**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समीपस्थं भवति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। तात्स्थ्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति। {कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः}।

समीपादिभ्य इति। प्रकृतिविकारभाव नहीं होने से समीपादि से च्वि प्राप्त नहीं है; अतः इसके लिए वार्तिक पढा है—'समीपीभवति'।

अन्य आचार्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि सूत्रारम्भपक्ष में 'समीपीभवति' इत्यादि सिद्ध नहीं हो पा रहा है?

एकदेशी आचार्य—**न ह्यसमीपमिति**। अभूततद्भाव में च्वि कहा जा रहा है। असमीप समीप नहीं होता है, अपि तु असमीपस्थ समीपस्थ होता है; अतः यहाँ प्रकृति का विकार से अभिन्नग्रहण नहीं होने से च्वि प्राप्त नहीं है।

इतर आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'समीपीभवति' इत्यादि की सिद्धि के लिए अतिरिक्तवचन पढना चाहिये?

खण्डनभाष्य—**नेति**। इसके लिए अतिरिक्तवचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

अतिरिक्तवचन के अभाव में भी 'समीपीभवति' की सिद्धि बताते हैं—**तास्थ्यादिति**। असमीपस्थ का समीपस्थत्वभाव होने से यहाँ भी अभूततद्भाव है; अतः सूत्र से ही 'समीपीभवति' इत्यादि प्रयोग सिद्ध हैं। {**कृभ्वस्ति-**}।

अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् ५.४.५७

किमर्थश्चकारः? स्वरार्थः। चितोऽन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्। एकाजयं, तत्र नार्थः स्वरार्थेन चकारेणाऽनुबन्धेन, प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धम्। अत उत्तरं पठति—*डाचि चित्करणं विशेषणार्थं लोहितादिडाज्भ्यः क्यषिति* **डाचि चित्करणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'विशेषणार्थम्'। क्व विशेषणार्थेनार्थः? 'लोहितादिडाज्भ्यः क्य'षिति। 'डा'इति ह्युच्यमाने 'इडा' अतोऽपि प्रसज्येत। 'अर्थवद्ग्रहणे नाऽनर्थकस्ये'तीत्येवमेतस्य न भविष्यति। इदं तर्हि नाभा पृथिव्या निहितो दविद्युतत्। तस्माच्चकारः कर्त्तव्यः। {अव्यक्तानुकरणात्}।**

जिस ध्वनि से अकार आदि वर्णविशेष का बोध नहीं हो रहा हो, उसे अव्यक्तध्वनि कहते हैं। 'द्वौ अचौ अस्य स द्व्यच्, द्व्यच् च तदवरं=न्यूनं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्व्ययजवरं=न्यूनसंख्याकम्। यहाँ 'द्व्यजवरम्' में सामानाधिकरण्येन' अन्वय करना चाहिये। इससे 'द्व्ययजवरम्' से 'एकाच्कम्' अर्थ आयेगा। द्व्यजवरम्=एकाच्कम्, अर्द्धम्=अर्द्धभागो यस्य तद्', एकाच्क है अर्द्धभाग जिसका अर्थात् 'दो अचों वाला अव्यक्त अनुकरण से डाच् प्रत्यय हो' यह फलितार्थ हुआ। जैसे 'पट-पट, हर-हर, चट-चट, गर-गर' इत्यादि। 'पटपटाकरोति, चटचटाकरोति, हरहराकरोति' इत्यादि। यह डाच् प्रत्यय भी 'कृभ्वस्ति' ५.४.५० का योग होने पर ही होगा। 'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्' वा.४६६७ से 'हरहरायते' आदि में द्वित्व है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थ इति**। डाच् के स्थान पर डा ही रखिये, प्रत्यय को चिद्विशिष्ट क्यों पढते हैं?

उत्तरभाष्य—**स्वरार्थ इति**। 'चितः' ६.१.१६० से अन्तोदात्त हो सके, इसके लिए चित्करण है।

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। डाच् एकाच् प्रत्यय है। उसको प्रत्ययस्वर से आद्युदात्त करें, अथ वा चित्करण से अन्तोदात्त करें, कोई भेद नहीं है; अतः प्रत्ययस्वर करने पर भी वहीं स्वर हो रहा है जो चित्करण से होता है। इस तरह चित्करण व्यर्थ है।

उत्तरभाष्य—**डाचि चित्करणमिति**। डाच् प्रत्यय में चित्करण व्यावर्त्तक है। 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' ३.१.१३ के द्वारा डाजन्तलाहितादि से क्यष् विहित है। वहाँ प्रकृतसूत्र से विहित डाजन्त ही लिये जायें, एतदर्थ चित्करण है। यदि प्रकृत में डाच् के स्थान में डा प्रत्यय पढते तो 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' ३.१.१३ के स्थान पर 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' ऐसा सूत्र पढना पडता, इससे इसकी अतिव्याप्ति इडा प्रातिपदिक से क्यष् की प्राप्ति में होती, यह न हो, इसके लिए चित्करण है।

खण्डनभाष्य—**अर्थवद्ग्रहण इति**। 'समुदायो हि अर्थवांस्तस्यैकदेशोऽनर्थकः' परिभाषा से इडा यह अर्थवान् है, तदेकदेश डा अनर्थक है। इस तरह अर्थवान् डा ५.४.५७ प्रत्यय के ग्रहण में इडाघटक अनर्थक डा का ग्रहण नहीं होने से चित्करण का अभावपक्ष में भी दोष नहीं है।

प्रयोजनवादी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'नाभा पृथिव्या निहितो दविद्युतत्' में 'नाभि+ङि' इस स्थिति में 'नाभौ' ऐसा रूप प्राप्त होने पर 'सुपां सुलुक्पूर्व-सवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' ७.१.३९ से ङि को डा आदेश है। यदि प्रत्ययान्त का विधान कर उससे क्यष् कहेंगे तो 'नाभा पृथिव्या निहितः' में भी 'नाभा' पद से क्यष् की अतिव्याप्ति होने लगेगी; अतः इसका वारण करने के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित्करण आवश्यक है। {अव्यक्ता-}।

मद्रात् परिवापणे ५.४.६७

*** भद्राच्च * भद्राच्चेति वक्तव्यम्। भद्राकरोति।** {मद्रात्परि}।

'अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच्' ५.४.५७ से विधेयवचन 'डाच्' की अनुवृत्ति है। सूत्र में मद्र पद मङ्गल का पर्याय है।

सूत्रार्थ—'परिवापण=मुण्डन अर्थ में शक्त मद्र पद से कृभ्वस्ति ५.४.५० योग होने पर डाच् प्रत्यय हो'। जैसे—'मद्राकरोति, मद्राभवति, मद्रास्यात्'।

वार्तिककार—**भद्रादिति**। भद्र प्रातिपदिक से भी कृभ्वस्ति के योग में डाच् कहना चाहिये—'भद्राकरोति, भद्राभवति, भद्रास्यात्'। {मद्रात्परि-}।

समासान्ताः ५.४.६८

अन्तग्रहणं किमर्थम्? अन्तो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं, प्रत्ययपरत्वेनाऽप्येतत् सिद्धम्। इदं तर्हि प्रयोजनं—* तद्ग्रहणेन ग्रहणम् * तद्ग्रहणेन ग्रहणं यथा स्यात्। कानि पुनस्तद्ग्रहणस्य प्रयोजनानि? * प्रयोजनमव्ययीभावद्विगुद्वन्द्वतत्पुरुषबहुव्रीहिसंज्ञाः * अव्ययीभावः प्रयोजनम्—प्रतिराजम्। उपराजम्। अव्ययीभावश्च समासो नपुंसकलिङ्गो भवतीति नपुंसकलिङ्गता यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम् * लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य * इदं तर्हि प्रयोजनं 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्या' इत्येष विधिर्यथा स्यात्। अव्ययीभावः।

यह अधिकारसूत्र है। पादसमाप्तिपर्यन्त इसका अधिकार चलेगा। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ तथा 'अनश्च' ५.४.१०८ सूत्रस्थ भाष्य के अनुसार यहाँ समासपद अलौकिकविग्रहवाक्यपरक ही गृहीत है। इस तरह अलौकिकविग्रहवाक्य में समाससंज्ञा के समकाल ही समासान्तप्रत्यय होगा; अतः 'बहुकुमारीकः' में ह्रस्व नहीं होता है। यहाँ अन्त पद चरमावयववाचि है; अतः 'शरदः समीपमुपशरदम्' में 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' ५.४.१०७ से टच् प्रत्यय होने पर टजन्त से अव्ययीभाव हो कर 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' २.४.८३ से विभक्ति को अमादेश होता है। यदि प्रकृत में समासान्त टच् को अव्ययीभाव का अवयव न माना जाये तो 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' वा.४.२.१०४ से टिलोपापत्ति होगी। अलौकिकविग्रहवाक्य में समासान्तप्रत्यय सुप् से पर में होते हैं; अतः 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' ७.३.४४ सूत्र पर 'बहुचर्मिका' उदाहरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सङ्गत हो जाता है।

सूत्र में अन्तग्रहण को समीपार्थक मान कर पूर्वपक्ष करते हैं—**अन्तग्रहण-मिति**। 'समासाः' इतना ही सूत्र रखिये। इसके अधिकार में विहित प्रत्यय की समाससंज्ञा हो जायेगी, पुनः अन्तग्रहण क्यों करते हैं?

एकदेशी आचार्य—**अन्तो यथेति**। उत्तरसूत्रों से विहित प्रत्यय समास का चरमावयव हो सके, इसके लिए अन्तग्रहण किया गया है। यदि अन्तग्रहण नहीं करते तो उत्तरसूत्रों में विहित प्रत्ययों की समाससंज्ञा होने पर भी समास का चरमावयवत्व नहीं होता; अतः समास का चरमावयवत्वविधानार्थ अन्तग्रहण है।

पूर्वपक्षी आचार्य एकदेशी का खण्डन करते हैं—**नैतदस्तीति**। उत्तरसूत्रों से विहित की प्रत्ययसंज्ञा है। प्रत्यय पर में होता हुआ समुदाय का अवयव होगा। इस तरह मात्र 'समासाः' सूत्र रखने से भी वाञ्छित अर्थ की उपस्थिति हो जा रही है।

समाधानभाष्य—**इदं तर्हीति**। समासग्रहण से समासान्तप्रत्यय का ग्रहण हो सके, इसके लिए अन्तग्रहण है।

जिज्ञासु का प्रश्नभाष्य—**कानि पुनरिति**। समासग्रहण से समासान्तग्रहण का क्या प्रयोजन है?

प्रयोजनवादी आचार्य—**प्रयोजनमिति**। अव्ययीभावसंज्ञा, द्विगुसंज्ञा, द्वन्द्वसंज्ञा, तत्पुरुषसंज्ञा और बहुव्रीहिसंज्ञा प्रयोजन है। 'अव्ययीभावश्च' २.४.१८ से अव्ययी-भाव को नपुंसकलिङ्ग विहित है। समासान्त की अव्ययीभावसंज्ञा होने से 'राजानं-राजानं प्रतीति प्रतिराजम्, राज्ञः समीपमुपराजम्' में 'अनश्च' ५.४.१०८ से टच् प्रत्यय होने पर टजन्त से अव्ययीभावत्व होगा, जिससे टजन्त का नपुंसकत्व होता है; अतः उससे परमें विहित विभक्ति को अम् आदेश होता है।

अन्य आचार्य-**नैतदस्तीति**। लिङ्ग लोकाश्रयी होता है; अतः लिङ्गविधान व्यर्थ है। लोक से ही लिङ्गनिर्णय होने पर 'उपराजम्, प्रतिराजम्' का क्लीबत्व सिद्ध हो जायेगा।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' २.४.८३ के द्वारा अव्ययीभाव से परमें पञ्चमी से इतर विभक्ति का लुङ्निषेध तथा विभक्ति के स्थान पर अमादेश विहित है। समासान्त की अव्ययीभावसंज्ञा होने से 'प्रतिराजम्' आदि में इसकी सिद्धि हो जाती है।

द्विगुः—**द्विगुसंज्ञा च प्रयोजनम्। पञ्चगवम्। दशगवम्। द्विगुश्च**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समासो नपुंसकलिङ्गो भवतीति नपुंकलिङ्गता यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं * लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य * **इदं तर्हि प्रयोजनं—द्विपुरी त्रिपुरी। द्विगोरकारान्तादितीकारो यथा स्यात्। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। पुरशब्दोऽयम् अकारान्तस्तेन समासो न भविष्यति। आतश्चाकारान्तः। एवं ह्याह—'क्षेमे सुभिक्षे कृतसञ्चयानि पुराणि राज्ञां विनयन्ति कोप'मिति। इदं तर्हि प्रयोजनं—द्विधुरी। त्रिधुरी। द्विगोरकारान्तादिति ङीब्यथा स्यात्। द्विगुः।**

अन्तग्रहण का द्विगुसंज्ञा प्रयोजन है। 'पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्, दशानां गवां समाहारो दशगवम्' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु तथा 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से समासान्त टच् होकर 'स नपुंसकम्' २.४.१७ से द्विगु को विहित क्लीब टजन्त हो सके।

पूर्वपक्षी आचार्य का खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। लिङ्ग के लोकाश्रयी होने से टजन्त से क्लीब सिद्ध हो जायेगा।

एकदेशी—**इदं तर्हीति**। 'द्वयोः पुरोः समाहारो द्विपुरी, तिसृणां पुरां समाहारस्त्रिपुरी' में 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त अ प्रत्यय होने पर अदन्त द्विगु 'द्विपुर, त्रिपुर' से 'द्विगोः' ४.१.२१ के द्वारा ङीप् होकर 'द्विपुरी, त्रिपुरी' रूप हो सके, यही प्रयोजन है।

पूर्वपक्षी आचार्य का खण्डनभाष्य-**एतदपीति**। अदन्त पुर शब्द भी है; इसके साथ समास होकर 'द्विपुरी, त्रिपुरी' रूप हो जायेगा। इस भाष्य से यह आता है कि 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ सूत्र में 'पुर्'ग्रहण नहीं करना चाहिये। अनभिधान होने से हलन्त पुर् शब्द के साथ समास नहीं होगा। पुर शब्द के अदन्त होने में प्रमाण उद्धृत करते हैं—'क्षेमे सुभिक्षे कृतसञ्चयानि पुराणि राज्ञां विनयन्ति कोपम्' में 'पुराणि' ऐसा अदन्तप्रयोग है।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'द्वयोः धुरोः समाहारो द्विधुरी, तिसृणां धुरां समाहारस्त्रिधुरी' में 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त अ प्रत्यय विहित है; तदन्त से द्विगु होने पर अदन्त द्विगु से ङीप् ४.१.२१ प्रत्यय होता है।

द्वन्द्व—**द्वन्द्वसंज्ञा च प्रयोजनं—वाक्त्वचं स्रक्त्वचम्। द्वन्द्वश्च समासो नपुंसकलिङ्गो भवतीति नपुंसकलिङ्गता यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनं,** * लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य * **इदं तर्हि प्रयोजनं,—कोशश्च निषच्च कोशनिषदं, कोशनिषदिनी। 'द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणिस्थादिनि'रितीनिर्यथा स्यात्। द्वन्द्व। तत्पुरुष—तत्पुरुषसंज्ञा च प्रयोजनं—परमधुरा उत्तमधुरा। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो'रिति परवल्लिङ्गता यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्—उत्तरपदार्थप्रधान-स्तत्पुरुषः। इदं तर्हि प्रयोजनम्—अर्द्धधुरा। एतदपि नास्ति प्रयोजनं, * लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य * **इदं तर्हि—निधुरः। अव्ययं तत्पुरुषे प्रकृतिस्वरं भवतीत्येष स्वरो यथा स्यात्। तत्पुरुषः। बहुव्रीहि—बहुव्रीहिसंज्ञा च प्रयोजनम्, उच्चधुरः नीचधुरः। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदं भवतीत्येष स्वरो यथा स्यात्। {समासान्ताः}।**

अन्तग्रहण का द्वन्द्व प्रयोजन है। 'वाक् च त्वक् चेत्यनयोः समाहारो वाक्त्वचम्, स्रक् च त्वक् चेत्यनयोः समाहारः स्रक्त्वचम्" यहाँ द्वन्द्व से समासान्त अ प्रत्यय ५.४.११२ है; अतः समासान्त में द्वन्द्वत्व होने से नपुंसकलिङ्ग सिद्ध हो जाता है।

पूर्वपक्षी आचार्य इस प्रयोजन का खण्डन करते हैं—**नैतदस्तीति**। लिङ्ग के लोकाश्रयी होने से अन्तग्रहण का द्वन्द्वसंज्ञा प्रयोजन नहीं हो सकता है।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'कोशश्च निषच्चेत्यनयोः समाहारः कोशनिषदम्' में समासान्त अ प्रत्यय होने पर अदन्त द्वन्द्व से 'द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणि-स्थादिनिः' ५.२.१२८ से इनि प्रत्यय हो सके, एतदर्थ अन्तग्रहण है। अन्तग्रहण का तत्पुरुषसंज्ञा प्रयोजन है। इसका प्रयोजन—'परमा चासौ धूः परमधूरा, उत्तमा चासौ धूः उत्तमधूरा' यहाँ 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' २.१.६१ से तत्पुरुष होने पर 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' २.४.२६ से परवल्लिङ्गता हो सके, इसके लिए अन्तग्रहण है।

पूर्वपक्षी आचार्य इसका भी खण्डन करते हैं—**नैतदस्तीति**। तत्पुरुष प्रायेण उत्तरपदार्थप्रधान होता है; अतः उत्तरपद का लिङ्ग तत्पुरुष को हो जायेगा।

एकदेशी आचार्य—**इदं तर्हीति**। 'धुरः अर्द्धम् अर्द्धधुरा' में 'अर्द्धं नपुंसकम्' २.२.२ से समास होने पर उत्तरपद का लिङ्ग हो सके, एतदर्थ अन्तग्रहण है।

पूर्वपक्षी आचार्य इसका भी खण्डन करते हैं—**एतदपि नास्तीति**। लिङ्ग लोकाश्रयी होता है, अतः तदर्थ अन्तग्रहण व्यर्थ है।

प्रयोजनवादी—**इदं तर्हीति**। 'निर्गतो धुर्भ्य इति निर्धुरः' में 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' ग.सू. से समास तथा 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त अ प्रत्यय करने पर जहाँ अव्ययपद निर् के साथ तत्पुरुष किया जा रहा है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ अव्यय को प्रकृतिस्वर हो सके, यह अन्तग्रहण का प्रयोजन है।

अन्तग्रहण का बहुव्रीहिसंज्ञा भी प्रयोजन है। 'उच्चैः धूर्यस्यासौ उच्चैर्धूरः, नीचैर्धूर्यस्यासौ नीचैर्धूरः' में बहुव्रीहि तथा समासान्त अ प्रत्यय ५.४.७४ होकर 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ से पूर्वपद को स्वर हो सके, एतदर्थ अन्तग्रहण करना चाहिये। {समासान्ताः}।

न पूजनात् ५.४.६९

इदं विप्रतिषिद्धम्। को विप्रतिषेद्धः? परिगणिताभ्यः प्रकृतिभ्यः समासान्तो विधीयते, न च तत्र का चित् पूजनान्ता प्रकृतिर्निर्दिश्यते। नैतद्विप्रतिषिद्धं, नैवं विज्ञायते-'याभ्यः प्रकृतिभ्यः समासान्तो विधीयते, न चेत्ताः पूजनान्ता भवन्ती'ति। कथं तर्हि? 'न चेत्ताः पूजनात् परा भवन्ती'ति * पूजायां स्वतिग्रहणम् * **पूजायां स्वतिग्रहणं कर्त्तव्यम्। सुराजा। अतिराजा। क्व मा भूत्? परमगवः। उत्तमगवः।** * प्राग्बहुव्रीहिग्रहणं च * **प्राग्बहुव्रीहिग्रहणं च कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्—स्वक्षः अत्यक्ष इति।**

सूत्रार्थ—'पूजनार्थ से परमें समासान्त प्रत्यय न हो'। शोभनो राजा सुराजा। 'अतिक्रान्तो राजानमतिराजा' में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' ग.सू. से समास है। पूजनार्थ होने से उभयत्र 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से टच् नहीं हुआ।

आक्षेपभाष्य—**इदमिति**। समासान्तप्रत्ययों की प्रकृति परिगणित है। कहीं पर भी समासान्तविधान के लिए पूजनान्तप्रकृति का निर्देश नहीं है। इस तरह जब पूजनान्त से प्राप्ति नहीं है, तब प्रतिषेध व्यर्थ है।

खण्डनभाष्य—**नैतदिति**। यह निषेधवचन व्यर्थ नहीं है। 'जिस प्रकृति से समासान्त विहित है, वे पूजनान्त न हों', ऐसा अर्थ नहीं लिया जायेगा, अपि तु जिससे समासान्त विहित है, वे पूजनार्थ से परमें न हों, ऐसा अर्थ लिया जायेगा। इस तरह पूजनार्थ से परमें जो प्रकृति, उससे परमें समासान्त प्राप्त होने पर निषेधवचन सार्थक हो गया।

पूजनार्थ क्या है?, इसे स्पष्ट करते हैं—**पूजायां स्वती इति**। 'सु' और 'अति' ये पूजनार्थ हैं। इससे परमें जो प्रकृति, उससे परमें समासान्तप्रतिषेध होगा-'सुराजा, अतिराजा'। उपर उदाहरण स्पष्ट किया जा चुका है। पूजनार्थ से परमें जो प्रकृति, उससे परमें समासान्तप्रतिषेध कहने से 'परमा गौर्यस्य स परमगवः, उत्तमा गौर्यस्य स उत्तमगवः' में 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ का प्रतिषेध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होता है।

नियामकभाष्य—**प्राग्बहुव्रीहीति**। 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' ५.४.७३ से पूर्व तक ही 'न पूजनात्' प्रतिषेध कहना चाहिये। इससे 'स्वक्षः, अत्यक्षः' में 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' ५.४.७६ से अ प्रत्यय हो जायेगा। {न **पूजनात्**}।

किमः क्षेपे ५.४.७०

क्षेप इति किमर्थम्? कस्य राजा किंराजः * क्षेप इति शक्यमकर्त्तुम् * क्षेप इति शक्यमकर्त्तुम्। कस्मान्न भवति—कस्य राजा किंराज इति? * 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवे'ति * {किमः क्षेपे}।

'क्षेपे' सप्तम्येकवचनान्त, 'किमः' पञ्चम्येकवचनान्त निमित्तवचन है। 'समासान्ताः' ५.४.६८ का अधिकार है। 'न पूजनात्' ५.४.६९ से निषेधवचन 'न' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'क्षेप=निन्दा अर्थ में शक्त किम् प्रातिपदिक से उत्तर में जिस तदन्त से समासान्त विहित है, वह न हो'। कुत्सितो राजा किंराजा=निन्दितो राजा। कुत्सितः सखा किंसखा=निन्दितः सखा। यहाँ उभयत्र 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से टच् नहीं हुआ। 'कुत्सितो गौः किंगौः' में 'गोरतद्धितलुकि' ५.४.९२ से टच् नहीं हुआ।

प्रश्नभाष्य—**क्षेप इतीति**। सूत्र में क्षेपग्रहण क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**कस्य राजेति**। जहाँ क्षेप से भिन्न अर्थ में किम्शब्द हो, उससे पर में तदन्त से समासान्तनिषेध न हो, एतदर्थ क्षेपग्रहण है। जैसे 'कस्य राजा किराजः'।

भाष्यकार क्षेपग्रहण का प्रत्याख्यान करते हैं—**क्षेप इति शक्यमिति**। मात्र 'किमः' इतना ही सूत्र रखना चाहिये। क्षेपग्रहण का परित्याग किया जा सकता है।

प्राश्निक आचार्य—**कस्मान्नेति**। यदि क्षेपग्रहण नहीं करेंगे तो सर्वत्र किम्शब्द से परमें तदन्त से समासान्तप्रतिषेध होगा; फिर 'कस्य राजः' ऐसा विग्रह कर 'किंराजः' में समासान्तप्रतिषेध क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**लक्षणप्रतिपदोक्तस्येति**। लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा से यहाँ समासान्तप्रतिषेध हो जायेगा। 'किमः कः' ७.२.१०३ के द्वारा कादेश होकर 'कस्य' ऐसा लाक्षणिक के साथ विग्रह है। जहाँ किम् पद के साथ विग्रह कर समास होगा, वहीं समासान्तप्रतिषेध होगा। {**किमः क्षेपे**}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुव्रीहौ संङ्ख्येये डजबहुगणात् ५.४.७३

* डच्प्रकरणे सङ्ख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं निस्त्रिंशाद्यर्थम् * डच्प्रकरणे सङ्ख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'निस्त्रिंशाद्यर्थम्'। निस्त्रिंशानि वर्षाणि निश्चत्वारिंशानि वर्षाणि * अन्यत्राधिकलोपात् * अन्यत्राधिकलोपादिति वक्तव्यम्। इह मा भूदेकाधिका विंशतिः एकविंशतिः। द्व्यधिका विंशतिः द्वाविंशतिः * अव्ययादेः * अव्ययादेरिति च वक्तव्यम्। इह मा भूद्—गोत्रिंशत्। गोचत्वारिंशदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। यद्यप्येतदुच्यते, अथ वै तर्हि—'अन्यत्राधिकलोपा'दित्येतन्न क्रियेत।

संख्यापरिच्छेद्य को संख्येय कहते हैं।

सूत्रार्थ—'संख्ययाऽव्ययसन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ से विहित जो बहुव्रीहि, उससे समासान्त डच् प्रत्यय हो, बहु और गण से पर में न हो'। नवानां समीपे ये सन्ति ते उपनवाः=नव अथ वा दश। 'बहुगणवतुडति संख्या' १.१.२३ से बहु और गण पद की संख्यासंज्ञा विहित होने से 'बहूनां समीपे ये सन्ति ते उपबहवः, गणानां समीपे ये सन्ति ते उपगणाः' में 'संख्ययाऽव्ययसन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ से समास प्राप्त है; अतः यहाँ भी डच् का प्रसङ्ग होने पर 'अबहुगणात्' प्रतिषेधवचन पढा है। यदि 'उपबहवः, उपगणाः' में डच् होता तो 'चितः' ६.१.१६३ से अन्तोदात्त होता।

सिद्धान्तवार्तिक—**डच्प्रकरणे इति**। संख्यान्ततत्पुरुष से भी डच् कहना चाहिये। इसका प्रयोजन निस्त्रिंश आदि की सिद्धि है। इसे उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करते हैं—**निस्त्रिंशानीति**। 'निर्गतानि त्रिंशत इति निस्त्रिंशानि वर्षाणि, निर्गतानि चत्वारिंशत इति निश्चत्वारिंशानि वर्षाणि' यहाँ उभयत्र 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' ग.सू. से समास है तथा संख्यान्ततत्पुरुष से समासान्त डच् होकर 'नस्तद्धिते' ६.४.१४४ से टिलोप है।

वार्तिक—**अन्यत्राधिकेति**। जहाँ अधिक पद का लोप हुआ हो, उस बहुव्रीहि से भिन्न संख्येयबहुव्रीहि में डच् कहना चाहिये। इससे 'एकाधिका विंशतिः एकविंशतिः' में जहाँ 'संख्ययाऽव्ययसन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ से समास होकर उत्तरपद का लोप है, वहाँ डच् की प्राप्ति नहीं होगी।

एकदेशी आचार्य—**अव्ययादेरिति**। अव्ययपूर्वपद रहते संख्येयबहुव्रीहि से डच् प्रत्यय कहना चाहिये। इससे 'गवां त्रिंशद् यस्य स गोत्रिंशद्, गवां चत्वारिंशद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्य स गोचत्वारिंशत्' में डच् का प्रतिषेध हो जायेगा।

अन्य आचार्य—**तत्तर्हीति**। तो क्यो 'गोत्रिंशद्, गोचत्वारिंशत्' में डच् का वारण करने के लिए 'अव्ययादेः' यह अतिरिक्तवचन पढना चाहिये, एवं वार्तिककार ने अतिरिक्तवचन 'अन्यत्राधिकलोपात्' पढा है, उसकी भी आवश्यकता है?

खण्डनभाष्य—**इत्येतन्न क्रियत इति**। 'एकविंशतिः' इत्यादि में 'एकश्च विंशतिश्च एकविंशतिः, द्वौ च विंशतिश्च द्वाविंशतिः' ऐसा द्वन्द्व करेंगे। लघुसंख्या का पूर्वनिपात होगा। एवम् 'गोत्रिंशद्, गोचत्वारिंशत्' में तत्पुरुष करेंगे। संख्येयबहुव्रीहि नहीं होने से यहाँ डच् की प्राप्ति नहीं होगी। {बहुव्रीहौ-}।

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५.४.७४

अनक्ष इति कथमिदं विज्ञायते—न चेदक्षधूरन्तः समास इति, आहो स्विन्न चेदक्षः समासार्थ इति? किं चातः? यदि विज्ञायते—'न चेदक्षधूरन्तः समास' इति, सिद्धमक्षस्य धूः अक्षधूरिति, इदं तु न सिध्यति—दृढधूरयमक्ष इति। अस्तु तर्हि—'न चेदक्षः समासार्थ' इति। सिद्धं दृढधूरक्ष इतिं, इदं तु न सिध्यति—अक्षस्य धूरक्षधूरिति। एवं तर्हि नैवं विज्ञायते 'न चेदक्षधूरन्तः समास' इति, नापि 'न चेदक्षः समासार्थ' इति, कथं तर्हि? न चेदक्षस्य धूरिति। एवं च कृत्वा, नाऽपि 'न चेदक्षधूरन्तः समास' इति विज्ञायते, नाऽपि 'न चेदक्षः समासार्थ' इत्यथ चोभयोर्न भवति।

'ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, पथिन्' इनका इतरेतरयोगद्वन्द्व होकर षष्ठीबहुवचनान्त निर्देश है। 'समासान्ताः' ५.४.६८ का अधिकार है। ऋक् आदि के प्रति समास विशेष्य है। 'अ+अनक्षे=आनक्षे' ऐसा पदंच्छेद है।

सूत्रार्थ—'ऋगाद्यन्तसमास से परमें अ प्रत्यय हो, अक्षसम्बन्धिनी जो धूः तदन्त को न हो'। जैसे 'अर्द्धचः। कृष्णधुरम्। स्वच्छापं सरः' इत्यादि।

प्रश्नभाष्य—**अनक्ष इतीति**। सूत्रकार ने 'अनक्षे' ऐसा कहा है। उसका 'न अक्षे=अनक्षे' ऐसा पदच्छेद है। यहाँ अक्षपद से स्वरूप का ग्रहण है, अथ वा अर्थ का ग्रहण है? यहाँ स्वरूप का ग्रहण करें, अथ वा अर्थ का ग्रहण करें, दोनों ही पक्षों में दोष है। स्वरूप का ग्रहण होने पर 'अक्षपूर्वपद रहते धूरन्त से समासान्त प्रत्यय न हो' यह अर्थ होगा। इस पक्ष में 'अक्षस्य धूः अक्षधूः' इस इष्ट रूप की सिद्धि होते हुए भी 'दृढधूः' की असिद्धि होगी। 'अक्षधूरन्तः' का 'अक्षशब्दस्य समीपे यो धूश्शब्दस्तदन्तः समासः' ऐसा अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। परन्तु यदि अक्षपद से अर्थ का ग्रहण करेंगे तो 'दृढधूः' की सिद्धि हो जा रही है। फिर भी 'अक्षधूः' में प्रतिषेध के प्रवृत्त नहीं होने से 'न चेदक्षः समासार्थः' पक्ष भी अव्याप्तिदोषग्रस्त है।

उत्तरभाष्य—**एवं तर्हीति**। स्वरूपग्रहणपक्ष में 'न चेदक्षधूरन्तः समासः' तथा अर्थग्रहणपक्ष में 'न चेदक्षः समासार्थः' इन दोनों पक्षों में दोष आ रहा है, तो इन दोनों का परित्याग कीजिये। एवं तीसरा पक्ष 'न चेदक्षस्य धूः' मानिये। सूत्रकार ने 'अनक्षे' ऐसा अधिकरणसप्तम्यन्त का प्रयोग किया है। परन्तु अधि-करणत्व की अविवक्षा कर अधिकरणत्वमूलक अवयवावयविभावसम्बन्धविवक्षा में भाष्यकार 'अक्षस्य धूः' ऐसा षष्ठ्यन्तप्रयोग कर रहे हैं। चक्रसम्बद्ध काष्ठविशेष शकट का अवयव अक्ष होता है। {**ऋक्पूरब्धूः-**}।

अक्ष्णोऽदर्शनात् ५.४.७६

'अदर्शना'दित्युच्यते, तत्रेदं न सिध्यति—कम्बराक्षम्। अदर्शना-दिति शक्यमकर्त्तुम्। कथं ब्राह्मणाक्षि क्षत्रियाक्षि? * अप्राण्यङ्गात् * **अप्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम्।**

'अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः' ५.४.७५ से विधेयवचन 'अच्' की अनुवृत्ति है। 'दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं चक्षूः' दृशिर् प्रेक्षणे धा.पा.६८८ से करण में ल्युट् है। न दर्शनम् अदर्शनम्।

सूत्रार्थ—'अचक्षूःपयार्य अक्षिन् पद से समासान्त अच् प्रत्यय हो'—'गवा-मक्षीव गवाक्षः। 'अदर्शनात्' इस वचन से अक्षिसदृशार्थवाचक अक्षि पद गृहीत है।

आक्षेपक—**अर्शनादिति**। 'अर्शनात्' ऐसा कहा जा रहा है। इससे 'अक्षि इव अक्षि' ऐसा अर्थ गृहीत होगा। इससे 'कम्बराक्षम्' की असिद्धि हो रही है। अश्व का मुख ढकने के लिए बहुत छिद्रों वाला आवरण कम्बर कहलाता है। 'अश्वाः पश्यन्ति' यही प्रयोग होता है। यहाँ दर्शन वाच्य है, 'अक्षि इव अक्षि' नहीं।

उत्तरभाष्य—**अर्शनादिति**। मात्र 'अक्ष्णः' इतना ही सूत्र रखना चाहिये। 'अर्शनात्' कहने की आवश्यकता नहीं है। इससे 'गवाक्षः, कम्बराक्षः' इत्यादि की सिद्धि हो जायेगी।

आक्षेपक—**कथमिति**। यदि मात्र 'अक्ष्णः' सूत्र रख रहे हैं, अथ वा यथा-न्यासपक्ष में 'ब्राह्मणस्याऽक्षीव अक्षि अस्य तत् क्षत्रियाक्षि' में समासान्त अच् क्यों नहीं होता है?

उत्तरभाष्य—**अप्राण्यङ्गादिति**। अप्राण्यङ्ग अक्षिन् पद से समासान्त अच्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना चाहिये। 'ब्राह्मणाक्षि, क्षत्रियाक्षि' ये प्राण्यङ्ग हैं, अतः यहाँ प्राप्ति नहीं होगी। एवम् 'गवाक्षः, कम्बराक्षम्' की सिद्धि हो जायेगी। {अक्ष्णोऽदर्शनात्}।

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ५.३.७७.

* आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः * अद्रष्टा चतुर्णामचतुरः। विद्रष्टा चतुर्णां विचतुरः। सुद्रष्टा चतुर्णां सुचतुरः। ततः परे एकादश द्वन्द्वाः—स्त्रीपुंसः। धेन्वनडुह। ऋक्साम। वाङ्मनस। अक्षिभ्रुव। दारगव। ऊर्वष्ठीव। पदष्ठीव। नक्तन्दिव। रात्रिन्दिव। अहर्दिव। ततोऽव्ययीभावः—सह रजसा सरजसम्। ततस्तत्पुरुषः। निश्चित्तं श्रेयो निःश्रेयसम्। ततः षष्ठीसमासः—पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम्। ततो द्विगु—द्वे आयुषी द्व्यायुषं, त्रीण्यायूंषि त्र्यायुषम्। ततो द्वन्द्वः—ऋक्च यजुश्च ऋग्यजुषम् * जातादय उक्षान्ताः समानाधिकरणाः * जात उक्षा जातोक्षः। महानुक्षा महोक्षः। वृद्ध उक्षा वृद्धोक्षः। ततोऽव्ययीभावः—शुनः समीपमुपशुनम्। ततः सप्तमीसमासः—गोष्ठे श्वा इव गोष्ठश्वः।

यहाँ अचतुर आदि छब्बीस प्रातिपदिकों का समासान्त अच् प्रत्यय निपातित है। प्रारम्भ से तीन बहुव्रीहि हैं—'अद्रष्टा चतुर्णामचतुरः' आदि तीनों का अर्थनिर्देशमात्र समझना चाहिये। इनका विग्रह 'अदृश्यानि चत्वारि अस्य सः अचतुरः, विशिष्टानि चत्वारि अस्य स विचतुरः, सु शोभनानि चत्वारि अस्य स सुचतुरः' ऐसा अन्यपदार्थ में बहुव्रीहि करना चाहिये। इसके बाद स्त्रीपुंस आदि एकादश द्वन्द्व होते हैं—स्त्री च पुमान् च स्त्रीपुंसौ। धेनुश्चानड्वाँश्चेति धन्वनडुहौ। ऋक्च साम च ऋक्सामे। वाक् च मनश्च वाक्मनसे। अक्षिणी च भ्रुवौ च अक्षिभ्रुवम्। दाराश्च गावश्च दारगवम्, समाहारद्वन्द्व। ऊरू च अष्ठीवन्तौ चेत्यनयोः समाहारः' 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' २.४.२४ से एकवद्भाव होकर 'ऊर्वष्ठीवम्', निपातन से टिलोप हुआ है। 'पादौ च अष्ठीवन्तौ च पदष्ठीवम्', समाहारद्वन्द्व, एकवद्भाव, निपातन से टिलोप तथा पादशब्द को पद्भाव। नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम्। 'नक्तम्' यह मान्त अव्यय तथा 'दिवा' अकारान्त अव्यय है। दोनों का द्वन्द्व होकर निपातन से समासान्त अच् प्रत्यय है। 'रात्रौ च दिवा च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रात्रिन्दिवम्' द्वन्द्व, सुब्लुक्, पूर्वपद को मान्तनिपातन है। 'अहनि च दिवा च' इहर्दिवम्'। यहाँ वीप्सा में द्वन्द्व निपातित है। अन्यथा 'विरूपाणामपि समानार्थकानाम्' वा.१.२.६४ से एकशेष दुर्निवार होता। 'सरसजम्' यह साकल्य अर्थ में अव्ययीभाव है—'रजोऽपि अपरित्यज्येति सरसजम्'। इसके बाद तत्पुरुष है—'निश्चितं च तच्छ्रेयो निःश्रेयसम्'। इसके बाद षष्ठीसमास है—'पुरुषस्य आयुः पुरुषायुषम्'। इसके बाद द्विगु है—'द्वयोरायुषोः समाहारो द्व्यायुषम्। त्र्याणामायुषां समाहारस्त्र्युषम्'। यहाँ 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' २.१.५१ से द्विगु है। इसके बाद द्वन्द्व है—'ऋक् च यजुश्च ऋग्यजुषम्', यह समाहारद्वन्द्व है। जातादि उक्षान्त प्रथमासमानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारय है—'जातश्चासौ उक्षा च जातोक्षः। महाँश्चासौ उक्षा च महोक्षः'। यहाँ महत्पद को आत्त्व है। वृद्धश्चासौ उक्षा च वृद्धोक्षः। यहाँ सर्वत्र अच् होने से उक्षन् के टि का लोप है। इसके बाद अव्ययीभाव है—'शुनः समीपमुपशुनम्'। यहाँ 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-'२.१.६ से समास है। इसके बाद सप्तमीसमास है—'गोष्ठे श्वा इव गोष्ठश्वः'। अच् होने पर टिलोप है।

* चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानम् * **चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानमुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। त्रिचतुराः। उपचतुराः। {अचतुर}।**

भाष्यवार्तिक—**चतुरोऽच्प्रकरण इति**। त्रि और उप से पर में चतुर् से भी समासान्त अच् कहना चाहिये—'त्रयो वा चत्वारो वेति त्रिचतुराः। चतुर्णां समीपे ये सन्ति ते उपचतुराः=त्रयः पञ्च वा'। यहाँ उभयत्र 'संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' २.२.२५ से समास है। 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' ५.४.७३ से समासान्त डच् प्राप्त रहने पर उसका अपवाद अच् का विधान है। {अचतुर-}।

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ५.४.७८

* पल्यराजभ्यां च * **पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम्। पल्यवर्चसम्। राजवर्चसम्।** {ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः}।

'अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः' ५.४.७५ से 'अच्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'ब्रह्म और हस्ति पूर्वपद से अव्यवहितोत्तर वर्चस् उत्तरपद से पर में समासान्त अच् हो'। ब्रह्मवर्चसम्। हस्तिवर्चसम्।

वार्तिककार—**पल्यराजभ्यामिति**। पल्य और राज पूर्वपद से अव्यवहितोत्तर वर्चस् उत्तरपद से परमें समासान्त अच् कहना चाहिये। पल्यवर्चसम्। राजवर्चसम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्चसम्। {ब्रह्महस्ति-}।

अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५.४.८७

* अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् * **अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थं द्रष्टव्यम्। किमुच्यते द्वन्द्वार्थमिति, न पुनस्तत्पुरुषार्थमपि स्यात्?** * तत्पुरुषाऽभावात् * **न हि रात्र्यन्तोऽहरादिस्तत्पुरुषोऽस्ति।** {अहःसर्वैकदेश}।

'अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः' ५.४.७५ से 'अच्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अहन्, सर्व, एकदेश, संख्यात और पुण्य पूर्वपद से अव्यवहितोत्तर रात्रि उत्तरपद से पर में समासान्त अच् प्रत्यय हो'।

अहरादि रात्र्यन्त तत्पुरुष असम्भव है; अतः अहर्ग्रहण को द्वन्द्वार्थ बताते हैं—**अहर्ग्रहणमिति**। 'अहश्च रात्रिश्चेत्यनयोः समाहारः अहोरात्रः' लोकात् पुंस्त्व है।

प्रश्नभाष्य—**किमुच्य इति**। आप अहर्ग्रहण को द्वन्द्वार्थ क्यों कह रहे हैं, यह तत्पुरुषार्थ भी हो सकता है?

उत्तरभाष्य—**तत्पुरुषाभावादिति**। अहरादि रात्र्यन्त का तत्पुरुष सम्भव नहीं है। {**अहःसर्वैकदेश-**}।

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ५.४.८८

* अह्नोऽह्नवचनानर्थक्यं चाऽह्नष्टखोर्नियमवचनात् * **अह्नोऽह्नवचनमनर्थम्। किं कारणम्? 'अह्नष्टखोर्नियमवचनात्'। अह्नष्टखोरेवेत्येतन्नियमार्थं भविष्यति।** {अह्नोऽह्न एतेभ्यः}।

'अह्नः' षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन, 'अह्नः' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन और 'एतेभ्यः' पञ्चमीबहुवचनान्त निमित्तवचन है। 'एतेभ्यः' से पूर्वसूत्र में निर्दिष्ट 'सर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात्' ५.४.८७ का ग्रहण है।

सूत्रार्थ—'सर्वादि से परमें समासान्त पर रहते अहन् शब्द को अह्न आदेश हो'।

यहाँ भाष्यकार अह्नादेश का खण्डन करते हैं—**अह्नोऽह्नवचनेति**। मात्र षष्ठ्यन्त और पञ्चम्यन्तनिर्देश कर 'अह्न एतेभ्यः' इतना ही सूत्र रखिये। 'अह्नः' यह विधेयवचन क्यों पढने की आवश्यकता नही है। यदि अह्नादेशविधान नहीं करने पर अच् पर रहते टिलोप की आशङ्का करें तो उसका वारण हो जायेगा। वह इस तरह कि 'अह्नष्टखोरेव' ६.४.१४ नियमसूत्र से ट और ख पर रहते ही अहन् शब्द के टि का लोप विहित है। इससे अच् पर रहते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

टिलोप का वारण हो जायेगा; अतः 'अल्लोपोऽनः' ६.४.१३४ से उपधा अत् का लोप होकर 'पूर्वाह्णः, सर्वाह्णः' रूप ही होगा, 'पूर्वाहः, सर्वाहः' नहीं; अतः अह्नादेश व्यर्थ है। {अह्नोऽह्न एतेभ्यः}।

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ५.४.१०३

*** अनसन्तान्नपुंसकाद्वा * अनसन्तान्नपुंसकाच् छन्दसि वेति वक्तव्यम्। ब्रह्मसामम्। ब्रह्मसामं। देवच्छन्दसं देवच्छन्दः। {अनसन्तान्नपुंसका}।**

पूर्वसूत्र 'अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः' ५.४.७५ से 'अच्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'अन्नन्त और असन्त नपुंसक से वेद में समासान्त अच् प्रत्यय हो'। ब्रह्मसामं भवति। देवच्छन्दसानि।

एकदेशी वार्तिककार—**अन्नसन्तादिति**। अन्नन्त और असन्त नपुंसक से वेद में विकल्प से अच् कहना चाहिये। समासान्तपक्ष में 'ब्रह्मसामम्, देवन्छन्दसम्' तथा अभावपक्ष में 'ब्रह्मसाम, देवच्छन्दः' रूप होगा। 'षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा' १.४.९ का योगविभाग कर 'सर्वे विधयश्च्छन्दसि विकल्प्यन्ते' परि.शे.३५ ज्ञापित है; अतः इस ज्ञापन के द्वारा वार्तिककार द्वारा पढा गया विकल्पवचन एकदेशी है। {अनसन्तान्न-}।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५.४.११३

किमर्थं षच्प्रत्ययान्तरं विधीयते, न टच्प्रकृतः, सोऽनुवर्तिष्यते? अत उत्तरं पठति—* षचि प्रत्ययान्तरकरणमनन्तोदात्तार्थम् * षचि प्रत्ययान्तरं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अनन्तोदात्तार्थम्'। अनन्तोदात्ताः प्रयोजयन्ति। चक्रसक्थं चक्रसक्थि।

'स्वाङ्गात्' पञ्चम्यन्त को षष्ठीद्विवचन से व्यत्यय करना चाहिये।

सूत्रार्थ—'स्वाङ्गवाची सक्थ्यन्त और अक्ष्यन्त बहुव्रीहि से षच् हो'। दीर्घे सक्थिनी यस्य स दीर्घसक्थः, जलजमिव अक्षिणी यस्य स जलजाक्षः। स्वाङ्ग से भिन्न अर्थ में शक्त शक्थि और अक्षि से 'दीर्घशक्थि शकटम्, स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः' रूप होगा।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' ५.४.९१ से टच् की अनुवृत्ति हो रही थी, पुनः सूत्र में षच् का ग्रहण क्यों है? टच् चित् है, अतः 'चितः' ६.१.१६३ से अन्तोदात्त होता, एवं टिल्लक्षण ङीप् ४.१.१५ होने पर भी उदात्तनिवृत्तिस्वर के द्वारा अन्तोत्त ही रहेगा; फिर षच् का ग्रहण क्यों करते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं?, यह प्रष्टा का आशय है।

उत्तरभाष्य—**षचि प्रत्ययान्तरेति**। टच् की अनुवृत्ति होने पर भी अन्य समासान्त षच् प्रत्यय का विधान अनन्तोदात्तार्थ है। 'सक्थं चाक्रान्तात्' ६.२.११८ के द्वारा विकल्प से अन्तोदात्त विहित है। अन्तोदात्त से टिल्लक्षण ङीप् ४.१.१५ किया जाये, अथ वा षिल्लक्षण ङीष् ४.१.४१ किया जाये, दोनों में कोई भेद नहीं है। ङीप्पक्ष में भी उदात्तनिवृत्तिस्वर के द्वारा अन्तोदात्त ही होगा। परन्तु यदि पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा अनुदात्त होगा तब अनुदात्तान्त से ङीष् करने पर ईकार उदात्त होगा। परन्तु अनुदात्तान्त से ङीप् करने पर ईकार अनुदात्त होगा। 'अक्रान्तात्' ६.२.११८ यह निषेध विकल्प से है, एवं 'चितः' ६.१.१६३ नित्य विधि है; अतः चित्त्वात् नित्य अन्तोदात्त होने से मूल में 'चक्रसक्थि' पाठ अयुक्त है; अतः अन्तोदात्तत्वाभावपक्ष में 'गौरसक्थि' पद का उदाहरण ही देना चाहिये। {बहुव्रीहौ-}।

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५.४.१०५

किमर्थं मूर्ध्नश्च षः प्रत्ययान्तरं क्रियते, न षच्प्रकृतः, सोऽनुवर्त्तिष्यते? *मूर्ध्नश्च षवचनम्* मूर्ध्नश्च षवचनम्। किम्? अनन्तोदात्तार्थमित्येव। द्विमूर्द्धः। त्रिमूर्द्धः। {द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः}।

'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ पद की अनुवृत्ति है। 'षः' विधेयवचन है।

सूत्रार्थ—'द्व्यादिमूर्धान्त, त्र्यादिमूर्धान्त बहुव्रीहि से समासान्त ष प्रत्यय हो'। द्वौ मूर्धानौ यस्य स द्विमूर्धः। त्रयो मूर्धानो यस्य स त्रिमूर्धः। यहाँ उभयत्र ष प्रत्यय और टिलोप है।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' ५.४.११३ से विधेयवचन 'षच्' की अनुवृत्ति आ रही थी, उसी को विधेय रहने देते; अतिरिक्त विधेयवचन क्यों पढते हैं?

उत्तरभाष्य—**मूर्ध्नश्चेति**। 'द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ' ६.२.१९७ के द्वारा द्वि और त्रि पूर्वान्त मूर्धान्तबहुव्रीहि में अन्तोदात्त विहित है। यहाँ सूत्र में अकृतसमासान्त मूर्धन् शब्द गृहीत है। इसका प्रयोजन यह है कि समासान्त में अन्तोदात्त हो सके। यदि 'द्वित्रिभ्यां मूर्ध्नः' मात्र इतना ही सूत्र रखते तथा षज्ग्रहण की अनुवृत्ति करते तो षच् के चित् होने से चित्त्वात् नित्य अन्तोदात्त होता। समासान्तविधि के अनित्य होने से समासान्त का अभावपक्ष में 'द्विमूर्धा, त्रिमूर्धा' में 'द्वित्रिभ्यां पाददन्मूर्धसु बहुव्रीहौ' ६.२.१९७ से विभाषा अन्तोदात्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरितार्थ है; अतः षच्पक्ष में अनवकाश के द्वारा 'द्वित्रिभ्यां पाददन्मूर्धसु बहुव्रीहौ' ६.२.१६७ से 'चितः' ६.१.१६३ का बाध भी सम्भव नहीं है। इस तरह षच् प्रत्यय होने पर नित्य अन्तोदात्त की आपत्ति होगी। परन्तु जब ष प्रत्यय करते हैं तब समासान्तपक्ष में भी 'द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ' ६.२.१६७ से अन्तोदात्त तथा पक्ष में पूर्वपदप्रकृतिस्वर के द्वारा आद्युदात्त होने से दोनों स्वरों की सिद्धि हो जाती है। इस तरह षच् के अनुवर्त्तन होने पर भी पुनः षग्रहण **अनन्तोदात्तार्थ**=आद्युदात्तार्थ है। {**द्वित्रिभ्यां-**}।

अप्पूरणीप्रमाण्योः ५.४.११६

* अपि प्रधानपूरणीग्रहणम् * **अपि प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम्। प्रधानं या पूरणीति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—कल्याणी पञ्चमी अस्य पक्षस्य कल्याणपञ्चमीकः पक्षः।**

अथेह कथं भवितव्यं—कल्याणी पञ्चमी आसां रात्रीणामिति? कल्याणपञ्चमा रात्रय इति भवितव्यम्। रात्रयोऽत्र प्रधानम् * नेतुर्नक्षत्रे उपसंख्यानम् * **नेतुर्नक्षत्रे उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। पुष्यनेत्राः। मृगनेत्राः** * छन्दसि च * **छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्। बृहस्पतिनेत्राः सोमनेत्राः** * मासाद् भृतिप्रत्ययपूर्वपदाट् ठञ्विधिः * **मासाद् भृतिप्रत्ययपूर्वपदाट् ठञ्विधेयः। पञ्चकमासिकः। षट्कमासिकः। दशकमासिकः।** {अप्पूरणीप्रमाण्योः}।

'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' ५.४.११३ से 'बहुव्रीहौ' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'पूरणप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग, तदन्तबहुव्रीहि से तथा प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय हो'। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः।

सिद्धान्ती आचार्य—**अपि प्रधानेति**। 'अप्पूरणीप्रमाण्योः' ५.४.११६ सूत्र में प्रधानपूरणीग्रहण करना चाहिये। इससे 'कल्याणी पञ्चमी अस्य पक्षस्य' ऐसा विग्रह होने पर जहाँ प्रधानपूरणप्रत्ययान्त का ग्रहण नहीं है, वहाँ 'कल्याणपञ्चमीकः पक्षः' ऐसा समासान्त अप्प्रत्ययरहित ही रूप होगा। परन्तु जहाँ 'कल्याणी पञ्चमी आसां रात्रीणाम्' ऐसा विग्रह प्रधानपूरणप्रत्ययान्त होगा, वहाँ समासान्त अप् प्रत्यय 'कल्याणीपञ्चमा रात्रयः' रूप होगा। यहाँ रात्रियाँ प्रधान है।

नेतुर्नक्षत्र इति। नेत्रन्तबहुव्रीहि से नक्षत्र वाच्य होने पर समासान्त अप् प्रत्यय कहना चाहिये—'पुष्यो नेता येषान्ते पुष्यनेत्राः, मृगो नेता येषान्ते मृगनेत्राः'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छन्दसि चेति। वेद में भी नेत्रन्तबहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय कहना चाहिये। बृहस्पतिर्नेता येषान्ते बृहस्पतिनेत्राः। **मासाद् भृतिप्रत्ययेति**। भृतिप्रत्ययान्तपूर्वपदादि मासोत्तरपदबहुव्रीहि से समासान्त ठच् कहना चाहिये। पञ्च भृतिरस्य मासस्येति पञ्चको मासः। यहाँ 'सोऽस्यांशवस्नभृतयः' ५.१.५६ से कन् प्रत्यय, 'पञ्चको मासोऽस्येति पञ्चमासिकः' यहाँ बहुव्रीहि कर लेने पर स्वार्थ में ठच् प्रत्यय है। इसी तरह 'षट्कमासिकः, दशकमासिकः' में भी विग्रह करना चाहिये। {**अप्पूरणी-**}।

अज्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ५.४.११८

* खरखुराभ्यां च नस् * **खरखुराभ्यां च नस् वक्तव्यः। खरणाः। खुरणाः** * शितिना अर्चना अहिना इति नैगमाः * **शितिनाः। अर्चनाः। अहिनाः।।**

'अच्+नासिकायाः' ऐसा पदच्छेद है। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' ५.४.११३ से 'बहुव्रीहौ' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'नासिकान्तबहुव्रीहि से संज्ञा गम्य होने पर समासान्त अच् हो, एवं नासिका के स्थान पर नस् आदेश हो, यदि स्थूलपूर्वादि नासिकान्त बहुव्रीहि है तो नस् आदेश न हो'। द्रुरिव नासिका यस्य स द्रुणसः, खर इव नासिका यस्य स खरणसः। 'अस्थूलात्'प्रतिषेध से 'स्थूला नासिका यस्य' ऐसा विग्रह कर 'स्थूलनासिकः' ही होगा।

वार्तिककार—**खरखुराभ्यामिति**। समासान्तप्रत्ययसहचरित आदेशविधान प्राप्त होने पर केवल आदेशविधान के लिए वार्तिकावतरण है। खर और खुरपूर्वादि नासिकान्तबहुव्रीहि के नासिका को नस् आदेश कहना चाहिये। खर इव नासिका यस्य स खरणसः, खुर इव नासिका यस्य स खुरणसः। **शितिनेति**। शिति, अर्चन् और अहिन्पूर्वादि नासिकान्तबहुव्रीहि में नासिका को नस् आदेश कहना चाहिये। शितिरिव नासिका यस्य स शितिनाः, अर्च इव नासिका यस्य सः अर्चनाः, अहिरिव नासिका यस्य स अहिनाः। नस् आदेश होने पर शितिनस् आदि हलन्त सान्त होंगे; अतः इसका रूप चन्द्रमस् की तरह चलेगा। {**अज्नासिकायाः-**}।

उपसर्गाच्च ५.४.११९

* वेर्ग्रः * **वेर्ग्रो वक्तव्यः। विग्रः** * ख्यश्च * **ख्यश्च वक्तव्यः। विख्यः।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह असंज्ञार्थ वचन है। 'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ तथा 'अञ्नासिकाया नसम्' ५.४.११८ की अनुवृत्ति है। 'समासान्ताः' ५.४.६८ का अधिकार है।

सूत्रार्थ—'उपसर्गादि पूर्वपद नासिकान्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो तथा नासिका को नस् आदेश हो'। उन्नता नासिका यस्यासौ उन्नसः।

वार्तिक—**वेर्ग्र इति**। विपूर्वादि नासिकान्तबहुव्रीहि से पर में समांसान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका को ग्र आदेश कहना चाहिये। विगता नासिका यस्य स विग्रः। **ख्यश्चेति**। विपूर्वादि नासिकान्तबहुव्रीहि से परमें समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका को ख्य आदेश भी कहना चाहिये। विगता नासिका अस्य स विख्यः। {**उपसर्गाच्च**}।

ऊधसोऽनङ् ५.४.१३१

* ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणम् * **ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भून्महोधाः पर्जन्य इति।** {ऊधसोऽनङ्}।

'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ की अनुवृत्ति है। 'ऊधसः' षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन, अनङ् प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन है।

वार्तिककार—**ऊधसोऽनङ्ङिति**। ऊधस् को अनङ् आदेश की कर्त्तव्यता में स्त्रीग्रहण करना चाहिये। अर्थात् यह आदेश स्त्रीलिङ्ग में ही होगा। कुण्ड इव ऊधो यस्याः सा कुण्डोघ्नी गौः। 'ङिच्च' १.१.५३ से अन्त्य अल् के स्थान में आदेश है। स्त्रीग्रहण करने से 'महदूधो यस्यासौ महोधाः पर्यन्यः' में पुंस्त्व वाच्य होने पर उक्त आदेश नहीं होगा। {**ऊधसोऽनङ्**}।

गन्धस्येद् उत्पूतिसुसुरभिभ्यः ५.४.१३५

* गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम् * **गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्—शोभना गन्धा अस्य सुगन्ध आपणिक इति।**

'गन्धस्य' षष्ठ्येकवचनान्त उद्देश्यवचन, 'इत्' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन, 'उत्पूतिसुसुरभिभ्यः' पञ्चमीबहुवचनान्त निमित्तवचन है। 'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'उत्, पूति, सु और सुरभिपूर्वादि गन्धान्तबहुव्रीहि को इत्त्व आदेश हो'।

भाष्यवार्तिक—**गन्धस्येत्त्व इति**। गन्धशब्द को इत्त्वविधि में तदेकान्तग्रहण करना चाहिये। अर्थात् '**तस्य**=विशेष्यभूतद्रव्यस्य, **एकान्तः**=एकदेश इव अविभागेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतीयमानः'=अवयव गन्ध गुण है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता बाधित है; अतः द्रव्यैकदेश होकर अविभक्तरूप से जहाँ ग्रहण हो रहा हो, वहीं इत्त्व कहना चाहिये। जैसे—'शोभनः गन्धो यस्य स सुगन्धिः पवनः'।

तदेकान्तग्रहण करने का व्यावर्त्त्य बताते हैं—**इह मा भूदिति**। शोभना गन्धा अस्य स सुगन्ध आपणिकः'। 'आपण एव आपणिकः' यहाँ स्वार्थ में ठक् है। आपण का एकदेश=अवयव गन्ध नहीं है; अतः यहाँ इत्त्व नहीं हुआ।

अथाऽनुलिप्ते कथं भवितव्यम्? यदि तावद्यदनुगतं तदभिसमीक्षितं 'सुगन्धि'रिति भवितव्यम्। अथ यत्प्रविशीर्णं 'सुगन्ध' इति भवितव्यम्।

प्रश्नभाष्य—**अथानुलिप्त इति**। यदि कोई चन्दन आदि गन्धानुलिप्त है तो वहाँ क्या होगा, इत्त्व होगा, अथ वा नहीं? प्रश्न में आशय यह है कि अनुलिप्त होने पर उसे तदेकान्तग्रहण से ग्रहण किया जाये, अथ वा नहीं?

उत्तरभाष्य—**यदि तावदिति**। यदि लेप के अनन्तर चन्दनादि का अविभक्तग्रहण हो रहा है, तब इत्त्व नहीं होगा। वहाँ 'सुगन्धो जनः' ऐसा ही प्रयोग होगा। {गन्धस्येत्-}।

शेषाद्विभाषा ५.४.१५४

शेषादित्युच्यते, कः शेषो नाम? याभ्यः प्रकृतिभ्यः समासान्तो न विधीयते स शेषः।

यहाँ 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' ५.४.१५१ से 'कप्' की अनुवृत्ति है। इससे पूर्व में जिस प्रकृति से समासान्त विहित है, उससे अन्य शेष है।

सूत्रार्थ—'अनुक्तसमासान्त शेषाधिकारस्थ बहुव्रीहि से विकल्प से कप् हो'। महद् यशोऽस्य स महायशस्कः-महायशाः।

प्रश्नभाष्य—**शेषादितीति**। सूत्रकार 'शेषात्' कह रहे हैं। यहाँ शेष क्या है? क्या कप् की अपेक्षा से शेषत्व है, अथ वा समासान्तमात्रापेक्ष शेषत्व है, अथ वा अनन्तरबहुव्रीह्यधिकारापेक्ष शेषत्व है?

उत्तरभाष्य—**याभ्य इति**। इससे पूर्व में जिस प्रकृति से समासान्त कह दिया गया है, उससे भिन्न शेष है; अतः समासान्तमात्रापेक्ष शेष लिया जायेगा। यहाँ समासान्तविशेष का परिगणन नहीं करके भाष्यकार मात्र समासान्तमासान्य का ही निर्देश कर रहे हैं?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किमर्थं पुनः शेषग्रहणं क्रियते? याभ्यः प्रकृतिभ्यः समासान्तो विधीयते ताभ्यः कब्मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनं—ये प्रतिपदं विधीयन्ते तेऽत्र बाधका भविष्यन्ति। अनवकाशा हि विधयो बाधका भवन्ति, सावकाशाश्च समासान्ताः। कोऽवकाशः? विभाषा कप्, यदा न कप् सोऽवकाशः। कपः प्रसङ्गे उभयं प्राप्नोति। परत्वात् कप् प्राप्नोति। तस्माच्छेषग्रहणं कर्त्तव्यम्।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। मात्र 'विभाषा' इतना ही सूत्र रखिये। इससे सामान्यरूप से विकल्प के द्वारा कप् का विधान होगा। इससे पूर्व में समासान्त कप् विशेष विहित है। तक्रकौण्डिन्यन्याय से विशेष कप् के द्वारा सामान्य कप् का बाध हो जायेगा; फिर शेषग्रहण क्यों करते हैं?

खण्डनभाष्य—**नैतदस्तीति**। शेषग्रहण का उक्त प्रयोजन नहीं हो सकता है। प्रकृतिविशेष से विहित समासान्त विशेष विधि है। विशेष से सामान्य का बाध हो जायेगा; अतः प्रकृतिविशेष से कप् की प्राप्ति नहीं होने से 'विभाषा' की अतिव्याप्ति नहीं होगी, फिर शेषग्रहण क्यों है?

उत्तरभाष्य—**अनवकाशा इति**। अनवकाशविशेष से ही सामान्य का बाध होता है। परन्तु यदि विशेष कहीं पर सावकाश है, तब उससे सामान्य का बाध नहीं हो सकेगा। यहाँ प्रकृत में कप् समासान्त विकल्प से कहा जा रहा है। कप् के अभावपक्ष में प्रकृतिविशेष से विहित समासान्तविशेष सावकाश है। एवं विकल्पपक्ष में कप् चरितार्थ है। इस तरह सामान्य कप् तथा विशेष समासान्त दोनों की चरितार्थता होने से दोनों ही समानबल वाले हैं। दो समानबल वालों का तुल्यबलविरोध होने पर परविप्रतिषेध १.४.२ के द्वारा कप् ही बाधक होगा, तथा इससे पूर्व विशेषसमासान्त बाध्य होंगे। विभाषा कप् से समासान्तविशेष का बाध न हो, इसके लिए शेषग्रहण करना चाहिये।

किं पुनरिदं शेषग्रहणं कबपेक्षं—'यस्माद् बहुव्रीहेः कब्न विहित' इति, आहो स्वित् समासान्तापेक्षं—'यस्माद् बहुव्रीहेः समासान्तो न विहित' इति? किं चातः? यदि विज्ञायते कबपेक्षम्—अनृचो बह्वृच इत्यत्रापि प्राप्नोति। अथ समासान्तापेक्षम्—अनृक्कं साम बह्वृक्कं सूक्तमिति न सिद्ध्यति।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिदमिति**। क्या यह शेषग्रहण कप् की अपेक्षा से है?, यदि हाँ तो इस पक्ष में 'जिस बहुव्रीहि से कप् विहित नहीं है, उससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकल्प से कप् हो' यह अर्थ होगा। यदि समासान्त की अपेक्षा से शेषग्रहण है तो 'जिस बहुव्रीहि से समासान्त विहित न हो, उससे विकल्प से कप् हो' यह अर्थ होगा। इन दोनों ही तरह के अर्थों में दोष है।

प्रथमपक्ष में दोष दिखाते हैं—**यदि विज्ञायत इति**। यदि कप् की अपेक्षा से शेष मानेंगे तो 'यस्माद् बहुव्रीहेः कब्न विहितः'पक्ष में 'अविद्यमाना ऋग् यस्मिन्नसौ अनृचः, बह्व्यः ऋचो यस्मिन्नसौ बहृचः' में कप् की प्राप्ति होगी। यहाँ 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से समासान्त 'अ' प्रत्यय विहित होने पर भी ऋगन्त से कप् विहित नहीं है; अतः 'अनृचः, बहृचः' में कप् की अतिव्याप्ति होगी। यहाँ कप् का अभावपक्ष में समासान्त 'अ' प्रत्यय ५.४.७४ तथा समासान्तर अवकाश है। परन्तु द्वितीयपक्ष समासान्तापेक्षशेषत्व मानने पर 'अनृचः, बहृचः' में दोष नहीं है; फिर द्वितीयपक्ष की अव्याप्ति 'अनृक्कं साम, बहृक्कं साम' में होगी।

द्वितीयपक्ष में 'जिससे समासान्त विहित न हो, उसी से विकल्प से कप् हो' अर्थ होगा। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ५.४.७४ से ऋगन्तबहुव्रीहि को समासान्त 'अ' विहित है; अतः 'अविद्यमाना ऋग् यस्मिँस्तद् अनृक्कं साम, बह्व्य ऋग् यस्मिँस्तद् बहृक्कं साम' में इष्ट कप् की अप्राप्ति हो रही है। इस तरह कबपेक्ष शेषग्रहण, अथ वा समासान्तशेषग्रहण, जो भी पक्ष मानें, दोनों ही पक्षों में दोष है।

अस्तु कबपेक्षम्। कथम् अनृचो बहृच इति? विशेष एतद्वक्तव्यम् * 'अनृचो माणवे'। 'बहृचश्चरणाख्याया'मिति * इदं तर्हि ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणं चोदितं तस्मिन् क्रियमाणेऽपि प्राप्नोति। एवं तर्हि नैव कबपेक्षं शेषग्रहणं, नापि समासान्ताऽपेक्षम्। किन्तर्हि? 'अनन्तरो यो बहुव्रीह्यधिकारः सोऽपेक्ष्यते-'अनन्तरे बहुव्रीह्यधिकारे यस्माद् बहुव्रीहेः समासान्तो न विहित' इति। कथमनृचो बहृच इति? वक्तव्यमेवैतत्—* 'अनृचो माणवे'। 'बहृचश्चरणाख्यायाम्' * इति।

उत्तरभाष्य—**अस्तु कबपेक्षमिति**। आप कबपेक्ष शेषग्रहण ही मानिये। इस पक्ष में आप ने 'अनृचः' में कप् की आपत्ति दी थी। उसका वारण करने के लिए 'अनृचो माणवे' ऐसा नियामकवचन पढेंगे। इससे माणव अर्थ में ही कब्रहित 'अनृचः' प्रयोग होगा। नियम में कोई एकविध प्रमाण नहीं होने से 'अनृचो माणवे एव' एवम् 'माणवेऽनृच एव' यह द्विविध नियम होगा। एवं 'बहृचः' में कप् का वारण के लि 'बहृचश्चरणाख्यायामेव' यह नियम करेंगे। इससे चरणाख्या गम्य होने पर ' ऐसा कब्रहित प्रयोग होगा। यहाँ भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विविध नियम होगा—'बह्वृचश्चरणाख्यायामेव' तथा 'चरणाख्यायां बह्वृच एव'।

समासान्तापेक्ष तथा कबपेक्ष शेषग्रहण में अन्यत्र दोष देते हैं—**इदं तर्हीति**। 'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ के अधिकार में 'ऊधसोऽनङ्' ५.४.१३१ पढा गया है, तथा यहाँ स्त्रीग्रहण है; अतः अनिष्ट कप् प्राप्त हो रहा है।

इस तरह कबपेक्ष तथा समासान्तापेक्ष शेषग्रहण में 'कुण्डोघ्नी' में कप् की अतिव्याप्ति का आचार्य वारण करते हैं—**एवं तर्हि नैवेति**। यहाँ कप् की अपेक्षा से भी शेषग्रहण नहीं करना चाहिये, एवं समासान्त की अपेक्षा से भी शेषग्रहण नहीं करना चाहिये। यहाँ अनन्तरबहुव्रीहि के अधिकार में जिससे समासान्त विहित नहीं है, उसकी अपेक्षा से शेषग्रहण मानिये। इसका आशय इस प्रकार है-'समासान्ताः' ५.४.६८ का अधिकार कर 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' ५.४.७३ तथा 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' ५.४.११३ पढा गया है। दोनों सूत्रों में पठित 'बहुव्रीहौ' पद का स्वरितत्वप्रतिज्ञा के बल पर अधिकार होता है। इन दोनों में अनन्तर 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' ५.४.११३ के अधिकार में जिनसे समासान्त कप् विहित नहीं है, उन्हीं से परमें विकल्प से कप् होगा। परन्तु इस समाधान में भी 'अनृचः, बह्वृचः' कप् की आपत्ति का तादवस्थ्य ही है। अनन्तरबहुव्रीहि के अधिकार में ऋगन्त से समासान्त विहित नहीं है; अतः ऋगन्त 'अनृचः, बह्वृचः' में कप् की आपत्ति होगी। उसका वारण करने के लिए 'अनृचो माणवे' तथा 'बह्वृचश्चरणाख्यायाम्' यह अतिरिक्तवचन पढना ही होगा। {**शेषाद्विभाषा**}।

ईयसश्च ५.४.१५६

*** ईयस उपसर्जनदीर्घत्वं च * ईयस उपसर्जन-दीर्घत्वं चेति वक्तव्यम्। बह्व्यः श्रेयस्योऽस्य बहुश्रेयसी, विद्यमानश्रेयसी * पुंवद्वचनात् सिद्धम् * पुंवद्वचनात् सिद्धमेतत्। पुंवद्भावोऽत्र भवति-'ईयसो बहुव्रीहौ पुंवद्वचन'मिति।।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायस्य चतुर्थे पादे प्रथममाह्निकम्

●

'न संज्ञायाम्' ५.४.१५५ से 'न' तथा 'बहुव्रीहौ' ५.४.११३ की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'ईयसन्तोत्तरपदबहुव्रीहि से कप् न हो'। बहवः श्रेयांसो यस्य स बहुश्रेयान्। 'न संज्ञेयसोः' ऐसा एकसूत्र न पढ कर आचार्य ने जो पृथक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगनिर्देश किया, तत्सामर्थ्य से नित्य और वैकल्पिक दोनों ही प्रकार के कप् का निषेध हो जायेगा।

वार्तिककार—**ईयस इति**। ईयस् को उपसर्जनदीर्घविधान कहना चाहिये। 'बह्व्यः श्रेयस्योऽस्य स बहुश्रेयसी' यहाँ समासार्थ पुंस्त्व में श्रेयसी स्त्रीलिङ्ग **उपसर्जन**=विशेषण है। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से ह्रस्वादेश प्राप्त होने पर दीर्घविधान किया गया है। ईयस उपसर्जनदीर्घत्वञ्च'वार्तिक का खण्डन करने के लिए अन्य वार्तिक का अवतरण करते हैं—**पुंवद्वचनमिति**। 'बहुश्रेयसी, विद्यमानश्रेयसी' में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' १.२.४८ से प्राप्त ह्रस्व की पुंवद्भाव से निवृत्ति हो जाती है। जैसे पुंविषय ईकार को ह्रस्व नहीं होता है, वैसे ईयस् से परमें भी ईकार का श्रवण होगा; अतः ईयस् का उपसर्जनत्वप्रयुक्तदीर्घविधान व्यर्थ है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' ६.१.६८ में दीर्घग्रहणसामर्थ्य से पुंविषय दीर्घ ई (ङी) से परमें भी सुलोप हो जायेगा; अतः 'बहुश्रेयसी, विद्यमानश्रेयसी' ऐसा विसर्गरहित ही पाठ होगा। {**ईयसश्च**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
पञ्चम अध्याय चतुर्थ पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

चतुर्थ पाद भी पूर्ण हुआ

पञ्चम अध्याय भी पूर्ण हुआ

Acc. 39803 / 314073

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयानुकूल ग्रन्थरत्नानि

- **(बृहत्) अनुवाद रत्नाकर** । डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी
- **अष्टाध्यायी** । 'चन्द्रलेखा' हिन्दी व्याख्या एवं अनेकोपयोगी विषययुक्त । पं० ईश्वरचन्द्रशर्मा । १-२ भाग
- **अष्टाध्यायी** । 'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । डॉ० नरेश झा
- **काशिका** । विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित । पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा
- **कृत्प्रत्ययविश्लेषण** । कृत्प्रत्ययों का व्यापक तथा विशद् विश्लेषण । डॉ० गोपबन्धु मिश्र
- **परमलघुमञ्जूषा** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पं० वंशीधर मिश्र
- **परिभाषेन्दुशेखर** । तात्याशास्त्रीकृत 'भूति' टीका सहित
- **परिभाषेन्दुशेखर** । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित । आचार्य विश्वनाथ मिश्र
- **पाणिनीयशिक्षा** । 'वेदाङ्गशिक्षाविमर्श' संस्कृत एवं 'नारायणी' हिन्दी व्याख्या एवं परिशिष्ट सहित
- **प्रबन्धरत्नाकर** । (शास्त्री, आचार्य, बी.ए., एम.ए. आदि परीक्षोपयोगि शताधिक निबन्धों का संग्रह) । डॉ० रमेश चन्द्र शुक्ल
- **प्रौढमनोरमा** । (कारकादव्ययीभावान्तोभाग) सशब्दरत्न बालप्रकाशिका संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्तपाण्डेय
- **प्रौढमनोरमा** (पञ्चसन्ध्यन्त) । 'शब्दरत्न', 'भैरवी' एवं हिन्दीव्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
- **बृहद्धातुशब्दरूपसंग्रह** । डॉ० रामकिशोरशर्मा
- **बृहद्धातुसुकुमाकर** । (सिद्धान्तकौमुदी के सभी धातु-रूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्तमिश्र
- **बृहच्छब्दकुसुमाकर** । (शब्दरूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्त मिश्र
- **मुग्धबोधव्याकरण** । बोपदेवविरचित । श्रीदुर्गादासतर्कवागीश, श्रीरामतर्कवागीशकृत टीका सहित । सम्पा. पं० जीवानन्दविद्यासागर
- **लघुशब्देन्दुशेखर** । 'भैरवी', 'चन्द्रकला' एवं 'बैकुण्ठी' हिन्दी टीका सहित । बैकुण्ठनाथ शास्त्री
- **लघुसिद्धान्तकौमुदी** । विवेचनात्मक 'माहेश्वरी' हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० महेशसिंहकुशवाहा । १-२ भाग

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu